प्रकृति और काव्य

[संस्कृत खण्ड]

आलोचना व निबन्ध

डा० रघुवंश

प्रकाशक

साहित्य-भवन लिमिटेड,

इलाहाबाद

मर्पण—

पूज्य डा० रामकुमार वर्मा जी
को
जिनके प्रोत्साहन से मैं यह
कार्य सम्पन्न कर सका

परिचय

डा० रघुवंश हिन्दी के विचारशील तरुण लेखक हैं। यद्यपि विधाता ने इनके हाथ की बनावट पूरी करने में बहुत कृपणता का परिचय दिया है—इनके हाथ इतने दुर्बल और निःशक्त हैं कि वे उनसे लिख भी नहीं सकते, पैरों की सहायता से हाथों को हिलाकर लेखनी चलाते हैं—परन्तु फिर भी तीक्ष्ण बुद्धि और उदार मन देकर उन्होंने अपनी कृपणता का कलङ्क मिटा दिया है। इन्होंने संस्कृत, हिन्दी और अँग्रेज़ी साहित्य का खूब मनन किया है। किसी भी साहित्यिक प्रभाव का वे बड़ी बारीकी से विश्लेषण करते हैं, उसके तह में जाते हैं और उसका वास्तविक स्वरूप समझने का प्रयत्न करते हैं। इनका प्रथम लेख जब विश्वभारती पत्रिका में प्रकाशनार्थ आया तो हमारे एक मित्र ने मुझसे कहा कि इस लेख का कुछ भी अर्थ नहीं हो सकता। छपने के पूर्व मैंने बड़े ध्यान से उस लेख को पढ़ा था और मैंने अपने मन में उसके संबंध में निश्चित मत बना लिया था। मेरा विचार था कि उस लेख में एक भावी विचारक का रूप स्पष्ट दिख रहा है। बाद में प्रयाग विश्वविद्यालय ने रघुवंश जी को उनके सुचिन्तित निबंध 'हिन्दी काव्य में प्रकृति' से सन्तुष्ट होकर डी० फिल की उपाधि दी। वह निबंध पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुका है। प्रस्तुत पुस्तक उनकी साहित्यिक आलोचना संबंधी दूसरी रचना है। इसमें भी उन्होंने काव्य में प्रकृति के स्थान की ही विवेचना की है किन्तु विवेच्य साहित्य का क्षेत्र इस बार और भी विस्तृत हो गया है। संस्कृत और प्राकृत के काव्य इस पुस्तक में प्रधान रूप से आलोच्य बने हैं।

श्री रघुवंश जी के सोचने का और सोची हुई बात को प्रकाशित करने का ढंग अपना है। वे पिटे पिटाए मार्ग पर नहीं चलते बल्कि प्रत्येक

वस्तु को नये ढंग से और नई दृष्टि से देखने का प्रयत्न करते हैं। कभी-कभी वे ऐसे नतीजे पर पहुँचते हैं जिनसे वे लोग सहमत नहीं हो सकते जो परम्परा-प्रथित मार्ग के पथिक हैं। किसी वस्तु के याथार्थ्य तक पहुँचने के लिये वे उसका सूक्ष्म विश्लेषण करते हैं। वस्तुतः वह भेदक दृष्टि वाले आलोचक हैं। उनका अध्ययन विशाल है और दृष्टि विश्लेषप्रवण। जो पुस्तक पाठकों के सामने है वह इस बात की साक्षी स्वयं है।

मैं बड़े हर्ष के साथ हिन्दी आलोचना के क्षेत्र में इस पुस्तक का स्वागत करता हूँ। मेरा विश्वास है कि यह पुस्तक साहित्य में अपना स्थान बना लेगी और इसके पाठक इससे लाभान्वित होंगे। श्री रघुवंश जी अथक परिश्रम करने वाले लोगों में हैं। वे सदा लिखने-पढ़ने में लगे रहते हैं। हमारा साहित्य उनसे बहुत अधिक पाने की आशा रख सकता है। मेरी हार्दिक शुभकामना है कि वे स्वस्थ रहकर साहित्य को नये-नये ग्रंथों से समृद्ध करते रहें।

काशी विश्वविद्यालय
२१-७-५१

हजारीप्रसाद द्विवेदी

अपनी बात

प्रस्तुत ग्रन्थ इतना विस्तृत हो गया है कि भूमिका रूप में कुछ कहने का साहस नहीं होता। मेरी योजना के अनुसार इस अध्ययन से सम्बंधित कुछ निष्कर्षों का विश्लेषण तथा स्थापना के साथ यहाँ देना चाहिए था। परन्तु अब मैं निर्देश मात्र करके उनको किसी स्वतंत्र निबन्ध के लिये छोड़ रहा हूँ।

भारतीय कवि प्रकृति को अपने निकट पाता है और उससे उसका आत्मीय परिचय है। उसकी दृष्टि में प्रकृति मानवीय जीवन से अनुप्राणित है, संभवतः इसी कारण प्रकृति के स्वतंत्र जीवन को उसने स्वीकार कम किया है। कवियों ने जिस प्रकार प्रकृति को अपने काव्य में प्रस्तुत किया, और जिस शैली में चित्रित किया है, उसके अध्ययन से हम उनके काल-क्रम पर विचार कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त भारतीय जीवन के सभी अंग एक सूत्र में बँधे रहे हैं। क्या दर्शन, क्या धर्म और क्या साहित्य, सभी क्षेत्रों में भारतीय आदर्शवाद की छाप है। हम कला के द्वारा साहित्य के आदर्शों की माप कर सकते, तथा साहित्य के द्वारा कला सम्बंधी आदर्शों की कल्पना कर सकते हैं। साहित्य और कला का यह अविच्छिन्न सम्बंध प्रकृति चित्रणों से और भी सिद्ध होता है। जो व्यक्ति भारतीय सौन्दर्य सम्बंधी दृष्टिकोण से परिचित नहीं वह जैसे यहाँ की कला-कृतियों (चित्रकला आदि) के सौन्दर्य को नहीं समझ सकता, उसी प्रकार संस्कृत काव्य के प्रकृति सौन्दर्य से भी अनभिज्ञ है। सौन्दर्य सम्बंधी आदर्श को हम इस प्रकृति-काव्य में अधिक प्रत्यक्ष देख सकते हैं। यही नहीं वरन् विभिन्न युगों के कला सम्बंधी स्तर पर इस अध्ययन के द्वारा प्रकाश भी पड़ सकता है।

इस कार्य के सम्पादन में अनेक लोगों का सहयोग और प्रोत्साहन

रहा है, और उन सबका मैं बहुत आभारी हूँ। पूज्य पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी जी ने अपने व्यस्त समय कार्यक्रम से समय निकाल कर इस पुस्तक को देखने और परिचय लिखने की जो कृपा की है, वह उनका मेरे प्रति स्नेह ही है। पं० रामप्रियजी तथा भाई गंगाप्रसाद श्रीवास्तव जी ने मेरी विशेष सहायता की है और मैं उनका कृतज्ञ हूँ। श्री उदयशंकर शास्त्री जी ने पुस्तकों आदि से मेरी बहुत सहायता की है, पर सम्बन्ध की निकटता के कारण मैं उनके प्रति आभार प्रकट करने का साहस भी नहीं कर सकता।

३० जुलाई १९५१
४ टैगोर टाउन,
प्रयाग

रघुवंश

विषय-सूची

प्रथम भाग

काव्य और प्रकृति

द्वितीय भाग

कवि और प्रकृति

प्रथम भाग

काव्य और प्रकृति

प्रथम प्रकरण

प्रकृति और काव्य

§ १—सर्जनात्मक विश्व की अभिव्यक्ति प्रकृति है। भारतीय सांख्य-दर्शन में प्रकृति पुरुष के आकर्षण से सर्जन-विस्तार कर रही है। और यह प्रतीक ऐसा सजीव है कि इसका प्रचार दर्शन के तत्त्ववाद की सीमा से बाहर भी रहा है।

प्रकृति का प्रश्न

प्रकृति की इस व्याख्या में विश्व का सारा विस्तार आ जाता है। परम्परा जिस अर्थ में प्रकृति को ग्रहण करती है, उसमें भी समस्त बाह्य-जगत् को उसके इंद्रिय-प्रत्यक्ष की रूपात्मकता तथा उसमें अधिष्टित चेतना के साथ प्रकृति माना जाता है। परंतु इस व्यापक सीमा के अन्तर्गत कितने ही स्तरों को अलग-अलग प्रकृति के नाम से कहा जाता है। तत्त्ववादियों ने प्रकृति का प्रयोग दृश्य-जगत् के लिए किया है, और साथ ही किसी अन्य सत्य के लिए भी। जहाँ तक ईश्वरवादियों का प्रश्न है वे प्रकृति को ईश्वर का स्वभाव मानकर चलते हैं। परंतु तत्त्ववादी सारे सर्जन को भौतिक-तत्त्व और विज्ञान-तत्त्वों में समझते हैं। कभी-कभी भौतिक-तत्त्व को प्रकृति और विज्ञान-तत्व को परम-सत्य भी माना गया

है।[१] पर वैसे प्रकृति की व्याख्या के लिए इन दोनों का प्रयोग किया गया है। वास्तव में तत्त्ववाद के इन दो तत्त्वों के अन्तर्गत प्रकृति की सहज व्याख्या छिपी है। सर्जन का रूप और भाव, उसकी स्थिति और गति ये दोनों प्रकृति की कठिन से कठिन तत्त्ववादी व्याख्याओं में उसी प्रकार अन्तर्निहित हैं जिस प्रकार साधारण व्यक्ति के मन में स्पष्ट हैं।[२] प्रकृति का यह रूप और भाव ही है जिससे मानव युगों से परिचित है और जिसके आधार पर उसका विकास सम्भव हो सका है।

प्रकृति का रूप और भाव

§ २—भारत और योरप दोनों ही देशों के तत्त्ववाद में प्रकृति के रूप और भाव को लेकर अनेक वाद चले हैं। वास्तव में प्रकृति की स्थिरता और चेतना ने मानव के मन को सदा प्रश्नशील और जिज्ञासु रखा है। कभी उसने एक को सत्य माना, कभी दूसरे को; कभी उसने एक से दूसरे की व्याख्या की और कभी दूसरे से पहले की। पर यह प्रश्न युगों से चला आ रहा है। मिथयुग मानव की प्रवृत्तियों का विकास-युग था। इस युग के आगे बढ़ते ही मानव विश्व-रूप प्रकृति के प्रति प्रश्नशील हुआ। यह चारों ओर क्या है, कैसे है और क्यों है। अपने चारों ओर की नाना-रूपात्मक, आकार-प्रकारमयी, ध्वनि-नादों से युक्त, प्रवाहित गतिमान् परिवर्तनशील सृष्टि के प्रति मानव जिज्ञासु हो उठा। इसी प्राकृतिक आधार पर आगे बढ़कर तत्त्ववादी भौतिक-तत्त्व तथा विज्ञान-तत्त्व जैसे सिद्धान्तों तक

भौतिक प्रकृति

१. तत्ववाद के क्षेत्र में भौतिक-वाद और विज्ञान-वाद की दो विभिन्न विचार-धाराएँ रही है, और साथ ही कुछ विद्वानों ने इनका समन्वय भी किया है।

२. साधारण व्यक्ति और सहज बोध का अर्थ यहाँ सर्वसाधारण से संबंधित नहीं है। यहाँ इनका प्रयोग व्यावहारिक योग्यता के रूप में किया गया है; जिसके आधार पर विचारक व्यापक रूप से मानवीय अनुभवों की तुलनात्मक विवेचना करता है (स्टाउट; माइन्ड ऐन्ड मैटर, प्र० प्र०; पृ० ६)।

पहुँचे हैं।[३] दार्शनिकों ने समन्वय का मार्ग भी निकाला है जिसमें प्रकृति के दोनों पक्षों को स्वीकार किया है। और साधारण सहज बोध की सीमा में भी हम इसी निष्कर्ष तक पहुँचते हैं। साधारण व्यक्ति यथार्थ जगत् को स्वीकार करके चलता है। वह हरी घास, नदी और वृक्ष सभी को आकार-प्रकार तथा रंग-रूप में ग्रहण करता है; इनको सत्य मानने के लिए स्वाभाविक रूप से विवश है। पर साधारण व्यक्ति के मन में इनके यथार्थ होने के प्रति सन्देह उत्पन्न होने के अवसर भी आते हैं। दिक और काल की असीमता, द्रव्य और गुण का परिवर्तन होनेवाला स्वभाव, इन्द्रियों के विरोधी तथा भ्रमात्मक प्रत्यक्ष इस सन्देह को पुष्ट करते रहते हैं। यद्यपि परिणामवाद अधिक दूर तक सत्य नहीं माना जा सकता, पर साधारण व्यक्ति परिणामवादी होता है। इस स्थिति में वह न तो प्रकृति के रूप को छोड़ पाता है और न भाव-पक्ष की उत्सुकता त्याग सकता है। वह प्रकृति में भौतिक के साथ किसी अन्य सत्ता को भी स्वीकार कर के चलता है। इस प्रकार भौतिक प्रकृति के रूप और भाव दोनों पक्षों को ग्रहण करके हम आगे बढ़ सकते हैं।

दृश्य-प्रकृति

§ ३—जिस भौतिक प्रकृति के रूप और भाव पक्षों को हम स्वीकार कर चुके हैं, उसके विस्तार में 'हम' मानव भी आ जाते हैं। मानव का प्रकृति के मध्य में क्या स्थान है, यह एक दूसरा प्रश्न है जिस पर अगले अनुच्छेदों में विचार किया जायगा। पर यहाँ यह कह देना आवश्यक है कि प्रकृति के रूप और भाव को समझने के लिए मानव को अपनी अनुरूपता का सब से बड़ा प्रमाण प्राप्त है। मनुष्य के पास शरीर है और मनस् भी; साधारण सहज-बोध के धरातल पर इनमें से वह किसी को अस्वीकार करके नहीं चल सकता।

३. ग्रीक तत्ववादियों में प्लेटो विज्ञानवादी और अरिस्टाटिल भौतिकवादी हैं। बाद में योरुप में स्पिनोज़ा और बार्कले विज्ञानवादी और हाब्स तथा ह्यूम भौतिकवादी हुए है। हेगल तथा कांत समन्वयवादी कहे जा सकते हैं।

और इसी के सामान्तर वह समझ सका है कि प्रकृति का बाह्य-रूप है और उसमें अन्तः भाव-रूप चेतना भी है। तत्त्ववाद जिसे मनस्-तत्त्व और वस्तु-तत्त्व कहता है; उसे हम व्यावहारिक दृष्टि से मनस् और वस्तु मान सकते हैं। और मानव में इन दोनों की अभिव्यक्ति मानस और शरीर के माध्यम से होती है। मनस् तथा वस्तु और मानस तथा शरीर के सम्बंध के विषय में तत्त्ववाद के क्षेत्र में अनेक मत और वाद हैं।[४] पर अपने-अपने क्षेत्र में स्वतंत्र मान कर भी इन दोनो में सम्बंध स्वीकार किया जा सकता है। यह सचेतन प्रक्रिया का सम्बंध होगा। मानसिक घटनाओं में कुछ शारीरिक घटनाओ का सम्मिलन होना है और उसी प्रकार शारीरिक अवस्थाओं पर मानसिक स्थितियों का प्रभाव पड़ता है, और यही सचेतन परक्रिया हम स्वीकार कर सकते हैं। इस प्रकार प्रकृति के रूप और भाव पक्षों को ग्रहण करने के लिए हमारे मन और शरीर की सचेतन-प्रक्रिया आवश्यक है।[५]

क—इस सीमा पर हमारे सामने दृश्य-जगत् का प्रश्न स्पष्ट हो जाता है; द्रष्टा मानस और दृश्य प्रकृति का सम्बंध उपस्थित होता है।

दृष्टा और दृश्य

शरीर की सचेतन प्रक्रिया के साथ मानस (मन) वस्तु-जगत् का द्रष्टा है और इस कारण मानवीय दृष्टि से दृश्य-प्रकृति के सम्बंध में उसका महत्त्व अधिक लगता है। इस मनस् के प्रतिबिम्ब पड़ने से दृश्य-जगत् की सत्ता मानी जा सकती है। मन जिस शरीर से सचेतन है, उससे एक विशेष स्थिति में सम्बंधित है, साथ ही विश्व की अनेक वस्तुओं की विभिन्न घटनाओं का द्रष्टा भी है। मन इन्द्रिय-प्रत्यक्षों के द्वारा भौतिक वस्तुओं का स्थिति-ज्ञान प्राप्त करता है। शरीर में इन्द्रियों का विभाजन भौतिक तत्त्वों के अनुरूप हुआ है; अथवा यों भी कहा जा सकता है कि मन अपनी प्रतिकृति भौतिक तत्त्वों

---

४. जेम्सवार्ड; नेचुर्लिज़्म ऐन्ड एग्नास्टिसिज़्म में साइकोफ़िज़िकल पैरेलज़इज़्म।

५. वही; वही में ऐनीमेटेड इन्टरऐक्शनिज़्म।

पर इन्द्रियों के माध्यम से डालता है। यह एक ही सत्य को कहने की दो भिन्न रीतियाँ हैं। यह निश्चित नहीं है कि वस्तु-गुण उनकी स्थितियों के आधार पर हैं अथवा प्रत्यक्षीकरण की क्रिया पर निर्भर हैं, परंतु व्यावहारिक दृष्टि से यह मान्य है। क्रियात्मक प्रवृत्ति के रूप में तन्मात्राओं, गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और ध्वनि की स्थितियों का बोध मन नासिका, जिह्वा, चक्षु, स्पर्श तथा श्रवण इन्द्रियों के माध्यम से करता है। परंतु इनके आधार में भौतिक तत्त्वों के रूप में पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश हैं। फिर मन केवल इन्द्रिय-प्रत्यक्षों के आधार पर नहीं चलता, उसमें विचारात्मक अनुमेय के साथ स्मृति सथा संयोग पर आधारित कल्पना का भी स्थान है। इस प्रकार मन इन्द्रिय-प्रत्यक्ष के दृश्य-जगत् को कल्पनामय भाव-जगत् में प्रतिबिम्बित कर उसका द्रष्टा बन जाता है।

दृश्यात्मक जगत्

ख—यह द्रष्टा का वस्तु-जगत् अपनी दृश्यात्मकता में केवल वस्तुओं की विभिन्न स्थिति और परिस्थिति है। वस्तु भी वस्तु-तत्त्वों की घटनात्मक स्थिति मात्र है। वस्तु कहने से कई माध्यमिक गुणों के समवाय का बोध होता है, साथ ही किसी भौतिक घटना की मन से सम्बंधित स्थिति का ज्ञान भी होता है। वस्तु के प्राथमिक गुण दिक्-काल का ज्ञान सम्बंधात्मक है और अनुमान पर स्थिर है। इनका ज्ञान किसी विशेष स्थिति या बिन्दु के सम्बंध की सापेक्षता पर ही सम्भव हो सकता है। ये दोनों अपरिवर्तनशील हैं और इनमें जो परिवर्तन जान पड़ता है वह तत्त्वों के परिवर्तन तथा उनकी गतिशीलता से विदित होता है।[६] दिक्-काल के विचार से हमारे सामने प्रकृति की गति, उसके परिवर्तन और क्रियात्मक प्रवाह का प्रश्न आ जाता है; जिस प्रकार रेलगाड़ी से भागते हुए दृश्यों की स्थिरता पर

६. ग्रीक दार्शनिक हेराक्लायूट्स ने सर्वप्रथम गति और परिवर्तन का सिद्धान्त निश्चित किया था। भारतीय तत्ववाद में बौद्ध-दर्शन में इसका विचार है।

विचार करते समय ट्रेन की गति का ध्यान आ जाता है। भाव-रूप दिक्-काल में स्थित वस्तु का बोध माध्यमिक गुणों के आधार पर होता है। इनमें रूप अधिक महत्त्वपूर्ण है, इसके बाद ध्वनि से आकाश, गंध से पृथ्वी, रस से जल और स्पर्श से वायु का सम्बंध है। इनके ग्रहण की मानसिक प्रक्रिया में विचार और कल्पना दोनों ही स्थितियों में संयोग और विरोध का आश्रय लेना पड़ता है, जिसका आधार साम्य है। इस साम्य के लिए सामान्य और विशेष का भेद होना आवश्यक है। वस्तु में रहनेवाला नित्य धर्म सामान्य है और दृश्य-जगत् में उसकी विशिष्ट स्थितियाँ ही सामने आती हैं। इस प्रकार सामान्य और विशेष के द्वारा प्रकृति के रूप तथा भाव-पक्ष की दृश्यात्मकता स्थापित होती है।[७]

§ ४—यह कहा गया है कि मानव स्वतः ज्ञान के सामानान्तर अपने और अपने ही अनुरूप प्रकृति को समझ सका है। प्रकृति का चेतन भाव-पक्ष हो अथवा उसका जड़ रूप-पक्ष, दोनों उसके मन और शरीर से सामञ्जस्य ढूँढ़ते चले हैं। मानव प्रारम्भ से स्वचेता नहीं था, इस कारण प्रकृति सम्बंधी उसका ज्ञान भी अधूरा था। दिक्-काल का सम्बंधात्मक ज्ञान मानव के मानसिक विकास में बहुत पीछे की बात है; प्रारम्भ में विभिन्न इन्द्रिय-प्रत्यक्षों को समवाय रूप में समझने की भावना विकसित नहीं हुई थी। वस्तुओ के रूप-रंग, तथा उनसे सम्बंधित ध्वनि, गंध तथा स्वाद को अलग-अलग ग्रहण करके उनका सामञ्जस करने में मन असमर्थ था; और दिक्-काल की अस्पष्ट छाया में मन विकल था। मानसिक विकास में यह प्रकृति की रहस्यमयी भावना और रूप आध्यात्मिक रहस्यवाद की आधार-भूमि है। प्रथम भय प्रदान करने वाले देवताओं से कुछ आगे प्रकृति में शक्ति के प्रतीक विभिन्न देवताओं की स्थापना हुई थी।

रहस्यात्मक प्रकृति

क—मानव मन की यह प्रवृत्ति है कि वह अपरिचित को साम्य के

---

७. वैशेषिकों ने द्रव्य मानकर इन्हें नित्य माना है।

आधार पर जानने का प्रयास करता है। रहस्यमयी भावना के आधार पर एक ओर प्रकृति शक्तियों को देवत्व के साथ मानवीय आकार और भावनाओं से युक्त कर दिया गया है। दूसरी ओर इन शक्तियों में एक समान चेतना का सञ्चरण भी भासित हुआ। अतः आध्यात्मिक साधना के इसी क्रम में क्रियात्मक कारण के रूप में ईश्वर की कल्पना की गई है; और भावात्मक विज्ञान से सामञ्जस्य स्थापित करने के लिए विश्वात्मा की स्थापना हुई। इस प्रकार प्रकृति सम्बंधी रहस्य-भावना में प्रकृति के रूप और मानवीय भावना के संयोग से प्रकृतिवाद का विकास हुआ है; और मानव रूप तथा प्रकृति चेतना के संयोग से ईश्वरवाद की स्थापना हुई है।[८]

प्रकृति और ईश्वर

प्रकृति के मध्य में मानव

प्रकृति के रूप और भाव की स्थापना के पश्चात् उसमें मानव की स्थिति समझ लेना आवश्यक है। प्रकृति और काव्य सम्बंधी विवेचना में मानव बीच की कड़ी है, क्योंकि काव्य मानव की अभिव्यक्ति है। विश्व-सर्जना में मानव का स्थान अकिञ्चन है, परंतु जिस विज्ञानमय मनस् तत्त्व की स्वचेतन स्थिति मानव में है, उससे वह विश्व-चेतना का केन्द्र बन जाता है। वास्तव में मानव प्रकृति की शृंखला-क्रम की एक कड़ी है। हम अपनी मानवीय दृष्टि से प्रकृति और मानव को अलग मानकर चलते हैं।

§ ५—प्रकृति के इस क्रम को समझने के लिए सर्जनात्मक विकास-वाद की स्थापना आवश्यक हो जाती है। गमन के साथ परिवर्तन में पूर्व तत्त्व की स्थिति की स्वीकृति से एक प्रकार से विकास का रूप मिल जाता है। इसको समझने के लिए भी प्रकृति के रूप और भाव-पक्ष सहायक हैं। गमन-शक्ति के प्रवाह

सर्जनात्मक विकास

---

८. जान ओमन; नेचुरल ऐन्ड सुपरनेचुरल तथा जे० जी० फ्रेज़र; वार्शिप ऑव नेचर में इस विषय का विस्तार है।

में तत्त्वों का केन्द्रीकरण होता है, फिर विभिन्नता के साथ अनेक रूपता उपस्थित होती है; और अन्त में निश्चित होकर उनमें एक-रूपता आती जाती है। इस प्रकार विभिन्न-धर्मी सर्जन में एक-रूपता और क्रम चल रहा है। सहज बोध के स्तर पर रूपात्मक प्रकृति में एक से अनेक की प्रवृत्ति के साथ अबाध सचेतन प्रवाह (भावात्मक) को लेकर इस विकास को समझा जा सकता है। सर्जन की अनेकता में उसका नियम सन्निहित है, और इसी विभिन्नता में उसका प्रवाह चल रहा है। प्रत्यक्ष जगत् में यही हम देखते हैं।[१] एक-एक बीज में सहस्र-सहस्र बीजों का रहस्य छिपा हुआ है। एक रस दूसरे से मिल कर तीसरे भिन्न रस की सृष्टि करता है। यह विकास समान परिस्थितियों में एक ही प्रकार से होता है। वनस्पति जगत् के समान ही प्राणि जगत् में यह नियम लगता है। प्राणि का शरीर केवल बाह्य-जगत् से प्रभावित ही नहीं होता, वरन् बाह्य परिवर्तनों के साथ क्रियाशील होने के लिए परिवर्तित भी होता है। बाह्य-प्रकृति की आन्तरिक अनुरूपता के माध्यम से शरीर पूर्णता प्राप्त (विकास) कर सका है। और मानव के जीवन में यह अनुरूपता बहुत कुछ पूर्ण मानी जा सकती है।

चेतना की स्थिति

क—जहाँ तक मानव-शरीर का प्रश्न है वह बाह्य-प्रकृति की क्रिया-प्रतिक्रिया का परिणाम हो सकता है। प्राणि-शरीर में भिन्नता बाह्य कारणों से उत्पन्न होती है और यह विभिन्नता अनुरूप होने के कारण प्रकृति द्वारा चुन ली जाती है। यह विभिन्नता अगली वंश-परम्परा में चलती जाती है। परन्तु मानव शरीर की इस उन्नत स्थिति को स्वीकार कर लेने पर भी मानव के विकास का

१. इस सर्जनात्मक विकासवाद का डार्विन के विकास (भौतिक) से सम्बंध नहीं है। यह सिद्धांत प्रकृति के विषमीकरण और एकीकरण के आधार पर विकसित हुआ है। आधुनिक युग में एच० बर्गसाँ ने अपने 'क्रियेटिव युवोल्यूशन' में इसे नया रूप दिया है।

प्रश्न हल नहीं होता। मानव की मानसिक विभिन्नता इस विकास की सबसे बड़ी कठिनाई है; मस्तिष्क की सूक्ष्म क्रिया-प्रतिक्रिया के रूप में इसको समझ पाना सम्भव नहीं है। इस प्रकार प्रकृति के जड़-चेतन प्रसार में मानव (शरीरधारी) इससे एक रूप होकर भी अपनी मानस-शक्ति के कारण अलग है। परंतु मानव की मानस-चेतना और प्रकृति की चेतना में जो अनुरूपता है, उससे मानस का एक पक्ष स्पष्ट हो जाता है। प्रकृति की चेतना का अनुभव हमको निज की चेतना के तादात्म्य में होता है। चेतना का अर्थ परिवर्तनों से परिचित होना है, और ध्यान की स्थिति का बदल जाना परिवर्तन का भान होना है। प्रकृति के माध्यमिक गुणों को लेकर दिक् का छोटा सा छोटा बिन्दु हमारी चेतना की एकाग्रता का परिणाम हो जाता है और वह इस स्थिति में असीम की ओर प्रसारित भी रहता है। इस प्रसरण का भान चेतना को होता रहता है। यह घटना-क्रम के रूप में काल का अनुभव मानव-चेतना और प्रकृति-चेतना की अनुरूपता का परिणाम है। परंतु इस अनुरूपता से मानस की पूरी व्याख्या नहीं हो सकती!

§ ६—मानव की मनस्-चेतना और प्रकृति की सचेतना में एक प्रमुख भेद है और उसी के आधार पर हम मानस को समझ सकते हैं। मानव आत्मवान् स्वचेतनशील है। उसकी चेतना यदि प्रकृति-चेतना का भाग है तो उसमें प्रसारित भी है। इस चेतना के बोध के लिए उसमें 'स्व' की भावना आवश्यक है! यह 'स्व' की भावना जितनी व्यक्त और व्यापक होगी उसी के अनुसार चेतना का प्रसार भी बढ़ता जायगा। प्रकृति का दृश्य-जगत् उसकी अपनी दृष्टि की सीमा है, साथ ही अपने अनुभव के विषय का पूरा ज्ञान उसे तभी हो सकता है, जब उसका अपना 'स्व' स्पष्ट हो। मानसिक विकास के साथ मानव का 'स्व' अधिक व्यापक और स्पष्ट होता गया है। उसका क्षेत्र प्रत्यक्ष बोध से भावना और कल्पना में

मानव की स्वचेतना

भी फैल जाता है। इस प्रकार प्रकृति की चेतना के माध्यम से मानव मानस की वह स्थिति आ जाती है जिसमें वह अपनी चेतना से स्वयं परिचित है।[१०]

क—मानव की स्वचेतना के विकास में समाज का योग भी रहा है। मानव प्रारम्भ से समाजिक प्राणी रहा है। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के अनुभव को जान तो नहीं सकता, परंतु उसका अनुमान लगा सकता है; फिर अपने व्यक्तिगत अनुभवों से तुलना करके किसी एक सिद्धि तक पहुँच जाता है। इस दृष्टि से व्यक्ति की स्वचेतना सामाजिक चेतना का एक रूप भी मानी जा सकती है। मानव-समाज की स्थिति के विषय में हमारा विश्वास प्रकृति को समझने के पूर्व का है। इसका अर्थ यह नहीं है कि मानव को प्रकृति के सम्पर्क में आने के पूर्व सामाजिकता का बोध था। प्रकृति का सम्पर्क समाज के पूर्व का निश्चय ही है। परंतु जब मानव ने प्रकृति के विषय में अपनी कोई धारणा बनाई, उस समय उसमें सामाजिक प्रवृतियों का पूर्ण विकास हो चुका था। स्वचेतना के इस सामाजिक आधार पर प्रकृति दो प्रकार से मानी जा सकती है। प्रयोजन से हीन भौतिक-क्रम तथा सम्बंधों में उपस्थिति प्रकृति का वर्णनात्मक रूप तथा प्रयोजन से युक्त इच्छा-शक्ति के आधार पर उसका व्यञ्जनात्मक रूप प्रकृति में व्यञ्जना की यह भावना, प्रयोजन का यह स्वरूप, मानव समाज के व्यक्ति की अपनी इच्छा-शक्ति की अभिव्यक्ति में मिलता है। इस प्रकार जब मानव प्रकृति के भाव से सामाजिक सम्बंध स्थापित करता है, तब वह व्यञ्जनात्मक हो उठती है; और जब उसके रूप में सामाजिक प्रयोजन ढूँढ़ता है, प्रकृति प्रयोजनात्मक रह जाती है।[११]

व्यंजना और प्रयोजन

---

१०. इसकी व्याख्या के लिए लेखक की पुस्तक 'प्रकृति और हिन्दी-काव्य' के प्रथम भाग का द्वितीय प्रकरण देखना चाहिए।

११. जेम्स वार्ड; नेचुरलिज़्म ऐण्ड एग्नास्टिसिज़्म (प्र०; प्र०)।

§ ७—इस सीमा तक हम देख सके हैं कि प्रकृति की सचेतन स्थिति और मानव की स्वचेतन स्थिति में अनुरूपता के साथ क्रियात्मक सम्बंध भी है। यहाँ भारतीय 'सच्चिदानन्द' को भी इस प्रकार समझा जा सकता है। प्रकृति चेतना की विस्मृत (जड़) स्थिति है, और ब्रह्म पूर्ण चेतना की स्थिति है तथा मानव (जीव) इन दोनों के बीच की स्थिति में है। वह अपनी स्वचेतना से एक ओर प्रकृति को सचेतनशील करता है, दूसरी ओर स्वचेतना को पूर्ण चेतना की ओर प्रेरित करके आनन्द का सम प्राप्त करता है। परंतु हम यह कह चुके हैं कि प्रकृति को अपनी स्वचेतना से सचेतन करने के साथ ही मानव प्रकृति चेतना से अनुरूपता ग्रहण कराता हुआ स्वचेता भी हुआ है। इस प्रकार साधारण प्रत्यक्ष-ज्ञान के धरातल पर हमारे पास दो जगत् हैं, एक अन्तर्जगत् और दूसरा बहिर्जगत्। ये दोनों एक दूसरे की अनुरूपता का सन्तुलन करते हुए क्रियाशील होते हैं; मानव की चिकीर्षा मानसिक व्यापारों की प्रेरक-शक्ति के रूप में इनके आधार में है। अन्तर्जगत् मानों बहिर्मुख होकर विस्तृत हो उठता है, और बहिर्जगत् मानों अन्तर्जगत् में एकाग्र हो जाता है। परंतु हम अपनी दृष्टि से प्रकृति को देखते हैं, उसके प्रत्यक्ष ज्ञान और अनुभव में हमारी इच्छा-शक्ति की प्रेरणा रहती है। इस कारण प्रकृति पर मन की क्रियाशीलता हमारी क्रिया का रूप बन जाती है। अन्तर्जगत् जब बहिर्जगत् पर क्रियाशील होता है, हमको वस्तु-ज्ञान होता है; और जब बहिर्जगत् का प्रभाव अन्तर्जगत् ग्रहण करता है, उस समय हमको वस्तु की अनुभूति होती है।[१२] इस प्रकार मानव की चेतना पर जब प्रकृति की चेतना का प्रभाव पड़ता है, वह अनुभूति के सहारे 'स्व' की ओर गतिशील होता है। और जब मानव

अनुकरणात्मक प्रतिबिम्ब

---

१२. लेखक के 'नाटक का विकास' नामक लेख में विस्तृत व्याख्या की गई है (पारिजात, जन १९४७)।

चेतना प्रकृति-चेतना के सम्पर्क में आती है, उस समय प्रकृति का प्रत्यक्ष-बोध होता है। वास्तव में प्रकृति का यह वस्तु-ज्ञान और वस्तु-अनुभूति उसके रूप और भाव पक्ष की स्वीकृति मात्र हैं जो मानस और प्रकृति के अनुकरणात्मक प्रतिबिम्ब भाव के परिणाम हैं।

क—इन अनुकरणात्मक स्थितियों को ज्ञान और भाव कहा जा सकता है। किसी दृश्य को देखने की एकाग्रता के साथ व्यक्ति की मनःस्थिति में चिकीर्षा निश्चित है और इससे उसके मन में दो प्रक्रियाओं का विकास सम्भव और स्वाभाविक है। रूप आकार आदि के सहारे वह उससे परिचित होता है और उसके जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। यह उसका दृश्य के सम्बंध में ज्ञान-पक्ष है। परंतु साथ ही इन्द्रिय सम्पर्क से उसको उस दृश्य की अनुभूति प्राप्त होती है, और यह अनुभूति-पक्ष है। इन दोनों को अलग-अलग करके नहीं देखा जा सकता, ये मानसिक स्थितियों के रूप में एक दूसरे के आश्रित और सम्बंधित हैं। प्रकृति अनुकरण के सम्वेदनात्मक भाव-पक्ष में प्रारम्भ से पीड़ा और तोष की वेदना भी सन्निहित रही है। और आगे के विवेचन में हम देखेंगे कि यह पीड़ा और तोष की वेदना का स्थान कलाओं के विकास में महत्त्वपूर्ण है। इनका सम्बन्ध मानव के नाद तथा शारीरिक संचलन से सीधा रहा है, परंतु प्रकृति के रंग-रूप, प्रकाश तथा गंध-स्पर्श आदि का सम्वेदनात्मक प्रभाव मन पर पड़ता है। नृत्य, संगीत, वास्तु तथा चित्र-कला आदि के मूल में इसको खोजा जा सकता है।[13]

ज्ञान और भाव

§ ८ वस्तु के ज्ञान और भाव पक्षों के साथ पीड़ा और तोष की वेदना सन्निहित है, और वह हमारे प्रत्यक्ष-बोध की सबल प्रेरक शक्ति रही है। जीवन की संरक्षक सहज-वृत्ति इसी के माध्यम से अपना मार्ग प्रशस्त करती है। श्रवण-बोध के

प्रत्यक्ष से कल्पना

१३. लेखक की पुस्तक 'प्रकृति और काव्य' का द्वितीय प्रकरण, अनु० १२-१६ तक द्रष्टव्य।

ध्वनि-नाद में क्रमिक लय-ताल के साथ गम्भीर एकाग्रता से उत्पन्न तोषानुभूति रहती है। इसी प्रकार दृश्य में रूप, रंग, प्रकाश आदि के साथ एकाग्र-गाम्भीरता से उत्पन्न तोष का वेदना होती है। आज कला और काव्य से इनका सम्बंध नहीं जान पड़ता, परंतु इनके विकास के मूल में वे अवश्य रहे हैं। मानसिक चेतना के विकास में प्रत्यक्ष-बोध के बाद स्मृति और संयोग के आधार पर पर-प्रत्यक्ष का स्तर आता है। यह एक प्रकार से प्रत्यक्ष-बोध का अनुकरणात्मक दृश्य-जगत् है। इसमें भी सामाजिक विकास के साथ प्रकृति सम्बंधी भाव-रूप का भेद लक्षित है। सामाजिक प्रयोजन के प्रधान होने से वे परप्रत्यक्ष विचारात्मक होते हैं और प्रकृति की व्यञ्जना की प्रधानता से वर्णनात्मक। कला और काव्य में इन भाव-रूप परप्रत्यक्षों का अधिक महत्त्व है। प्रकृति के वर्णनात्मक प्रतिबिम्ब को उसके भावात्मक अनुकरण के साथ चित्रित करने के लिए केवल परप्रत्यक्ष यथेष्ट नहीं हैं; उसमें कल्पना का स्वतन्त्र योग आवश्यक है। परप्रत्यक्ष में न तो प्रत्यक्ष की पूर्णता होती है और न भावात्मक प्रभावशीलता की उतनी शक्ति ही। स्मृति से कल्पना अधिक उन्मुक्त है; उसमें हम अपने अनुरूप रूप-रंग भर लेते हैं और छायातप प्रदान कर लेते हैं। इसी कारण कल्पना का रूप प्रत्यक्ष की भावना से अधिक निकट है।[१४]

मानवीय भावों का विकास

पिछले अनुच्छेद में मानसिक चेतना के बोधात्मक विकास पर विचार किया गया है। यह कहा गया है कि मानसिक स्थिति को बोध, संवेदना तथा चिकीर्षा की अलग-अलग स्थितियों में नहीं बाँटा जा सकता।[१५] इसलिए मानवीय भावों के विकास में प्रकृति का संयोग

---

१४. वही; वही; तृतीय प्रकरण।

१५. रिबोट; दि साइकोलॉजी ऑव इमोशनस्; (इन्ट्रोडक्शन से पृ० १३)।

बहुत दूर तक रहा है। मानसिक धरातल पर राग या सम्वेदना हमारी चेतना का अंश है। यह सम्वेदना बोध के प्रत्यक्षों तथा चिकीर्षा के साथ मिलकर मानसिक जीवन की समस्त अभिव्यक्ति है।

§ ९ सम्वेदना का व्यापक अर्थ प्रकृति के रूप में अन्तर्हित भाव है जिसे यहाँ हम प्रभावशीलता कह सकते हैं। यह विश्व-सर्जन की आन्तरिक प्रेरणा शक्ति है। सृष्टि का क्रिया-संचलन कार्य है, पर यह प्रभाव कारण और परिणाम दोनों ही माना जा सकता है। चेतना के स्तर से पूर्व पिंड में दो प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं। एक भौतिक-रासायनिक प्रवृत्ति जो आकर्षण के रूप में मानी जा सकती है और दूसरी पिंड की आंतरिक प्रवृत्ति जो उत्क्षेपण कही जा सकती है। ये दोनों हमारे भाव-जगत् के मौलिक आधार के दो सिरे हैं। शरीर-विकास में जीव के स्तर की रागात्मक सम्वेदना के मूल में जीवन और संरक्षण की सहज-वृत्तियाँ पाई जाती हैं। चेतना के मानसिक स्तर की सम्भावना के पूर्व ये सहजवृत्तियाँ शरीर से सम्बंधित हैं और सहज प्रेरणा के अनुरूप अपना कार्य करती हैं। मानव-शरीर भी इसी आन्तरिक एकता में स्थिर है और आन्तरिक वेदनाओं में क्रियाशील है। शरीर की यह आन्तरिक वेदना मानवीय चेतना से सम्बंधित होकर भी उसका भाग नहीं है। ये आन्तरिक वेदनाएँ जीवन की सहज-वृत्ति के रूप में, बिना किसी बाह्य कारण के, इन्द्रिय-वेदन के आधार न होने पर भी, भौतिक पीड़न और तोष की अनुभूति का स्रोत हैं। अन्तर्वेदनाओं से बाह्य-प्रकृति का सम्बंध इन्द्रिय वेदनाओं के माध्यम से है। इन्द्रिय-वेदन मानस की बहुत प्रारम्भिक स्थिति में विशुद्ध माने जा सकते हैं, नहीं तो वे प्रत्यक्ष का रूप ग्रहण कर लेते हैं।[१६] तोष और पीड़न की जो सुख-दुःखात्मक अनुभूति इन्द्रिय-वेदनाओं से सम्बंधित है, वह प्रत्यक्ष-बोध से सम्बंध स्थापित कर लेती है और

संवेदना की स्थापना

१६. इस विषय में मेगड्गल का मत द्रष्टव्य है।

आगे चलकर परप्रत्यक्षीकरण द्वारा विचार और कल्पना से भी सम्बंधित हो जाती है। यही सम्वेदना भावों के विकास में सौन्दर्य्य-बोध के मूल में है।

भावों का विकास

§ १०—मानसिक विकास में भावों की निश्चित रूप-रेखा सहजवृत्तियों के आधार पर बन सकी है। जीवन के साधारण अनुभव में हम देखते हैं कि पशु पक्षियों का जीवन इन सहजवृत्तियों के आधार पर सरलता से चल रहा है, और जीवन की पूर्ण प्रक्रिया में मानव-जीवन के समानान्तर है। देखा जाता है जरा से खटके से चिड़िया उड़ जाती है; उनको आपस में लड़ते भी देखा जाता है। पशु-पक्षियों में अपने बच्चों के प्रति रक्षात्मक ममता की सहजवृत्ति होती है पशुओं पक्षियो में सहचरण और कलात्मक सहजवृत्तियाँ भी पाई जाती हैं। परंतु जब मानवीय भावों का विकास इनके आधार पर होता है, उस समय जैसा पहले गया है इनमें बोध का अंश भी रहता है। और इस रूप में इनमें प्रकृति का योग देखा जा सकता है। प्रारम्भ में प्रकृति का अस्पष्ट बोध भय-भाव का कारण था, यद्यपि जीवन-यापन और संरक्षण के साथ यह सम्बंधित रहा है। प्रत्यक्ष-बोध के इस युग में मानव अपनी रक्षा के लिए अन्य जीवों से अधिक आकुल था। भय तथा कठिनाइयों को अतिक्रमण करने के साथ क्रोध-भाव का सम्बंध बाह्य-प्रकृति के रूपों से सम्भव है। आश्चर्य्य तथा अद्भुत-भाव का विकास प्रकृति के आकार-प्रकार रंग-रूप के अस्पष्ट तथा संदिग्ध बोध के आधार पर हुआ है। सामाजिक तथा आत्म-भाव के विकास का सीधा सम्बंध प्रकृति से नहीं है, पर सहचरण और स्वानुभूति के अभ्यन्तर का रूप प्रकृति के साथ मिल जुल गया है जो प्रकृति पर मानवीय आरोप के द्वारा व्यक्त होता है। मानव के कलात्मक भाव ने प्रकृति के अनुकरण से सौन्दर्य्य-भाव का विकास किया है।[१७]

१७. लेखक की पुस्तक 'प्रकृति और हिन्दी-काव्य' का तृतीय प्रकरण द्रष्टव्य है।

§ ११—आज मानवीय भावों की स्थिति विषम हो गई है। भय और क्रोध जैसे प्राथमिक भावों को हम उनके प्रारम्भिक रूप में नहीं पाते।

माध्यमिक धार्मिक-भाव

अनेक परिस्थितियों तथा अन्य भावों के सम्मिश्रण मे इनमें अनेक रूपता तथा विषमता आ गई है। इन भावों की स्थिति माध्यमिक और अध्यन्तरित हो गई है।[१८] साधारणतः इन भावों का सम्बंध प्रकृति से नहीं है। परन्तु भावो के उच्च-स्तर पर आचरणात्मक सत्यों से सम्बंधित भाव, सौन्दर्य्य-भाव से प्रभावित हुए हैं। इस प्रकार प्रकृति की सौन्दर्य्य-भावना में आचरणात्मक भावों का आरोप किया जाता है। धार्मिक भाव माध्यमिक है और इसके आधार में जो भय, आश्चर्य आदि भाव रहे हैं उनका सम्बंध प्रकृति से सीधा भी था। प्रकृति-देवताओं का अस्तित्व भय के आधार पर माना जाता है। आश्चर्य-भाव के साथ इन देवताओ को प्रकृति के विभिन्न रूपों में प्रसरित देखा गया, क्योंकि इस युग में प्रत्यक्ष-बोध अधिक स्पष्ट होकर परप्रत्यक्ष और कल्पना में साकार हो रहे थे। अनन्तर प्रकृति की उपादेयता का अनुभव हो चुकने पर इन देवताओं में यह भाव भी सन्निहित हो गया। विकास के मार्ग में जैसे-जैसे सामाजिक तथा आत्म-भावों का संयोग होता गया, वैसे ही इनकी स्थापना प्रकृति के देवताओं के सम्बंध में हुई है। भावना के क्षेत्र में देवता को मानवीय आकार और भाव प्रदान किया गया। इस प्रकार धार्मिक भावना के विकास में प्रकृति के रूप और भाव दोनों पक्षों का संयोग रहा है।

§ १२—धार्मिक भाव के समान ही सौन्दर्य्य-भाव एक सरल भाव नहीं है, इसका विकास मानवीय मानस के साथ हुआ है। सौन्दर्य्य-भाव

सौन्दर्य्य-भाव

के विकास की प्रत्येक स्थिति प्रकृति से सम्बंधित रही है। मानव को प्रकृति के प्रत्यक्ष-बोधों में सुख-दुःख की

---

१८. डब्ल० जेम्स ; दि प्रिन्सिपल्स ऑव साइकोलजी ; एमोशनस् से।

सम्वेदना प्राप्त हुई। उसने प्रकृति का क्रीड़ात्मक अनुकरण किया। उसने कलात्मक निर्माण के लिए प्रकृति से सीखा है। उसके यौन-सम्बंधी रागात्मक भाव के लिए प्रकृति के रंग-रूप आदि प्रेरक रहे हैं। और इन सब भावों का संयोग सौन्दर्य्य-भाव के विकास में हुआ है। इनके अतिरिक्त अन्य सामाजिक तथा आत्म-सम्बंधी भावों का योग इसमें है। इस विकास में प्रत्यक्षों से लेकर कल्पना तक का पूरा विस्तार पाया जाता है।

अध्यन्तरित भावों के लिए समाज की एक निश्चित स्थिति आवश्यक है। साथ ही मानसिक विकास का उच्च-स्तर भी वांछनीय है। विशेष स्थिति में उद्देश्य को लक्ष्य करके भविष्योन्मुखी भावों की प्रेरणा जागरित होती है। कदाचित् इसीलिए इन भावों में अधिकांश काव्य में संचारी-भावों के रूप में स्वीकृत हैं। आशा, निराशा, चिन्ता आदि ऐसे ही भाव हैं। इनके विपरीत अतीत के विषय में उद्देश्य के प्रति भावों की स्थिति जागरित होती है। इन भावों में पश्चाताप, अनुताप आदि हैं। इन भावों का प्रकृति से सीधा सम्बंध न होकर भी अन्य भावों के साथ संयोग हो जाता है, प्रकृति का सम्पर्क किसी की स्मृति जगा कर चिन्तित कर सकता है। इसके अतिरिक्त इन भावों की मनःस्थिति में हमारे मन में प्रकृति के प्रति सहानुभूति उत्पन्न हो जाती है।[१९]

प्रकृति में सौन्दर्य्यानुभूति

§ १३—पिछले अनुच्छेदों में सौन्दर्य्य-भाव की विषमता के विषय में संकेत किया गया है। हम देख चुके हैं कि इसके विकास में प्रत्यक्ष, कल्पना तथा भावों की प्रतिक्रिया की एक विषम मानसिक स्थिति रही है। साथ ही प्रकृति ने इसके विकास में कितना योग दिया है, इसका भी उल्लेख किया गया है।

सौन्दर्य्य का प्रश्न

१९. लेखक की पुस्तक 'प्रकृति और हिन्दी-काव्य' का तृतीय प्रकरण

अब निश्चित करना है कि प्रकृति को सौन्दर्य-रूप में हम किस प्रकार देखते हैं; आज प्रकृति-सौन्दर्य्य की रूप-रेखा मानव के मानस में किस प्रकार की है। परन्तु सौन्दर्य जो कला और काव्य की अभिव्यक्ति का विषय है, केवल भाव के रूप में नहीं माना जा सकता। वह तो जैसा हम काव्य की विवेचना के अवसर पर देखेंगे अनुभूति के साथ अभिव्यक्ति और प्रभावशीलता (रसात्मकता) का भी विषय है। इस कारण प्रकृति-सौन्दर्य की रूप-रेखा प्रस्तुत करने के पूर्व विभिन्न सौन्दर्यानुभूति सम्बंधी सिद्धान्तों पर विचार कर लेना उचित है, और देखना है कि उनमे प्रकृति को किस दृष्टिबिन्दु से ग्रहण किया गया है। जैसे प्रकृति में हम रूप और भाव दोनों को स्वीकार कर चले हैं, उसी प्रकार प्रकृति के सौन्दर्य में रूप और भाव दोनों को स्वीकार करना पड़ता है।

§ १४—इन दोनों को आधार मान कर विद्वानों ने सौन्दर्य की व्याख्या वस्तु-परक और मनस्-परक दो पक्षों में की है। इनमें कुछ सौन्दर्य-शास्त्री विषयि के मनस्-परक पक्ष को प्रमुखता देते हैं। इस पक्ष को स्वीकार करनेवाले विद्वानों में भी किसी ने स्वानुभूति पर अधिक बल दिया है और किसी ने अभिव्यक्ति का आश्रय लिया है। और किसी ने प्रभावशीलता का रसात्मक आधार प्रस्तुत किया है। क्रोशे अभिव्यक्तिवादी हैं, परन्तु उन्होंने स्वानुभूति को अभिव्यक्ति की पूर्ण स्थिति के रूप में स्वीकार किया है। ई० एफ० कैरियट इसी प्रकार समस्त भावाभिव्यक्तियों को बिना किसी अपवाद के सौन्दर्य मानते हैं।[२०] स्वानुभूति से सम्बंधित सुखानुभूति का मत है। इसके मूल में शरीर-शास्त्री सौन्दर्य के आचार्यों द्वारा प्रतिपादित समानुपात से स्नायु प्रेरणा के साथ सुखात्मक प्रभाव-

सौन्दर्य्य : मनस्-परक

२०. क्रोशे; एस्थेटिक्स् और ई० एफ० कैरियट; थियुरी ऑव ब्यूट (पृ० २९६)

शीलता है। इस विचार-धारा से सम्बंधित मतों में कला और सौन्दर्य सम्बंधी प्रवृत्तियों का नग्न रूप सामने आता है। एच० आर० मार्शल ने इसी शरीर-विज्ञान के आधार पर मानस-शास्त्रीय दृष्टि को अधिक व्यापक रूप-प्रदान किया है। इनके मत में सुखानुभूति को इन्द्रिय-वेदन से प्रत्यक्ष-बोध के आधार पर उच्च मानसिक स्थिति से सम्बंधित माना गया है। यह अनुभूति सुख-दुःख की सम-स्थिति पर इन्द्रिय सम्वेदनाओं की प्रभावात्मक सुखमय प्रतिक्रिया का कलात्मक आनन्द रूप है।[२१] इसी आधार पर सी० सन्टायन अपने सिद्धान्त के लिए मानसिक उच्च-स्तर स्वीकार करते हैं। ये अभिव्यक्त सौन्दर्य के लिए वस्तु-रूप प्रकृति की सम्वेदनात्मक शक्ति के साथ प्रत्यक्षों का क्रमिक सामञ्जस्यपूर्ण सम्बन्ध तथा अन्य पिछले अनुभवों का संयोग आवश्यक मानते हैं।[२२] अभिव्यक्ति से सम्बंधित क्रीड़ात्मक अनुकरण का सिद्धान्त है। कार्ल ग्रास ने इस क्रीड़ात्मक अनुकरण को कलात्मक अभिव्यक्ति की निकटता में एक रूप माना है, केवल कलात्मक अभिव्यक्ति का सम्बन्ध वे ज्ञान-इन्द्रियों से स्वीकार करते हैं।[२३] स्पेन्सर अभिव्यक्ति सौन्दर्य के इस निर्भरानन्द को कला-सौन्दर्य के साथ संचित शक्ति-प्रवाह के रूप में प्रत्यक्ष बोध तथा परप्रत्यक्षों से सम्बंधित करते हैं। कांत की कल्पनात्मक 'स्वतंत्र-क्रीड़ा' में स्वानुभूति तथा बोध का समन्वय है। इसमें सौन्दर्य की अभिव्यक्ति क्रीड़ात्मक अनुकरण से अधिक मानसिक सत्य के रूप में स्वीकृत है। परंतु इन मतों की व्याख्या में भाव के साथ रूप की स्वीकृति भी है।

§ **१५**—जिस प्रकार अभिव्यक्ति और अनुभूति आदि से सम्बंधित सौन्दर्य की व्याख्याओं में विषयि के साथ विषय (वस्तु) सम्बंधित हैं,

२१. एच० आर० मार्शल ; एस्थिटिक प्रिन्सिपल ; 'ब्यूटीफुल' प्रकरण से।
२२. सी० सन्टायन ; दि सेंस ऑव ब्यूटी।
२३. दि प्ले ऑव मैन ; एस्थिटिक स्टैन्ड प्वॉइन्ट से।

उसी प्रकार विषय (वस्तु-रूप) पर बल देनेवाले सिद्धान्तों में विषयि (मनस्-भाव) की स्वीकृति है। प्रतिभास सिद्धान्त के अनुसार वस्तु तत्त्वतः तो सुन्दर नहीं है, परन्तु उसके प्रतिभासित सौन्दर्य्य के लिए वस्तु-रूप आवश्यक है। वस्तु का सौन्दर्य्य प्रतिभासित है और उसमें विशेष गुणों की स्थिति उसका आधार है। वस्तु के इन गुणों में मानवीय मानस प्रसारित रहता है और इस प्रकार वस्तु-रूप के साथ भाव का समन्वय हो जाता है। छाया-प्रसार में चेतन-भाव के अधिक व्यापक प्रसार और विकास के साथ सौन्दर्य्य सम्बन्धी अन्तः सहानुभूति का सिद्धान्त सामने आता है। इसके आधार में सर्वचेतनवादी दृष्टिबिन्दु है। समस्त वनस्पति का दृश्यात्मक सौन्दर्य्य मानव की विकसित चेतना की अन्तः सहानुभूति है। इसी से आगे चल कर स्वच्छन्दवादी सौन्दर्य्य-सिद्धान्त विकसित हुआ है। इसी सहानुभूति से सम्बंधित सहचरण भावना के साथ यौन-भाव भी आ जाता है।[२४] इस प्रकार समस्त सौन्दर्य्य की व्याख्याओं में वस्तु-रूप प्रकृति और मनस्-रूप मानस को स्वीकार किया गया है।

वस्तु-परक

§ १६—इन पक्षों को स्वीकार कर लेने पर भी हम प्रकृति में सौन्दर्य्य की कल्पना मानस से स्वतंत्र नहीं कर सकते। प्रकृति की सौन्दर्य्य-भावना मनस्-परक है और हमारी कलात्मक दृष्टि से सम्बंधित है। क्रोशे के अनुसार प्रकृति का सौन्दर्य्य कलाकार की दृष्टि में आता है।......प्रकृति कला की समता में मूर्ख और जब तक मानव उसे वाणी नहीं देता, मूक है।[२५] इसी प्रकार एस० अलेकजेंडर के मत से प्रकृति तभी सुन्दर लगती है जब हम उसे कलाकार की दृष्टि से देखते हैं और एक सीमा तक हम सभी कला-

दृष्टिकोण विशेष

२४. इन मतों की व्याख्या 'दि क्रिटिकल हिस्ट्री ऑव माडर्न एस्थिटिक्स' में है।

२५. 'एस्थिटिक' पृ० ९९ तथा 'सेन्स ऑव एस्थेटिक' पृ० ८९।

कार है। हममें छिपा हुआ कलाकार प्रकृति को सौन्दर्य्य-दान देता है।[२६] प्रकृति का सारा विस्तार सौन्दर्य्य-रूप में नहीं रहता है, उसके प्रत्येक दृश्य को सौन्दर्य्य की रूप-रेखा में बाँधने के लिए चयन करना पड़ता है। हमारा मन चयन करके विभिन्न संयोगों से सौन्दर्य्य का चित्र पूरा करता है, जैसे कलाकार अपने रंगों के संयोग द्वारा सौन्दर्य्य की अभिव्यक्ति करता है।[२७] साधारण व्यक्ति और कलाकार में प्रकृति की सौन्दर्य्यानुभूति के विषय में केवल मात्रा का भेद है। दोनों ही अपने लिए सौन्दर्य्य का सर्जन करते हैं; केवल कलाकार में व्यापक और प्रत्यक्ष ग्रहण करने की प्रतिभा होती है, जिससे उसे अभिव्यक्ति की प्रेरणा मिलती है। इसके अतिरिक्त साधारण व्यक्ति के प्रकृति-सौन्दर्य्य के आकर्षण में इस प्रकार के इन्द्रिय सम्वेदना और प्रत्यक्ष-बोध के विभिन्न मानसिक स्तर हो सकते हैं। परन्तु इसको सौन्दर्य्यानुभूति की समष्टि या समवाय नहीं माना जा सकता। ई० एम० वर्टलेट के मतानुसार 'प्रत्येक व्यक्ति प्रकृति को सुन्दर कलाकार के समान नहीं बना देता, जैसा कलाकार कला को बनाता है। साधारण व्यक्ति तो प्रकृति को सुन्दर और असुन्दर दोनों प्रकार से देख सकता है।'[२८] इससे यह स्पष्ट है कि प्रकृति सौन्दर्य्य के लिए कल्पनात्मक मानसिक स्तर होना चाहिए। साधारण-जन अपनी मानसिक स्थिति की विकास सीमा तक प्रकृति सौन्दर्य्य का अनुभव कर सकता है। साधारण स्थिति में व्यक्ति किसी वस्तु के प्रत्यक्ष की सम्वेदना प्राप्त करता है जो सुखकर हो सकती है। परन्तु वही व्यक्ति जब वस्तु के सौन्दर्य्य की ओर आकर्षित होता है, तब वह वस्तु के वास्तविक प्रत्यक्ष-अर्थ से अधिक महत्त्वपूर्ण अर्थ में वस्तु का कल्पनात्मक बोध प्राप्त करता है। और इस स्थिति विशेष से

२६. ब्यूटी ऐन्ड अदर फार्मस; द्वि० प्र०, पृ० ३०।

२७. सन्टायन ; दि सेन्स ऑव ब्यूटी,, पृ० १३३।

२८. टाइप्स ऑव एस्थिटिक जजमेंट ; नेचुरल ब्यूटी, पृ० २२८।

कलात्मक आनन्द सम्बंधित है।

§ १७—कहा गया है कि प्रकृति सौन्दर्य्य हमारी कलात्मक दृष्टि का फल है और कुछ अंशों में हम सभी में कलाकार की प्रवृत्ति रहती है। इस प्रकार प्रकृति सौन्दर्य्य के विषय में हमारी भावज्ञता (प्रकृति का भाव पक्ष) प्रधान लगती है; परन्तु उसके रूप-पक्ष की उपेक्षा नहीं की जा सकती। प्रकृति का रूप उसके सौन्दर्य्य का आधार है, यद्यपि रूप के लिए मानवीय मानस की स्वीकृति आवश्यक है। फिर भी इस रूप में प्रकृति का अपना योग मान्य है। इस रूप के आधार पर भाव क्रियाशील होता है और संचयन द्वारा सौन्दर्य्य की स्थापना करता है। इस प्रकार प्रकृति की सौन्दर्य्यानुभूति में भाव और रूप की विचित्र स्थिति उत्पन्न हो जाती है जिसमें यह कहना असम्भव हो जाता है कि प्रधान कौन है। वस्तुतः भाव और रूप का यह वैचित्र्य ही सौन्दर्य्य है।

प्रकृति में सौन्दर्य्य

क—प्रकृति सौन्दर्य्य के भाव-पक्ष में एक प्रभावशील भावना है जो समष्टि रूप से इन्द्रियों के विभिन्न गुणों की सम्वेदनात्मकता पर आधारित है और रूप-पक्ष में वस्तुओं के गुणों पर निर्भर है। यह सुखानुभूति इन्द्रिय वेदनाओं में प्रत्यक्ष-बोध और कल्पना के रूपों की सम्वेदना से सम्बंधित है। परन्तु सौन्दर्य्य में इनका योग निरति की निरपेक्ष भाव-स्थिति पर सम्भव है। सौन्दर्य्य का दूसरा भावात्मक रूप सहचरण की सहानुभूति में स्वीकार किया जा सकता है। प्रकृति अपने क्रिया-व्यापारों में मानव जीवन के अनुरूप जान पड़ती है, साथ ही प्रकृति मानवीय चेतना और भावों से युक्त होकर भी उपस्थित होती है। मानवीय संस्कृति के इस युग में प्रकृति के प्रति साहचर्य्य की यह भावना उसके सौन्दर्य्य की प्रबल आकर्षण शक्ति है और प्रकृति के प्रति मानव की स्वच्छन्द प्रकृति का रूप इसमें सन्निहित है। हमारी चेतना तथा हमारे प्राणों से सचेतन और सप्राण प्रकृति हमारी भावनाओं में निमग्न होकर सुन्दर लगती है। यह मानसिक

भावात्मक मनस्-पक्ष

अनुकरण का प्रकृति पर प्रतिबिम्ब-भाव है जो हमको स्वयं सुन्दर लगने लगता है। परन्तु जब व्यंजनात्मक दृष्टि से यह प्रतिबिम्ब-भाव अधिक व्यक्त तथा स्पष्ट हो जाता है, तब प्रकृति का सौन्दर्य्य अधिक आकर्षक हो जाता है। यह सौन्दर्य्यानुभूति सम्वेदनशील व्यक्ति को ही हो सकती है। वह प्रकृति सौन्दर्य्य में अपनी व्यंजना-शक्ति द्वारा उन अभिव्यक्तियों के प्रतिबिम्ब देखने में समर्थ होता है, जो साधारण व्यक्ति के लिए असम्भव है।[२९]

ख—भाव के बिना रूप कुछ नहीं है, इसी प्रकार रूप के आधार बिना भाव-स्थिर नहीं हो सकता। इन दोनों पक्षों की व्याख्या अलग-अलग करने का एकमात्र उद्देश्य विषय को अधिक बोध-गम्य बनाना है। प्रकृति अनेक रूप-रंगों में हमारे सामने उपस्थित होती है।

रूपात्मक वस्तु-पक्ष

उसमें आकारों की सहस्र-सहस्र रूपात्मकता सौन्दर्य और उसके कलात्मक प्रदर्शन में योग प्रदान करती है। ज्योमिति के नाना आकार प्रकृति के रूप में बिखरे हुए हैं जो प्रकृति के सौन्दर्य्य के चित्रपट को सीमादान करते हैं। इस प्रकार रूप और आकार विभिन्न सीमाओं में प्रत्येक दृश्य को हमारी चेतना से सम-रूप में उपस्थित कर सौन्दर्य्य प्रदान करते हैं। साथ ही प्रकृति की गति और संचलन हमारे आत्म-प्रसार के लिए विशेष आधार हैं। उसमें असंख्य ध्वनियों के सूक्ष्म भेद व्याप्त हैं और गंध-स्पर्श का योग उसके सौन्दर्य्य की समष्टि का अंश है। प्रकृति में आकार-प्रकार की व्यापक विभिन्नता है, उसमें रंगों के सूक्ष्म भेद और छायातप हैं और उसकी ध्वनियों में अनन्त स्वर-लय हैं। इनको पकड़ पाना कला के सुन्दर से सुन्दर रूप में कठिन है। परन्तु कला में जो चयन और प्रभावोत्पादक शक्ति है उससे सौन्दर्य्य में सजीवता और सप्राणता की गम्भीर व्यंजना सन्निहित हो जाती है। यह

२९. काव्य में प्रकृति सौन्दर्य्य का यह रूप मानवीय चेतना, आकार तथा मधुक्रीड़ाओं के आरोप से सम्बंधित है।

संचित और केन्द्रित प्रभाव प्रकृति के प्रसारित सौन्दर्य में नहीं होता, यद्यपि कलाकार अपना आदर्श उसमें ढूँढ सकता है क्योंकि प्रकृति के पास उसके चयन के लिए अपार भंडार है।[३०]

§ १८—सौन्दर्य जिस विशिष्ट भाव-स्थिति से सम्बंधित है, उसका विभाजन सम्भव नहीं है। परन्तु भावों की प्रमुखता की दृष्टि से कुछ रूपों का उल्लेख किया जा सकता है। स्वीकृत स्थायी-भावों में कुछ विशेष रूप से मानवीय जीवन से सम्बंधित हैं। इसी प्रकार प्रकृति सौन्दर्य के क्षेत्र में कुछ भाव दूसरे भावों में लीन हो जाते हैं। प्रकृति के सम्वेदनात्मक सौन्दर्य मे विरोधी भावों के रूप में जुगुप्सा का भाव सम्मिलित है। प्रकृति की महत् भावना में भय तथा विस्मय के भाव मिल जाते हैं। इसी प्रकार प्रकृति की साहचर्य भावना में अन्य भावों का आरोप हो जाता है। मानवीय चरित्र तथा धर्म सम्बंधी मूल्यों का समवाय प्रकृति में प्रतिबिम्ब रूप में हो सकता है। इस प्रकार प्रकृति-सौन्दर्य का विचार तीन प्रमुख रूपों में किया जा सकता है।

प्रकृति सौन्दर्य के रूप

क—महत् की सौन्दर्य-भावना प्रकृति की अनन्त शक्ति, विशाल आकार तथा व्यापक विस्तार से सम्बंधित है। इसमें मूलतः भय और विस्मय का भाव सन्निहित है। इस प्रकार महत् रूप से भयंकरता तथा उत्पीड़न सम्बंधित अवश्य है, परन्तु सौन्दर्य के स्तर पर महत् मे इनका योग न मानकर इन्हें उसके मूल मे स्वीकार किया जा सकता है। इस सौन्दर्यानुभूति में व्यापक प्रभाव है जो वस्तु की आकाश-स्थिति, शक्ति-संचलन तथा अन्य गुणों से सम्बंधित है। महानता की सौन्दर्य-भावना विशालता के कल्पनात्मक परप्रत्यक्ष से प्रभावित होती है। इसमें सहानुभूति की चेतन अनुभूति भी

महत्

३०. प्रकृति-चित्रण के अन्तर्गत इस संचयन का अध्ययन करना सरल है।

मिल जाती है। इसी कल्पनात्मक सहानुभूति से हम वस्तु की विशालता सम्बंधी मानसिक महानता की तदाकारता स्थापित करते हैं।

ख—प्रकृति सौन्दर्य्य के अन्य रूप को हम संवेदनात्मक मान सकते हैं। इस सम्वेदनात्मक मानसिक स्थिति में प्रगाढ़ की भावना है। इसके

संवेदक

मूल में इन्द्रिय-वेदना की सुखात्मक अनुभूति अवश्य है और प्रकृति के माध्यमिक गुण इसके आधार में हैं। प्रकृति का यह दृश्यात्मक सौन्दर्य्य इन्द्रियों को मादकता के समान प्रभावित करता है। वस्तुतः इन सब रूपों को अलग-अलग विभाजित नहीं किया जा सकता है। इस भाव-रूप में महत् का रूप सन्निहित हो सकता है: और साहचर्य्य-भाव का योग भी होता है।

ग—प्रकृति सौन्दर्य्य में सबसे अधिक व्यापक सचेतन सौन्दर्य्य है। इसमें हमारी चेतना का सम है, साथ ही साहचर्य्य-भावना की विकासो-

सचेतन

न्मुखी प्रवृत्तियों का योग है। आदि का प्रकृति पर मानवीय आकार तथा चेतना का आरोप सौन्दर्य्य रूप तो नहीं था, पर इसके लिए उसने आधार प्रस्तुत किया है। विकास के साथ आत्म-तदाकारता की भावना, सामाजिक स्तर पर साहचर्य्य सम्बंधी विभिन्न भावनाओं से मिलती गई, प्रकृति पर उनका आरोप उसी प्रकार विषम मनःस्थिति में हुआ है। इस स्तर पर प्रकृति-सौन्दर्य्य का कोई भी रूप इस भावना से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका है।[३१]

काव्य में प्रकृति सौन्दर्य्य

§ १६—पिछले अनुच्छेदों में प्रकृति सौन्दर्य्य की व्याख्या की गई है, साथ ही इस बात का भी संकेत किया गया है कि इसमें हमारे अपने

काव्य सौन्दर्य्य है

मनःस्थिति की प्रधानता है। काव्य का सम्बंध मानव मन से एकांत रूप से है। इस कारण अब यह विचार

३१. प्रकृति और हिन्दी-काव्य: प्र० भाग; चतु० प्रकरण में इसका विस्तार है।

करना है कि प्रकृति सौन्दर्य की मनःस्थिति को कवि अपने काव्य की मानसिक स्थिति में किस प्रकार ग्रहण करता है। काव्य की व्याख्या सौन्दर्य के रूप में ही पूर्ण है; और काव्यगत सौन्दर्य अनुभूति, अभिव्यक्ति तथा रसानुभूति के तीन स्तरों से सम्बन्धित है। कवि या कलाकार जिस प्रकार अपनी कल्पना से प्रकृति सौन्दर्य को विशेष रूप से ग्रहण करता है, उसी प्रकार वह उसको अपनी काव्यानुभूति के रूप में परिवर्तित कर सकता है और अभिव्यक्ति द्वारा रसानुभूति का विषय बना सकता है। पहले हम सौन्दर्य का विवेचना भावों के विकास तथा प्रकृति के सम्बंध में कर चुके हैं। यही सौन्दर्य कौशल की निर्भर साधना में कला को जन्म देता है और कला जब सौन्दर्य के उपकरणों से सम उपस्थित कर लेती है वह काव्य सौन्दर्य हो जाता है। साधारण कलाओं में सौन्दर्य की व्यंजना में प्रकृति के उपकरणों का सहयोग रहता है। उपकरणों के प्राकृतिक गुण स्वयं भावाभिव्यक्ति में सहायक होते हैं। परन्तु काव्य में व्यंजना का सबसे अधिक महत्त्व है। अन्य कलाओं में रूपात्मक सौन्दर्य का आदर्श रहता है; संगीत में भाव और उपकरणों का सम सौन्दर्य है। परन्तु काव्य में अभिव्यक्ति मात्र को ध्वनि के व्यंग्य का आश्रय लेना पड़ता है। यह ध्वनि जब सौन्दर्य की व्यंजना करती है तभी काव्य है।[३२]

क—पाश्चात्य काव्य-शास्त्रियों ने अनुभूति को काव्य सौन्दर्य में अधिक महत्त्व दिया है। काव्य के सम्बंध में कवि के मानसिक पक्ष के दो प्रमुख रूप हमारे सामने आते हैं। विषय रूप वस्तु-जगत् (प्रकृति) जिससे कवि प्रभाव ग्रहण करता है और दूसरा उसी का मानसिक पक्ष जो स्वतः प्रभाव-स्थिति है। किसी मनःस्थिति के लिए आलम्बन रूप वस्तु-विषय (प्रकृति) आवश्यक है।

काव्यानुभूति

३२. पंडितराज जगन्नाथ; रसगंगाधर; पृ० ४—'रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्' और भामह; काव्यालंकार—'शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्' में यह भाव है।

रन्तु यह विषय केवल भौतिक प्रत्यक्ष-बोध तक सीमित नहीं है, इसका विस्तार कल्पनात्मक स्थितियों में भी रहता है। इस विषय के दो रूप है। एक तो भौतिक स्वरूप में वस्तु या व्यक्ति, दूसरे मानसिक स्थिति में वस्तु का गुण या व्यक्ति का चरित्र। इन मानसिक स्थितियों को वस्तु या व्यक्ति से सम्बंधित उच्च-मूल्यांकन समझना चाहिए जो उनके रूप के साथ सम्मिलित कर लिए गए हैं। आचरण और गुणों का यह मूल्यांकन भाव-स्थितियों से विकसित होकर भी ज्ञान के समीप है और सौन्दर्य्य की रूपमयता में कवि की अनुभूति का विषय बनता है। इस प्रकार प्रकृति का राशि-राशि सौन्दर्य्य विभिन्न रूपों में कवि की काव्यानुभूति में योग देता है—रूपात्मक सौन्दर्य्य के आलम्बन और पार्श्वभूमि के रूप में और भावात्मक सौन्दर्य्य के समानान्तर और कभी उद्दीपन के रूप में।

ख—वस्तुतः काव्य में अधिक व्यक्त स्थिति अभिव्यक्ति की है जो अनुभूति और रसात्मक सम्वेदना को समन्वय की स्थिति में प्रस्तुत करती है। कवि अपनी सौन्दर्य्यानुभूति को आन्तरिक प्रेरणा से व्यक्त करता है। काव्य की अभिव्यक्ति में शब्द भाव के रूपात्मक प्रतीक हैं। शब्द में अर्थ सन्निहित है जो भाव-बिम्ब ग्रहण करने के पहले परप्रत्यक्ष के स्तर पर ध्वनि-बिम्ब ग्रहण करता है। काव्य में शब्द के माध्यम से प्रकृति के रूप और भाव का समन्वय सौन्दर्य्य की अभिव्यक्ति ग्रहण करता है। इस प्रकार ध्वनि-काव्य में प्रकृति व्यंजनात्मक सौन्दर्य्य में आती है, साथ ही आलंकारिक उपमान योजना में प्रकृति-उपमानों का व्यापक विस्तार है।

काव्याभिव्यक्ति

ग—अभिव्यक्ति का प्रभाव काव्यानन्द है। अभिव्यक्ति का सौन्दर्य्य व्यंजना की चमत्कार स्थिति में आनन्द है। इसी में अनुभूत सौन्दर्य्य का तादात्म्य है। इस स्थिति में प्रकृति सौन्दर्य्य की अनुभूति और अभिव्यक्ति काव्यानन्द का विषय बन जाती है। भावज्ञ के मन की रसानुभूति अपने मन के स्थित भाव-संयोगों के आधार पर साधारणीकरण व्यापार द्वारा प्रकृति सौन्दर्य्य को

काव्यानन्द

आलम्बन रूप में ग्रहण करती है और उद्दीपन रूप में भी। कभी कभी वह केवल आत्मतादात्म्य का रूप प्राप्त करता है, परन्तु संस्कृत काव्य में व्यक्तिगत गीतियों के अभाव में इस प्रकार की रसात्मकता को स्थान नहीं मिल सका है। काव्य के क्षेत्र में आनन्द का आदर्श समान रूप से लागू नहीं है। इसके विभिन्न स्तर हैं, इस कारण सौन्दर्य का आधार भी बदलता रहता है।[२३]

§ २०—प्रकृति में विशाल व्यापक सौन्दर्य है और काव्य सौन्दर्य का क्षेत्र है। काव्य प्रकृति के सौन्दर्य को ग्रहण भी करता है। इस प्रकार हम देख चुके हैं कि प्रकृति और काव्य का सम्बंध सौन्दर्य के धरातल पर है। प्रकृति सौन्दर्य की अनुभूति के लिए कवि और कलाकार की दृष्टि चाहिए, ऐसा कहा गया है। यही सौन्दर्य कवि की अनुभूति के साथ अभिव्यक्ति का रूप ग्रहण करता है। अपने पूर्व संस्कारों में कवि प्रकृति के सामने अनुभूतिशील हो उठता है और अपनी कल्पना से इस सौन्दर्य को व्यंजित करता है। इस काव्य में प्रकृति आलम्बन होती है और कवि भावों का आश्रय। यह आलम्बन रूप विभिन्न प्रकार से उपस्थित होता है।

प्रकृति का आलम्बन रूप

क—प्रकृति अनेक रंगों में बिखरी है, उसमें अनेक आकार-प्रकार के स्तर हैं, उसमें असंख्य ध्वनियों का आरोह-अवरोह है और अनन्त गति तथा चेतना का विस्तार है। इनको इन्द्रियाँ अनुभूति रूप में ग्रहण कर इन्द्रिय-वेदना सम्बंधी सुखानुभूति प्राप्त करती हैं। परन्तु कल्पना की गम्भीरता उसे सौन्दर्य का ऊँचा धरातल प्रदान करता है और इससे प्राप्त आह्लाद सुख-सम्वेदना का ही प्रगाढ़ और व्यापक रूप है। इस आह्लाद की स्थिति में कवि प्रकृति की कल्पना के साथ प्रगाढ़ सुख की अनुभूति सम्मिलित कर देता है। यह

स्वानुभूत सौन्दर्य

२३. विस्तार के लिए 'प्रकृति और हिन्दी काव्य'; प्र० भा०; पंचम प्रकरण को देखिए।

भावना जब एक सीमा तक प्रकृति के रूपात्मक आधार को छोड़ देती है, तब वह इन्द्रिय सुखानुभूति से अलग सौन्दर्य्य की आनन्दानुभूति मात्र में व्यक्त होती है। इसमें प्रकृति का आलम्बन परोक्ष और अनुभूति प्रत्यक्ष रहती है। प्रकृति के इस सौन्दर्य्य-साहचर्य्य में कवि अपनी सजगता और चेतना से उल्लासित हो उठता है। कभी-कभी कवि प्रकृति सौन्दर्य्य को अपने मानस में प्रतिघटित कर आत्मतल्लीन हो जाता है। इस स्थिति में कवि प्रकृति सौन्दर्य्य की चेतना को भुला देता है और उसके मन में निर्भर आनन्द अभिव्यक्ति की प्रेरणा ग्रहण करता है। आनन्द की यह आत्मतल्लीन स्थिति प्रकृति के सर्वचेतनशील आधार पर सम्भव है और साहचर्य्य-भाव सम्बंधी अनुभूति से सम्बंधित है।

ख—प्रकृति की अनुभूति के साथ कवि अपने मानवीय जीवन का प्रतिबिम्ब भी समन्वित करता है। इस अभिव्यक्ति में प्रकृति मानवीय जीवन के समानान्तर लगती है। इसमें प्रकृति मानसिक प्रतिबिम्ब के रूप में भावों का आलम्बन है। आश्रय की भाव-स्थिति का आरोप इसपर होता है; परन्तु इस स्थिति में भावों का भिन्न कोई आलम्बन नहीं होता है। जब आलम्बन दूसरा व्यक्ति होगा, उस समय प्रकृति इस रूप में आश्रय के भावों को उद्दीप्त करेगी। इस सीमा पर आलम्बन और उद्दीपन रूपों का यही भेद है। प्रकृति की गति और प्रवाह मानव चेतना के समानान्तर है। इन समानान्तर स्थितियों में कवि अपनी जीवन शक्ति का आरोप करता है। कवि अपनी अभिव्यक्ति में प्रकृति के गतिशील और प्रवाहित रूपों को सजीव और सप्राण कर देता है। काव्य में प्रकृति अपने आप में लीन और क्रियाशील चित्रित होती है, परन्तु यह मानवीय चेतना का प्रतिबिम्ब ही है। कवि प्रकृति के विभिन्न रूपों और व्यापारों में व्यापक चेतना के स्थान पर व्यक्तिगत जीवन का आरोप करता है। प्रकृति के क्रिया-कलापों में मानवीय जीवन-व्यापार की झलक व्यक्त होती है। इस आरोप में पशु-पक्षी के साथ वनस्पति जगत् भी आ जाता है। प्रकृति मानवीय क्रिया-

प्रतिबिम्बित सौन्दर्य्य

व्यापारों के साथ उसके भावों का प्रतिबिम्ब ग्रहण करती है। कवि अपनी कल्पना में विभिन्न भावों को प्रकृति पर प्रतिघटित करता है और यह उसी के भावों का प्रसरण मात्र है। इसलिए भावमग्न प्रकृति आश्रय (कवि) के भावों को प्रतिबिम्बित करती हुई स्वयं आलम्बन है। प्रकृति सौन्दर्य्य के आलम्बन पर व्यापक सहानुभूति से जो भाव कवि के मन में उत्पन्न होते हैं, उन्हीं को वह प्रकृति पर प्रसरित कर देता है; और इस प्रकार साहचर्य्य-भावना से प्रकृति हमारे विभिन्न भावों का आलम्बन हो सकती है। परन्तु यही रूप पिछली मनः-स्थिति के समानान्तर या वर्तमान किसी भिन्न भावस्थिति का आधार ग्रहण कर उद्दीपन-विभाव के अन्तर्गत आ जाता है।[३४]

§ २१—काव्य का विस्तार मानवीय भावों में है जो मानवीय सम्बंधों में स्थित हैं। पिछले प्रकृति-रूपों में कवि का व्यक्तित्व प्रधान था।

प्रकृति का उद्दीपन-रूप

परन्तु जब किसी स्थायी भाव का कोई अन्य प्रत्यक्ष आलम्बन होता है, उस समय प्रकृति उद्दीपन के अन्तर्गत विभिन्न रूपों में उपस्थित होती है। प्रकृति की उद्दीपन शक्ति उसके सौन्दर्य्य और साहचर्य्य के साथ परिस्थिति के संयोग पर भी निर्भर है। प्रबन्ध-काव्यों में प्रकृति कथानक की परिस्थिति और घटना-स्थिति आदि के रूप में चित्रित होकर मनःस्थिति के उपयुक्त वातावरण उपस्थित करती है।

क—हम देख चुके हैं किसी मनःस्थिति में मानव प्रकृति से सम स्थापित कर सकता है, साथ ही उससे भावात्मक प्रेरणा प्राप्त कर सकता है।

प्रकृति का पार्श्व-भूमि

अगर आश्रय में भाव की स्थिति अन्य आलम्बन को लेकर होगी तो वह उस भाव को ग्रहण करती विदित होगी और इस सीमा पर वह विभिन्न

३४. इस प्रकार के प्रकृति-रूपों में आलम्बन और उद्दीपन का भेद भावों के आलम्बन की स्थिति पर निर्भर है। यदि कवि के मनोभावों का प्रसरण है तो आलम्बन और यदि कोई परोक्ष में दूसरा आलम्बन है तो उद्दीपन रूप माना जा सकता है।

रूपों में उद्दीपन का कार्य करती है। जब आश्रय के मन में भावों की स्थिति अदृश्य आलम्बन को लेकर होती है, उस समय प्रकृति उन भावों के समानान्तर लगती है। इस रूप में केवल भावों की रुकी हुई उमस का वर्णन होता है। इस रूप में प्रतिबिम्बित प्रकृति-रूप की चेतना सन्निहित है। इनमें भेद केवल इतना है कि उसमें सम्पूर्ण जीवन की व्यापक अभिव्यक्ति प्रकृति पर छायी रहती है और इस रूप में मनःस्थिति की भावना का संकेत भर मिलता है। यह उद्दीपन की प्रेरणा कभी अव्यक्त-भाव को ऊपर लाकर अधिक स्पष्ट रूप प्रदान करती है और कभी व्यक्त-भाव को अधिक तीव्र करती है। भाव-स्थिति का यह व्यापार साम्य तथा विरोध के आधार पर चलता है। इसके साथ भावों की अभिव्यक्ति से साम्य उपस्थित कर प्रकृति उद्दीपन के अन्तर्गत आती है। कभी भाव अप्रत्यक्ष आलम्बन के स्थान पर प्रत्यक्ष आधार लेकर व्यक्त होता है और कभी-कभी भावो की व्यंजना प्रकृति के आरोप के सहारे अधिक तीव्र होती है। इसी के अन्तर्गत प्रकृति से आलम्बन विषयक साहचर्य सम्बंध की स्थापना है।

ख—कथानक की साधारण परिस्थितियों तथा घटना-स्थितियों को चित्रित करने में कवि प्रकृति के उद्दीपन-रूप का आश्रय लेता है।

भावों की पार्श्वभूमि

इस चित्रण में भाव-ग्रहण कराने की प्रेरणा सन्निहित रहती है। साधारण वस्तु-स्थिति का चित्रण वर्णन का सरल रूप है और आलम्बन-रूप ही माना जायगा। परन्तु जब इन वर्णनों में आगे होनेवाली घटना या भाव के संकेत सन्निहित हो जाते हैं, उस समय प्रकृति भावों को ग्रहण करनेवाले की मनःस्थिति को प्रभावित करती है। कभी प्रकृति-वर्णना में व्यंजना से कवि भावों की अभिव्यक्ति प्रकृति में करता है। यह भावात्मक वातावरण उन भावों के अस्पष्ट संकेत छिपाए रहता है जो सामाजिकों के हृदय में उदय होंगे। भावों की पार्श्व-भूमि में प्रकृति मानव-सहचरी के रूप में अपनी

सहानुभूति से भावों को प्रभावित करती है। और कभी प्रकृति विरोध उपस्थित कर भावों को उत्तेजित करती है।

§ २२—प्रकृति के आलम्बन-रूप में आनन्दानुभूति तथा आत्म-तल्लीनता का उल्लेख किया गया है। यह हमारी सर्वचेतन भावना का परिणाम है, जो साधारण रूप से प्रकृति में व्यापक है। इसमें अभिव्यक्ति की भाव-गम्भीरता के साथ रहस्यानुभूति का रूप जान पड़ता है। प्रकृतिवादी रहस्यवादी और प्रेमवादी रहस्यवादी प्रकृति को भिन्न दृष्टिबिन्दुओं से देखते हैं। प्रेमी साधक अपने प्रेम को व्यापक आधार देने के लिए प्रकृति की प्रसरित चेतना में और सौन्दर्य्य में अपने प्रेम के प्रतीक ढूँढता है, परन्तु आलम्बन मानकर अधिक दूर नहीं चलता। प्रकृतिवादी रहस्यवादी प्रकृति के सौन्दर्य्य से प्रेम के सत्य तक पहुँचता है। वह प्रकृति के सौन्दर्य्य में चरम-सौन्दर्य्य की अनुभूति प्राप्त करता है। जिस प्रकार हमारी चेतना प्रकृति में प्रसारित होकर सौन्दर्य्य तथा आनन्दमय हो जाती है, उसी प्रकार रहस्यवादी कवि उसके सौन्दर्य्य में अपने प्रेम के प्रसार की अभिव्यक्ति द्वारा आनन्द प्राप्त करता है।

रहस्य भावना

§ २३—वर्णनात्मक व्यंजना का एक रूप अलंकार भी है। साम्य और विरोध के संयोग उपस्थित कर अधिकांश उपमा-मूलक अलंकार एक प्रकार से रूप या भाव की व्यंजना करते हैं। और अलंकारों में रूप तथा भाव की व्यंजना के रूप में प्रकृति-उपमानों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रकृति के नाना रूपों को उपमान रूप में ग्रहण कर कवि जिस प्रकार रूपाकार उपस्थित करता है उसी प्रकार विभिन्न स्थितियों की चित्रमयी योजना भी करता है। प्रकृति के प्रत्येक रूप और स्थिति में हमारे अन्तःकरण के सम पर एक भाव स्थिर हो गया है। इस कारण उपमानों की योजना से भावों की व्यंजना

उपमान-योजना

होती है। इस प्रकार की व्यंजना दो प्रकार से हो सकती है। पहले रूप में प्रकृति उपमानों से भावों की व्यंजना और दूसरे रूप में भावों से प्रकृति रूपों की योजना की जाती है। इन दोनों के मूल में आधार एक ही है।[35]

३५. विशेष व्याख्या के लिए 'प्रकृति और हिन्दी-काव्य'; प्र० भा०, पंचम प्रकरण के अनु० १४-१७ तक देखिए।

द्वितीय प्रकरण

काव्यशास्त्र और प्रकृति

§ १—पिछले प्रकरण में निश्चित किया गया है कि मानवीय कल्पना के विकास में प्रकृति का सहयोग रहा है। और यह भी उल्लेख किया गया है कि कला और काव्य का आधार कल्पना है; इस कारण प्रकृति से इनका सहज सम्बंध सम्भव है। प्रकृति के व्यापक विस्तार से जो सौन्दर्य्य मानव अपनी कल्पना में ग्रहण करता है, वह उसके काव्य में अपनी अभिव्यक्ति ढूँढ़ता है। काव्य सौन्दर्य्य की अभिव्यक्ति है जो अनुभूति का रूप ग्रहण करती है और सम्वेदना का प्रभाव छोड़ती है; और काव्य-शास्त्र उस सौन्दर्य्य की व्याख्या है जो रूप और भाव का सन्तुलन ढूँढ़ती है और आदर्शों की स्थापना करती है। काव्य-सौन्दर्य्य के अनुभूति पक्ष से प्रकृति का सीधा सम्बंध है; अभिव्यक्ति और सम्वेदन के सौन्दर्य्य-पक्षों में प्रकृति मानसिक आधार ग्रहण कर लेती है। इस सीमा पर प्रकृति का भाव-रूप सौन्दर्य्य-बोध का अंग बन जाता है। इसी कारण अनुभूति पक्ष पर बल देनेवाली काव्य-शास्त्र की विवेचनाओं में प्रकृति को महत्त्वपूर्ण स्थान मिल सका है। अन्य काव्य-शास्त्र की विवेचनाओं में प्रकृति-सम्बंधी दृष्टिबिन्दु गौण रूप

काव्य-शास्त्र

से हमारे सामने आता है। जैसा हम आगे देखेंगे भारतीय काव्य-शास्त्र की विवेचनाओं में कवि का अनुभूति-पक्ष स्पष्ट रूप में नहीं स्वीकार किया गया और इस कारण इनमें प्रकृति सम्बंधी दृष्टिकोण का संकेत भर मिलता है। परंतु इन संकेतों का महत्त्व कम नहीं है, क्योंकि इनमें काव्य में प्रचलित प्रकृति-सम्बंधी प्रवृत्तियों का रूप छिपा हुआ है। और फिर इन शास्त्रीय मान्यताओं से आगे का साहित्य पूरी तरह प्रभावित होता रहा है। इस कारण संस्कृत काव्य के विस्तार में प्रकृति के विभिन्न रूपों पर विचार करने के पूर्व, संस्कृत काव्य-शास्त्र के विभिन्न सिद्धान्तों की व्याख्या में प्रकृति सम्बंधी दृष्टि-बिन्दु पर विचार कर लेना आवश्यक है।

अनुभूति का पक्ष

§ २—काव्य-शास्त्र के आदर्शों के विषय में प्राच्य और पाश्चात्य का अपना-अपना दृष्टिकोण है। इन आदर्शों की भिन्नता के कारण उनके काव्य में प्रकृत-सम्बंधी दृष्टि-बिन्दु भी भिन्न हैं। पहली बात जिसकी ओर ध्यान आकर्षित किया गया है, वह है कि पश्चिम में काव्य की व्याख्या में अनुभूति पर भी काफ़ी बल दिया गया है। और इस कारण काव्य-सौन्दर्य्य की व्याख्या में प्रकृति-सौन्दर्य्य का सीधा उल्लेख हुआ है। पर पूर्व में, भारत में जैसा हम आगे देखेंगे इस पक्ष की उपेक्षा हुई है, इस कारण काव्य सौन्दर्य्य की व्याख्याओं में प्रकृति को महत्त्व नहीं मिल सका। साथ ही भारतीय काव्य-शास्त्र ने सादृश्य का आदर्श स्थापित किया, जब कि योरप में अनुकरण का सिद्धान्त अधिक मान्य रहा है। भारतीय सादृश्य में प्रकृति का सौन्दर्य्य आत्मगत कल्पना के माध्यम से काव्य का विषय बन सका; जब कि योरप के काव्य में प्रकृति अपने यथार्थ रूप में अनुकरण का विषय रही है। प्लेटो ने अपनी काव्य-विवेचना में अनुकरणात्मक काव्य को स्वीकार किया है, पर उसे

भिन्न दृष्टिकोण
सादृश्य और अनुकरण

हेय मानकर सापेक्ष्य काव्य के आदर्श की स्थापना करने का प्रयास किया है। परन्तु अरिस्टाटिल ने फिर काव्य और कला की व्याख्या 'अनुकरण' के रूप में स्वीकार की है। यह 'अनुकरण' साधारण अर्थ में प्रकृति के रूप-सादृश्य से सम्बंधित है, परंतु काव्य और कला के क्षेत्र में इसका वास्तविक अर्थ 'मानसिक अनुकरण' है। आगे चलकर यही 'मानसिक अनुकरण' कवि की स्वानुभूति की अभिव्यक्ति के रूप में स्वीकार किया गया है। योरप के कला-सम्बंधी इस दृष्टि-बिन्दु में, कवि और कलाकार की मनःस्थिति पर विशेष ध्यान दिया गया है, और काव्य के वस्तु-परक आधार पर कम। यद्यपि 'अनुकरण' के रूप में अरिस्टाटिल ने आत्मानुभूति को महत्त्व दिया था, परंतु क्रोशे ने अपने अभिव्यंजनावाद में इसे अधिक विस्तार दिया है। योरप और इंगलैंड के स्वच्छन्दवादी-युग के आधार में काव्य के इसी सिद्धान्त की प्रमुख रूप से स्वीकृति रही है।[१] पाश्चात्य काव्य-सम्बंधी प्रमुख विचार-धाराओं पर इस सिद्धान्त का प्रभाव है, और इस कारण काव्य-शास्त्र की विवेचनाओं का आधार मनस्-परक रहा है। और साथ ही योरपीय काव्य का उन्मुक्त प्रकृतिवाद इसके अनुरूप है।

§ ३—परंतु भारतीय आचार्यों ने काव्य को प्रारम्भ से 'शब्दार्थों काव्यं' के रूप में माना है। संस्कृत के आदि आचार्य की इन काव्य-संबंधी व्यापक सीमाओं को परवर्ती सभी आचार्यों ने माना है। आचार्य भामह का 'शब्द' और 'अर्थ' के समन्वय को काव्य मानने में महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है। 'शब्द' के द्वारा भाषा के रूपात्मक (मानसिक) अनुकरण की ओर संकेत है, और साथ ही 'अर्थ' की व्यापक सीमाओं में अभिव्यक्ति का भाव सन्निहित है। लेकिन इस अभिव्यक्ति को वस्तु-रूप मानकर प्रथम आचार्यों ने 'शब्द

व्यापक उपेक्षा

---

१. इङ्गलैंड में क्रोशे के सिद्धान्त का प्रतिपादन ई० एफ़० केरट और आर० जी० कालिनउड ने किया है।

और अर्थ' दोनों को 'काव्य-शरीर' ही माना है।[2] इस प्रकार वे अपने दृष्टि-बिन्दु में स्पष्ट अवश्य हैं, क्योंकि उन्होंने 'काव्य-आत्मा' को स्वीकार किया है। परंतु संस्कृत साहित्य के आचार्यों का ध्यान अधिक से अधिक वस्तु-रूप काव्य-विषय की ओर रहा है। इसका एक बहुत ही स्पष्ट कारण है, भारतीय आचार्य काव्य को विश्लेषण का विषय बनाना चाहते थे। बाद में ध्वनिवादियों और रस-सिद्धान्तवादियों ने काव्य की अभिव्यक्ति में 'आत्मा' को भी स्थान देने का प्रयास किया है।[3] परंतु इनमें काव्य की उस सम्वेदक प्रभावशीलता की स्थापना है जो भावज्ञ पाठक के मन के सौन्दर्य्य-बोध का कारण है। इन सिद्धान्तों में कवि की मनःस्थिति अथवा काव्य के अनुभूति-पक्ष का स्पष्टतः समन्वय नहीं हुआ है। वैसे काव्य की किसी भी व्याख्या में उसके अन्य स्तरों का अन्तर्भाव रहता है।[4] काव्य कवि की किस प्रकार की मानसिक प्रेरणा की अभिव्यक्ति है, इस ओर आचार्यों ने ध्यान नहीं दिया है। इस विषय में डा० सुशीलकुमार डे का कथन महत्त्वपूर्ण है—"भारतीय सिद्धान्तवादियों ने अपने कार्य के एक महत्त्वपूर्ण अंग की अवहेलना की है। यह काव्य-विषय की प्रकृति को कवि की मनःस्थिति के रूप में समझ कर काव्य की व्याख्या करना है, जो पाश्चात्य सौन्दर्य्य-शास्त्र का प्रमुख विषय रहा है। 'स्वभावोक्ति' और 'भाविक' की स्वीकृति इस ओर संकेत अवश्य करती है कि भारतीय आचार्यों में इस बात की चेतना थी। परंतु उन्होंने पूर्ण-रूप से इस ओर ध्यान न देकर आंशिक

---

२. भामह (१, २३) ; दंडी (१, १०)

तैः शरीरञ्च काव्यानामलङ्काराश्च दर्शिताः।
शरीरं तावदिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली॥

३. आनन्दवर्धनाचार्य के ध्वन्यालोक (प्र०) 'काव्यस्यात्मा ध्वनिरिति'।

४. लेखक की पुस्तक 'प्रकृति और हिन्दी काव्य' प्रथम भाग; पंचम प्रकरण को इस विषय में देखना चाहिये।

रूप से विचार किया है।"[५]

§ ४—इस उपेक्षा का कारण भारतीय काव्य-शास्त्र का सूक्ष्म और शुष्क विवेचनात्मक दृष्टि-बिन्दु तो है ही, साथ ही भारतीय काव्य-कला की चिरन्तन आदर्श भावना भी है। डा० डे ने भारतीय 'काव्यादर्श' की इस 'सादृश्य-भावना' पर विचार नहीं किया है। काव्य-विषयक विवेचना इतनी सूक्ष्म हो जाती है कि उस पर दार्शनिक छायातप पड़ना निश्चित सा है। यही कारण है कि पाश्चात्य दर्शन का प्रभाव जिस प्रकार वहाँ की साहित्यिक विवेचनाओं में ढूँढा जा सकता है, उसी प्रकार भारतीय दर्शन यहाँ के काव्य शास्त्र की भूमिका के समान है। हमारा पार्थिव-जीवन अपनी स्वाभाविक प्रवृत्ति में सर्जनात्मक रूप की स्थिति से विनाश की ओर गतिशील है। जीवन का स्वाभाविक विकास मृत्यु में है और पाश्चात्य साहित्य ने अनुकरण के आधार पर स्वानुभूत-अभिव्यक्ति की शैली में इसी सहज सत्य की उपासना की है। परंतु भारतीय दर्शन में आत्मा अमर है, मृत्यु परिवर्तन की स्थिति-मात्र है। इसलिए भारतीय साहित्य में मृत्यु का उपहास और जीवन का उल्लास है। फलस्वरूप भारतीय साहित्य का आदर्श 'सादृश्य' की भावना है, जो स्वर्गीय सौन्दर्य्य-आकृति की तदाकारता पर आश्रित है। और यह 'सादृश्य' कवि के बाह्य-अनुभव का फल न होकर आंतरिक समाधि पर निर्भर है जिसके लिए आत्म-संस्कार और आत्म योग की आवश्यकता है। कवि और कलाकार इसी आत्म-संस्कार और आत्म-योग से अपनी अनुभूतियों के निम्नस्तर को छोड़कर अपने हृदयाकाश में स्वर्गीय कल्पना करता है; और कला तथा काव्य के रंग-रूपों को वहीं से ग्रहण करता है। आकृतियों की यही तदाकारता सादृश्य है, और यह 'सादृश्य' कला का रूप या माडल न होकर कलाकार की भावना और प्रज्ञा का समन्वय है। पाश्चात्य कला के विवेचकों ने इस

स्थापित आदर्श

५. डा० डे; संस्कृत पोएटिक्स; भाग २; पृ० ६५।

ओर ध्यान न देकर काव्यानुभूति को व्यक्ति की साधारण अनुभूति के रूप में स्वीकार किया है। यद्यपि इस मनोवैज्ञानिक मूल की ओर कुछ विद्वानों ने ध्यान आकर्षित किया है।[६] इन आलोचकों ने स्वानुभूति को गीतात्मकता में प्रज्ञा की प्रत्यक्ष भावों की स्थिति को विरोधी माना है; परंतु पाश्चात्य साहित्य की प्रमुख प्रवृत्ति भिन्न भिन्न सिद्धान्तों के आधार में यही रही है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि उनका साहित्य साधारण अनुभूति के धरातल पर रहा है। यह तो सिद्धान्त का रूप है जिसका प्रभाव साहित्य पर एक सीमा तक माना जा सकता है। इन रोमान्टिक कवियों की काव्य-कल्पना में सौन्दर्य्य तथा सम्वेदना का अपूर्व सम्मिश्रण है। परंतु साथ ही उनके काव्य में पार्थिव टीस और कसक की अभिव्यक्ति भी अधिक हुई है, जो मानवता की स्वस्थ अभिरुचि नहीं कही जा सकती। पर भारतीय आदर्श भावना में रूप को कुछ ऐसा महत्त्व मिला कि हमारी समस्त स्वर्गीय कल्पना निर्जीव विचित्र रूपों को सजाने में व्यस्त रही, और हमारा भावमय देवत्व पार्थिव को छोड़ने की स्पृहा में स्पंदनशील पाषाण रह गया। परिणाम-स्वरूप संस्कृत के आचार्यों का ध्यान काव्य का स्वरूप उपस्थित करने में कभी प्रकृति की चेतन सीमाओं की ओर नहीं गया; और संस्कृत साहित्य के पिछले कवियों ने न तो प्रकृति को अपनी अनुभूति का आधार बनाया है और न प्रकृति में अपनी सहानुभूति का प्रसार ही देखा है।

§ ५—परंतु काव्य-विषय की विवेचना करते समय संस्कृत के आचार्य कवि के मानसिक भाव-पक्ष से अनभिज्ञ थे, ऐसा कहना नितान्त भ्रामक है। डा० डे भी इस बात को स्वीकार करते हैं कि इस बात की चेतना उनमें थी। 'स्वभावोक्ति' और 'भाविक' अलंकारों में जो अलंकारत्व है, वह वस्तु और काल की

कुछ संकेत

---

६. इस विषय में अर्ल अव् लिस्टोवेल की पुस्तक 'दि क्रिटिकल हिस्ट्री अव् माडर्न एस्थेटिक्स' में जर्मन आलोचक देसूर और फोकेल्ट का उल्लेख है।

स्थितियों को कवि की मनःस्थिति पर स्थिर स्वीकार करता है। यद्यपि भामह और कुन्तल इनको वक्रोक्ति से हीन काव्य के अंतर्गत नहीं स्वीकार करते, परंतु दण्डी ने इस सत्य की उपेक्षा नहीं की है।[७] इन दोनों अलंकारों में कवि की वस्तु और काल विषयक सहानुभूति स्वयं अलंकृत हो उठती है। इसके अतिरिक्त काव्य-शास्त्र में कुछ और भी संकेत हैं जिनमें कवि के भावात्मक (मनस्-परक) अनुभूति-पक्ष का समन्वय पाया जाता है। कदाचित् डा० डे ने इस ओर ध्यान दिया नहीं। भामह ने 'वक्रोक्ति' अथवा 'अतिशयोक्ति' को अलंकार का प्रयोजन माना था, कुन्तल ने इसी आधार पर वक्रोक्ति के सिद्धान्त को अधिक विकसित रूप दिया है। 'अतिशय' और 'वक्रत्व' में जो वैचित्र्य और विच्छित्ति (सौन्दर्य) का रूप है, उसमें बहुत कुछ कवि की मनःस्थिति, उसके अनुभूति-पक्ष का संयोग है।[८] अभिव्यक्ति के सौन्दर्य या वैचित्र्य के स्रोत की ओर ध्यान देने से उनके सामने कवि का अनुभूति-पक्ष अवश्य प्रत्यक्ष हो जाता। यह लोकोत्तर चमत्कार का वैचित्र्य जो रस-सिद्धान्त में काव्य-रसिकों के सम्वेदक प्रभाव के रूप में स्वीकृत

७. यद्यपि डा० डे के अनुसार भामह 'स्वाभावोक्ति' को नहीं मानते, परन्तु डा० राघवन,

स्वभावोक्तिरलङ्कार इति केचित्प्रचक्षते ।
अर्थस्य तदवस्थत्वं स्वभावोऽभिहितो यथा ॥ (२; ९३)

के 'केचित्प्रचक्षते' से यह नहीं स्वीकार करते कि भामह इसे अलंकार ही नहीं मानते। अन्य काव्यशास्त्रियों ने वार्ता और जाति का उल्लेख इसी के समान किया है। भामह 'भाविक' को भी 'प्रबन्धगुण' मानकर अलंकार कहते हैं,—

भाविकत्वमिति प्राहुः प्रबन्धविषयं गुणम् ।
प्रत्यक्षा इव दृश्यन्ते यत्रार्था भूतभाविनः । (३, ५२)

८. वक्रोक्तिजीवित; प्र०, ३—

लोकोत्तरचमत्कारकारिवैचित्र्यसिद्धये ।
काव्यस्यायमलङ्कारः कोऽप्यपूर्वो विधीयते ॥

हुआ है, इस प्रकार कुंतल द्वारा विचारकर भी छोड़ दिया गया है। और फिर वह 'वैदग्ध्यभङ्गीभणितिः' मात्र रह गया।[९] इसी आधार पर कदाचित् आगे चलकर समस्त आलंकारिक दूर की सूझ का विकास हुआ। परन्तु इन काव्य-शास्त्रियों का वैचित्र्य और विच्छित्ति सम्बंधी उल्लेख स्वयं इस बात का साक्षी है कि उन्होंने कवि और कलाकार की अनुभूतिशील मनःस्थिति की एकांत उपेक्षा नहीं की है।

काव्य-प्रतिभा

क—इसके साथ कवि की व्यक्तिगत प्रतिभा का उल्लेख किया जा सकता है। लगभग सभी आचार्यों ने काव्य-सर्जन के लिए कवि-प्रतिभा को आवश्यक माना है। भामह और दण्डी इसे 'नैसर्गिक' कहते हैं और सहज मानते हैं। मम्मट इसी के लिए अधिक व्यापक 'शक्ति' शब्द का प्रयोग करते हैं। अभिनव इसको 'नवनिर्माणशालिनि प्रज्ञा' कहते हैं जो भाव-चित्र और सौन्दर्य-सर्जन में कुशल होती है। आचार्य भरत ने इसको कवि की आंतरिक भावुकता 'अंतर्गत भाव' के रूप में स्वीकार किया है।[१०] इस प्रतिभा के अन्तर्गत कवि की मनःस्थिति आ जाती है। कवि प्रतिभा के माध्यम से अनुभूतियों के आधार पर सादृश्य-भावना की काल्पनिक अभिव्यक्ति करता है। परंतु आचार्यों ने 'प्रतिभा' को अनुभूति से अधिक 'प्रज्ञा' के निकट समझा है। इस प्रकार अभिव्यक्ति के विषय को निर्माण के रूप में स्वीकार किया गया है, प्रज्ञा शब्द इसका साक्षी है। भरत का 'अन्तर्गत भाव' 'कवि प्रतिभा' के मानसिक पक्ष की अनुभूति से निकटतम है। इस प्रकार संस्कृत आचार्यों को काव्य के अनुभूति-पक्ष

९. वक्रोक्तिजीवित; कुन्तल (प्र०, ११)—

उभावेतावलङ्कार्यौ तयोः पुनरलङ्कृतिः।
वक्रोक्तिरेव वैदग्ध्यभङ्गीभणितिरुच्यते॥

१०. भामह; काव्यालंकार (१, ५) : दण्डी; काव्यादर्श (१, १०३–४) : वामन; काव्यालंकारसूत्रवृत्ति (१३; १६) : अभिनव; लोचन, (प्र० २९) : भरत; नाट्यशास्त्र (५, ११२)

का भान अवश्य था, परन्तु अपनी आदर्श-भावना तथा विश्लेषण की प्रवृत्ति के कारण उन्होंने उसकी उपेक्षा की है। फलस्वरूप संस्कृत साहित्य में न तो भावात्मक (मनस्-परक) गीतियों का विकास हो सका और न प्रकृतिवाद की उन्मुक्त-भावना को स्थान मिल सका। शास्त्रीय ग्रन्थों के प्रभाव के पूर्व के काव्यों में ये प्रवृत्तियाँ किसी सीमा तक मिल जाती हैं, परन्तु बाद के काव्यों में इनका नितांत अभाव है।

शब्द और अर्थ

§ ६—संस्कृत आचार्यों की काव्य-सम्बन्धी समस्त परिभाषाएँ अपने-अपने दृष्टिबिन्दु में प्रमुखतः चार भागों में विभाजित की जा सकती हैं। शब्द और अर्थयुक्त विशिष्टार्थ पदावली का अलंकृत प्रयोग काव्य माना गया है। काव्य की आत्मा के रूप में रीति और गुण को स्वीकार किया गया है। ध्वनि को ही उत्तम काव्य कहा गया है, और अंत में रस को काव्य का चरम लक्ष्य स्वीकार किया गया है। इनमें प्रथम दो का दृष्टिबिन्दु अभिव्यक्ति की शैली पर केन्द्रित है और अन्य दो का अभिव्यक्ति के प्रभाव पर। वस्तुतः इनमें ऊपर से भेद दृष्टिगत होता है, नहीं तो एक दूसरे का अन्तर्भाव सभी में मिलता है। जैसा पहले ही कहा गया है कि कवि की अनुभूति-पक्ष का इनमें समन्वय नहीं हो सका है। वास्तव में काव्य में अभिव्यक्ति अधिक व्यक्त तथा प्रत्यक्ष रहती है, और इसी के माध्यम से कवि की अनुभूति और पाठक की प्रभावात्मक सम्वेदना का समन्वय होता है। कदाचित् इसीलिए काव्य-शास्त्रियों का ध्यान विशेष रूप से अभिव्यक्ति पर केन्द्रित रहा है। भारतीय काव्य-शास्त्रियों ने अलंकार में सौन्दर्य को काव्याभिव्यक्ति के रूप में स्वीकार किया है; ध्वनि के विस्तार में काव्य का समस्त रूप अभिव्यक्ति में आ जाता है। रस-सिद्धान्त के अन्तर्गत 'शब्द' तथा 'वाक्य' की स्वीकृति में काव्य के अभिव्यक्त-पक्ष को स्वीकार किया

अभिव्यक्ति-पक्ष

गया है। और रीति काव्य की अभिव्यक्ति का स्वरूप है।[११] परन्तु 'शब्द और अर्थ' के जिस व्यापक धरातल पर ये परिभाषाएँ प्रस्तुत की गई हैं, वे रूप और भाव के प्रतीक हैं। रूप में भाव पूर्व सिद्धि है और अभिव्यक्ति का परिणाम भी। मेघ में जल पूर्व रूप है और परिणाम रूप भी। भाषा के प्रत्येक शब्द में बहिर्जगत् की एक वस्तुस्थिति और परिस्थिति का प्रतीक चित्र सन्निहित है। मनस के चित्र शब्दमय हैं जो अभिव्यक्ति के उपकरणों से दूसरों के मन पर प्रतिबिम्बित होते हैं। यही अर्थ की व्यंजना भावशीलता का शरीर है; शरीर के बिना प्राणों का अस्तित्व नहीं रह सकता। इसी दृष्टि से पहले आचार्यों ने भाव पर अधिक ध्यान नहीं दिया, बाद में ध्वनि और रसवादियों ने भाव को महत्त्व दिया, क्योंकि शरीर की बात ही सोचने से स्थूलवादी हो जाने का भय था।

शब्द का भावरूप

§ ७—काव्य के जिस मनस्-परक अनुभूति-पक्ष का उल्लेख पिछले अनुच्छेदों में किया गया है, उसका समन्वय 'शब्द और अर्थ' के व्यापक विस्तार में हो जाता है। और कवि की अनुभूति के आधार (आलम्बन) के रूप में बाह्य-प्रकृति का सारा सौन्दर्य्य 'शब्द' के ध्वन्यात्मक प्रतीकों में सन्निहित होकर अर्थ में अभिव्यक्त हो जाता है। विश्वनाथ के अनुसार 'वाक्य' ही रसात्मक (सौन्दर्य्य-व्यंजक) है और पंडितराज जगन्नाथ भी 'रमणीयार्थ' के प्रतिपादक 'शब्द' को मानते हैं। आचार्यों ने अलंकारों के सौन्दर्य्य-

---

११. वामन ; अलंकारसूत्र (प्र० १, २) 'काव्यं खलु ग्राह्यमलङ्कारात्' और 'सौन्दर्यमलङ्कारः' आनन्दवर्धनाचार्य ; ध्वन्यालोक (प्र०) 'काव्यस्यात्मा ध्वनिरिति': विश्वनाथ ; साहित्यदर्पण (प्र०, ३) 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्': पंडितराज जगन्नाथ ; रसगंगाधर (प्र०) रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्।': वामन ; काव्यालंकारसूत्र (प्र०, ६) 'रीतिरात्मा काव्यस्य'।

धर्म को 'शब्दार्थयोरस्थिरा' माना है।[१२] काव्य की अभिव्यक्ति में 'शब्द' भाव के रूपात्मक प्रतीक हैं। ये शब्द ध्वनि के आधार पर भाव-रूप धारण करते हैं। शब्द में अर्थ (भाव-रूप) का संयोग एक प्रकार की अभिव्यक्ति है। संस्कृत के आचार्यों ने 'शब्दार्थ' को काव्य का रूप स्वीकार करके इसी बात का संकेत दिया है। शब्द में सन्निहित भावबिम्ब एक ओर परप्रत्यक्ष का रूप ग्रहण करता है, जिसमें वस्तु (प्रकृति) के रूप का आलम्बन भी सम्मिलित रहता है। परन्तु ये परप्रत्यक्ष रूप अभिव्यक्ति के माध्यम में ध्वनि (शब्द) बिम्ब ग्रहण करते हैं। आज यह कहना तो कठिन है कि विकास के पथ पर भाषा अपने भावात्मक रूप में कब कल्पना-रूपों से हिल-मिल गई। भाषा के शब्दों में परप्रत्यक्ष उसकी भावमयी कल्पना में अपना आधार ढूँढ़ते हुए वस्तु और परिस्थिति (प्रकृति) के साथ उपस्थित होते हैं। इसी प्रकार भाषा के वस्तु-रूपों (शब्दों) में भावात्मक अनुभूति का संयोग भी प्रारम्भ से हुआ है। भाषा के रूप (शब्द) के साथ वस्तु के रूप (प्रकृति) की स्थिति सरल और सुरक्षित है—पुष्प कहने के साथ उसके रूप का बोध हो जाता है। भाषा में भावक-शक्ति के स्थान पर विचार-शक्ति विकसित होती गई है। प्रारम्भ में प्रत्यक्ष-बोध का जो प्रभाव 'पुष्प' या 'वृक्ष' शब्द के साथ सम्मिलित था, वह रूप से अलग होता गया। अब हमें प्रकृति के स्वानुभूत चित्रों को अभिव्यक्त करने के लिए व्यंजना के माध्यम से अन्य संयोगों का आश्रय लेना पड़ता है। फिर आज भी समस्त काव्याभिव्यक्ति का आधार 'शब्द' का 'अर्थ' है, केवल उनके प्रतीकात्मक चयन, प्रभावात्मक प्रयोग की सतर्कता कवि के लिए अनिवार्य है।

§ ८—'शब्द' में मानसिक भाव-बिम्ब के अतिरिक्त ध्वनि-बिम्ब भी होता

---

१२. विश्वनाथ : साहित्य-दर्पण (   )

शब्दार्थयोरस्थिरा ये धर्माः शोभाऽतिशायिनः।
रसादीनुपकुर्वन्त्यलङ्कारास्तेऽङ्गदादिवत्॥

है, और इस ध्वनि-बिम्ब का अभिव्यक्ति में महत्वपूर्ण स्थान है। कार-लाइल के अनुसार काव्य वस्तुओं की अन्तःप्रवृत्ति (प्रकृति) की अनुभूति पाने वाले मानस के संगीतात्मक विचार की अभिव्यक्ति है। शब्द लिखित रूप में प्रत्यक्ष-बोध के आधार पर रूप तथा ध्वनि दोनों प्रकार से हमारे सामने आता है। और शब्द के इस ध्वनि से सम्बंधित अर्थ में वस्तु रूप के साथ भाव बिम्ब सन्निहित रहता है। इसी कारण ध्वनि का प्रयोग लगभग व्यंजना के अर्थ में होता है और शब्द के अर्थ का आधार होने के कारण, ध्वनि का काव्य से सम्बंधित गुण और रीति के सिद्धान्तों में प्रमुख स्थान रहा है। शब्द के ध्वन्यात्मक प्रयोग के लिए आवश्यक है, यह ध्वनि-बिम्ब वस्तु के आधार (प्रकृति के विस्तार) पर परप्रत्यक्ष के साथ भावज्ञता का संयोग स्थापित कर सके। छंद के मूल में ध्वनि की गति और लय का मानसिक तादात्म्य सन्निहित है। इस प्रकार भावरूप तथा ध्वनि-बिम्ब का शब्दार्थ में सामञ्जस्य रहता है। परंतु काव्य में शब्द के माध्यम से रूप और अर्थ की अभिव्यक्ति का समन्वय अधिक महत्त्वपूर्ण होता है। सामञ्जस्य की कलात्मक व्यंजना ही काव्य का सौन्दर्य्य है।

शब्द का ध्वनि-बिम्ब

§ ९—समस्त ध्वनि-काव्य में इस सौन्दर्य्य की व्यंजना रहती है, पर आलंकारिक शैली में भी इस प्रकार की सौन्दर्य्य कल्पना है।[13] प्रथम आचार्यों ने काव्य में अलंकारों को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। उन्होंने 'शब्दार्थ' में अभिव्यक्त सौन्दर्य के रूप में अलंकार को समझा था। काव्य-रूप की सम्पूर्ण व्याख्या में अलंकार का स्थान गौण हो सकता है, परंतु सौन्दर्य्य की अभिव्यक्ति के रूप में इसकी महत्त्वपूर्ण विवेचना हुई है। अलंकारों की व्याख्या अधिकांश आचार्यों ने 'काव्यशोभाकरान् धर्मान्' के रूप में स्वीकार की है। साहित्य-दर्पणकार ने इसको और भी स्पष्ट करने का प्रयास किया है,

अलंकार

१३. दण्डी : काव्यादर्श (द्वि०)—काव्यशोभाकरान् धर्मानलङ्कारान्प्रक्षते।

और इनको शरीर पर धारण किए जाने वाले आभूषणों के समान कहा है। काव्य में ध्वनि और व्यजना, रस और भाव अभिव्यक्ति से अलग नहीं किए जा सकते; फिर आचार्यों ने अलंकार को काव्य का शरीर भी स्वीकार न कर 'आभूषण' मात्र क्यों कहा है? यद्यपि यह भी माना गया है कि अलंकार के प्रयोग पर बहुत कुछ निर्भर है। आनन्दवर्धनाचार्य के ध्वनि-सिद्धान्त के अनुसार अलंकार संलक्ष्यक्रम और गुणीभूत व्यंग के अन्तर्गत प्रधान हो जाते हैं; उस समय वे ध्वनि के अंग-रूप माने जाते हैं।[१४] क्षेमेन्द्र ने 'औचित्य' के अंतर्गत अलंकारों के प्रयोग पर विचार किया है और उनको अर्थ-सौन्दर्य के बढ़ाने वाले स्वीकार किया है। ध्वनि और रस का व्यंजित भाव संयोगों से अधिक सम्बंध है, जब कि अलंकार वस्तु के (प्रकृति) रूप-गुण के साम्य का आधार ढूँढ कर अधिक चलता है।

उपमान

क—'अलंकार' को अभिव्यक्ति का सौन्दर्य-साधन स्वीकार करने पर विदित होता है कि इसकी समस्त सौन्दर्य-कल्पना प्रकृति के उपमानों की योजना पर निर्भर है। प्रकृति के फैले हुए सौन्दर्य से कवि विरोध या संयोग द्वारा नाना उपमान-रूपों को ग्रहण कर अपने काव्य को सजाता है और वर्णित भावों को रस के स्तर तक पहुँचाता है। इस प्रकार पहले आचार्यों ने प्रकृति के उपमानों को अलंकारों द्वारा सौन्दर्यमयी अभिव्यक्ति का साधन माना था। परन्तु क्रमशः आचार्यों की दृष्टि से अलंकारों का सौन्दर्य भाव हटता गया, और वे शरीर के आभूषण मात्र समझे जाने लगे। इस प्रवृत्ति के फलस्वरूप अलंकारों में उक्ति-वैचित्र्य ने ऊहात्मकता का आश्रय लेना आरम्भ किया, और अलंकारों का प्रयोग प्रकृति के सुन्दर उपमानों

---

१४. आनन्दवर्धनाचार्य : ध्वन्यालोक (२; २८)
शरीरीकरणं येषां वाच्यत्वे न व्यवस्थितम् ।
तेऽलङ्काराः परां छाया यान्ति ध्वन्यङ्गतां गताः ॥

से हट कर जादूगरी का चकित करनेवाला खेल रह गया। जैसा ऊपर उल्लेख किया गया है, अलंकारों के उपमानों का सौन्दर्य-बोध शब्दों के भाव-रूप और ध्वनि-बिम्ब के माध्यम से अर्थ में व्यंजित होता है।

रस-सिद्धान्त

§१०—आगे चल कर ध्वनि के अन्तर्गत रस सिद्धान्त ने अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बना लिता है। भरत के 'नाट्य-शास्त्र' में रस-सिद्धान्त का उल्लेख हो चुका था, परंतु काव्य के क्षेत्र में इसको स्वीकृति बाद में मिल सकी। भामह और दण्डी ने 'रस' को अलंकार के रूप में स्वीकार किया है और वामन ने इसे 'कांतगुण' के अंतर्गत रखा है। उद्भट ने सबसे पहले 'रस' को विभाव, अनुभाव और संचारी में पूर्ण विकसित किया और भरत के आठ रसों में नवाँ शांत-रस सम्मिलित किया है। परंतु यह सारी विवेचना अलंकारों के अन्तर्गत हुई। रुद्रट ने चार अध्यायों में रस का साँगोपाँग वर्णन किया है, परंतु स्पष्ट रूप से यह नहीं बताया है कि उनके सिद्धान्तों में रस का क्या स्थान है। बाद में ध्वनिवादियों ने रस को ध्वनि के अन्तर्गत असंलक्ष्यक्रम व्यंग में स्थान दिया और इसके पश्चात् रस-सिद्धान्त का स्वतंत्र विकास हुआ है।

रस की स्थापना

क—काव्य में आनन्द की भावना सन्निहित है; पर वह सुख का रूप नहीं माना जा सकता। सुख-संवेदनावादी सौन्दर्य्य-शास्त्रियों ने सौन्दर्य्य-बोध को जिस प्रकार इन्द्रिय-संवेदनाओं से सम्बंधित किया है, उसी प्रकार की गलती कुछ विद्वानों ने काव्य की व्याख्या करने में की है। अभिव्यक्ति में जो आनन्द प्राप्त होता है, वह केवल भावों के आधार पर उत्पन्न नहीं माना जा सकता। यह आनन्द-स्थिति अनुभूति की व्यंजना की चमत्कृत भावना से सम्बंधित है। परंतु काव्य और कला के क्षेत्र में 'आनन्द' का आदर्श समान रूप से लागू नहीं है, क्योंकि इसमें विभिन्न स्तरों पर विभिन्न रूप हो सकते हैं।

रसानुभूति

विकास की मनःस्थितियों के साथ सौन्दर्य-भाव विभिन्न आधार पर स्थिर है, और यही परिस्थिति काव्य के विषय में समझी जा सकती है।[१५] भारतीय काव्य-शास्त्र के अन्तर्गत रस-सिद्धान्त में काव्य के इस आनन्द को भावों के आधार पर समझा गया है। यह काव्य के संवेनात्मक प्रभाव-पक्ष की व्याख्या कहा जा सकता है; पर इसके आधार पर काव्य की पूर्ण व्याख्या नहीं की जा सकती। इसी कारण ध्वनिवादियों ने इसको असंलक्ष्यक्रम-व्यंग के रूप में स्वीकार किया है। काव्य केवल साधारण मानवीय मनोभावों के आधार पर नहीं समझा जा सकता।

काव्यानन्द

ख—वास्तव में 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' को माननेवाले रसवादियों की दृष्टि विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भावों से व्यक्त स्थायी भाव रूप रस में सीमित नहीं है।[१६] इस परिभाषा का पूर्ण विकास रस-निष्पत्ति की आनन्दमयी सम-स्थिति में समझा जा सकता है। इस स्थिति में रस कवि और रसिक दोनों की मानसिक असाधारण स्थिति से सम्बंधित है। रस-सिद्धान्त की व्याख्या करनेवाले आचार्यों ने प्रारम्भ में काव्यानुभूति तथा भावों को एक ही धरातल पर समझने की भूल की है। बाद में रस को अलौकिक कहकर उसे साधारण भावों से अलग स्वीकार किया गया है। परन्तु रसों का स्थायी भावों के आधार पर किया गया वर्गीकरण दोषपूर्ण है, उसमें अलौकिकता की बात भुला दी गई है। इस वर्गीकरण में वासना के साधारणीकृत रूप को रस समझा गया है। सामाजिकों के हृदय में स्थायी भावों की स्थिति ठीक है; विभाव, अनुभाव तथा संचारियों के

---

१५. लेखक की पुस्तक 'प्रकृति और हिन्दी काव्य'; प्रथम भाग; चतुर्थ प्रकरण द्रष्टव्य है।

१६. मम्मट; काव्यप्रकाश; च०, २८; — व्यक्तः स तैर्विभावाद्यैः स्थायी-भावो रसः स्मृत

द्वारा उसकी एक साधारणीकृत स्थिति का बोध भी होता है। एक स्तर पर मानसिक भाव-संयोग के द्वारा सुखानुभूति सम्भव है; परन्तु काव्यानन्द के स्तर पर सौन्दर्य्याभिव्यक्ति ही आनन्द का विषय हो सकता है। इस भाव-स्थिति में स्थायी-भावों का आधार केवल साहचर्य्य-भावना का सूक्ष्म रूप माना जा सकता है। रस के व्याख्या-क्रम में ये सभी स्थितियाँ मिल जाती हैं। प्रारम्भिक स्थिति में 'रस' का सिद्धान्त आरोप वाद और अनुमानवाद में सुखानुभूति की आत्म-तुष्टि के रूप में समझा गया है। बाद में भोगवाद और व्यक्तिवाद में आत्म-तुष्टि अधिक स्पष्ट है, पर इसके साथ ही साधारणीकरण की स्वीकृति में साहचर्य्य-भाव का रूप आ जाता है।[१७] इसी आधार पर व्यक्तिवाद की अभिव्यक्ति में सौन्दर्य्य-व्यंजना की स्थापना हुई है।

शांत और सौन्दर्य्य-भाव

§११—भरत ने रस-निष्पत्ति के लिए स्थायी-भाव के साथ विभाव, अनुभाव और संचारियों का संयोग माना है, पर रस-निष्पत्ति की स्थिति में आनन्द इन सबसे सम्बंधित नहीं रहता, वह तो अपनी समस्त विभिन्नता में एक है, अलौकिक है। इसके अतिरिक्त स्थायी भावों की संख्या इतनी निश्चित नहीं कही जा सकती। आवश्यक नहीं है कि संचारियों की अभिव्यक्ति अपनी पूर्णता में रसाभास मात्र रहे, और काव्यानन्द के स्तर को न पा सके। शांत और सौन्दर्य्य भाव मानव के हृदय में इस प्रकार स्थिर हो चुके हैं कि इनको अस्वीकार नहीं किया जा सकता। यदि

१७. भट्ट लोल्लट के आरोपवाद में पात्र के साथ सामाजिक अपना आरोप कर लेता है, जिस प्रकार नट पात्र में। श्री शङ्कुक के अनुमानवाद में भ्रम को अस्वीकार करके अनुमान की स्थापना हुई। भट्टनायक प्रत्यक्ष-ज्ञान से रसास्वादन मानते हैं और शब्द में भोग-व्यापार और साधारणीकरण को प्रतिपादित करते हैं। अभिनवगुप्त ने शब्द की व्यंजना-शक्ति से ही रस-निष्पत्ति का साधारणीकरण व्यापार स्वीकार किया है।

तात्त्विक दृष्टि से विचार किया जाय तो ये रति और शम-निर्वेद के अन्तर्गत नहीं आते। सौन्दर्य-भाव और शांत-भाव मन की वह निर्पेक्ष स्थिति है जो स्वयं में पूर्ण आनन्द है। वस्तुतः अन्य भाव भी रस-निष्पत्ति की स्थिति में इसी धरातल पर आजाते हैं, आ सकते हैं। इस धरातल पर मनःस्थिति की निर्पेक्षता आनन्द का विषय हो जाती है। यह एक प्रकार के भाव सौन्दर्य पर सम्भव है, और इन भावों के आलंबन-रूप में प्रकृति का बिखरा हुआ राशि-राशि सौन्दर्य है। इस आलंबन का आश्रय कवि का मन स्वयं है और जो काव्य-रसिक में अध्यन्तरित हो जाता है। इस प्रकार शांत और सौन्दर्य के आलंबन में प्रकृति का व्यापक विस्तार है। संस्कृत आचार्यों ने इन भावों को स्थायी-भाव स्वीकार नहीं किया, परिणाम स्वरूप वे प्रकृति को आलंबन रूप भी नहीं दे सके।

क—परंतु प्रकृति को उद्दीपन-मात्र मानने के सिद्धान्त में आधार रूप से सत्य का अंश है। भारतीय दर्शन की एक परम्परा में प्रकृति को पुरुष के प्रतिबिम्ब के साथ गतिशील होना पड़ता है; उसी प्रकार मानव अपने दृष्टिकोण से प्रकृति को सदा मानसिक चेतना से प्रभावित स्वीकार करता है।

आलंब-रूप की उपेक्षा

मानव की रूप चेतना सामाजिक चेतना के साथ सम्बंधित है, वह उसका एक अंग है। इसी कारण उसके जीवन में प्रकृति भावों के उद्दीपन के रूप में लगती है। अधिकतर हम किसी भाव-शून्य स्थिति में प्रकृति के सम्पर्क में नहीं आते। इस विचार शैली के अनुसार, जब हम प्रकृति को आलंबन-रूप में ग्रहण करते हैं, उस समय भी हमारी मनःस्थिति सूक्ष्मरूप से किसी न किसी भाव से सम्बंधित रहती है। यह भाव-स्थिति हमारे अंतःकरण में सौन्दर्य और शांत के स्थायी-भाव के रूप में स्थिर हो सकती है। पर इधर आचार्यों ने सौन्दर्य को रति के साथ इतना अधिक सम्बंधित कर दिया है कि शृंगार रसराज बन गया। परिणाम-स्वरूप तप्रिकृ की समस्त सौन्दर्य भावना रति-भाव के उद्दीपन-विभाव में समा

गई। सामाजिक विकास की स्थिति में हमारा वातावरण मानवीय सम्पर्क से इतना सघन हो उठा है कि इसमें भावों के आलंबन के लिए मानवीय सम्बंध ही अधिक प्रत्यक्ष हो उठता है। आलंबन रूप में प्रकृति की उपेक्षा का एक कारण यह भी है।

§१२—रस-निष्पत्ति में स्थायी-भाव के साथ विभाव, अनुभाव और संचारियों की स्वीकृति सभी परवर्ती आचार्यों ने दी है। निष्पत्ति के विषय में कतिपय सिद्धान्त होते हुए भी इस विषय में वे एक मत हैं। विभाव के अन्तर्गत उद्दीपन-विभाव का रूप आता है,—

उद्दीपन-विभाव

विभावः कथ्येत तत्र रसोत्पादनकारणम्।
आलम्बनोद्दीपनात्मा स द्विधा परिकीर्त्यते ॥[१८]

[वहाँ रसोत्पादन का कारण विभाव कहा जाता है, और वह आलंबन तथा उद्दीपन के रूप में दो प्रकार से उल्लिखित होता है।] कुछ आचार्यों ने चार प्रकार के उद्दीपनों में प्रकृति-रूपों को तटस्थ के अन्तर्गत रखा है,—

उद्दीपनं चतुर्धा स्यादालम्बनसमाश्रयम्।
गुणचेष्टालङ्कृतयस्तटस्थाश्चेति भेदतः ॥[१९]

[आलंबन को भली भाँति आश्रय देनेवाला, भेद से गुण, चेष्टा, अलंकृति तथा तटस्थ चार प्रकार का, उद्दीपन होता है] और फिर तटस्थ के अन्तर्गत प्रकृति के कुछ उपकरणों को गिनाया गया है।[२०] इस

---

१८. श्री विद्यानाथ ; प्रतापरुद्रयशोभूषण ; रसप्रकरण, पृ० २१२।

१९. श्री शिङ्गभूपाल : रसार्णवसार ; प्र० १६२।

२०. वही; वही ; प्र० १८८—८९,—

तटस्थाश्चन्द्रिकाधारागृहचन्द्रोदयावपि।
कोकिलालापमाकन्दमन्दमारुतषट्पदाः ॥
लतामण्डपभूगेहदीर्घिकाजलदारवाः।
प्रासादगर्भसङ्गीतक्रीडाद्रिसरिदादयः ॥

प्रकार प्रकृति के विषय में इन आचार्यों का बहुत संकुचित दृष्टिकोण रहा है। आगे हम देखेंगे कि शिक्षा-ग्रन्थों में इन वर्णनों के सम्बंध में निर्देश किया गया है कि किसी विशेष प्रकृति-रूप के वर्णन में किन-किन वस्तुओं का उल्लेख आवश्यक है। इस प्रकार प्रकृति-वर्णन उद्दीपन के साथ रूढ़ि का विषय भी बनता गया।

§१३—आचार्यों ने रस के प्रसंग में प्रकृति पर मानवीय भावनाओं तथा क्रियाकलापों के आरोप के विषय में विचार किया है। प्रकृति के जड़ या चेतन स्वरूपों पर इस प्रकार के आरोपों को वे शुद्ध रस के अन्तर्गत नहीं स्वीकार करते। इन स्थितियों को वे रसाभास और भावाभास मानते हैं। आरोप के दृष्टिबिन्दु के कारण वे ऐसा मानते हैं। प्रकृति के जड़-चेतन जगत् में स्वानुभव का संकेत नहीं मिलता और प्रकृति पर मानवीय भावों का आरोप हमारे अन्तःकरण में स्थित स्थायी-भावों से सम्बंधित है। यदि प्रकृति में इन भावों को ग्रहण करने के लिए समानान्तरता न होती, तो यह बात ठीक थी। ऐसी स्थिति में अभिव्यक्ति का पूरा आनन्द मिलना कठिन था। परंतु जब प्रकृति का आरोप वर्णना को अधिक चमत्कृत स्थिति तक पहुँचा देता है, उस समय रसास्वादन के सम्बंध में 'आभास' का प्रश्न नहीं उठता। हम कह आये हैं कि रस-निष्पत्ति के धरातल पर काव्यानुभूति भाव न रहकर रस हो जाती है। कदाचित् इस प्रकार का स्तर-भेद विश्लेषण की प्रवृत्ति का परिणाम है।

आरोप

क—हेमचन्द्र ने अपने काव्यानुशासन में इन आरोपों पर विस्तार से विचार किया है। उनके अनुसार—"निरिन्द्रियेषु तिर्यगादिषु चारोपाद्रसभावाभासौ।" [इन्द्रियहीन जड़ तथा पशु-पक्षियों पर आरोप (मानवीय भावों के) करने से रसाभास और भावाभास होता है।] स्वीकृत है। इसके बाद इन्होंने निरिन्द्रियों तथा तिर्यकों में सम्भोग और विप्रलम्भ का आरोप मानकर विस्तार से विभाजन किया है। निरिन्द्रियों पर सम्भोग

रसाभास और भावाभास

के आरोपण से सम्भोगाभास (रसाभास) का उदाहरण वे इस प्रकार देते हैं—

पर्याप्तपुष्पस्तबकस्तनीभ्यः स्फुरत्प्रवालोष्ठमनोहराभ्यः ।
लताःवधूभ्यस्तरवोऽप्यवापुर्विनम्रशाखाभुजबन्धनानि ॥

[तरु भी अपनी झुकी हुई शाखाओं के भुजबन्धनों से, पर्याप्त पुष्पों के गुच्छों के रूप में स्तनवाली तथा चंचल पल्लवों के रूप में सुन्दर ओष्ठ-वाली लता वधू (जिसके स्तन लटक रहे हैं और ओंठ चंचल हैं) से आलिंगन करने लगे ।] इसी प्रकार तिर्यकों के संभोगाभास (रसाभास) का उदाहरण है—

मधु द्विरेफः कुसुमैकपात्रे पपौ प्रियां स्वामनुवर्तमानः ।
शृङ्गेण संस्पर्शनिमीलिताक्षीं मृगीमकण्डूयत कृष्णसारः ॥

[भ्रमर अपनी प्रिया (भ्रमरी) का अनुसरण करता हुआ कुसुम के एक ही पात्र में मकरन्द पान (आसव पान) करने लगा । कृष्णसार स्पर्श-सुख से बन्द नेत्रोंवाली हरणी को अपने सींग से खुजाने लगा ।] विप्रलम्भ के आरोप से फिर निरिन्द्रिय और तिर्यक सम्बंधी विप्रलम्भाभास होता है । सरिता पर वियोगिनी का आरोप इस प्रकार कवि करता है—

वेणीभूतप्रतनुसलिला ताम्यती तस्य सिन्धुः
पाण्डुच्छायातटरुहतरुभ्रंशिभिः शीर्णपर्णैः ।
सौभाग्यं ते सुभग विरहावस्थया व्यञ्जयन्ती
कार्श्यं येन त्यजति विधिना स त्वयैवोपपाद्यः ॥

[पतला प्रवाह जिसकी वेणी हो गया है, तट पर, स्थित वृक्षों से गिरे हुए पुराने पत्तों से पाण्डु हुई, बीते हुए सौभाग्य को अपनी विरहावस्था से व्यंजित करनेवाली वह सरिता जिस विधि से अपनी दुर्बलता त्यागे हे सुन्दर मेघ वही तुम करना ।] पशु-पक्षी सम्बंधी विप्रलम्भ शृंगार का आभास इस प्रकार आरोप में व्यंजित होता है—

आपृष्टासि व्यथयति मनो दुर्बला वासरश्री
रेह्यालिङ्ग क्षपय रजनीमेकिका चक्रवाकि ।

नान्यासक्तो न खलु कुपितो नानुरागच्युतो वा.
दैवासक्तस्तदिह भवतीमस्वतन्त्रस्त्यजामि ॥

इसी प्रकार भावाभास का वर्गीकरण किया गया है। निरिन्द्रिय में आरोपित भावाभास का उदाहरण—

गुरुगर्भभरक्लान्ताः स्तनन्त्यो मेघपङ्क्तयः ।
अचलाधित्यकोत्सङ्गमिमाः समधिशेरते ॥

[गुरु गर्भ के भार से क्लान्त गर्जन करती हुई ये मेघ पंक्तियाँ पर्वत की गोद में विश्राम करती हैं ।] पशु पर आरोपित भावाभास का उदाहरण हेमचन्द्र इस प्रकार देते हैं—

त्वत्कटाक्षावलीलीलां विलोक्य सहसा प्रिये ।
वनं प्रयात्यसौ व्रीडाजडदृष्टिमृगीजनः ॥

[हे प्रिये, तुम्हारे चंचल कटाक्षों को सहसा देखकर लज्जा से स्तम्भित दृष्टिवाली मृगियों का समूह वन को चला गया ।] [२१] इस प्रकार का वर्गीकरण श्रीशिङ्ग भूपाल ने 'रसार्णव' में किया है । संस्कृत के सभी काव्याचार्यों का मत इस विषय में लगभग समान है ।

कवि-शिक्षा

१४—प्रकृति के विषय में आचार्यों के विशिष्ट दृष्टिबिन्दु और रूढ़िवादिता के फलस्वरूप शास्त्रीय ग्रन्थों के सूक्ष्म विवेचन के साथ कवि-शिक्षा ग्रंथों का भी निर्माण हुआ । इस प्रकार के आचार्यों में क्षेमेन्द्र, राजशेखर, हेमचन्द्र और वाग्भट्ट प्रमुख हैं । इनके शिक्षा-ग्रंथों में काव्य-विषयक शिक्षाएँ हैं और विभिन्न पूर्ववर्ती काव्यों के आधार पर लिखे गए हैं । इनमें अन्यान्य अनेक शिक्षाओं

देश और काल

२१. हेमचन्द्र ; काव्यानुशासन ; अध्या० २, में इसका वर्गीकरण दिया गया है ।

के साथ प्रकृति-चित्रण के सम्बन्ध में भी काव्य-परम्पराओं का उल्लेख किया गया है। कवि के लिए इन वर्गीकरणों और परम्पराओं से परिचित होना आवश्यक समझा गया है; और इनको 'कवि समय' कहा गया है। 'कवि-समय' में प्रकृति वर्णन की परम्पराओं का उल्लेख है; पर इनके अतिरिक्त इन ग्रंथों में देश-काल की शिक्षा दी गई है। इनमें किस देश में किन-किन प्रकृति उपकरणों का वर्णन आवश्यक है यह बताया गया है; और काल विशेष में किन-किन वस्तुओं का उल्लेख आवश्यक है यह गिनाया गया है।[२२] इनमें प्रकृति के रूपों का नहीं वरन् उसके वर्णन की परम्पराओं का विभाजन है। इनसे काव्य और प्रकृति के सीधे सम्पर्क पर किसी प्रकार प्रकाश नहीं पड़ता। परन्तु इस प्रकार के विभाजन से प्रकृति के आदर्श की रूप-रेखा सम्मुख अवश्य आती है; और यह भी विदित हो जाता है कि जो प्रकृति का प्रसार कल्पना का उन्मुक्त विषय था वह शिक्षा द्वारा रूढ़ि मात्र का पालन रह गया था।

कवि-समय

१५—राजशेखर की काव्यमीमांसा में 'कवि समय' का सबसे अधिक स्पष्ट और विशद वर्णन है। इन्होंने अपने ग्रंथ के चतुर्दश अध्याय में इन समयों को (१) जाति (२) द्रव्य (३) क्रिया और (४) गुण के विभागों में बाँटा है। फिर स्थिति के अनुसार उनका विभाजन (१) भौम (२) स्वर्ग्य (३) पातालीय में किया गया है। और ये कवि-समय रूप परम्पराएँ तीन भागों में विभाजित हैं—(१) असतोनिबन्धन अर्थात् असत्य होने पर भी जिसका निबन्धन हो; (२) सतोऽप्यनिबन्धन, सत्य होने पर भी जिसका वर्णन करना मना है; (३) नियमतः, जिसके विषय में कुछ निश्चित नियम कर दिया गया है। सामान्य जाति के विषय में असतो निबन्धन (१) नदी में कमल की उत्पत्ति (पद्म और नील कमल); (२) सलिल (जलाशय) मात्र में हंस; पर्वत

२२. राजशेखर ; काव्यमीमांसा ; सप्तदश और अष्टदश अध्यायों में देश-काल की विशद विवेचना है।

मात्र पर रत्न। सतोऽप्यनिबन्धन—(१) वसन्त में मालती; (२) चन्दन वृक्ष में फल-फूल; (३) अशोक में फूल। नियमतः—(१) समुद्र में ही मकर (२) ताम्र सीपी में ही मुक्ता।

द्रव्यों का असत् निबन्धन—(१) मुष्टिग्राही और सूचीभेद्य अंधकार; (२) कुम्भोपवाह्य चंद्रिका। सतोऽप्यनिबन्धन—(१) कृष्ण पक्ष में ज्योत्स्ना; (२) शुक्लपक्ष में अंधकार। नियमतः—(१) मलयपर्वत पर चंदन; (२) हिमालय पर भोजपत्र। प्रकीर्ण-द्रव्य कवि समय—(१) क्षीर और क्षार समुद्रों की एकता (२) सागर और महासागर का अभिन्न प्रयोग। क्रिया का असत् निबन्धन—(१) चक्रवाक के जोड़े का रात्रि में वियोग; (२) चकोर का चंद्रिका पान। सतोऽप्यनिबन्धन—(१) दिन में नील कमल का विकास; (२) शेफाली कुसुम का रात्रि में झरना। नियमतः—(१) कोकिला का वसन्त में ही बोलना; (२) मयूर का वर्षा ही में बोलना।

गुण का असत् निबन्धन—(१) यश और हास का शुक्ल वर्ण; (२) अयश, पाप आदि का काला वर्ण; (३) क्रोध और राग का लाल वर्ण। सतोऽप्यनिबन्धन—(१) कुंद कली और कामनी के दाँत का लाल होना; (२) कमल कली का हरा होना; (३) प्रियंगु पुष्पों का पीला होना। नियमतः—(१) माणिक की लालिमा; (२) पुष्पों की शुक्लता; (३) मेघों की श्यामता। इसके अतिरिक्त कृष्णनील, कृष्णहरित, कृष्णश्याम, पीतरक्त और शुक्लगौर का प्रयोग; नेत्रों की शुक्लता, श्यामता, कृष्णता आदि का संयोग। इसके स्वर्ग्य कवि-समय इस प्रकार है—(१) काम की मकर-पताका; (२) चन्द्रमा के शशि और हरिण की एकता; (३) अत्रि-नेत्र और समुद्र से चन्द्र की उत्पत्ति; (४) शिव के मस्तक का विरल चन्द्र; (५) काम की मूर्त्तिमत्ता; (६) द्वादश सूर्यों का एकत्व। पातालीय कवि-समय—(१) नाग और सर्प की एकता; (२) दैत्य तथा दानव और असुरों

को एक माना जाना।[23]

इस प्रकरण की समस्त विवेचना से यह स्पष्ट हो जाता है कि संस्कृत के काव्य-शास्त्रियों का प्रकृति के सम्बन्ध में क्या दृष्टिकोण रहा है। इस व्याख्या में उसके कारणों की ओर भी संकेत किया गया है। इससे आगे के अध्ययन में हमें भारतीय साहित्य में प्रकृति के रूपों को समझने में सहायता मिलेगी। और प्रकृति के उन्मुक्त आलंबन-रूप के अभाव; उसके उद्दीपन-रूप के महत्त्व की स्वीकृति तथा रूढ़िवादी परम्परा के कारणों पर इस विवेचना से बहुत कुछ प्रकाश पड़ सकेगा।

---

२३. राजशेखर ; काव्यमीमांसा ; चतुर्दश अध्याय से लेकर षोडस अध्याय तक कवि-समय का वर्णन है।

तृतीय प्रकरण

प्रकृति चित्रांकन की शैलियाँ

§१—प्रकृति मानव की जीवन-लीला का सबसे बड़ा आधार प्रस्तुत करती है। वह उसके अभिनय के बाह्य-जगत् और भाव-लोक दोनों का रंगमंच है। पिछली विवेचनाओं में कहा गया है कि मानव का विकास प्रकृति के मध्य में उसके सम्पर्क से हुआ है, और इस दृष्टि से भी वह प्रकृति का अंश है। वह अपनी प्रधानता मानता है, पर इस प्रकार वह प्रकृति का आधार नहीं छोड़ सकता। यदि इन्द्र-धनुष की सतरंगी कल्पना सूर्य-रश्मियों का संयोग नहीं छोड़ सकती, तो नीलाकाश का आधार भी नहीं छोड़ सकेगी। प्रकृति की पार्श्वभूमि पर मनुष्य अपना रूपाकार ग्रहण किये हुए है और उसके जीवन के विभिन्न व्यापारों को प्रकृति वातावरण प्रदान करती है। जीवन अपनी घटना-क्रम की शृंखला में फैला है, पर इन घटनाओं को स्थिति प्रकृति से मिलती है। प्रकृति में घटनाओं की यह स्थिति अनेक स्थितियों से सम्बंधित होकर वातावरण का रूप ग्रहण कर लेती है। यह घटनात्मक स्थिति प्रकृति में मानव के रूपाकार के आश्रय मात्र से होती है और क्रिया-व्यापारों की योजना से भी। यह पहले

प्रकृति का विस्तार

कहा गया है कि प्रकृति का रूप और भाव (गति) मानव जीवन के समानान्तर है। इस समानान्तरता के कारण मानव के रूपाकार से सम्बंधित प्रकृति की आश्रय-स्थितियों में और क्रिया-व्यापार से सम्बंधित प्रकृति की आश्रय-परिस्थितियों में अनेक संयोग स्थापित होते गए हैं। इस प्रकार प्रकृति अपने विस्तार में हमारे जीवन की व्यापक पार्श्व-भूमि है और साथ ही चिरन्तन सहचरी भी है। इन सम्बंधों के आधार पर प्रकृति और काव्य की सारी योजना रक्षित है। मानव जीवन और भावनाओं से काव्य में प्रकृति किस प्रकार सम्बंधित है और इस सम्बंध में वह किस प्रकार उपस्थित होती है, यह तो हमारा प्रमुख विषय है। मानव के रूपाकार तथा उसके जीवन की स्थिति परिस्थितियों को सौन्दर्य्यरूप में व्यक्त करने के लिए प्रकृति का जो सहारा लिया जाता है, वह प्रकृति-उपमाओं के अध्ययन के क्षेत्र से सम्बंधित है। इस प्रकरण में काव्य में प्रकृति का चित्रांकन किस प्रकार होता है और उसमें मानव और प्रकृति के इन सम्बंधों की क्या स्थिति है, इस पर विचार करना है।

प्रकृति का चित्रांकन

§२—यह प्रश्न है कि प्रकृति मानव जीवन की पार्श्व-भूमि में, उसके समानान्तर अथवा उसके भावों के संयोग में किस प्रकार उपस्थित होती है। इन संयोग-सम्बंधों की व्याख्या अगले प्रकरणों में की जायगी, परन्तु इनमें प्रकृति का वर्णन किस प्रकार किया जाता है इस पर इस प्रकरण में विचार करना है। इसका अर्थ है कि काव्य में प्रकृति के भिन्न-भिन्न रूपों का चित्रांकन किस प्रकार होता है। काव्य का माध्यम शब्द है; शब्द अपनी विभिन्न शक्तियों से काव्य में वर्णित रूप और भाव दनों की व्यंजना करता है। काव्य में प्रकृति की रूपाकार सम्बंधी रेखाओं को उभारने के लिए तथा रंगों को व्यक्त कर छायातप प्रदान करने के लिए शब्दों का प्रयोग किया जाता है। शब्दों में जो ध्वनि के साथ प्रत्यक्ष-बोध का मानसिक चित्र सन्निहित रहता है, उसी के आधार पर यह योजना सम्भव हो सकती है। प्रकृति में रूपाकार के साथ गति-क्रिया भी सन्निहित है, और उसको काव्य में परिवर्तित रूपों

से अथवा व्यापारों की योजना से व्यक्त करते हैं। मानवीय जीवन और भावनाओं के अध्यन्तरण से प्रकृति काव्य में जीवनमयी अथवा भावमग्न भी चित्रित की जाती है।

क—कवि-चित्रकार शब्दों की रेखाओं से प्रकृति-चित्र मानस-गोचर करता है। उसके शब्दों की रेखाओं में सीमाओं का सशक्त निर्देश ही नहीं वरन् रंगों का विषम संयोग भी उपस्थित होता है। प्रकृति का सारा आकार-प्रकार उसकी वस्तु-स्थिति, परिस्थिति, क्रिया-स्थिति में प्रकट होता है। और इन सबका योग वातावरण बन जाता है। हम अपनी ज्ञानेन्द्रियों से विभिन्न स्थिति-परिस्थिति में फैली हुई प्रकृति को उसकी तुलनात्मक सापेक्षता में ग्रहण करते हैं। प्रत्येक प्रकृति-चित्रण की स्थिति भौतिक जगत् की असीमता में दृष्टिकोण विशेष से रूपाकार की सीमाएँ ग्रहण करती है। सरोवर के किनारे खड़ा हुआ आम का पेड़ जब हमारे दृष्टिपथ का विषय बनता है, उस समय सरोवर का तरंगति जल, आकाश का नीला प्रसार तथा अन्य वृक्षों का विस्तार अपनी समस्त सीमाओं में उसको हमारे सामने साकार करता है। प्रत्येक वस्तु इस प्रकार अनेक वस्तुओं की समाओं के द्वारा अपनी स्थिति की सीमा खोज पाती है। जब सरोवर के किनारे के आम्र-वृक्ष को हम सरोवर, आकाश, अन्य वृक्षों के साथ रखकर देखते हैं, उस समय उसकी परिस्थिति हमारे सामने होती है। यह परिस्थिति वास्तव में अन्य वस्तुओं की स्थितिओं के सापेक्ष ज्ञान के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। फिर हवा में पत्तियाँ हिलती हैं, हवा के संचरण से तरंगे उठती है, दिन-रात के क्रम से प्रकाश और अंधकार लुका-छिपी करता रहता है तथा ऋतु-परिवर्तन के साथ वृक्षों का कायाकल्प होता है। व्यापक अर्थों में गति का यह संकेत है जो परिवर्तन के रूप में प्रकट होता है; और इसको हम क्रिया-स्थिति स्वीकार करते हैं। वस्तु-स्थिति, परिस्थिति और क्रिया-स्थिति जब एक साथ प्रकृति-दृश्य का अंग बन जाती हैं उसको हम एक घटना-स्थिति के रूप में मान सकते हैं। अभी तक वस्तुओं के

रूपात्मक

प्राथमिक गुणों के दृष्टि-बिन्दु से कहा गया है। परन्तु दृश्य का अर्थ देखने से सम्बंधित है, इस कारण प्रकृति-दृश्य में माध्यमिक गुणों का प्रत्यक्ष अधिक होता है और उनमें सबसे अधिक दृष्टि से सम्बंधित रूप-रंग की प्रधानता है। गंध, स्पर्श, श्रवण और स्वाद आदि के गुण अप्रधान रूप से प्रकृति-चित्रण से सम्बंधित हैं। परन्तु दृश्य की घटना-स्थिति को अधिक गोचर करने के लिए इनका योग आवश्यक है।

भावात्मक

ख—प्रकृति का रूपाकार हमारे सामने आता है; पर उसमें हम भावों को व्यंजित होते पाते हैं। और भावों की यह व्यंजना काव्य में चित्रण का विषय होती है। आगे की विवचना में हम देखेंगे कि काव्य में प्रकृति और मानव का सम्बंध किस प्रकार उपस्थित हुआ है। पर इस प्रकरण में केवल चित्रण-शैली पर विचार करना है। प्रकृति के रूप-रंग सम्बंधी सौन्दर्य्य में मानव के रूप-रंग का सौन्दर्य्य लक्षित होता है। हम प्रकृति को अपने दृष्टि-बिन्दु से देखते हैं, इस कारण प्रकृति की घटना-स्थिति में मानव-जीवन की घटना-स्थितियों की अनेक प्रकार से समानान्तरता है। इस सादृश्य और समानान्तरता के आधार पर प्रकृति में माननीय भावों की व्यंजना की जाती है। शैली की दृष्टि से यह व्यंजना अनेक प्रकार से हो सकती है, और अलंकारों के प्रयोग से भी सिद्ध होती है। परन्तु जैसा हम देखेंगे कलात्मक शैली में इसका रूप अधिक स्पष्ट और सुन्दर रहता है। ऊहात्मकता के साथ भावात्मक चित्रण का सौन्दर्य्य नष्ट हो जाता है।

शैली का अर्थ

§३—यहाँ प्रकृति के चित्रांकन की शैलियों से हमारा तात्पर्य काव्य में प्रकृति के रूप और भाव को गोचर और भावगम्य करने की विभिन्न रीतियों से है। इन रीतियों में शब्दों की विभिन्न शक्तियों, भाषा की अभिव्यंजना शक्ति और आलंकारिक प्रयोगों के द्वारा काव्य के प्रकृति-विषयक वर्णनों को पाठक के मानस में रूप और भाव ग्रहण के लिए प्रस्तुत किया जाता है। संस्कृत साहित्य में प्रकृति का व्यापक स्थान आरम्भ से रहा है। और कवियों ने अनेक

प्रकार से अपने काव्यों में प्रकृति को स्थान दिया है। इनको हम प्रकृति के चित्रांकन की भिन्न-भिन्न शैलियों के रूप में देखेंगे। पर इन शैलियों का प्रयोग सारी संस्कृत काव्यों की परम्परा में इस प्रकार हुआ है कि एक विकास का क्रम उपस्थित हो जाता है। प्रारम्भिक प्रबन्ध-काव्यों में प्रकृति-चित्रण की शैली में सहज स्वाभाविकता है और मध्यकाल के महाकाव्यों में कलात्मक सौन्दर्यमयी चित्रण की शैली का उपयोग हुआ है। बाद के महाकाव्यों में क्रमशः शैली आलंकारिक तथा ऊहात्मक अधिक होती गई है। जिस प्रकार महाकाव्यों की परम्परा में रूढ़िवादिता बढ़ती गई, काव्य में प्रकृति का स्थान भी अधिक रूढ़िग्रस्त हो गया है। और साथ ही शैली वैचित्र्य की रूढ़ि में फँस कर अधिक कृत्रिम हो गई है।

वर्णनात्मक शैली

§४—प्रकृति के यथातथ्य का अंकन वर्णना के द्वारा किया जा सकता है। कहा गया है कि काव्य में प्रयुक्त शब्द अपनी ध्वनि के साथ रूप और भाव चित्रों की व्यंजना करता है। भाषा के शब्दों में ध्वनि के साथ एक भाव-चित्र होता है जो हमको विशिष्ट वस्तु-स्थिति या क्रिया-स्थिति का इन्द्रिय-प्रत्यक्ष कराता है।

वर्णना का रूप

साधारण जीवन व्यापार में हम अपने विचारों में शब्द के प्रासंगिक अर्थ से काम चलाते हैं; परन्तु काव्य में प्रकृति का वर्णन प्रत्यक्षीकरण का विषय है। कवि इसके लिये शब्दों की योजना में वस्तु और क्रिया के रूप और भाव-चित्रों को उभारता चलता है। और यह कार्य वह प्रकृति के विभिन्न रूपों की वर्णनात्मक योजना से करता है। प्रकृति के यथातथ्य जगत् से स्थितियों को चुनने में यथार्थवादी और आदर्शवादी दोनों का क्षेत्र एक है, केवल उनके दृष्टिकोणों में अन्तर है। इन दोनों के चयन में इस कारण भारी अन्तर आ जाता है। आदर्शवादी सौन्दर्य्य के अनुरूप प्रकृति के प्रत्यक्ष से स्थितियाँ चुनता है और उपकरणों का

आश्रय लेता है, पर यथार्थवादी प्रकृति को उसकी समग्र स्थितियों में ग्रहण करने का प्रयास करता है। संस्कृत काव्य की समस्त परम्परा में आज के यथार्थवाद का रूप नहीं मिलेगा। यह काव्य अपनी प्रकृति में पूर्ण आदर्शवादी (सौन्दर्य्यवादी) है। वर्णना के अन्तर्गत् प्रथम शैली वह है जिसमें दृश्य-चित्र अपनी प्रमुख वस्तु और क्रिया की स्थितियों की रेखाओं में सीमा ग्रहण करता है। ऐसे चित्रों में दृश्यात्मक पूर्णता नहीं वरन् गोचर आभास (काव्य में) मिलता है। प्रकृति के जिस दृश्य या ऋतु के जिस रूप को कवि प्रत्यक्ष करता है, उसको विशिष्ट देश-काल में या तो बाँधता ही नहीं और या केवल सामान्य विशेषता की रेखाएँ दे पाता है। इन रेखा-चित्रों की शैली से मिलती-जुलती वर्णना की दूसरी शैली संश्लिष्ट योजना की है। दृश्य की स्थितियों की योजना का विस्तार दोनों में होता है, केवल प्रस्तुत करने के ढंग में अन्तर है। एक में व्यापक चयन के आधार पर चित्र की रेखाओं को उभारा भर जाता है, और दूसरी शैली में स्थितियों की सूक्ष्म संश्लिष्ट योजना से चित्र अपनी पूर्णता और विशिष्टता के साथ गोचर हो उठता है। वर्णना शैली के इन दो रूपों के आधार पर अन्य शैलियाँ भी प्रयुक्त होती हैं। क्योंकि चाहे शैली की दृष्टि से आलंकारिक चित्रमयता हो या रूढ़िवादिता, चाहे भावात्मक आरोप हो या व्यंजना, वर्णन के इन दो सामान्य और विशेष रूपों का आधार सदा रहता है।

§ ५—कथानक के प्रवाह में जब प्रसंग के अनुसार कवि देश-काल की पार्श्व-भूमि उपस्थित करना चाहता है, और साथ ही अपनी वर्णना में रमता नहीं, उस समय वह प्रकृति का चित्रण केवल रेखा-चित्रों में करता है। वन-पर्वत, सरिता-सरोवर, विभिन्न ऋतुओं आदि का उल्लेख वह व्यापक विशेषताओं के चयन से करता है। इन वर्णनों से पाठक के मन पर किसी देश की निश्चित रूपमयता का चित्र नहीं उभरता, केवल रूप झलक भर जाता है; काल-परिवर्तन का निश्चित क्रम नहीं अंकित होता, वरन् गति का आभास भर आता

रेखा-चित्र

है। महाप्रबन्ध काव्यों के कथा-विस्तार में इस प्रकार के रेखा-चित्रों को अधिक अवसर मिला है। आगे के महाकाव्यों मे कथा का ऐसा विस्तार नहीं है और उनमे कथा-वस्तु के विकास का न इतना आग्रह है। उनमें सौन्दर्य्य के दृष्टिविन्दु से वर्णन-विस्तार का पर्याप्त अवसर मिला है, और कलात्मक प्रवृत्ति के फलस्वरूप वर्णनो को चित्रमय बनाने का प्रयास किया गया है। जैसा हम आगे के प्रकरणो में देखेगे बाद के महाकाव्यों में प्रकृति-वर्णन की निश्चित रूढ़ि हो गई। फिर भी महाकाव्यों में यत्र-तत्र संक्षिप्त देश-काल के निर्देश मिलते हैं, परन्तु वे अपनी प्रवृत्ति के अनुसार अलंकृत हैं। प्रकृति वर्णन की सरल रूप-रेखा महाभारत की विशेषता है। इस महाप्रबन्ध काव्य में कथा की शृंखलाएँ अपने विस्तार में इस प्रकार फैलती जाती हैं कि उनको वस्तु-स्थिति तथा परिस्थिति का आधार ग्रहण करने का अवसर ही नहीं मिल पाता। वर्णना का पूर्ण विस्तार न होने पर वातावरण का आभास भर देना कथाकार का उद्देश्य रह जाता है। ऐसी स्थिति में कथाकार प्रकृति-दृश्य के चुने हुए उपकरणों की रेखाओं से चित्र का संकेत देकर आगे बढ़ जाता है। इस रेखा-चित्र में रूप की व्यापक व्यंजना होती है, किसी देश-काल की निश्चित सीमाओं का निर्देश नहीं मिलता। कभी इस वर्णन-शैली में जिन चुनी हुई वस्तु-व्यापार-स्थितियों का संयोग होता है उनसे केवल व्यापक अर्थों में वन, सरिता या पर्वत का रूप सामने आता है। अर्जुन पाशुपतास्त्र के लिये हिमवान् के निकट जाते हैं। और उसकी जिस शोभा पर वह मुग्ध होते हैं कथाकर उसका चित्र व्यापक रेखाओं में उभारता है—

तत्रापश्यद् द्रुमान्फुल्लान्विहगैर्वल्गु नादितान्।
नदीश्च बहुलावर्ता नीलवैडूर्यसंनिभाः॥
हंसकारण्डवोद्गीताः सारसाभिरुतास्तथा।
पुंस्कोकिलरुताश्चैव क्रौञ्चबर्हिणनादिताः॥

मनोहरवनोपेतास्तस्मिन्नतिरथोऽर्जुनः ।
पुण्यशीतामलजलाः पश्यन्प्रीतमनाभवत् ॥ [1]

[वहाँ अर्जुन ने देखा — वृक्ष फूल-पत्तों से आच्छादित हो रहे हैं और अनेक प्रकार के पक्षी डालियों पर बैठे मधुर स्वर कर रहे हैं। वैदूर्य-मणि के समान नीलाभ जलवाली नदियाँ हैं जिनमें अनेक भँवर हैं। इस मनोहर वन के निकट पवित्र और शीतल जलाशय हैं जिनमें हंस, कारण्डव, सारस, कोकिल, क्रौंच तथा मयूर आदि अनेक पक्षी क्रीड़ा करते हैं और निनाद कर रहे हैं। इस शोभा को देखकर वीर अर्जुन मुग्ध हो गये।] इस वर्णन से दृश्य की कोई निश्चित कल्पना मन में नहीं उठती, जैसे कोई दृश्य शीघ्र ही सामने से निकल गया हो। इस शैली का प्रयोग प्रसंग में आये हुए किसी स्थल का आभास देने के लिए अथवा किसी विस्तृत प्राकृतिक दृश्य का संक्षिप्त वातावरण प्रस्तुत करने के लिए हुआ है। काव्य में इसका उपयोग प्रयोजन के अनुरूप सदा होता आया है, पर महाभारत जैसी रेखाओं की सरलता और उद्देश्य-प्रभाव का निश्चय अन्यत्र नहीं है।

रामायण में भी इस शैली का प्रयोग ऐसे अवसरों पर किया गया है जहाँ कवि का उद्देश्य प्राकृतिक प्रदेश का परिचय मात्र देना है। कथा-नायक राम अनेक वनों में विचरण करते हैं और कवि उनका वातावरण प्रस्तुत करता चलता है—

तौ पश्यमानौ विविधाञ्शैलप्रस्थान्वनानि च ।
नदीश्च विविधा रम्या जग्मतुः सह सीतया ॥
सारसांश्चक्रवाकांश्च नदीपुलिनचारिणः ।
सरांसि च सपद्मानि युतानि जलजैः खगैः ॥
यूथबन्धांश्च पृषतां मदोन्मत्तान्विषाणिनः ।
महिषांश्च वराहांश्च गजांश्च द्रुमवैरिणः ॥ [2]

---

१. महा० ; आर० पर्व ; अध्य० ३९ ; १७—१९ ।
२. रामा० ; अर० का० ; सर्ग ११ ; २—४ ।

[मार्ग में ये लोग नाना प्रकार के पर्वतशृङ्गों, वनों तथा सुरम्य नदियों को देखते जाते थे। सरिताओं के पुलिन पर सारस और चक्रवाक क्रीड़ा कर रहे थे। सरोवरों को भी उन्होंने देखा जिसमें कमल खिले हुए थे और जलचर पक्षी विचर रहे थे। वे झुण्ड के झुण्ड मृगों, मतवाले गैंडों, भैंसों, वराहों और वृक्षों के शत्रु हाथियों को देखते जा रहे थे।] इस वर्णन में प्रमुख वस्तुओं के उल्लेख द्वारा वातावरण का निर्माण किया है। आदि कवि ने विस्तृत संश्लिष्ट प्रकृति-वर्णन अधिकता से किये हैं, परन्तु मार्ग आदि के संक्षिप्त और संकेतात्मक वर्णनों में इस शैली का उपयोग भी किया है। महाकाव्यों की परम्परा में यत्र-तत्र वर्णना को संक्षिप्त और संकेतात्मक प्रस्तुत करने की आवश्यकता हुई है। परन्तु ऐसे अवसरों पर कवियों ने कलात्मक प्रयोग किये हैं। इस प्रकार की सरल रेखाओं की योजना उनमें नहीं मिलती। कालिदास, दिलीप के नन्दिनी को चरा कर लौटते समय का सन्ध्या-चित्र संक्षिप्त रेखाओं में इस प्रकार उपस्थित करते हैं—

स पल्वलोत्तीर्णवराहयूथान्यावासवृक्षोन्मुखबर्हिणानि।

ययौ मृगाध्यासितशाद्वलानि श्यामायमानानि वनानि पश्यन्॥ [3]

[छिछले जलाशयों से वराहों के समूह बाहर निकल रहे थे; मयूर अपने निवास करने के वृक्षों पर जा रहे थे और हरे घास के मैदान मृगों से पूर्ण हो रहे थे। दिलीप ऐसे अंधकार से श्याम-वर्ण होते हुए वन को देखता हुआ लौटा।] इस चित्र में वातावरण के निर्माण के लिये संक्षिप्त रेखाओं का प्रयोग किया गया है, पर कालिदास के चयन ने इसे पूरे रंगों के साथ व्यंजित कर दिया है। रेखा-चित्रों में चयन और योजना की विशेषताओं से कलात्मक सौन्दर्य उत्पन्न किया जा सकता है, यह इसका उदाहरण है। इसी प्रकार की कलात्मक योजना किरातार्जुनीय के इस दृश्य में है—

---

३. रघु० ; स० २ ; १७।

रञ्जिता नु विविधास्तरुशैला नामितं नु गगनं स्थगितं नु ।
पूरिता नु विषमेषु धरित्री संहृता नु कुकुभस्तिमिरेण ॥[४]

[अंधकार से समस्त वृक्ष और पर्वत रंजित हो गये हैं, पृथ्वी से आकाश तक आच्छादित हो गये हैं, धरती की विषमता अदृश्य हो गई है और दिशाएँ लुप्त हो गई हैं।] इसमें अन्धकार का व्यापक रेखाओं में वर्णन किया गया है, पर इन रेखाओं में चित्र की गहरी व्यंजना छिपी हुई है। परन्तु इन कवियों में चित्र की संक्षिप्त रूप-रेखा को भी अलंकारों से कलात्मक बनाने की प्रवृत्ति अधिक है।

संश्लिष्ट योजना

§६—प्रथम शैली और संश्लिष्ट योजना में अधिक अन्तर नहीं है। वस्तु-क्रिया की विभिन्न स्थितियों की योजना का दृष्टि-विन्दु समान है, केवल दोनों में विस्तार और चयन का अन्तर है। रेखा-चित्र की शैली में दृश्य के प्रमुख उपकरणों के चयन द्वारा व्यापक आभास दिया जाता है या वातावरण प्रस्तुत किया जाता है, पर संश्लिष्ट योजना में चित्र को पूर्ण और प्रत्यक्ष बनाने की ओर अधिक ध्यान रहता है। महाभारत में इस प्रकार के दृश्यों की उद्भावना बहुत कम हुई है। अगले प्रकरण में हम देखेंगे कि इसका कारण उसमें कथा सम्बंधी आग्रह है। परन्तु इसमें ऐसे स्थल भी हैं जिनका चित्रण सघन वातावरण में किया गया है। दधीच के आश्रम का वर्णन इस प्रकार चलता है—"सरस्वती के दूसरे तट पर नाना द्रुम-लताओं से आच्छादित दधीच के आश्रम, देवता नारायण को आगे करके गये। वह आश्रम भ्रमर की गुञ्जार से, कोकिल के स्वर से तथा अनेक पक्षियों के मिश्रित स्वर से सामगान की भाँति निनादित हो रहा था। वहाँ नाना प्रकार के भैंसा, वराह, सृमर तथा मृग आदि पशु शार्दूल से निर्भय इधर उधर

४. किरा० ; स० ९ ; १५ ।

विचरण करते हैं। मद से सिक्त मस्तकवाले हाथी अपनी सूँड़ों से जल में क्रीड़ा करते हुए चारों ओर से नाद करते हैं। वह आश्रम एक ओर सिंह और व्याघ्र के नाद से गुञ्जायमान होता है और दूसरी ओर उसमें गुफा और कन्दराओं में बसनेवाले हैं। इस प्रकार अनेक स्थितियों में मनोरम यह आश्रम है।][५] इस वर्णन में अपेक्षाकृत संश्लिष्टता है। रामायण में इस प्रकार के वर्णनों की अधिकता है। आदि कवि ने प्रकृति को देश-काल की निश्चित तथा विशिष्ट सीमाओं में अधिक उपस्थित किया है। ये प्रकृति-चित्र अपनी स्वाभाविकता में पूर्ण संश्लिष्ट हैं अर्थात् इनमें वस्तु-क्रिया की विभिन्न स्थितियों का सूक्ष्म विवरण उपस्थित किया गया है। जिस प्रकार कवि की सहृदयता इन दृश्यों के साथ जागरूक है, उसी प्रकार की बिम्बग्राही इनकी वर्णना भी हो सकी है। राम सीता से मन्दाकिनी का वर्णन कर रहे हैं—

> विचित्रपुलिनां रम्यां हंससारससेविताम्।
> कुसुमैरुपसंपन्नां पश्य मंदाकिनीं नदीम्॥
> मारुतोद्धूतशिखरैः प्रनृत्त इव पर्वतः।
> पादपैः पुष्पपत्राणि सृजद्भिरभितो नदीम्॥
> निर्धूतान्वायुना पश्य विततान्पुष्पसंचयान्।
> पोप्लूयमानानपरान्पश्य त्वं तनुमध्यमे॥[६]

[हे सीता, इस रमणीय तटवाली विचित्र मन्दाकिनी को देखो जिसके तटों पर हंस और सारस कल्लोल करते हैं और जो पुष्पित वृक्षों से घिरे हैं। पवन से प्रताड़ित शिखरों से जो नृत्य सा करता है, ऐसा पर्वत वृक्षों से नदी पर चारों ओर पुष्प और पत्र विकीर्ण करता है। हे भद्रे, पवन के झोंके से नदी के तट पर बिखरे हुए पुष्पों के ढेर को देखो और इन दूसरे पुष्पों को देखो जो उड़कर जल में जा गिरे हैं,

---

५. महा० ; आर० प० ; अ० ९६ ; १३—१७।
६. रामा० ; अयो० का० ; स० ९५ ; ३, ८, १०।

वे पानी में कैसे तैर रहे हैं।] इस वर्णन में प्रकृति की प्रत्येक स्थिति और उसके प्रत्येक व्यापार को सामने उपस्थित करके चित्र को पूर्ण करने की प्रवृत्ति है।

क—महाकाव्यों की परम्परा के साथ कलात्मकता और आलंकारिकता का विकास हुआ है। इस कारण सहज संश्लिष्ट योजना की प्रवृत्ति इनमें क्रमशः कम होती गई है। रामायण में यह कलात्मक प्रवृत्ति पाई अवश्य जाती है, पर इसमें स्वाभाविक सौन्दर्य्य अधिक है। भरत वसिष्ठ को चित्रकूट दिखाते हैं—"देखिए पर्वत के श्रृङ्गों पर ये वृक्ष पुष्पों की वर्षा कर रहे हैं जैसे नील जलद वर्षा-काल में जल-वृष्टि करते हैं। देखिए, ये भगाये हुए हिरण किस वेग से भाग रहे हैं जैसे शरत्काल में पवन के वेग से मेघ इधर उधर दौड़ते हैं।"[७] प्रकृति के एक चित्र को दूसरे अप्रस्तुत चित्र से उद्भासित करने की कला महाकाव्यों में विकसित होती गई है और आगे हम देखेंगे कि यही रूढ़िवादी होकर उक्ति वैचित्र्य हो गई है। परन्तु कालिदास में सहज संश्लिष्ट योजना यत्र-तत्र मिल जाती है। अश्वघोष के प्रकृति-वर्णन अपनी सरलता में सर्वत्र कलात्मक हैं। वास्तव में महाकाव्यों में अलङ्कारों से मुक्त संश्लिष्ट चित्रों का पाना कठिन है, क्योंकि ये काव्य आदर्श कल्पनाओं से भरे हैं। इनमें स्वभावोक्ति को स्थान बहुत कम मिल सका। कालिदास प्रकृति को सूक्ष्म विश्लेषण की दृष्टि से देख सके हैं पर उनकी व्यापक प्रवृत्ति कलात्मक सौन्दर्य्य-सर्जन की है। यद्यपि इनके ऋतुसंहार के वर्णन उद्दीपन की भावना से प्रभावित हैं, इनमें बहुत से स्थलों पर संश्लिष्ट चित्रमयता भी पाई जाती है। ग्रीष्म के इन दृश्यों में कितनी सजीवता है—

महाकाव्य की परम्परा

> सभद्रमुस्तं परिशुष्ककर्दमं सरः खनन्नायतपोतृमण्डलैः।
> रवेर्मयूखैरभितापितो भृशं वराहयूथो विशतीव भूतलम्॥

---

७. वही ; वही ; स० ९३ ; १०, १२।

सफेनलालावृतवक्त्रसम्पुटं विनिःसृतालोहितजिह्वमुन्मुखम् ।
तृषाकुलं निःसृतमद्रिगह्वराद् गवेषमाणं महिषीकुलं जलम् ॥[८]

[क्रमशः सूर्य-किरणों से संतप्त होकर जंगली शूकरों का समूह जान पड़ता है पृथ्वीतल में प्रवेश कर रहा है। क्योंकि अपनी तीव्र दाढ़ों से पंकिल भद्रमस्ता घास से युक्त तालों को खोदते समय कीचड़ उन पर सूख गया है। प्यास से व्याकुल होकर जिनके मुख फेन और झाग से भर गये हैं और जिनकी लाल जीभ मुख से निकल पड़ी है, ऐसी भैंसों का झुण्ड अपनी गरदन उठाये पानी की खोज में पर्वत की कन्दराओं से निकल पड़ा है।] अन्यत्र अपने महाकाव्यों में कालिदास ने किसी-किसी स्थल पर ऐसे वर्णन प्रस्तुत किये हैं। परन्तु ये चित्र आलंकारिक सौन्दर्य-व्यंजना के साथ इस प्रकार मिल-जुल गये हैं कि इनको अलग नहीं किया जा सकता। रघुवंश में दिलीप के मार्ग का वर्णन इसी प्रकार का है—

सेव्यमानौ सुखस्पर्शैः शालनिर्यासगन्धिभिः ।
पुष्परेणूत्किरैर्वातैराधूतवनराजिभिः ॥
परस्पराक्षिसादृश्यमदूरोज्झितवर्त्मसु ।
मृगद्वन्द्वेषु पश्यन्तौ स्यन्दनाबद्धदृष्टिषु ॥[९]

[स्पर्श से सुख देनेवाले, शालवृक्ष के गोंद की गन्धवाले, पुष्पों के पराग को विकीर्ण करनेवाले तथा वनराजि को किंचित कँपानेवाले पवनों से ये दोनों सेवित हुए। निकटवर्ती मार्ग को छोड़ते हुए, जिनकी दृष्टियाँ रथ में बँध रही हैं ऐसे मृग के जोड़े के साथ परस्पर अपनी आँखों की समानता उन्होंने देखी।] इन वर्णनों में काव्यात्मक सौन्दर्य विशेष है। वास्तव में महाप्रबन्ध काव्यों जैसी प्रकृति की सश्लिष्ट वर्णना का इनमें अवसर नहीं मिला है। प्रकृति में एक अदृश्य चेतना के

८. ऋतु० ; स० १ ; १७, २१ ।
९. रघु० ; स० १ ; ३८, ४० ।

आरोप के द्वारा कवि एक विशेष सौन्दर्य्य की व्यंजना भी करता है। प्रवरसेन शरत्कालीन वर्णन इस प्रकार करते हैं—

> **पर्याप्तसलिलधौते दूरालोक्यमाननिर्मले गगनतले ।**
> **अत्यासन्नमिव स्थितं विमिक्तररभागप्रकटं शशिबिम्बम् ॥**
> **चिरकालप्रतिनिवृत्तं दिक्षु घूर्णमानकुमुदरजोविलिप्तम् ।**
> **अप्रमत्यलब्धास्वादं कमलाकरदर्शनोत्सुकं हंसकुलम् ॥**[१०]

[वर्षाकाल के पर्याप्त जल से धुले हुए अत्यन्त स्वच्छ और प्रकाशित आकाश मण्डल में मेघादि से विमुक्त होकर चन्द्रबिम्ब अत्यन्त निकट स्थित जान पड़ता है। तथा चिरकाल के बाद वापस लौटा हुआ, मन्द पवन से प्रेरित कुमुद की रज से धूसरित हंस समूह स्वाद की आशा-आकांक्षा से कमल-सरोवरों के दर्शन की उत्सुकता से घूमता है।] इस वर्णन में भी कलात्मक संश्लिष्टता है। इसमें एक तो प्रकृति की आदर्श स्थितियों को चुना गया है और दूसरे व्यापारों की योजना से चित्र में चेतन व्यंजना छिपी हुई है। इनमें और महाप्रबन्ध काव्यों के संश्लिष्ट वर्णनों में स्थिति-योजना सम्बंधी साम्य भर है। इसी प्रकार भारवि ने सन्ध्या-वर्णन के अन्तर्गत एक दृश्य उपस्थित किया है—

> **गन्धमुद्धतरजः कणवाही विक्षिपन्विकसतां कुमुदानाम् ।**
> **आदुधाव परिलीनविहङ्गा यामिनीमरुदपां वनराजीः ॥**[११]

[जलकणों को वहन करता हुआ, विकसित कुमुदों की रज को प्रसरित करके गन्ध विकीर्ण करनेवाला रात्रि-पवन जिनकी कोटरों में पक्षी शयन कर रहे हैं ऐसी वनराजि को कम्पायमान करता है।] इसमें जैसा स्पष्ट है प्रकृति के व्यापारों की योजना है, पर यह चित्रांकन की शैली भारवि की अपनी शैली नहीं है।

---

१०. सेतु० ; आ० १ ; २५, २६ ।
११. किरा० ; स० ९ ; ३१ ।

ख — कहा गया है कि संश्लिष्ट योजना महाकाव्यों की अलंकृत और कलात्मक प्रवृत्ति के अनुरूप नहीं है। वर्णन सम्बंधी इनकी संश्लिष्टता में चित्रमयता का आग्रह अधिक है। परन्तु नाटकों में इस शैली को स्वतंत्र रूप से स्थान मिल सका है।

नाटकों की परम्परा

इसके लिये कारण भी है। नाटकों की प्रकृति-वर्णना अधिकतर देश-काल की सीमाओं को उभारने के लिये तथा परिस्थिति को स्पष्ट करने के लिए होती है। प्रेक्षक या पाठक के मन में नाटककार अपनी कथा के अनुरूप वातावरण उपस्थित करना चाहता है और साथ ही घटना को स्थिति का आधार प्रदान करना चाहता है। और यह कार्य स्थिति की संश्लिष्ट योजना से सिद्ध हो सकता है। इस स्थिति में स्वभावोक्ति के यथार्थ-चित्रण के लिये पूरा अवसर है। मालविकाग्निमित्र में मध्याह्न की सूचना कितनी पूर्ण है—"दोपहर हो गई। बावलियों के कमल की पंखड़ियों की छाया में आँख मूँद कर हंस विश्राम कर रहे हैं। धूप से भवन ऐसा तप गया है कि छज्जे पर कबूतर तक नहीं बैठ रहे हैं। चलते हुए रहट से उछलते हुए पानी की बूंदें पीने के लिए मोर चारों ओर चक्कर लगा रहे हैं। समस्त राजसी गुणों को दीप्त करता हुआ सूर्य अपनी पूर्ण किरणों में चमक रहा है।][१२] ग्रीष्म की दोपहर का इतना सहज चित्र अन्यत्र मिलना कठिन है। इसी प्रकार कालिदास ने अभिज्ञानशाकुन्तल में तपोवन का वर्णन किया है—

> **नीवाराः शुकगर्भकोटरमुखभ्रष्टास्तरूणामधः**
> **प्रस्निग्धाः क्वचिदिङ्गुदीफलभिदः सूचयन्त एवोपलाः।**
> **विश्वासोपगमादभिन्नगतयः शब्दं सहन्ते मृगा-**
> **स्तोयाधारपथाश्च वल्कलशिखानिष्यन्दरेखाङ्किताः॥**[१३]

[तपोवन में—वृक्षों के नीचे तोतों के कोटर के मुख से गिर-गिर

---

१२. माल० ; अं० २ ; १२।

१३. अभि० ; अं० १ ; १३।

कर नीवार नामक धान बिखरा हुआ है। हिंगोट के फल को कूटने की चिकनी सिलें जहाँ तहाँ रखी हुई हैं। विश्वास प्राप्त हो जाने से मृग हिल गये हैं और इस कारण रथ के शब्द से चौंकते नहीं हैं। गीले वल्कलों के अग्रभाग से चूने से जलाशयों का पथ चिह्नित हो गया है।]
जैसा कहा गया है इन चित्रों से कवि नाटकीय वस्तु-स्थिति को प्रत्यक्ष कर देता है। और चुने हुए उल्लेखों से स्थिति को पूर्ण कर देने में कालिदास प्रमुख हैं। भवभूति ने उत्तर रामचरित में दण्डकारण्य का वर्णन संश्लिष्ट शैली में किया है। वस्तु और व्यापारों की सम्मिलित योजना से चित्र को गोचर के साथ मुखर करने में वे अप्रतिम कलाकार है। जनस्थान की निर्झरिणियाँ इस प्रकार प्रवाहित हैं—

इह समदशकुन्ताक्रान्तवानीरवीरुत्-
प्रसवसुरभिशीतस्वच्छतोया वहन्ति।
फलभरपरिणामश्यामजम्बूनिकुञ्ज-
स्खलन्मुखरभूरिस्रोतसो निर्झरिण्यः॥[१४]

[यहाँ उल्लासित पक्षियों से कूजित वानीर लताओं के फूलों की सुरभि से शीतल और स्वच्छ नीरवाली निर्झरियाँ पके हुए फलों से श्यामायमान जामुन के कुञ्जों से टकरा कर अनेक धाराओं में मुखरित होकर प्रवाहित होती हैं।]

ग—गद्य-काव्यों में इस शैली को विशेष अवसर मिल सकता था। परन्तु बाण भट्ट की शैली में सरल संश्लिष्टता के लिये स्थान नहीं है।

गद्य-काव्य

उनके चित्रों में व्यापक विस्तार है और स्थितियों की योजना भी सघन है, पर अलंकृत सौन्दर्य्य और वैचित्र्य की प्रवृत्ति उनमें विशेष है। इन वर्णनों के बीच में स्वाभाविक वर्णना का विस्तार बिखरा मिल जाता है। अगस्त के आश्रम के निकट इस प्रकार का पम्पा सरोवर है—

---

१४. उत्त०; अं० २; २०।

उत्फुल्लकुमुदकुवलयकह्लारम्, उन्निद्रारविन्दमधुबिन्दुनिष्यन्दबद्ध-चन्द्रकम्, अलिकुलपटलान्धकारितसौगन्धिकम्, सारसितसमदसारसम, अम्बुरुहमधुपानमत्तकलहंसकामिनीकृतकोलाहलम्, अनेकजलचरपतङ्ग-शतसंचलनचलितवाचालवीचिमालम्, अनिलोल्लासितकल्लोलशिखर-सीकरारब्धदुर्दिनम्।[१५]

[उसके अन्दर कुमुद, कुवलय और कह्लार के पुष्प फूले हुए हैं; प्रफुल्लित कमलों में से टपकती हुई मधु की बूँदों से उसके जल पर चन्द्राकार बन रहे हैं; भौंरों के झुण्डों के बैठने से उसके श्वेत कमलों पर अंधकार व्याप्त हो गया है; मदोन्मत्त सारस मधुर कूजन कर रहे हैं; कमल का मधु पीने से मत्त कल-हंस-कामिनी कोलाहल कर रही हैं; अनेक प्रकार के जलचर पक्षियों के बार-बार संचरण करने से चंचल तरंग मालाएँ शब्द कर रही हैं; पवन से नाचती तरंगों के ऊपर बूँदों के उड़ने से वर्षा ऋतु सी आरम्भ हो गई है।] महाकाव्यों की परम्परा के अनुरूप इन गद्य-काव्यों में प्रकृति सम्बंधी दृष्टिविन्दु आदर्शीकरण का है। और यह प्रवृत्ति सभी प्रकार की शैलियों और वर्णनों में समान रूप से पाई जाती है।

चित्रात्मक शैली

§७—अभी तक शैली के जिन रूपों की बात कही गई है उनमें प्रस्तुत विषय की विषम स्थितियों की योजना द्वारा चित्रांकन किया गया है। महा-

प्रस्तुत और अप्रस्तुत

काव्यों के ऐसे कुछ वर्णनों में प्रस्तुत से अप्रस्तुत वस्तु या भाव अथवा अलंकार की व्यंजना भी की गई है। परन्तु जैसा कहा गया है महाकाव्यों में स्वभावोक्ति को क्रमशः कम स्थान मिला है। और अलंकारों के प्रयोग के साथ इनके वर्णनों में अप्रस्तुत विधान अधिक प्रधान हो गया है। अप्रस्तुत-विधान का मौलिक

---

१५. काद० ; पूर्वा० ; पम्पासर-वर्णन।

आधार काव्यात्मक सौन्दर्य्य की उद्भावना है, ऊहात्मक वैचित्र्य की सीमा तो इसकी विकृति है। प्रकृति-दृश्य की वर्णना को अधिक चित्रमय बनाने के लिये प्रस्तुत को अप्रस्तुत के द्वारा अधिक ग्राही और व्यंजक करते हैं। प्रस्तुत वर्ण्य-विषय पाठक की कल्पना का आधार उपस्थित करता है और इस कल्पना को पूर्ण विकसित तथा उद्भासित करने के लिये अप्रस्तुत उपमानों की योजना कवि करता है। उपमानों की विभिन्न रूप-स्थितियाँ पाठक की कल्पना में भाव-संयोग द्वारा उपमेय-वर्ण्य को अधिक बोधगम्य और प्रत्यक्ष बनाती हैं। इस चित्रात्मक शैली में अप्रस्तुत उसी सीमा तक आ सकते हैं जब तक वे वर्ण्य दृश्य के समानान्तर चित्रों को उपमान रूप में उपस्थित करें। कवि उपमानों को जगत् से ग्रहण करता है, पर अपनी कल्पना से भी उनकी योजना करने के लिये स्वतंत्र है। जहाँ तक कवि की प्रौढ़ोक्ति वर्ण्य विषय को सुन्दर बनाने में सहायक होती है, यह इसी शैली के अन्तर्गत आती है। वस्तुओं के वर्णन के साथ अलंकारों से भावात्मक व्यंजना भी सन्निहित की गई है। इस प्रकार इस शैली के अन्तर्गत स्वतःसम्भावी और प्रौढोक्ति सम्भव कल्पना के साथ भावात्मक व्यंजना आ जाती है।

§८—वर्णना के क्षेत्र में काव्य-सौन्दर्य्य के लिए अप्रस्तुत योजना स्वतःसम्भावी कल्पना के आधार पर सर्वश्रेष्ठ होती है। वर्णना में स्वाभाविक चित्रमयता शैली के इसी रूप से आती है। कवि की प्रतिभा का क्षेत्र एक प्रकृति-चित्र को दूसरे समान प्रकृति-चित्र से प्रत्यक्ष करने में अधिक मुक्त होता है। इसी से प्रकट होता है कि कवि की प्रकृति में कितनी अन्तर्दृष्टि है। सौन्दर्य्य-बोध की यह प्रवृत्ति वाल्मीकि से ही पाई जाती है। आदि कवि ने अपने विस्तृत संश्लिष्ट वर्णनों में स्थान-स्थान पर चित्र को अधिक रंगमय तथा मुखर बनाने के लिए ऐसे प्रयोग किये हैं, इसका उल्लेख ऊपर किया गया है। अश्वघोष के लिये यह कठिन है कि वे बिना अप्रस्तुत विधान के किसी दृश्य का वर्णन कर सकें। इनके वर्णनों में

स्वतःसम्भावी कल्पना

उपदेशात्मक व्यंजना अवश्य है, फिर भी सुन्दर चित्रात्मक शैली का प्रयोग इन्होंने किया है। सौन्दरनन्द में कपिल के आश्रम का वर्णन इस प्रकार है—

चारुवीरुत्तरुवनः प्रस्निग्धमृदुशाद्वलः।
हविर्धूमवितानेन यस्सदाभ्र इवाबभौ।
मृदुभिः सैकतैः स्निग्धैः केसरास्तरपाण्डुभिः॥
भूमिभागैरसंकीर्णैः साङ्गराग इवाभवत्॥ [१६]

[उस तपोवन में सुन्दर लता और वृक्षों से युक्त वन तथा चिकनी मृदुल हरी घास के मैदान थे। वह यज्ञ के धूम्र से आच्छादित सदा बादलों से छाया हुआ जान पड़ता था। केसर के विकीर्ण होने से पीले स्निग्ध तथा चिकने बालू के विस्तृत भूमिभाग से वह तपोवन अङ्गराग से युक्त जान पड़ता था।] धूम्र से आच्छादित तपोवन की कल्पना बादल के छाये रहने से कैसी प्रत्यक्ष हो जाती है। कालिदास जिस प्रकार प्रकृति के स्वाभाविक रूप रंगों से सब से अधिक परिचित हैं, उसी प्रकार उन वर्णनों के चित्रित करने में उनकी कल्पना सशक्त और सहज है। राम सीता को पंचाप्सर नामक सरोवर दिखाते हैं—

एतन्मुनेर्मानिनि! शातकर्णेः पञ्चाप्सरो नाम विहारवारि।
आभाति पर्यन्तवनं विदूरान्मेघान्तरालक्ष्यमिवेन्दुबिम्बम्॥

[हे मानिनि, शातकर्ण मुनि का यह पंचाप्सर नामक चतुर्दिक वन से घिरा हुआ जल-विहार करने का सरोवर है, जो बादलों के बीच में दिखाई देते हुए चन्द्रबिम्ब के समान प्रकाशित होता है।] इसी प्रसंग में आगे चलकर संगम का वर्णन इसी शैली में किया गया है। जो अप्रस्तुत प्रकृति से न लिये जाकर अन्य क्षेत्रों से लिये गये हैं उनमें भी चित्र को प्रत्यक्ष करने का उतना ही सौन्दर्य है। कालिदास की कल्पना सौन्दर्य सर्जन ही करती है, चाहे वह आकाश में उड़ती हुई

---

१६. सौन्द०; स० १; ६, ७।

सारसों की रेखा को वन्दनवार की उपमा दें अथवा निकटवर्ती लताओं की पुष्प-वर्षा को पुर-कन्याओं द्वारा लावा की वर्षा कहें। इसी प्रकार का सौन्दर्य्य इस वर्णन में भी है—

संहारविक्षेपलघुक्रियेण हस्तेन तीराभिमुखः सशब्दम् ।
बभौ स भिन्दन्बृहतस्तरंगान्वार्य्यर्गलाभङ्ग इव प्रवृत्तः ॥[१७]

[तीर की ओर आता हुआ वह हाथी संकोचन तथा प्रसारण की क्षिप्र क्रिया में संलग्न सूँड से बड़ी-बड़ी तरंगों को शब्द सहित भग्न करता हुआ बन्धन की अर्गला को तोड़ने में उद्यत हुआ सा शोभित हुआ।] मानवीकरण में भी कालिदास इस शैली का प्रयोग करते हैं। सहज उपमानों की योजना में आगे के कवियों की क्लिष्ट कल्पना नहीं आती है। एक प्रकार से प्रकृति के रूप को अधिक सजीव बनाने के लिये कवि ने यह प्रयोग किया है—

पर्य्याप्तपुष्पस्तबकस्तनाभ्यः स्फुरत्प्रवालौष्ठमनोहराभ्यः ।
लतावधूभ्यस्तरवोऽप्यवापुर्विनम्रशाखाभुजबन्धनानि ॥[१८]

[वृक्षों ने भी अपनी झुकी हुई शाखा रूपी भुज-बन्धनों से बड़े-बड़े पुष्पगुच्छों के रूप में स्तनवाली तथा हिलते हुए नवपल्लवों से सुन्दर ओठवाली लताओं का आलिंगन किया।] इस वर्णन में अप्रस्तुत योजना इतनी अप्रधान रखी गई है कि सामने वृक्षों की डालियों पर हिलती हुई लताओं के पुष्प-गुच्छ और किशलय ही अधिक उभर आते हैं; और उपमा प्रकृति में मानवी-स्पर्श उत्पन्न कर देती है। बुद्धघोष कालिदास के परवर्ती हैं साथ ही उनके काव्य से प्रभावित भी हैं। उनमें आलंकारिक सौन्दर्य्य का मोह अधिक है, पर इनके वर्णनों में सीधी बात कहने की प्रवृत्ति अश्वघोष और कालिदास से ग्रहण की गई है। पावस

---

१७. रघु० ; स० १३ ; ३८ : स० १ ; ४१ : स० २ ; १० : स० ५ ; ४५।

१८. कुमा० ; स० ३ ; ३९ : स० ८ ; ३७ में सन्ध्या के अंधकार-प्रकाश की आधे सूखे सरोवर से उपमा।

के उमड़ने बदलों की कल्पना को वे इस प्रकार प्रत्यक्ष करते हैं—

पयोदकालेन चिरप्रवासिना
समागतेनाभिनवं प्रिये दिशाम् ।
विमुच्यमाना इव केशवेण्यो
विभान्ति कामं नवमेघपङ्क्तयः ॥

[हे प्रिये, चिरप्रवासिन पयोद काल द्वारा नवीन समागम के लिये नव मेघों की पंक्ति के रूप में दिशा की मुक्त केशराशि (वेणी) अत्यन्त शोभित हो रही है ।] प्रकृति के इस मानवीकरण में सरल भावात्मक व्यंजना सन्निहित है जो अप्रस्तुत से ध्वनित होता है । फिर भी इसमें प्रकृति प्रत्यक्ष है । कभी कवि लम्बी योजना करता है—

आकाशसिन्धोरपराह्णकर्ण-
धाराधिपः संहृतरश्मिजालः ।
प्रक्षेपणीभिः स्फटिकात्मिकाभि-
र्दिगन्ततीरं तरणिं निनाय ॥१९

[आकाश रूपी सिन्धु के सांयकाल रूपी नाविकपति ने अपने सूर्य-किरण के जाल को खींच लिया है और वह सूर्यकान्तमणि के नौकादण्ड से सूर्य रूपी तरणी को दिगन्त के तीर पर ले गया ।] इस चित्र में रूप और क्रिया को मिला कर जो उपमानों की योजना हुई है उससे कलात्मक सौन्दर्य उत्पन्न हो गया है । ऐसे प्रयोगों में बुद्धघोष कालिदास के निकट पहुँचते हैं ।

क—बुद्धघोष के समान कुमारदास कलात्मक सौन्दर्य के प्रयोगों में कालिदास के समीप हैं । उनकी उपमाओं में प्रकृति को अन्य चित्रों से उद्भासित करने की भावना अधिक है । ये अप्रस्तुत सरल और चित्रमय हैं । लता-गुल्मों में छिपे हुए अलि के समान श्याम अन्धकार को नष्ट करने के लिये वृक्षों की सघन डालियों

सौन्दर्य-कल्पना

१९. पद्य० ; स० ५ ; ८ : स० ८ ; २ ।

के छिद्र से चन्द्रमा अपनी किरणें फेंक रहा है; अथवा—

क्षीरवारिनिधिना विवर्धिना प्लाव्यमानवदसौ निशाकरः ।
उत्पतत्युदयतः शनैः शनैर्हारशुभ्रनिजरश्मिसंचयः ॥

[हार के समान अपनी उज्वल रश्मियों को घनीभूत करके बढ़ते हुए स्वच्छ नीरनिधि में तैरता हुआ सा चन्द्रमा उदयाचल से उदित हो रहा है ।] इस वर्णन में स्वाभाविक कल्पना है । इसमें कवि अपनी सूक्ष्म दृष्टि का परिचय देता है । आकाश में बढ़ते हुए सागर की कल्पना कुमारदास को कालिदास के समकक्ष पहुंचा देती है । प्रकृति से भिन्न, अन्य क्षेत्रों से उपमानों को प्रस्तुत करने में भी कुमारदास इसी प्रतिभा का परिचय देते हैं—

वृक्षा मनोज्ञद्युति चम्पकाख्या रूपं वितेनुर्नवकुड्मलाढ्याः ।
न्यस्ता वसन्तस्य वनस्थलीभिः सहस्रदीपा इव दीपवृक्षाः ॥[२०]

[नव विकसित कलियों से आच्छादित वृक्षों ने चम्पक के नाम से सौन्दर्य प्राप्त कर मनभावनी शोभा धारण की; जान पड़ता है वसन्त की वनस्थलियों ने सहस्र दीपोंवाला दीपाधार स्थापित किया है ।] यह दीपाधार की उपमा प्रकृति-सौन्दर्य के कितने निकट है । कल्पना-सौन्दर्य के क्षेत्र में सेतुबन्ध के रचयिता प्रवरसेन का स्थान ऊँचा है, वे कालिदास के निकट माने जा सकते हैं । केवल इनकी कल्पना में यथार्थ जगत् का स्पर्श बहुत कम है, और कालिदास इस क्षेत्र में सर्वश्रेष्ठ हैं । प्रवरसेन प्रकृति से परिचित हैं पर वे उसके आदर्श रूप-रंग को अधिक चित्रित करते हैं । जहाँ तक प्रकृति के चित्रांकन का प्रश्न है ये सुन्दर सहज अप्रस्तुत की योजना उसी सफलता से करते हैं —

व्यतिक्रामन्ति च पश्यन्त प्रतिमासंक्रान्तधवलघनसंघातान् ।
स्फुटस्फटिकशिलासंकुलस्खलितोपरिप्रस्थितानिव नदीप्रवाहान् ॥

[सफेद बादलों के समूह को प्रतिछाया के रूप में ग्रहण कर लिया

२०. जान० ; स० ८ ; ७१, ७२ : स० ३ ; ३ ।

है ऐसे नदी के प्रवाह को देखते हुए वे लाँघ गये; ऐसा जान पड़ता था जैसे स्वच्छ स्फटिक शिलाओं के समूह से टकरा कर उसके ऊपर से नदी प्रवाहित हो रही हो।] इस चित्र में कितना सहज विधान है। परन्तु प्रवरसेन में जटिल कल्पनाओं का मोह है। जिस प्रकार उनकी वर्णना का विषय आदर्श कल्पनाओं से चुना गया है, उसी प्रकार उनके अप्रस्तुत चयन का क्षेत्र भी। परन्तु प्रकृति के इन दोनों आदर्श रूपों के सन्तुलन में सौन्दर्य्य की रक्षा करना इन्हीं का काम है—

शोभते विशुद्धकिरणो गगनसमुद्रे रजनिवेलालग्नः।
तारामुक्ताप्रकरः स्फुटविघटितमेघशुक्तिसंपुटमुक्तः॥

[आकाश रूपी समुद्र के रजनी तट पर बिखरे हुए शुभ्र किरणवाले तारा रूपी मोतियों का समूह मेघ-सीपी के संपुट के खुलने से बिखरा हुआ सुशोभित है।] इस चित्र में प्रस्तुत और अप्रस्तुत इस प्रकार मिल जुल कर सामने उभर आते हैं कि सौन्दर्य्य-बोध में उनका अलग अस्तित्व ही नहीं जान पड़ता। कवि ने सहज प्रकृति के लिए स्वतः सम्भावी आदर्श से उपमान ग्रहण किया है। यहाँ स्वतःसम्भावी का अर्थ परम्परा से भिन्न हो सकता है। सीप में मोती पाया जाता है और सीप सागर में होता है; इस कारण समुद्र तट पर मोती बिखरे न रहने पर भी उसकी कल्पना स्वाभाविक मानी गई है। परन्तु कवि कभी अपनी वर्ण्य आदर्श-प्रकृति को गोचर प्रत्यक्ष करने के लिये सहज प्रकृति से उपमान चुनता है—

दरस्फुटितशुक्तिसंपुटप्रलुठितशङ्खमुखभृतमुक्तानिकरम्।
मारुतदूरोच्छालितजलभृतार्धपथप्रतिनिवृत्तजलधरम्॥

[किंचित स्फुटित सीप के संपुट से लुढ़क कर शंख के मुख को पूर्ण कर दिया है ऐसा मोतियों का समूह पवन से व्याप्त होकर उछालने से जलपूर्ण होकर आधे मार्ग से लौटते बादलों के समान शोभित हुआ।] इन वर्णनों के अतिरिक्त प्रवरसेन की शैली में क्लिष्ट कल्पना और उक्ति-वैचित्र्य का स्थान भी है जिनका विकास आगे के कवियों में हुआ

है। एक स्थान पर उन्होंने सागर को 'वृक्ष उखाड़ लिये गए हैं ऐसे शैल, हिम से नष्ट की गई है लक्ष्मी (सौन्दर्य) ऐसे कमलाकर, पी लिया गया है आसव ऐसे प्याले, सुन्दर चन्द्र से हीन अँधेरी रात्रि' के समान कहा है। ये उपमान उक्ति प्रसूत तो नहीं हैं, पर इनकी योजना में इसी प्रवृत्ति का संकेत मिलता है। लेकिन प्रवरसेन में कल्पना का वैचित्र्य अधिक है उक्ति का आग्रह कम है।[२१] वर्णन-शैली की दृष्टि से भारवि की स्थिति सौन्दर्य्य कल्पनावादी कवियों के साथ है। इनमें कल्पना का सौन्दर्य्य कुमारदास और प्रवरसेन के समान है, पर साथ ही माघ और श्रीहर्ष की वैचित्र्य की प्रवृत्ति का पूर्ण रूप भी मिलने लगता है। किंतु अपनी व्यापक सीमाओं में वे इसी वर्ग के कवि माने जा सकते हैं। 'हिमालय की धूप से स्वर्ण-राजिवाली श्वेत शृंखला आकाश के नीले विस्तार में फैली है और उसके लिये कवि बिजली से युक्त गगन में फैले हुए शरद-कालीन बादलों की' कल्पना करता है। इसी प्रकार चन्द्रोदय का दृश्य वे इस प्रकार उपस्थित करते हैं—

नीलनीरजनिभे हिमगौरं शैलरुद्धवपुषः सितरश्मेः।
खे रराज निपतत्करजालं वारिधेः पयसि गाङ्गमिवाम्भः॥

[उदयाचल पर चढ़ते हुए इन्दु का उज्वल किरण समूह नीले आकाश में, निर्मल सागर में प्रवेश करते हुए गंगाजल के समान फैलता शोभित हुआ।] कवि ने प्रकाश के फैलने के भाव को उपमानों की योजना से अधिक प्रत्यक्ष कर दिया है। सागर में गंगा-प्रवेश से अधिक उसकी कल्पना में सौन्दर्य्य है और यह कल्पना सहज है। अगले प्रकरण में हम देखेंगे कि संस्कृत-काव्य में प्रकृति क्रमशः यथार्थ से आदर्श और कृत्रिमता की ओर बढ़ती गई है। और इस आदर्श प्रकृति के लिये भारवि प्रवरसेन के समान कभी सहज उपमानों का आश्रय भी लेते हैं—

---

२१. सेतु०, आ० १; ५७, २२: आ० २; २१, ११: आ० ७; २७ (कल्पना-वैचित्र्य)।

सक्ति जवादपनयत्यनिले लतानां
वैरोचनैर्द्विगुणिताः सहसा मयूखैः ।
रोधोभुवां मुहुरमुत्र हिरण्मयीनां
भासस्तडिद्विलसितानि विडम्बयन्ति ॥

[यहाँ पवन के वेग से सहसा लताओं के मिलित पुंजों के हटाये जाने पर, सूर्य की किरणों से द्विगुणित स्वर्णमय तटों की भूमि की आभा बार-बार बिजली के कौंधने की शोभा का अनुकरण करती है।] यहाँ बार बार बिजली के चमकने की उपमा स्वर्ण-तट की आदर्श कल्पना को साकार कर देती है। जैसा कहा गया है भारवि में चमत्कार की प्रवृत्ति पिछले कवियों से अधिक है और इसका निर्देश इनकी कलात्मक शैली में मिलता है। 'शिरीष के फूल के समान कोमल तोतों की मूँगों के समान लाल चोंचों में पीले धान की बालियों की शोभा इन्द्रधनुष के समान, कहना, रंगों के संयोग की सुन्दर कल्पना है पर इसमें वैचित्र्य की भावना भी है। अन्यत्र रंगों की कल्पना इसी प्रकार की गई है—

मृणालिनीनामनुरञ्जितं त्विषा विभिन्नमम्भोजपलाशशोभया ।
पयः स्फुरच्छालिशिखापिशङ्गितं द्रुतं धनुष्खण्डमिवाहिविद्विषः ॥[२२]

[मृणालिनी की आभा से हरित, कमल की पंखुरियों से भिन्न रंग (लाल) किया हुआ तथा चंचल शालि के अग्रभागों (छाया) से पीला किया हुआ कंपित जल इन्द्रधनुष के समान है।] परन्तु इन विचित्र कल्पनाओं का आधार सौन्दर्य्य है क्योंकि उपमानों की स्थिति और योजना प्रस्तुत के अनुरूप चलती है।

ख—यह वैचित्र्य की भावना माघ में अधिक विकसित हो गई है

---

२२. किरा० ; स० ५ ; ४ : स० ९ ; १९ : स० ५ ; ४६ : स० ४ ; ३६

और उनमें उक्तियों का आग्रह भी बढ़ गया है। उक्तियों की ऊहात्मकता का चरम विकास हमको श्रीहर्ष में मिलता है। और यह प्रवृत्ति इनकी स्वतःसम्भावी कल्पनाओं में ही लक्षित हो जाती है। वास्तव में इन कवियों के सामने प्रकृति का सहज रूप नहीं है और उसके चित्रांकन के लिये स्वाभाविक सौन्दर्य्यमयी कल्पानाएँ इन्हों ने यत्र-तत्र ही की है। उनमें भी वैचित्र्य का संकेत है। पर माघ में ऐसे स्थल श्रीहर्ष से अधिक हैं और वे परम्परा के साथ प्रकृति के अधिक निकट हैं। इनके कुछ चित्रों में स्वाभाविक सौन्दर्य्य है—

वैचित्र्य की प्रवृत्ति

द्रुतसमीरचलैः क्षणलक्षितव्यवहिता विटपैरिव मञ्जरी।
नवतमालनिभस्य नभस्तरोरचिररोचिर-रोचत वारिदैः॥

[आकाश-वृक्ष की गतिशील पवन से संचलित बादलों रूपी शाखाओं में बिजली नवीन तमाल (की शाखाओं) में मंजरी के समान क्षण भर के लिए लक्षित होकर छिप-छिप जाती है।] इसमें संचलन और रंगों का स्वाभाविक सम्मिश्रण है और प्रस्तुत-अप्रस्तुत का आधार सौन्दर्य्य कल्पना है। जहाँ इन्होंने आदर्श प्रकृति को सहज प्रकृति के चित्र से प्रत्यक्ष करने का प्रयास किया है, वहाँ वैचित्र्य की प्रधानता है। प्रवरसेन के समान माघ सौन्दर्य्य-बोध नहीं करा पाते हैं। 'रैवतक पर्वत की नदियों के स्फटिक तथा मरकत के तटों से उनका जल अपने प्रवाह में गंगा-यमुना का संगम जान पड़ता है' माघ की इस कल्पना में उक्ति का आग्रह है पर रंग का सम्मिश्रण सुन्दर बन पड़ा है। रंगों की कल्पना में माघ प्रवरसेन के समकक्ष हैं और कालिदास तथा भारवि इनके बाद आते हैं। अन्तर यह है कि कालिदास के रंगों का समन्वय रूप के साथ चलता है और यथार्थ को स्पर्श करता है, प्रवरसेन में आदर्श सौन्दर्य्य की भावना इस क्षेत्र में काम करती है और माघ में वैचित्र्य अधिक है। माघ जब अप्रस्तुत के लिए प्रकृति क्षेत्र से बाहर जाते हैं, उस समय उनका ध्यान चित्र को प्रत्यक्ष करने से अधिक उपमान को प्रस्तुत करने पर रहता है—

आच्छाद्य पुष्पपटमेष महान्तमन्त-
रावर्तिभिर्गृहकपोतशिरोधराभैः ।
स्वाङ्गानि धूमरुचिमागुरवीं दधाने-
र्धूपायतीव पटलैर्नवनीरदानाम् ॥

[जिसके विस्तृत पुष्पमय वस्त्र पालतू कबूतर के गले के समान नीले और अगर के धुएँ से सुन्दर नवीन मेघों से आच्छादित हैं, ऐसा यह रैवतक पर्वत धूप से अपने अंगों को सुवासित सा कर रहा है।] इस कल्पना का प्रयोग स्वाभाविक के साथ कलापूर्ण है, पर जैसे कवि का ध्यान 'अंगों को धूप से वासित करनेवाले अप्रस्तुत' की ओर अधिक है। यही बात माघ के प्रकृति-मानवीकरण के वर्णनों से स्पष्ट होती है। कालिदास जब प्रकृति पर मानवीय आकार-प्रकार का आरोप करते हैं, उस समय प्रकृति अपने रंग-रूप में मानवीय जीवन से स्पन्दित जान पड़ती है, पर माघ के आरोप केवल विशृंखल कल्पना के आधार पर चलते हैं जिनमें कवि की उक्ति का आग्रह अधिक प्रकट होता है—

अरुणजलजराजीमुग्धहस्ताग्रपादा
बहुलमधुपमालाकज्जलेन्दीवराक्षी ।
अनुपतति विरावैः पत्रिणां व्याहरन्ती
रजनिमचिरजाता पूर्वसन्ध्या सुतेव ॥[23]

[अरुण कमल की श्रेणी ही जिसके सुन्दर हस्त-पद-तल हैं, और भ्रमर श्रेणी जिसके नीलकमल नेत्रों में कज्जल है ऐसी प्रातःसन्ध्या पक्षियों के कलरव में आलाप करती हुई बालिका की भाँति रात्रि का अनुसरण कर रही थी।] इस आरोप में व्यापक रूप से जो कल्पना रक्षित है उसमें व्यंजना-सौन्दर्य है, पर माघ की यह प्रमुख प्रवृत्ति नहीं है। श्रीहर्ष में वैचित्र्य और उक्ति की प्रवृत्ति सब से अधिक है। साथ ही प्रकृति के प्रति उनका एकमात्र रूढ़िवादी दृष्टिविन्दु है। प्रकृति के

---

२३. शिशु० ; स० ६ ; २८ : स० ४ ; २६ , ५२ : स० ११ ; ४०।

विस्तृत सौन्दर्य्य का आकर्षण उनमें नहीं है और वे उसके व्यापक क्षेत्र से सौन्दर्य्य मूलक अप्रस्तुत-योजना करने में असफल रहे हैं। उनसे कलात्मक प्रकृति चित्रांकन की आशा करना व्यर्थ है। सहज स्वाभाविक चित्रमयता उनसे संभव नहीं है। सूर्य्यास्त के समय की उनकी कल्पना इस प्रकार आकार ग्रहण करती है—

> **आदाय दण्डं सकलासु दिक्षु**
> **योऽयं परिभ्राम्यति भानुभिक्षुः।**
> **अब्धौ निमज्जन्निव तापसोऽयं**
> **सन्ध्याभ्रकाषायमधत्त सायम् ॥**[२४]

[सूर्य भिक्षु के समान दण्ड लेकर सारी दिशाओं में घुमाता रहा। तापस के समान सान्ध्य-काल के (गेरुआ) बादलों के वस्त्र धारण किये हुए वह अब सागर का अवगाहन सा कर रहा है।] इस वर्णना में वैचित्र्य अधिक है, इससे प्रकृति का रूप किंचित भी प्रत्यक्ष नहीं होता।

§ ६—पिछले अनुच्छेद के चित्रणों में जिस आलंकारिक योजना का आश्रय लिया गया है उनमें अप्रस्तुत की स्थितियाँ स्वाभाविक हैं।

प्रौढ़ोक्ति सम्भव कल्पना

परन्तु कवि अपनी कल्पना में वास्तविक स्थितियों के नवीन संयोग उपस्थित करने के लिये स्वतंत्र होता है। और यह व्यक्तिगत प्रतिभा की बात है कि कवि इन प्रयोगों से चित्रांकन को किस सीमा तक सुन्दर बना सका है। प्रौढ़ोक्ति सम्भव कल्पना के क्षेत्र में कवियों में पिछला क्रम ठीक उतरता है। प्रथम कवियों ने ऐसे संयोग उपस्थित किये गये हैं जिनमें वर्णन को सुन्दर और चित्रमय बनाने की शक्ति है। साथ ही इन संयोगों में सहज स्वाभाविकता पाई जाती है। बाद के कवियों में क्रमशः संयोग अधिक ऊहात्मक और विचित्र हो गये हैं और उनमें चित्र को प्रत्यक्ष करने की

---

२४. नैष० ; स० २२ ; १२।

भावना कम होती गई है। वास्तव में शैली के इसी रूप से अगली वैचित्र्य की शैलो का विकास हुआ है। दोनों में भेद इतना है कि इसमें सौन्दर्य्य की प्रवृत्ति रक्षित है और उसमें केवल उक्ति का चमत्कार बढ़ता जाता है। अश्वघोष 'वसन्त में मस्त होकर कूजते हुए कोकिलों के विषय में कल्पना करते हैं कि वे एक-दूसरे की प्रतिध्वनियाँ ही हों जैसे।' यह प्रौढ़ोक्ति होकर स्वाभाविक उक्ति है। एक दूसरा चित्र इस प्रकार है—

पश्य भर्तश्चितं चूतं कुसुमैर्मधुगन्धिभिः।
हेमपञ्जररुद्धो वा कोकिलो यत्र कूजति ॥[२५]

[हे स्वामिन्, मधुगंधमयी मंजरियों से युक्त आम्र के वृक्ष को देखिये, जिस पर सोने के पिंजड़े में बन्द सा कोकिल कूँज रहा है।] इस वर्णन में आम्र-मंजरियाँ जैसे अधिक प्रत्यक्ष हो उठती है और कोकिल का स्वर अधिक स्पष्ट सुनाई देता हो। चित्रांकन शैली के इस रूप के सबसे सिद्धहस्त कलाकार कालिदास हैं। प्रकृति के रूप को देखकर उसके सौन्दर्य्य के अनुरूप कालिदास की उत्प्रेक्षा की कल्पना सबसे अधिक चित्रमय हो उठतो है। इस उपमानों की योजना में चित्र का कलात्मक सौन्दर्य्य रक्षित रहता है। प्रौढ़ोक्ति सम्बंधी कल्पनाओं में वस्तु-स्थिति के सम्बंध में अथवा कारणों के सम्बंध में उत्प्रेक्षा का अधिक प्रयोग होता है। प्रचलित चित्र से प्रस्तुत वर्ण्य को प्रत्यक्ष करने से नवीन संयोगों की कल्पनाएँ अधिक कलात्मक होती हैं। परन्तु इनमें सौन्दर्य्य से वैचित्र्य की ओर बढ़ने का भय भी है। आगे के कवियों में ऐसा देखा जाता है। कालिदास वस्तु-स्थिति की उपमा अपनी कल्पना से इस प्रकार सजाते हैं—

तामितां तिमिरवृद्धिपीडितां शैलराजतनयेऽधुना स्थिताम्।
एकतस्तटतमालमालिनीं पश्य धातुरसनिम्नगामिव ॥

---

२५. बुद्ध० ; स० ४ ; ५१, ४४।

[हे शैलराज पुत्री देखो ! एक ओर से बढ़ते हुए अन्धकार से घिरी हुई सन्ध्या, जिसके तट पर तमाल का समूह छाया हुआ है ऐसी गैरिक की सरिता के समान जान पड़ती है।] यद्यपि कवि ने 'गैरिक-सरिता के तट पर छाए हुए तमाल समूह' की कल्पना संयोग के आधार पर की है पर उससे चित्र सौन्दर्य्य-रूप हो उठता है। कालिदास की उत्प्रेक्षाओं में यही चमत्कृत सौन्दर्य्य उत्पन्न करने की शक्ति है। 'सरोवर के जल में पश्चिम में डूबते हुए सूर्य की छाया फैल गई है और कवि कल्पना करता है मानों सुनहला पुल बनाया गया है।' यह वस्तु-स्थिति को प्रत्यक्ष करने के लिए प्रयुक्त उत्प्रेक्षा है। आगे कवि उत्प्रेक्षा की योजना में ऐसा ही दृश्य उपस्थित करता है—

एष वृक्षशिखरे कृतास्पदो जातरूपरसगौरमण्डलम् ।
हीयमानमहरत्ययातपं पीवरोरु ! पिबतीव बर्हिणः ॥

[हे पविरोरु, वृक्ष पर बैठे हुए मोर की गोल-गोल सोने के पानी के समान सुनहली चन्द्रिकाओं से युक्त पूँछ से जान पड़ता है मानों वह साँझ की धूप पी रहा है और इसी से दिन ढल रहा है।] इस सन्ध्या के चित्र में कारण सम्बंधी कल्पना से जैसे दृश्य में क्रमशः परिवर्तन की भावना आ गई है। इसमें सन्ध्या की उदासी की व्यंजना है। कालिदास ने प्रकृति के लिए अमूर्त उपमान भी प्रस्तुत किये हैं, और ऐसे प्रयोगों में उन्होंने वर्णना के सौन्दर्य्य का निर्वाह किया है—

हंसश्रेणीषु तारासु कुमुद्वत्सु च वारिषु ।
विभूतयस्तदीयानां पर्यस्ता यशसामिव ॥[२६]

[हंस समूहों की पंक्ति में, आकाश के तारों में, कुमुद से सुशोभित सरोवरों में रघु के यश के समान उसकी विभूति बिखर गई।] इसमें प्रकृति के माध्यम से अमूर्त सौन्दर्य्य को व्यक्त किया गया है।

---

२६. कुमा० ; स० ८ ; ५३, ३४, ३६ । रघु० ; स० ४ ; १९ ।

क—प्रौढ़ोक्तियों के क्षेत्र में कालिदास के साथ किसी अन्य कवि को नहीं रखा जा सकता। किसी की कल्पना में सौन्दर्य्य का इतना निखार नहीं है। बुद्धघोष 'अशोक के पुष्पगुच्छ के समान लाल अस्ताचल जाते हुए सूर्य्य के लिये समुद्र-मंथन के समय लगी हुई प्रवाल की लता के मण्डल की उपमा देते हैं।' इसमें वस्तुस्थिति का सौन्दर्य्य है पर चित्र में सहज प्रभावित करने की बात नहीं है। कहीं-कहीं इस प्रकार की वर्णना में स्वाभाविक सौन्दर्य्य आ गया है—

कलात्मक प्रयोग

पुरन्दराक्रान्तिभयेन ये पुरा पयोनिधिं प्रापुरलूनपक्षकाः।
समुत्पतन्तीव त एव भूधरास्ततः समुद्यन्नववारिदच्छलात्॥[२७]

[पहले इन्द्र के भय से आतंकित होकर जो पक्षधारी पर्वत समुद्र में छिप गए थे, वे ही मानों उमड़ते हुए नवीन मेघों के रूप में फैलते जा रहे हैं।] यद्यपि इस योजना में पौराणिक उल्लेख का आश्रय लिया गया है, पर यह चित्र को सजीवता प्रदान करने में अपने संयोगों के आधार पर सफल हुई है। इसी प्रकार कुमारदास 'कुमुदों से निकलते हुए भौरों को चन्द्रमा द्वारा नष्ट किये हुए आकाश के अन्धकार के रूप में' कहते हैं। यह कल्पना प्रस्तुत चित्र से बहुत निकट की नहीं है, पर चन्द्र द्वारा प्रकाशित दिशाओं और खिले कुमुदों का रूप प्रकट करने में सहायक है। एक स्थल पर कवि 'सन्ध्या समय पशुओं के भागने और सूर्य्य के अस्त होने के दृश्यों को सम्मुख रख कर सूर्य्य की मृगया की उत्प्रेक्षा करता है।' इसमें गति का भाव स्पष्ट है, पर वैचित्र्य की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। परन्तु जानकीदास ने अधिकतर कलात्मक प्रयोग किये हैं। चन्द्रमा के फैलते हुए प्रकाश को वे इस प्रकार उपस्थित करते हैं—

---

२७. पद्य०; स० ८; ३: स० ५; १०।

क्षिप्यमाणघनतामसोत्करं दूरमुत्सरति मण्डलं दिशाम् ।
शीतरश्मिकिरणस्य सर्वतो दातुमन्तरमिव प्रसर्पतः ॥[२८]

[दूर हो रहा है घने अन्धकार का समूह जिसमें ऐसा दिशा-मण्डल चन्द्रमा की किरणों को चारों ओर से अवकाश देने के लिये दूर हटता जाता है ।] अन्धकार के हटने के कारण में जो कल्पना की गई है उससे प्रकाश के दिशाओं में फैलने का भाव चित्रमय हो गया है । इस क्षेत्र में प्रवरसेन की प्रौढ़ोक्तियों में पौराणिक संकेत, अलौकिकता तथा वैचित्र्य अधिक है । इनसे जानकीदास और भारवि दोनों नवीन काल्पनिक योजना करने में अधिक सफल हुए हैं । इसका कारण उनकी प्रकृति के क्षेत्र का आदर्श और अलौकिक होना है । जैसा पिछले अनुच्छेद में कहा गया है वे आदर्श-प्रकृति को स्वतःसम्भावी अप्रस्तुतों के आधार पर उपस्थित करते हैं । परन्तु जब ऐसी प्रकृति की वर्णना के लिये कवि प्रौढ़ोक्ति करेगा तब वैचित्र्य का रूप आ जाना स्वभाविक है । कवि 'ताम्रमणि की शिला पर चन्द्रमृग की छाया के लिये सूर्य्य के घोड़ों की टाप की कल्पना' करता है । इसमें वैचित्र्य ही अधिक है । दूसरे स्थल पर 'ज्योत्स्ना से प्रकाशित रात्रि सुन्दर शरद की मुक्तावली की शोभा को धारण कर मानों सूर्य्य की शोभा को छीन रही है ।' इसमें कलात्मक चित्रमयता का स्वरूप आया है । कभी प्रवरसेन अमूर्त उपमान को उपस्थित कर दृश्य को चित्रमय बनाते हैं—

मुखरघनविप्रकीर्णं जलनिवहं भृतसकलनभोमहीविवरम् ।
नदीमुखपर्यस्यन्तमात्मनो विनिर्गतं यश इव पिबन्तम् ॥[२९]

[गरजते हुए मेघ समूहों से फैलाया हुआ और समस्त आकाश तथा पृथ्वी को व्याप्त कर लिया है जिसने ऐसे जलसमूह को सागर नदी के

---

२८. जान० ; स० ८ ; ८२ : स० १ ; ६९ : स० ८ ; ७३ ।
२९. सेतु० ; आ० ९ ; ५४ : आ० १ ; २७ : आ० २ ; ५

गिरने के स्थान पर अपने ही फैले हुए यश के समान पोता है।] इस सारी कल्पना से सागर में नदी-प्रवाह के मिलने का दृश्य प्रत्यक्ष होता है और यश की अमूर्त भावना सौन्दर्य्य में स्फुरण उत्पन्न कर देती है। भारवि अप्रस्तुत की नवीन कल्पनाओं में अधिक चित्रमय हैं। परन्तु कालिदास जैसी स्वाभाविकता लाने की शक्ति इनमें नहीं है। आदर्श प्रकृति के रूप को प्रौढ़ोक्ति से प्रवरसेन के समान ये सुन्दर से अधिक विचित्र कर देते हैं। 'स्फटिक तथा चाँदी की दीवालों पर सूर्य्य-किरणों के पड़ने से दोपहर में ही चाँदनी रात का भ्रम होता है।' इस वर्णन में रंगों के संयोग का चित्र उभरता है, क्योंकि 'स्फटिक दीवालों के पीछे इन्द्रनील की प्रभा' पर स्फटिक शिला को भेद कर सूर्य्य किरणों के पड़ने से ज्योत्सना के प्रकाश की कल्पना उचित है। पर रंगों का यह संयोग सहज-ग्राह्य नहीं है। अन्यत्र वस्तु-स्थिति से सम्बंध रखनेवाली उत्प्रेक्षा से दृश्य का रूप उभरता है—

> अवरितोज्झितवारिविपाण्डुभिर्विरहितैरचिरद्युतितेजसा ।
> उदितपक्षमिवारतनिःस्वनैः पृथुनितम्बविलम्बिभिरम्बुदैः ॥

[निरन्तर वृष्टि के कारण पाण्डु आभावाले, जिनमें बिजली अब नहीं चमकती और जो अब गर्जन भी नहीं करते ऐसे शिखर भाग पर छाये हुए मेघों से, मानों वह पर्वत पंखवाला कर दिया गया है।] यहाँ पंखों की कल्पना से पर्वत-शिखर पर छाये हुए बादलों का चित्र अधिक साकार हो गया है। कारण सम्बंधी उत्प्रेक्षाओं से भारवि चित्र को अधिक व्यंजित कर सके हैं। 'अन्धकार में सब एकाकार हो गया है और ऊँचे-नीचे का भेद नहीं जान पड़ता है, मानों अस्त होते सूर्य्य ने संसार की विशेषताओं को अपने में निहित कर लिया है।' सूर्य्य के प्रकाश के साथ संसार का दृश्य-जगत् विलीन होता हुआ सामने अंकित हो जाता है। और कभी कारण की कल्पना से कवि ने स्थिति के स्तरों को मूर्तिमान कर दिया है—

अथ जायय नु मेरुमहीभृतो रभसया नु दिगन्तदिदृक्षया ।
अभिययौ स हिमाचलमुच्छ्रितं समुदितं न विलङ्घयितुं नभः ॥[३०]

[इसके अनन्तर अर्जुन, हेमाद्रि को विजित करने के लिये, फैले हुए दिगन्त को देखने की इच्छा से उल्लास के साथ आकाश को लाँघकर उठते हुए हिमालय के निकट गया ।] इसमें प्रत्येक कारण की कल्पना पर्वत के विस्तृत फैले हुए आकार को क्रमशः प्रत्यक्ष सम्मुख करती जाती है ।

ख—क्रमशः माघ और श्रीहर्ष में प्रौढ़ोक्तियों के क्षेत्र में वैचित्र्य की कल्पना प्रधान होती जाती है । आगे हम देख सकेंगे कि किस प्रकार इन कवियों में कल्पना का स्थान उक्ति-वैचित्र्य तथा ऊहात्मकता ने ले लिया है । परन्तु यहाँ हम देख सकते हैं कि सौन्दर्य्य-बोध के अन्तर्गत आनेवाली इनकी अप्रस्तुत-योजना में भी वैचित्र्य की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है । माघ के उपमानों का क्षेत्र आदर्श प्रकृति से विचित्र प्रकृति की ओर हट गया है और वे कवि-प्रसिद्धियों, पौराणिक-सिद्धियों तथा चमत्कृत उक्तियो से प्रकृति का चित्रांकन करते हैं । ऐसा पिछले कवियों में है, पर उनकी दृष्टि में प्रस्तुत वर्ण्य-विषय से सादृश्य की भावना रही है । माघ 'उदय-पर्वत पर किंचित उठे हुए सूर्य्य के लिये पर्वत पर खिले हुए दोपहरिया के फूलों की' उत्प्रेक्षा देते हैं । यह सौन्दर्य्य चित्र अवश्य है, पर 'केवलं नोदयाद्रिः' से वे अपनी उक्ति पर बल देते हैं जिससे चित्र की सुन्दरता में कमी आ जाती है । अन्यत्र वे 'हाथीदाँत के समान शुभ्र-वर्ण केतकी के फूलों को भ्रमरो से शोभित देखकर मेघों के आघात से आकाश से गिरी हुई क्षीण-ज्योति चन्द्रिका के खण्डों से उत्प्रेक्षा देते हैं ।' इस कल्पना में चित्रमयता के सौन्दर्य्य के स्थान पर वैचित्र्य का सौन्दर्य्य अधिक है । पर यहाँ चन्द्रिका के सूक्ष्म-खण्ड का उपमान के रूप में सुन्दर रीति से

वैचित्र्य कल्पना

---

३०. किरा० ; स० ५ ; ११ , ६ : स० ९ ; १२ : स० ५ ; १ ।

ग्रहण किया गया है जिससे केतकी के चतुर्दिक फैले हुए फूलों का रूप प्रस्तुत हो जाता है। कभी कवि क्रिया के विषय में ऐसा ही प्रयोग करता है—

गुर्वीरजस्त्रं दृषदः समन्तादुपर्युपर्यम्बुमुचां वितानैः।
विन्ध्यायमानं दिवसस्य भर्तुर्मार्गं पुना रोद्धुमिवोन्नमद्भिः॥[31]

[बड़ी विशाल चट्टानों के ऊपर चारों ओर से निरन्तर छाये हुए मेघों से जान पड़ता है मानों सूर्य्य के मार्ग को रोकने के लिये फिर से रैवतक विन्ध्याचल का आचरण कर रहा है।] विन्ध्य की आकाश की ओर उठने की पौराणिक कल्पना से माघ ने पर्वत की चट्टानों पर घिरते हुए मेघों को जैसे प्रत्यक्ष कर दिया हो। इस वर्णन में भारवि के चित्र जैसी सुन्दरता है। श्रीहर्ष प्रमुखतः मानवीय जीवन के कवि हैं; प्रकृति की वर्णना, उनके लिये बहुत कुछ परम्परा का पालन है। वैचित्र्य की प्रवृत्ति उनको प्रौढ़ोक्तियों का मुख्य आधार है, और वह इनमें कहाँ तक बढ़ गई है यह आगे देखेंगे। परन्तु श्रीहर्ष प्रकृति के चित्र में मानवीय जीवन की व्यंजना से चित्रमयता भी ले आते हैं। 'प्रातःकाल क्रमशः प्रकाश होने से छोटे तारे विलीन हो गये हैं और चन्द्रमा अपने मलीन होते प्रकाश से जैसे रात्रि के अन्धकार से निरन्तर युद्ध करती हुई अपनी थकी किरणों की कहानी कहता है।' इस कल्पना में, प्रकाश में मलीन होते चन्द्रबिम्ब का थका-थका रूप रात्रि की छिटकी हुई चन्द्रिका के विरोध में सजीव हो उठा है। परन्तु जब श्रीहर्ष उत्प्रेक्षा प्रकृति से ग्रहण करते हैं, उसमें वैचित्र्य प्रधान रहता है—

सिताम्बुजानां निवहस्य यच्छलाद्बभावलिश्यामलितोदरश्रियाम्।
तमःसमच्छायकलङ्कसंकुलं कुलं सुधांशोर्बहलं वहन्बुहु॥[32]

[जिनके मध्यभाग भ्रमरों से श्यामायमान हैं ऐसे श्वेत कमलों के

---

३१. शिशु० ; स० ११ ; ४६ : स० ६ ; ३४ : स० ४ ; २।
३२. नैष० ; स० १९ ; ४ : स० १ ; ११०।

समूह से सरोवर शोभित हैं मानों मृग-चिन्हों से युक्त बहुत से चन्द्रमाओं का समूह एकत्र हो गया है।] यहाँ उपमान वस्त-स्थिति से सादृश्य बहुत कम रखता है, इसलिये कल्पना में वैचित्र्य का सौन्दर्य्य अधिक है।

§ १०—प्रथम प्रकरण में कहा गया है कि प्रकृति मानव जीवन के समानान्तर सचेतन और सप्राण है। मनुष्य प्रकृति को अपने इस दृष्टिकोण से भिन्न नहीं कर पाता है। यही कारण है कि प्रकृति के चित्रांकन में कवि अनेक प्रकार से भावों की व्यंजना सन्निहित कर देता है। प्रकृति के रूप और मानवीय जीवन से विभिन्न सम्बंधों की व्याख्या अगले प्रकरणों का विषय है। यहाँ प्रकृति के चित्रांकन की भावात्मक शैली पर विचार कर लेना है। वास्तव में प्रकृति पर किसी न किसी रूप में मानव-जीवन के आरोप की यह शैली है। मानवीकरण का स्थूल रूपाकार शैली के पिछले रूपों के अन्तर्गत आ जाता है, परन्तु जीवन, क्रिया व्यापार तथा भावशीलता सम्बंधी व्यंजनाएँ इस रूप के अन्तर्गत आती हैं। अन्य रूपों की भाँति भाव-व्यंजना की शैली में भी कवियों की प्रवृत्ति क्रमशः अधिकाधिक स्थूलता और हाव-भावों को व्यक्त करने की होती गई है। जैसा हम देखेंगे, उद्दीपन-विभाव के अन्तर्गत प्रकृति के वर्णन की परम्परा ने इस प्रवृत्ति के विकास में योग दिया है।

भावात्मक व्यंजना

क—कालिदास में प्रकृति के प्रति व्यापक सहानुभूति है। वे प्रकृति से जैसे परिचित हैं, वैसी ही निकटता का अनुभव भी करते हैं। इस कारण वे प्रकृति के चित्रों में भावों की व्यंजना करने में सबसे अधिक सफल हुए हैं। वे स्वतंत्र रूप से प्रकृति में भावशीलता का आरोप व्यंजित करते हैं—

स्वाभाविक

रुद्धनिर्गमनमा दिनक्षयात् पूर्वदृष्टतनु चन्द्रिकास्मितम्।
एतदुद्गिरति चन्द्रमण्डलं दिग्रहस्यमिव रात्रिनोदितम्॥

[जो दिन भर दिखाई नहीं दिया था वह चन्द्रमा, दिन के अन्त होने पर चन्द्रिका के रूप में मुस्कराता हुआ पूर्व दिशा में दिखाई दिया मानों

रात्रि के आग्रह से दिशा का रहस्य खोल रहा हो।] यहाँ प्रकृति का सारा वातावरण भावपूर्ण हो उठा है; और प्रकृति के उपकरण सहज निकटता के भाव से मानव-जीवन के समीप आ गये हैं। इस उत्प्रेक्षा में 'सपत्नी' आदि की बात प्रधान नहीं है केवल गौण हैं। शास्त्रीय अर्थों में तो वही ध्वनि है, पर यहाँ व्यापक भाव-व्यंजना ही प्रधान है। इस प्रसंग में व्यंजना शब्द का प्रयोग शास्त्रीय ध्वनि के अर्थों में नहीं किया गया है। इसी प्रकार कवि कल्पना करता है कि 'प्रातःकाल का वायु रघु की साँस की स्वाभाविक सुगन्ध पराये गुणों से प्राप्त करने की इच्छा से वृक्षों की डालियों से शिथिल पुष्पों को तोड़ती और सूर्य की किरणों से खिलाये कमलों के पास जाता है।' कारण की कल्पना करके कवि ने इस चित्र में प्रकृति को संवेदनशील बना दिया है, मानों पवन स्नेहपूर्ण आत्मीयता से वृक्षों पर होकर सरोवर पर बह गया है। अन्यत्र कवि 'एक ही पुष्पपात्र में रस पीते हुए भ्रमर तथा आँख बन्द किये बैठी मृगी को सींग से खुजाते हुए मृग' के सहज चित्र में क्रिया-व्यापार मात्र से भावों को व्यक्त कर देता है। कालिदास ने प्रत्यक्ष आरोपों में व्यंजना का भावात्मक सौन्दर्य्य प्रस्तुत किया है। 'आकाश की चंचल तारिका मानों नववधू के समान भय से कम्पित शशि रूपी पति के पास जा रही है।' इसमें तारिका के कंपन को भय से प्रत्यक्ष किया गया है और समग्र दृश्य में भावशीलता आ गई है। आगे के वर्णन में किंचित आरोप के सहारे भावात्मक सौन्दर्य्य का रूप व्यक्त किया गया है—

अमदयन्मधुगन्धसनाथया किसलयाधरसंगतया मनः।
कुसुमसंभृतया नवमल्लिका स्मितरुचा तरुचारुविलासिनी ॥[33]

[वृक्षों की श्रेष्ठ वधू नवमल्लिका लता ने मधुगंध से युक्त कोपल के ओठों पर पड़ी फूलों से रची मधुर मुस्कान से मन मत्त कर

---

३३. कुमा० ; स० ८ ; ६० । रघु० ; स० ५ ; ६९ । कुमा० ; स० ३ ; ३६ : स० ८ ; ७३ । रघु० ; स० ९ ; ४२ ।

दिया है।] इस प्रकृति में मुस्कान का भाव अपने सौन्दर्य्य के साथ प्रतिघटित हो उठता है और उसका आकर्षण चित्र में स्वयं फैल जाता है। इस क्षेत्र में बुद्धघोष ने बहुत कम प्रयोग किये हैं, पर अपनी सरलता में वे कालिदास के निकट हैं—

शिखण्डिनामद्भुतताण्डवश्रियामरण्यरङ्गे मधुरप्रणादिनाम् ।
विलोक्य विद्युन्नयनेन विभ्रमान् प्रशंसतीव स्तनितेन तोयदः ॥[३४]

[वन के रंगमंच पर, मधुर स्वर के साथ मयूरों के नृत्य की अद्भुत शोभा को, बादल विद्युत के चकित नेत्रों से देखकर गरज कर प्रशंसा सी करता है।] चित्र वर्ण्य-सौन्दर्य्य के साथ यहाँ प्रकृति में भावात्मक व्यापार की कल्पना प्रत्यक्ष है। प्रकृति में मानवीय भावनाओं के आरोप की शैली में कुमारदास कालिदास के समान हैं। कालिदास जैसा विस्तृत क्षेत्र इनका नहीं है, पर कल्पना की स्वाभाविकता में वे कम नहीं हैं। सूर्यास्त के इस चित्र में कैसी सहज भावशीलता है—

सन्निगृह्य करसन्ततिं क्वचित्प्रस्थितोऽपि रविरेष रागवान् ।
अस्तमस्तकमधिश्रितः क्षणं पश्यतीव भुवनं समुत्सुकः ॥

[अपने किरण-समूह को समेट कर कहीं प्रस्थान के लिये प्रस्तुत लाल-लाल यह सूर्य्य अस्ताचल के शिखर पर स्थित, उत्सुक होकर क्षण भर के लिए संसार को देखता सा है।] डूबते हुए सूर्य्य के लिये कवि की यह कल्पना अत्यन्त सुन्दर और भाव-व्यंजक है। जहाँ कवि आरोप के लिये प्रस्तुत में स्थूल आधार ग्रहण करता है, वहाँ भी भाव और दृश्य के सौन्दर्य्य का सन्तुलन बना रहता है। 'मृणाल के कंगन धारण किये हुए (कमल-सरोवर) सरोजनी, जिसके नेत्र निद्रा के आलस्य से बन्द हो रहे हैं, मूर्च्छा से निश्चेष्ट होती स्त्री के समान शोभित हुई।' इसमें अनुभावों की योजना से भाव का व्यंजना की गई है, पर क्रिया-व्यापार प्रमुख होकर वैचित्र्य की सृष्टि नहीं करते हैं। आगे

३४. पद्य० ; स० ५ ; १२।

उद्दीपन-विभाव के अन्तर्गत प्रकृति में आरोप की यह प्रवृत्ति वैचित्र्य तथा रूढ़ि की सीमा तक बढ़ गई है। जानकीदास प्रकृति में आत्मीय संवेदना को इस प्रकार व्यक्त करते हैं—

वासन्तिकस्यांशुचयेन भानोर्हेमन्तमालोक्य हतप्रभावम् ।
सरोरूहामुद्धृतकण्टकेन प्रीत्येव रम्यं जहसे वनेन ॥[35]

[वसन्तकालीन सूर्य्य के किरण-समूह से हेमन्त को प्रभावहीन होता देखकर, जिसका शत्रु नष्ट हो गया है ऐसा कमल का वन खुल कर स्नेह से हँसा ।] इस प्रकृति के सौन्दर्य्य में जैसे स्नेह का उल्लास बिखर गया है।

ख—बाद के कवियों में व्यंजना का यह सौन्दर्य्य नहीं मिलता है। आरोप की स्थूलता और वैचित्र्य की प्रवृत्ति भाव की सहज अभिव्यक्ति में बाधक हुई है। प्रवरसेन प्रकृति के क्रिया-व्यापारों में मानवीय अनुभावों का आरोप समुद्र में प्रवेश करती हुई सरिता पर करते हैं। 'सागर से मिल कर फिर पीछे लौटती हुई, मिलन-प्रत्यावर्तन की इच्छा से कम्पित चंचल तरंगोंवाली नदी वापस होकर फिर तरंगहीन हो सागर मे मिल रही है।' सरिता की इन क्रियाओं से नवयुवती के समागम काल की कलापूर्ण व्यंजना की गई है। इसमें आरोप अप्रत्यक्ष है, इसलिये चित्र में कलात्मकता है। अन्यत्र कवि ने उक्ति से प्रकृति का भाव-चित्र उपस्थित किया है—

कलात्मक

मन्मथधनुर्निर्घोषः कमलवनस्खलितलक्ष्मीनूपुरशब्दः ।
श्रूयते कलहंसरवो मधुकरीव्याहतनलिनीप्रतिसंलापः ॥[36]

[कामदेव के धनुष की ध्वनि के समान, कमलवन पर चलने से लक्ष्मी के नूपुर की ध्वनि के समान और भ्रमरी तथा नलिनी के आपस के वार्तालाप के रूप में कलहंस का स्वर सुनाई देता है।] कलापूर्ण इस वर्णना में कवि ने चाँदनी रात में कमल-वन में कूँजते राजहंस का चित्र

---

३५. जान० ; स० ८ ; ५६ : स० ३ ; ६० , ९ ।
३६. सेतु० ; आ० २ ; १७ : आ० १ ; २९ ।

उपस्थित किया है साथ ही लक्ष्मी की नूपुर-ध्वनि तथा भ्रमरी-नलिनी के संलाप से दृश्य को भाव-व्यंजक बना दिया है। स्पष्ट ही इन वर्णनों में स्वाभाविकता से कला अधिक है। भारवि 'मन्द पवन से चंचल कमलों के लिये उत्प्रेक्षा देते हैं मानों किंचित विलासिनी की कुटिल भ्रू-विलास के समान तरंगोंवाले जल से वे विलासमय नृत्य करते हैं।' इसमें भाव से अधिक चेष्टाओं का रूप सामने आता है। पर अगली कल्पना में मानवीय वातावरण के साथ मनोभाव भी व्यक्त हुआ है—

> अभावनास्थापरयावधीरितः सरोरुहिण्या शिरसा नमन्नपि।
> उपैति शुष्यन्कलमः सहाम्भसा मनोभुवा तप्त इवाभिपाण्डुताम्॥[३७]

[सिर झुकाकर आदर करने पर भी, कमलिनी के अनादर-पूर्वक अवज्ञा करने से कलम (धान का पौधा) प्रेमार्त होकर पीला पड़ गया है।] पर भारवि में भावों से मधु-क्रीड़ाओं के आरोप की प्रवृत्ति अधिक पाई जाती है। जैसा उल्लेख किया गया है इस क्षेत्र में स्थूलता और शृंगार की यह रुचि अधिक बढ़ती गई है।

माघ और श्रीहर्ष

ग—स्थूल आरोपों की यह प्रवृत्ति माघ में अधिक है। और इन आरोपों में उक्ति तथा वैचित्र्य का आग्रह ही अधिक है। वे 'शरद ऋतु' की आनन्दमग्न स्त्री के रूप में इस प्रकार कल्पना करते हैं—'सरोवर के जल में नयन-रूपी कमल खिल गये हैं, श्वेत पंखवाले पक्षियों से आकाश हँस रहा है और दिशा-रूपी मुखों में काँस के फूल दाँत की शोभा ग्रहण कर रहे हैं।' यहाँ आरोप की वैचित्र्य-जन्य प्रधानता के कारण उल्लास के भाव तथा प्रकृति के चित्र में तादात्म्य स्थापित नहीं हो सका है। इसी प्रकार यह वर्णन है—

विशदप्रभापरिगतं विबभावुदयाचलव्यवहितेन्दुवपुः ।
मुखमप्रकाशदशनं शनकैः सविलासहासमिव शक्रदिशः ॥[३८]

[उदयाचल पर उठा हुआ प्राची का इन्दु-मुख, स्वच्छ प्रकाश से व्याप्त होकर मानों अपनी अलक्षित किरण रूपी दन्त-पंक्तियों से शोभित होकर विलासमय हँसी हँस रहा है ।] इसमें सादृश्य के उचित निर्वाह के कारण भावात्मक सौन्दर्य अधिक है । श्रीहर्ष मानवीय मनोभावों के कवि हैं; प्रकृति के सौन्दर्य्य के प्रति उनका आकर्षण नहीं है । पर जहाँ उन्होंने मानवीय मनोभावों को प्रकृति में प्रतिघटित किया है, उन स्थलों में उनकी काव्य-प्रतिभा को सौन्दर्य्य-सर्जन का पूर्ण अवसर मिला है । 'नल अपने दुःखी मन से प्रकृति को उसी भाव में मग्न देखते हैं । स्थलपद्मिनी की अवज्ञा के कारण करुण वृक्षों से युक्त वन कोकिल और भ्रमरों से प्रिय-वियोग की कहानी सुन रहा है ।' इस चित्र में 'कहानी' की कल्पना भावपूर्ण है, पर वन में करुण-वृक्ष कह कर वियोग की स्थिति का निर्देश, उक्ति की प्रवृत्ति का परिचय देता है । आगे का दृश्य अधिक संवेदक है—

ससंभ्रमोत्पातिपतत्कुलाकुलं
सरः प्रपद्योत्कतयानुकम्प्रताम् ।
तमूर्मिलोलैः पतगग्रहान्नृपं
न्यवारयद्वारिरुहैः करैरिव ॥[३९]

[पक्षि-समूह के संभ्रम से हिले हुए जलवाला सरोवर दयावश चिन्तित होकर लहरों से चंचल कमल रूपी हाथों से मानो राजा को मना कर रहा है ।] कवि ने प्रकृति के दृश्य में जो भावारोप किया है वह घटना-स्थिति से ग्रहण किया गया है ।

---

३८. शिशु० ; स० ६ ; ५४ : स० ९ ; २६ ।

३९. नैष० ; स० १ ; ८८ , १२६ ।

वैचित्र्य की शैली

§११—संस्कृत साहित्य में महाकाव्यों की परम्परा के साथ काव्य और कला का आदर्श स्थापित हो चुका था। भारतीय सौन्दर्य्य-बोध सादृश्य की आदर्श कल्पना पर आधारित है; सिद्धांत को समझे बिना इस काव्य-परम्परा के काव्य-सौन्दर्य्य की परख करने से सत्य की अवहेलना होगी। यथार्थ का सौन्दर्य्य अपनी क्षणिकता में अनिश्चित और विशृंखल है। वास्तव में चयन के आदर्शीकरण के बिना बाह्य जगत् में सौन्दर्य्य की कल्पना नहीं की जा सकती। नहीं तो प्रकृति के बिखरे हुए सौन्दर्य्य को देखने के लिये संस्कृत मन और कलात्मक रुचि की आवश्यकता नहीं होती और न उस सौन्दर्य्य को अंकित करने के लिये काव्य तथा कला की माँग होती। इसलिये भारतीय सिद्धान्त अनुकरण मात्र को सौन्दर्य्य-सर्जन नहीं मानता। उसके लिये वह आदर्श कल्पना से सादृश्य की माँग करता है, और कवि-कलाकार में आत्म-समाधि अर्थात् तन्मयता के गुण का निर्देश करता है। यही कारण है कि संस्कृत के कवि प्रकृति की आदर्श स्थितियों का चयन करते हैं, और उसको कल्पना के आदर्श रंग-रूपों में चित्रित भी करते हैं। प्रारम्भिक कवियों के सामने इस आदर्श का रूप स्पष्ट था और उन्होंने अपनी कल्पना के सादृश्य-रूप आधार को नहीं छोड़ा है। उस समय वैचित्र्य का अर्थ आदर्श-कल्पना था जो सादृश्य के सौन्दर्य्य के पंखों पर ही उड़ती थी। पर क्रमशः कवियों ने सादृश्य का आधार छोड़ दिया और उससे सौन्दर्य्य-बोध के पंख भी टूट गये। और वैचित्र्य का अर्थ ऊहात्मक कल्पना, उक्ति के चमत्कार से लिया जाने लगा। महाप्रबन्ध काव्यो में कलात्मक आदर्श की शैली विकसित नहीं हुई थी। पिछले अनुच्छेदों की विवेचना से यह स्पष्ट हो चुका है कि इस आदर्श का चरम कालिदास में मिलता है और फिर बाद के कवियो में क्रमशः इसका रूप विकृत होता गया है।

कला का आदर्श

§१२—वैचित्र्य के कलात्मक अर्थ में प्रारम्भ से इस शैली का प्रयोग किया गया है। अपनी धार्मिक प्रवृत्ति तथा महाप्रबन्ध काव्यों के निकट होने के कारण अश्वघोष में इस शैली का रूप बहुत कम मिलता है। वैसे तो रामायण से भी उदाहरण जुटा लेना कठिन नहीं है। बीज रूप से यह प्रवृत्ति आदि-काव्य से मिलती है। पर वैचित्र्य शैली का व्यापक प्रयोग कालिदास में मिलता है। कालिदास में वैचित्र्य का सहज तथा सौन्दर्य रूप अधिक है। वे जिस प्रकार चित्रात्मक शैली के सधे हुए कवि हैं उसी प्रकार वैचित्र्य की सहज कल्पनाओं के सजग कलाकार हैं। चित्रकूट के शिखर का यह चित्र इसी प्रकार का है—

सहज वैचित्र्य

धारास्वनोद्गारिदरीमुखोऽसौ शृङ्गाग्रलग्नाम्बुजवप्रपङ्कः।
बध्नाति मे बन्धुरगात्रि! चक्षुर्दृप्तः ककुद्मानिव चित्रकूटः॥

[हे उन्नत अंगोंवाली, निर्झरों की ध्वनि से गुंजित गुफा रूपी मुखवाला तथा शिखर की चोटी पर लगे मेघ रूपी कीचवाला यह चित्रकूट वृषभ के समान मेरी दृष्टि को आकर्षित करता है।] पर्वत की बैल के समान कल्पना करना वैचित्र्य है, पर सादृश्य का सौन्दर्य इस चित्र में रक्षित है। वृषभ के रूप के साथ एक उद्दण्ड प्रकृति का भाव भी शिखर के पक्ष में व्यंजित होता है। वैचित्र्य सर्जन के लिये कालिदास पौराणिक सुन्दर कल्पनाओं को सहज ढंग से ले लेते हैं—'पवन बाँसों के छिद्रों में स्वर निकाल कर मानों किन्नरियों के गीत में ताल दे रहा है।' और जब कालिदास चित्र में कवि-सिद्धियों का समन्वय करते हैं तब भी दृश्य की कल्पना में भाव और रूप का सन्तुलन बना रहता है—

सद्यः प्रवालोद्गमचारुपत्रे नीते समाप्तिं नवचूतबाणे।
निवेशयामास मधुर्द्विरेफान्नामाक्षराणीव मनोभवस्य॥

[वसंत ने नवकिसलयों के पंख लगा कर आम्र-मंजरियों के बाण तैयार कर लिये और उनपर उसने जो अभी भौंरे बैठाये हैं, मानों बाणों पर कामदेव के नाम के अक्षर लिख दिये हों।] और यह सन्तुलन

सौन्दर्य्य की सृष्टि करता है। कालिदास की उक्तियों में भी मूर्त अथवा अमूर्त सौन्दर्य्य-बोध रहता है। वे 'चन्द्रमा की निकलती हुई किरणों को नये कोमल जौ के अँखुओं के समान कोमल कहते हैं, और उनको तोड़कर कनफूल बनाने की कल्पना करते हैं।' इस वर्णना में किरणों का कैसा अमूर्त भावात्मक सौन्दर्य्य अंकित हो गया है। जिन वर्णनों में वस्तु-स्थिति में वैचित्र्य की कल्पना की गई है उनमें सादृश्य का आधार है—

सिंहकेसरसटासु भूभृतां पल्लवप्रसविषु द्रुमेषु च।
पश्य धातुशिखरेषु भानुना संविभक्तमिव सान्ध्यमातपम्॥[४०]

[देखो, हिमालय के सिंहों की किंजलक के समान सटाओं में, नये किसलयों से आच्छादित वृक्षों पर तथा धातु-रंजित पर्वत के शिखरों पर सूर्य्य ने अपने सांध्यकालीन आतप को बाँट दिया है।] इस प्रकार उक्ति-वैचित्र्य में सौन्दर्य्य का निर्देश कर देना कालिदास की प्रतिभा का क्षेत्र है। बुद्धघोष अपनी शैली की सरलता में कालिदास के निकट हैं और इस कारण अपने सीमित क्षेत्र में वे अधिकतर वैचित्र्य को सहज भाव से अंकित करते हैं। पौराणिक कल्पना के सहारे वे नदी में क्रीड़ा-शैल की परछाहीं का वर्णन इस प्रकार करते हैं—

यत्रापगाः स्वच्छजलान्तरालसंक्रान्ततीरस्थितकेलिशैलाः।
मदोष्मणा मग्नसुरद्विपाया महेन्द्रसिन्धोः श्रियमाश्रयन्ते॥[४१]

[निकटवर्ती क्रीड़ा-शैल जिसके निर्मल जल में प्रतिबिम्बित है ऐसी सरिता मदमत्त ऐरावत से आडोलित गंगा की शोभा को ग्रहण करती है।] कल्पना के विस्तार में और उसकी विभिन्नता में कालिदास के समकक्ष इस प्रकार के प्रयोगों में कोई नहीं है।

---

४०. रघु; स० १३; ४७। कुमा०; स० १; ८: स० ३; २७: स० ८; ६२, ४६।

४१. पद्य०; स० १; १७।

ख—अपने लम्बे संश्लिष्ट वर्णनों में बाण ने अवश्य व्यापक रूप से शैली के इसी रूप को अपनाया है। बाण की प्रकृति-वर्णना में प्रकृति-

बाण की संश्लिष्ट वैचित्र्य शैली

चित्रांकन की विभिन्न शैलियाँ एक साथ मिल-जुल गई हैं। ऐसा अन्य कवियों ने भी किया है। पर गद्य-काव्य में वर्णना का प्रवाह ऐसा अविच्छिन्न रहता है कि उसमें विभिन्न शैलियों के चित्र अलग-अलग नहीं सामने आते, जैसा कि पद्य-काव्य में होता है। और यही कारण है कि महाकाव्यों के विस्तृत प्रकृति-वर्णन अलग अलग संक्षिप्त चित्रों में सामने आते हैं। बाण की प्रकृति हमारे सामने संश्लिष्ट-योजना के विस्तार में उपस्थित होती है। और उनके चित्रों में प्रकृति का रूप वैचित्र्य की सौन्दर्य्य कल्पनाओं के साथ प्रत्यक्ष हो उठता है। परन्तु साथ ही वर्णन की व्यापक संश्लिष्टता जिसमें यथार्थ प्रकृति छिपी रहती है दृश्य चित्रों को आदर्श रंग-रूपों में सजीव और सप्राण कर देती है। उस समय यह कहना कठिन हो जाता है कि प्रत्यक्ष का सौन्दर्य्य सामने नहीं है। अलंकारवादी होने के कारण बाण में उक्ति-वैचित्र्य का आग्रह है, पर उनके अधिकांश प्रकृति के चित्रों में यह प्रवृत्ति सामने आकर भी सौन्दर्य्य-बोध के साथ मिलकर एक रूप हो जाती है। यह प्रश्न दूसरा है कि इस प्रवृत्ति के न होने पर इनके प्रकृति के रूपों में चित्रात्मकता बढ़ जाती। बाण प्रभात का वर्णन इस प्रकार करते हैं—

एकदा तु प्रभातसंध्यारागलोहिते गगनतले, कमलिनीमधुरक्तपक्षपुटे वृद्धहंस इव मन्दाकिनीपुलिनादपरजलनिधितटमवतरति चन्द्रमसि, परिणतरङ्कुरोमपाण्डुनि व्रजति विशालतामाशाचक्रवाले, गजरुधिररक्त-हरिसटालोमलोहिनीभिः प्रतप्तलाक्षिकतन्तुपाटलाभिरायामिनीभिरशिशिर-किरणदीधितिभिः पद्मरागशलाकासंमार्जनीभिरिव समुत्सार्यमाणे गगनकुट्टिमकुसुमप्रकरे तारागणे।[४२]

[एक दिन, प्रभात-संध्या के रंग से लाल हुआ चंद्रमा, आकाश-

---

४२. काद० ; पूर्व० ; प्रभात-वर्णन।

रूपी कमलिनी के रस से लाल पंखोंवाले वृद्ध हंस के समान मन्दाकिनी के किनारे से पश्चिमीय समुद्र के तट पर उतरा। वृद्ध रंकु मृग के रोम के समान श्वेत दिशाओं का मंडल विशाल होता जा रहा था। हाथियों के रुधिर से लाल हुए सिंह की अयाल के समान लाल और लाख के तार के समान गुलाबी सूर्य्य की लम्बी किरणें आकाश से तारों को दूर कर रही थीं मानों पद्मराग-मणि की सींकोंवाली बुहारियाँ फर्श पर बिखरे हुए फूलों को बुहार कर फेंक रही हैं।] इसी प्रकार चित्र चलता जाता है और कवि स्थितियों, क्रियाओं के रंगमय वैचित्र्य का सुन्दर वातावरण निर्माण करता है।

ग—बाद के कवियों में वैचित्र्य की अलंकारप्रियता बढ़ती गई है। पर कुछ वर्णन इस प्रकार सभी कवियों में मिल जाते हैं। जिनमें स्थिति या भाव का सौन्दर्य्य वैचित्र्य के आधार में भी रक्षित है। केवल भेद इतना है कि कुमारदास और भारवि में ऐसे अधिक चित्र हैं, माघ तथा श्रीहर्ष में चमत्कार की प्रवृत्ति बढ़ गई है। 'पवन के संसर्ग से नाचती आम्र-मंजरियों से स्वाभाविक प्रेम करनेवाला भ्रमर पुष्पों से आच्छादित अशोक के वन पर पैर नहीं रखता मानों वह प्रज्वलित हो।' कुमारदास के इस वर्णन में उक्ति-वैचित्र्य होने पर भी कल्पना का सौन्दर्य्य है। अगले चित्र में इसी प्रकार कवि-प्रसिद्धि के आश्रय से भाव-व्यंजना वस्तु-चित्रण के साथ की गई है—

स्थिति और भाव का वैचित्र्य

विनिद्रपुष्पाभरणः पलाशः समुल्लसत्कुन्दलतावनद्धः।
उद्धृतभस्मा मधुनेव रेजे राशीकृतो मन्मथदाहवह्निः॥[४३]

[पूर्ण-विकसित पुष्पों से अलंकृत कुन्दलता से अवनद्ध पलाश वसंत में कामदेव के दाह की अग्नि के पुँज के समान शोभित हुआ।] वस्तु-चित्र में कल्पना वैचित्र्य से भाव-सौन्दर्य्य अंतर्निहित हो गया है।

---

४३. जान० ; स० ३ ; १०, ११।

पौराणिक उल्लेख का आश्रय लेकर भारवि इसी प्रकार वस्तुस्थिति में सौन्दर्य्य की व्यंजना करते हैं—

प्रेरितः शशधरेण करौघः संहतान्यपि नुनोद तमांसि ।
क्षीरसिन्धुरिव मन्दरभिन्नः काननान्यविरलोच्चतरूणि ॥[४४]

[चंद्रमा प्रेरित किरण-समूह से अंधकार इस प्रकार दूर हो गया मानों मन्दराचल से मथित क्षीर-समुद्र ने (आडोलित झाग से) अपने चारों ओर के घने ऊँचे वृक्षोंवाले वन को छिपा लिया हो ।] माघ के अनेक वर्ण्य-चित्र अपने स्थिति-विन्यास में वैचित्र्य के आधार पर सुंदर बन पड़े हैं । रैवतक-पर्वत के वर्णन में वे 'स्वर्णिम स्थलों पर छाये हुए भ्रमराच्छादित वृक्षों के लिये धुएँ से ढकी हुई अग्नि' की उपमा देते हैं । अन्यत्र उन्होंने वस्तु और व्यापार का चित्र इस शैली में खींचा है—

नवपयःकणकोमलमालतीकुसुमसंततिसंततसङ्गिभिः ।
प्रचलितोडुनिभैः परिपाण्डिमा शुभरजोभरजोऽलिभिरादद्दे ॥[४५]

[नवीन जल की बूँदों के समान, कोमल मालती-पुष्पों के निरंतर सम्पर्क से उनके पराग से सफेद भौंरे उड़ते थे मानों नक्षत्र चल रहे हों ।] इस उत्प्रेक्षा में उक्ति के साथ दृश्य की स्फुरणशील व्यंजना छिपी हुई है । श्रीहर्ष की चमत्कृत कल्पनाओं में कभी-कभी रंग-रूपों के सादृश्य के वैचित्र्य की सहज सृष्टि हो जाती है—

उच्चैस्तरादम्बरशैलमौलेश्च्युतो रविर्गैरिकगण्डशैलः ।
तस्यैव पातेन विचूर्णितस्य सन्ध्यारजोराजिरिहोज्जिहीते ॥[४६]

[आकाश के ऊँचे शिखर से सूर्य में गिरी हुई चट्टान की विचूर्णित धूल ही मानों संध्या को आभासित कर रही है ।]

घ—मानवीकरण के स्थूल आरोप के आधार पर वैचित्र्य सृष्टि की

---

४४. किरा ; स० ९ ; २८ ।

४५. शिशु० ; स० ४ ; ३० : स० ६ ; ३६ ।

४६. नैष० ; स० २२ ; ४ ।

परम्परा भी रही है। पिछले अनुच्छेदों में हम मानवीकरण का उल्लेख चित्रात्मक शैली के अन्तर्गत कर चुके हैं। उस प्रसंग में मानवकिरण सौन्दर्य-बोध तथा भाव-व्यंजना के अतर्गत आता है। वैचित्र्य की सीमा में मानवीकरण स्थूल आरोप मात्र रह जाता है जिसमें शरीर के अंगों, मधु-क्रीड़ाओं की प्रधानता रहती है। लेकिन इस आरोप का अधिक विकृत रूप चमत्कृत योजनाओं तथा ऊहात्मक प्रयोगों में मिलता है। वैचित्र्य के इस रूप में सादृश्य की भावना बनी रहती है और इस कारण कल्पना में सौन्दर्य रहता है। कुमारदास मुँदते हुए कमलों से भ्रमरों के उड़ने पर इस प्रकार आरोप करते हैं—

आरोप की प्रवृत्ति

सा पद्मिनी पद्मविलोचनेभ्यो याते पतङ्गे विससर्ज भृङ्गान्।
समुच्छ्वसत्कामुदगन्धलुब्धान् स्थूलानिवोढाञ्जनबाष्पबिन्दून्॥[४७]

[उस कमल-सरोवर ने अपने कमल-नेत्रों से, विकसित कमलों की मधुर गंध से आकर्षित भ्रमरों को, नववधू के प्रवाहित अंजन से काले अश्रुबिन्दुओं के समान त्याग दिया।] इस चित्र में आरोप के आधार पर कोई रूप की कल्पना सामने नहीं आती और न भाव की प्रत्यक्ष व्यंजना। परंतु व्यापक रेखाओं में मन पर वैचित्र्य का सौन्दर्य भासित हो उठता है। प्रवरसेन मधु-क्रीड़ाओं की वैचित्र्य-योजना करते हैं—

धुतवनराजिकरतलां मलयमहेन्द्रस्तनोरआर्द्रीकरणसुखिताम्।
वेलालिङ्गनमुक्तां स्पृष्टापसृतकैवेपयन्तमिव महीम्॥[४८]

[समुद्र के वेलालिंगन से छोड़ी हुई, स्पर्श के अनन्तर संकुचित होकर काँपती हुई, कम्प से हिल रहा है वन-समूह रूप हाथ जिसका ऐसी पृथ्वी मलय-पर्वत रूपी स्तनों के शीतल हो जाने से सुखी थी।] मधु-क्रीड़ाओं की विचित्र और चमत्कृत योजनाओं की प्रवृत्ति कवियों में

---

४७. जान; स० ३; ५८।
४८. सेतु०; स० २: ८।

बढ़ती गई है। भारवि प्रकृति पर विलास-क्रीड़ा का ऐसा ही आरोप करते हैं—

विपाण्डु संव्यानमिवानिलोद्धतं निरुन्धतीः सप्तपलाशजं रजः।
अनाविलोन्मीलितबाणचक्षुषः सपुष्पहासा वनराजियोषितः॥[४९]

[युवतियों के रूप में वनराजियाँ पुष्पों में मुस्कराती हुई और प्रस्फुटित स्वच्छ नीलसरों से देखती हुई अपने पवन से चंचल सप्तपलाश के रज-रूपी वस्त्रों को व्यवस्थित करती हैं।] माघ के मानवी आरोपों में चमत्कार की प्रवृत्ति बढ़ गई है, पर कुछ चित्रों में रूप-रंग का व्यापक सादृश्य रक्षित है—

विलम्बिनीलोत्पलकर्णपूराः कपोलभित्तीरिव लोध्रगौरीः।
नवोलपालंकृतसैकताभाः शुचीरपः शैवलिनीर्दधानम्॥[५०]

[लोध्र के फूलों के पराग से गौरवर्ण युवती का कपोल-प्रदेश जिस पर नील-कमलों के कर्णफूल हिल रहे हैं, ऐसा निर्मल और पवित्र सिवार से युक्त जल कोमल तृणों से अलंकृत सरिता-पुलिन के समान शोभित हो रहा था।]

§ १३—वैचित्र्य जब सौन्दर्य्य के स्तर से हट जाता है, तब उसमें चमत्कार मात्र रह जाता है। और जब वैचित्र्य प्रत्यक्ष आधार को छोड़कर केवल कथन की शैली पर आधारित रहता है, तब उसमें ऊहात्मक उक्ति वैचित्र्य आ जाता है। चमत्कृत और ऊहात्मक शैली के रूपों में यही भेद है। चमत्कृत योजना में दृश्य का कुछ इन्द्रिय-प्रत्यक्ष आधार अवश्य रहता है, कल्पना कितनी ही क्लिष्ट अथवा कृत्रिम हो। पर ऊहात्मक शैली में कल्पना का क्षेत्र मस्तिष्क की उक्ति रह जाती है। चमत्कारिक प्रयोग काव्य में प्रारम्भ से मिल जायँगे, लेकिन वे केवल उदाहरण मात्र हैं। इस

चमत्कृत प्रयोग

---

४९. किरा० ; स० ४ ; २८।
५०. शिशु० ; स० ४ ; ८।

प्रवृत्ति का क्रमशः बाद के कवियों में अधिकाधिक विकास होता गया है। कालिदास के इस प्रकार के प्रयोगों में पौराणिक संकेत हैं, कवि-प्रसिद्धियां का निर्वाह है अथवा उद्दीपन का प्रभाव लक्षित होता है। 'मनोहर गंधवाले वन के फूलों की पंक्तियां में कोकिल का प्रथम स्फुरण मुग्धा-नायिका के कलाप के समान' कहने में वर्णन चमत्कार ही है। कार्य कारण के विषय में कालिदास कभी-कभी ऐसी कल्पना करते हैं— 'कुमुदों पर भ्रमर गूँजते हैं मानों चाँदनी पीकर पचा न सकने से पेट फट गया है और वे कराह रहे हैं।' इन चित्रों में भी कालिदास की अपनी विशेषता मिल जायगी। मुग्धा-नायिका और कोकिल के प्रथम अलाप में सादृश्य का आधार है, उसी प्रकार कुमुद के विकास के पीछे दूसरे चित्र की व्यंजना छिपी है। वे स्थिति-मात्र में भी चमत्कारपूर्ण कल्पना करते हैं—

उन्नतावनतभाववत्तया चन्द्रिका सतिमिरा गिरेरियम्।
भक्तिभिर्बहुविधाभिरर्पिता भाति भूतिरिव मत्तहस्तिनः॥[५१]

[पर्वत के ऊँचे-नीचे होने से कहीं चाँदनी पड़ रही है और कहीं अँधेरा है, मानों अनेक प्रकार की चित्रकारी से अंकित मत्त हाथी हो।] बुद्धघोष ने स्थिति की विचित्र कल्पनाओं में चमत्कृत सौन्दर्य्य उत्पन्न किया है। 'ऊँचे भवनों के स्फटिक-खंडों पर सूर्य्य की निटकता के कारण प्रभा की किरणें उसके अश्वों के लिये क्षण भर को चामर का काम करती हैं।' इस चित्र में वैचित्र्य रूप-रंगों की योजना पर आधारित होने के कारण चमत्कार उत्पन्न करता है। इस प्रकार का चमत्कृत सौन्दर्य्य इस वर्णन में भी है—

यत्रेन्द्रनीलोपलकुट्टिमेषु प्रविष्टबिम्बां प्रथमेन्दुलेखाम्।
मृणालखण्डस्पृहया मरालाश्चञ्चूपुटैश्चर्वितुमुत्सहन्ते॥[५२]

---

५१. रघु० ; स० ९ ; ३४। कुमा० ; स० ८ ; ७०, ६९
५२. पद्य० १ ; स० १ ; २०, २५।

[जहाँ नीलमणि के फ़र्श पर प्रथम चन्द्र की किरण के प्रतिबिम्बित होने से हंस मृणाल-तन्तु की चाहना से उसे अपनी चोंच से खाने के लिये तत्पर होते हैं।] इन वर्णनों में वर्ण्य की कल्पना आदर्शात्मक वैचित्र्य की है। आदर्श प्रकृति की कल्पना संस्कृत काव्य में विस्तार से है। परन्तु आदर्श प्रकृति के चित्रण में उसकी योजना के अनुसार चमत्कार की भावना कभी निहित रहती है और कभी केवल उक्ति ही। पिछले अनुच्छेदों में आदर्श-प्रकृति की कलात्मक वर्णना का निर्देश हुआ है। प्रवरसेन ने अपने वर्णनों में अधिकतर प्रकृति का आदर्शीकरण किया है। उनके चित्रों में कलात्मक सौन्दर्य्य है, पर चमत्कार की प्रवृत्ति कम नहीं है। इस चमत्कृत योजना में यत्र-तत्र पौराणिक कल्पनाओं की अधिकता है—

कृष्णमणिच्छायारसरज्यमानोपरिप्लवमानफेनम्।
हरिनाभिपङ्कजस्खलितशेषनिःश्वासजनितविकटावर्तम्।

[इन्द्रनील मणि की प्रभा से नीलिमा को प्राप्त झाग सागर में परिप्लावित होता जान पड़ता है। शेष की निःश्वास से विष्णु की नाभि का कमल उद्वेलित हो गया है और उसीका यह भयंकर भँवर है।] इस वर्णन में कल्पना का चमत्कृत सौन्दर्य्य है। अत्यन्त आदर्श वस्तु-स्थिति के अलंकृत वर्णन में यही प्रभाव उत्पन्न हो जाता है—

निजकविषानलप्रतापितमुक्तानिकरपरिघूर्णमानविषधरम्।
मीनगतिमार्गप्रकटशेवालावमलिनमणिशिलासंघातम्॥[५३]

[मछलियों के संचरण से सेवार गिर जाने के कारण मलिन हुए मणि के शिला समूह (में) मुक्ता-समूहों के बीच अपने विष के ताप से व्याकुल साँप घूम रहा है।]

क—भारतीय काव्य में पौराणिक कल्पनाओं और उल्लेखों को

५३. सेतु० ; आ० २ ; २८ , २५।

अनेक रूपों में स्थान मिला है। वास्तव में कवि-प्रसिद्धियों के समान आदर्श कल्पनाओं के रूप में इनकी स्वीकृति रही है। कालिदास, बुद्धघोष, जानकीदास में तथा एक सीमा तक प्रवरसेन में, इन काल्पनिक योजनाओं में सौन्दर्य्य-बोध का स्तर अधिक रहा है। बाद के कवियों में चमत्कार तथा उक्ति की प्रधानता इन प्रयोगों में होती गई है। आरोप के क्षेत्र में यही स्थिति है, पीछे इसका उल्लेख किया जा चुका है। कुमारदास—'चन्द्र-किरणों से दूर होते अंधकार को जंघा के प्रतारण से पश्चिम को जाता (नायिका के रूप में) हुआ'[५४] चित्रित करते हैं। भारवि का चमत्कृत आरोप इस प्रकार चलता है—

पौराणिक कल्पना और आरोप

विपाण्डुभिर्ग्लानतया पयोधरैश्च्युताचिराभागुणहेमदामभिः।
इयं कदम्बानिलभर्तुरत्यये न दिग्वधूनां कृशता न राजते॥[५५]

[वर्षा रूपी पति के वियोग में, दुर्बलता (विरलता) से सफ़ेद (स्वच्छ) और विद्युत की चमक रूपी स्वर्ण-हार से वियुक्त मेघ-स्तनों वाली दिशा रूपी वधू शोभित न हो ऐसा नहीं है।] भारवि की वर्णना में भाव से अधिक रूप का आधार है, यद्यपि सादृश्य में संतुलन न होने से चित्र में चमत्कार ही है। और माघ—'समुद्र की फेनिल तरंगों के आवर्तन को मृगी के रोगी'[५६] से उत्प्रेक्षा देते हैं, जिसमें क्रिया-स्थिति का चमत्कार मात्र है। माघ में अन्य रूपों में आरोप की प्रवृत्ति है, जिसका यथास्थान उल्लेख किया गया है। भारवि ने 'आदिवराह के स्वर्णाभ दाढ़ पर भूमण्डल धारण करने' की कल्पना से चंद्र का अपनी विद्रुम आभा से अंधकार दूर करने की बात कही है।[५७] और माघ 'सहस्रों शृंगों में

५४. जान० ; स० ८ ; ७२
५५. किरा० ; स० ४ ; २४
५६. शिशु० ; स० ३ ; ७२
५७. किरा० ; स० ९ ; २२

फैले हुए और पार्श्व-भाग में छोटी छोटी पहाड़ियों वाले रैवतक की कल्पना विराट पुरुष के रूप में' करते हैं।[५८] श्रीहर्ष को तारकों से युक्त रात को देखकर शंकर के नृत्य की याद आ जाती है—

भूषास्थिदाम्नस्त्रुटितस्य नाट्यात्पश्योडुकोटीकपटं वहद्भिः।
दिग्मण्डलं मण्डयतीह खण्डैः सायंनटस्तारकराट्किरीटः॥[५९]

[देखो, संध्या के नटराज चंद्रशेखर शंकर ने नृत्य के समय टूटे हुए अपने हार के बिखरे हुए अस्थि-खंडों से, फैले हुए तारों के रूप में, आकाश को शोभित कर दिया है।] इन सभी चित्रों में पौराणिक कल्पनाओं से दृश्य की चमत्कृत वर्णना उपस्थित की गई है।

ख—जब कवि साधारण वस्तु-स्थिति के आधार पर कल्पनाएँ करता है, तब वर्णना में ऊहात्मकता की संभावना बढ़ जाती है। लेकिन यदि अप्रस्तुत वस्तु-स्थिति में वर्ण्य दृश्य से कुछ साम्य रक्षित है तो एक चमत्कार का प्रभाव उसमें आ जाता है। भारवि अस्त होते सूर्य का चित्र इस प्रकार उपस्थित करते हैं—'उदयाचल पर स्थित कुछ-कुछ बादलों में व्यक्त होता सूर्य अपनी रश्मि चमकती हुई किरणों की आभा से अत्यंत तपे हुए लोहे के गोले के समान था।' और वस्तु-स्थिति की एक दूसरी योजना इस प्रकार है—

वस्तु-स्थिति मात्र

विभाति भृङ्गीसरणी सरन्ती गन्धाहृता चम्पककुड्मलाग्रे।
अन्तं प्रदीपस्य निषेवमाणा धूमावली कज्जलरेखिणीव॥[६०]

[गंध से आकर्षित हुई चम्पक-कलियों के अग्र-भाग पर संचरण करती हुई भ्रमरावली, दीप-शिखा पर स्थित काजल की रेखा से युक्त धूम्र समूह के समान शोभित है।] श्रीहर्ष की एक चमत्कारपूर्ण वस्तु-स्थिति की

---

५८. शिशु० ; स० ४ ; ४।
५९. नैष० ; स० २२ ; ८।
६०. जान० ; स० १ ; ६५ : स० ३ ; २७।

कल्पना इसके समान है—

ऊर्ध्वार्पितन्युब्जकटाहकल्पे यद्व्योम्नि दीपेन दिनाधिपेन ।

न्यधायि तद्धूममिलद्गुरुत्वं भूमौ तमः कज्जलमस्खलत्किम् ॥[61]

[उलटकर स्थित मुखवाले पात्र रूपी आकाश में दीपक रूपी सूर्य्य ने जो काजल छोड़ा था वही अंधकार के रूप में बढ़ते हुए बोझ के कारण गिर गया है ।] परन्तु इनके काव्य में चमत्कार से भी अधिक उक्ति है । माघ के काव्य में चमत्कृत कल्पनाएँ और उक्तियाँ बहुत हैं । कहीं वे 'वैदूर्यमणि की दीवालों पर पड़ी हुई चंद्र-किरणों को बिल्ली की आँखें जैसी स्त्रियों को भयभीत करनेवाली' कहते हैं और कहीं 'जल से घिरी हुई द्वारिका नगरी को पृथ्वी के विशाल प्रतिबिम्ब के रूप में' उपस्थित करते हैं ।[62]

§१४—ऊहात्मक उक्तियों के साथ काव्य-सौन्दर्य्य के स्थान पर कहने का ढंग प्रधान हो जाता है । ऐसे सौन्दर्य्य-हीन काव्य को यदि काव्य कहा ही जाय तो इसमें दूर की सूझ का आश्चर्य्य भर रहता है । और प्रकृति के चित्रण में ऐसी आश्चर्यजनक उक्तियों के समावेश की प्रवृत्ति महाकवि कालिदास में भी यत्र तत्र मिल जायगी । उद्दीपन-विभाव के प्रभाव में वे प्रकृति पर ऐसे प्रयोग कभी-कभी करते हैं—'रजकणयुक्त अर्जुन वृक्ष की मंजरियाँ मानो शिवजी से तोड़ी काम की प्रत्यंचा के समान हैं ।' उद्दीपन के अन्तर्गत भाव-व्यंजना के कारण ऐसे प्रयोग दूर की सूझ नहीं लगते । पर केवल वस्तु-स्थिति के रूप में भी कालिदास में ऐसी कल्पनाएँ हैं—

ऊहात्मक शैली

सांध्यमस्तमितशेषमातपं रक्तलेखमपरा बिभर्ति दिक् ।

सांपरायवसुधासशोणितं मण्डलाग्रमिव तिर्यगुज्झितम् ॥[63]

---

६१. नैष० ; स० २२ , ३२ ।

६२. शिशु० ; स ३ ; ४५ ; ३४ ।

६३. रघु० ; स० १६ ; ५१ । कुमा० ; स० ८ ; ५४ ।

[दूसरी ओर पश्चिम में अस्त होने से शेष संध्या के प्रकाश की लाल रेखा युद्ध-भूमि में टेढ़ी चलाई हुई रक्त से भरी करवाल के समान शोभित थी।] परन्तु ऐसे प्रयोगों में कालिदास की प्रतिभा प्रकृति सम्बंधी अंतर्दृष्टि से प्रकट हो जाती है। उद्दीपन के अन्तर्गत वैचित्र्य का यह प्रयोग प्रकृति में आरोपित मानवीय मधुक्रीड़ाओं के ऊहात्मक वर्णनों में मिलता है। और यह परम्परा बाद के कवियों में बढ़ती गई है। 'उद्यान भूमि में परिपक्व पत्तों रूपी कंचुकी को खोल कर, मुकुल समूह रूपी रोमावली को हर्षित कर तथा भ्रमर रूपी केश-समूह को चंचल करता हुआ वसंतकाल लताओं के साथ विहार कर रहा है।' बुद्धघोष ने इस आरोप की उक्ति से प्रकृति को उद्दीपक बनाया है। लेकिन इनकी वस्तु स्थिति सम्बंधी उक्तियों में सरलता है—

सुवर्णकारेण तपात्ययात्मना पयोदपालीनिकषोपलान्तरे।
निघृष्यमाणा इव हेमराजयस्तटिल्लता भान्ति चकोरलोचने ॥[६४]

[हे चकोर के समान नेत्रोंवाली, वर्षा ऋतु रूपी स्वर्णकार से मेघपंक्ति रूपी कसौटी के पत्थर पर बिजली की स्वर्ण-रेखा खिंची हुई शोभित हो रही है।] प्रवरसेन के उद्दीपन सम्बंधी आरोप में उक्ति का निर्वाह अधिक है —

पीनपयोधरलग्नं दिशां प्रवसज्जलदसमयवितीर्णम्।
सौभाग्यप्रथमचिह्नं प्रम्लायति सरसनखपदमिन्द्रधनुः ॥[६५]

[प्रवासी वर्षा काल द्वारा दिशा के मेघ-रूपी पीनपयोधरों में लगा हुआ इन्द्र-धनुष रूपी प्रथम सौभाग्य के चिह्न स्वरूप नख-छत बहुत अधिक मलीन हो गया है।] भारवि भी चन्द्र-धौत रजनी में नववधू की कल्पना करते हैं—'चंद्र का उदय हो गया है और अंधकार नहीं रह गया है, ऐसी रजनी को संसार घूँघट हट जाने से प्रत्यक्ष मुखवाली तथा

६४. पद्य० ; स० ६ ; ५ : स० ५ ; १४।
६५. सेतु० ; स० ८ ; २४।

लज्जा से संकुचित देखता है।'[66] इन उक्तियों में उद्दीपन सम्बंधी व्यंजना प्रकृति में छिपी है, इस कारण इनका वैचित्र्य इतना अस्वाभाविक नहीं लगता, जितना माघ के इस प्रकार के आरोपों में—

नवकुङ्कुमारुणपयोधरया स्वकरावसक्तरुचिराम्बरया ।
अतिसक्तिमेत्य वरुणस्य दिशा भृशमन्वरज्यदतुषारकरः ॥[67]

[सूर्य, नवीन कुंकुम की तरह लाल सांध्य मेघों (पयोधरों) से अपने किरण रूपी स्वच्छ अम्बर (नभ) से अत्यंत प्रेमासक्त हो पश्चिम दिशा (नायिका) में अधिक अनुरक्त (आसक्त) हो गया।] यहाँ स्पष्ट ही उक्ति का आग्रह विशेष है।

क—जिन वर्णनों में केवल उक्तियों का निर्वाह है, वे अधिकांश वस्तु-स्थिति या उनके कारण की कल्पनाओं से सम्बंधित हैं। कुमारदास कारण की कल्पना में इस प्रकार उक्ति देते हैं—'वसंत की तेज़ धूप से मुरझाई हुई विद्रुम आभावाली वृक्षों की पवन से हिलती हुई कोपलें अतिश्रम के कारण निकली हुई जिह्वा के समान चमकती हैं।'[68] इसी प्रकार 'किरण-समूह रूपी जल से युक्त तथा मृग-चिह्न के रूप में कमल है जिसमें ऐसे इन्दु-रूप रजत-कलश को रजनी युवती ने कामदेव का अभिषेक करने के लिए उठाया है।'[69] इस वर्णन में भारवि ने वस्तु-स्थिति के वैचित्र्य की सृष्टि की है। रजनी को युवती के रूप में प्रस्तुत करने से भाव व्यंजना भी सन्निहित हो गई है। उक्ति-वैचित्र्य का व्यापक विस्तार माघ और श्रीहर्ष में मिलता है। इनके चित्रों में रूप-रंग, स्थिति-व्यापार सम्बंधी उक्तियाँ हैं जिनमें ऊहात्मकता विशेष है। माघ दिशाओं को इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं—

उक्ति-वैचित्र्य मात्र

६६. किरा० ; स० १ ; २४।
६७. शिशु० ; स० ९ ; ७।
६८. जान० ; स० ३ ; १२।
६९. किरा० स० ९ ; ३२।

विगतवारिधरावरणाः क्वचिद्ददृशुरुल्लसितासिलतासिताः ।
क्वचिदिवेन्द्रगजाजिनकञ्चुकाः शरदि नीरदिनीर्यदवो दिशः ॥

[शरत्काल में यदुवंशियों ने देखा—मेघ के आवरण से मुक्त कोई दिशा म्यान से निकली हुई तलवार के समान श्याम (नीली) थी और कोई दिशा मेघों से युक्त ऐरावत के चर्म से आच्छादित सी थी ।] फिर यह प्रवृत्ति श्लेषात्मक शब्दों के चमत्कार में चरम पर पहुँचती है—'चंद्रोदय के बाद शुभलक्षण (चिह्न) के साथ नक्षत्रों से परिवारित (भल्लूक आदि से शोभित) चंद्र रूपी राम ने समुद्र बाँधकर अंधकार रूपी राक्षस-समूह का नाश कर डाला ।'[७०] श्रीहर्ष इस दिशा में माघ से आगे ही जाते हैं—'आकाश, अपने में विचरण करनेवाले सूर्य का आतिथ्य तारों के तण्डुलों से, अंधकार के दुर्वादलों तथा आकाश की श्वेत आभा के रूप में जौ के आटे से कर रहा है ।' यह कल्पना उक्ति के आधार पर सुन्दर कही जा सकती है । इस वर्णन में ऐसा ही उक्ति का वैचित्र्य है—

रजनिवमथुप्रालेयाम्भःकणक्रमसंभृतैः
कुशकिसलयस्याच्छैरग्रेशयैरुदबिन्दुभिः ।
सुषिरकुशलेनायःसूचीशिखाङ्कुरसंकरं
किमपि गतितान्यन्तर्मुक्ताफलान्यवमेनिरे ॥[७१]

[रात्रि-हस्ती की सूँड़ से छिड़के हुए फटा के समान, कुश के नवांकुरों के अग्रभाग पर पड़े हुए ओस के एकत्र जल-कणों ने जौहरी द्वारा सुइयों की नोकों पर विजड़ित मुक्ताओं के सौन्दर्य्य को अपमानित किया ।]

× × ×

प्रकृति-वर्णन की विभिन्न शैलियों पर विचार करने से हमारे सामने एक प्रकार से सस्कृत काव्य की आदर्श सम्बंधी परम्पराओं का इतिहास

---

७०. शिशु० ; स० ६ ; ५१ : स० ९ ; ३० ।
७१. नैष० ; स० १९ : १४ , ६ ।

सामने आ जाता है । और यह आदर्श कवियों के प्रकृति सम्बंधी दृष्टि-कोण से उतना ही सम्बंध रखता है जितना उसके अंकित करने की शैली से। शैली के अध्ययन से कवियों के प्रकृति सम्बंधी दृष्टिविन्दु का संकेत भी मिल गया है । और काव्य की परम्परा किस प्रकार स्वाभाविकता से आदर्श की ओर और फिर आदर्श से रूढ़ि की ओर बढ़ती रही इसका क्रमिक अध्ययन यहाँ शैली के माध्यम से हो गया है।

चतुर्थ प्रकरण

विभिन्न काव्य-रूपों में प्रकृति

(आलम्बन-रूप)

§ १—अभिव्यक्ति के व्यापक भेद से काव्य के अनेक रूप हो जाते हैं। इन रूपों में कवि भिन्न रीतियों से काव्य-सौन्दर्य के साथ जीवन का संतुलन स्थापित करता है। जीवन को प्रस्तुत करने का ढंग काव्य रूपों के विभेद में प्रमुख है, पर उसके साथ वर्णना का क्षेत्र कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। पिछले प्रकरण में प्रकृति के चित्रांकन की शैलियों के माध्यम से एक प्रकार से वर्णन की विभिन्न शैलियों पर विचार किया गया है। और इस दृष्टि से काव्य-परम्पराओं की वर्णना की शैलियों का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। पर इन शैलियों का जितना सम्बंध काव्य की व्यापक परम्परा के विकास से है, उतना उसके भिन्न रूपों से नहीं है। काव्य-रूपों की विभिन्न परम्पराओं में वर्णना शैली का भेद बहुत कम है; पर वर्णना के क्षेत्र में इनमें अधिक विषमता है। कवि जिस प्रकार जीवन को उपस्थित करना चाहता है या अपने काव्य-सर्जन में जिस दृष्टि से जीवन को देखता है, उसी के

काव्य के भिन्न रूप

अनुरूप वर्णना का क्षेत्र चुन लेता है। वर्णना में प्रकृति जीवन का आधार उपस्थित करती है। और प्रकृति का यह आधार काव्य-रूपों के साथ बदलता है। काव्य में प्रकृति के परिवर्तित होते आधार के साथ जीवन से उसका सम्बंध अनेक रूप ग्रहण करता है। यहाँ काव्य में प्रकृति को जीवन का आधार मानने का अर्थ यह नहीं है कि प्रकृति काव्य का प्रमुख विषय नहीं होती। षष्ठ प्रकरण में हम इस विषय पर विचार करेंगे। यहाँ संस्कृत साहित्य के विभिन्न काव्य-रूपों के निर्देश के साथ प्रकृति का स्थान निश्चित करना है। संस्कृत साहित्य के संस्कारवादी युग में भावात्मक गीतियों का अभाव है। इस विषय में भारतीय आदर्श की बात दूसरे प्रकरण में कही गई है और 'गीति-काव्य' के अन्तर्गत इस प्रकरण में विचार किया जायगा। कवि की मनस्-परक अभिव्यक्ति जिन गीतियों में रहती है उनका रूप संस्कृत की काव्य-परम्परा में नहीं मिलता है, पर अध्यन्तरित रूप में इनकी भावना कुछ अन्य काव्य-रूपों में मिलती है। उन्मुक्त वातावरण और संक्षिप्त भाव-व्यंजना की दृष्टि से गीति-काव्य और मुक्तक-काव्य में समानता है। पर गेयता तथा छंदमयता के भेद के साथ इनमें विषयि और विषय पक्षों का भेद रक्षित है। संस्कृत साहित्य में मुक्तकों की परम्परा अधिक स्पष्ट है। और यह उसके आदर्श तथा प्रवृत्ति दोनों के अधिक अनुरूप है। महाकाव्यों की लम्बी परम्परा के पूर्व महाप्रबन्ध काव्यों का उल्लेख आवश्यक है। इनमें संस्कृत काव्य की स्वतंत्र धारा रक्षित है और महाकाव्यों का स्रोत भी है। संस्कृत के महाकाव्यों की परम्परा बराबर चलती रही है, पर हमने अपने अध्ययन के लिये प्रमुख प्रतिनिधि कवियों को लिया है। यदि भास को हम ई० पू० का मानें तो नाटकों की परम्परा महाकाव्यों से प्राचीन है। संस्कृत साहित्य में नाटकों में काव्य का पूरा विस्तार है तथा दृश्य-काव्य के नाते उनमें चरित्र और घटनाओं के साथ स्थिति तथा वातावरण को गोचर बनाने का सफल प्रयास किया गया है। अपने अध्ययन में हम प्रकृति-वर्णन प्रधान नाटकों को प्रमुखतः लेंगे।

संस्कृत की कथा और आख्यायिका नामक गद्य रचनाएँ काव्य के अन्तगत आती हैं। इनमें काव्यात्मक सभी गुण विद्यमान हैं और कथा की वर्णना के लिये अधिक विस्तृत क्षेत्र है। महाकाव्यों के वर्णिक छन्दों में वर्णना मुक्त रूप से अलग-अलग चित्रों में उपस्थित होती है, कभी इन चित्रों में शृंखला-क्रम रहता है और कभी नहीं भी रहता है। परन्तु गद्य-काव्य की समास की शृंखला में चित्रों की लम्बी दृश्यात्मक योजना रहती है। इस प्रकार इन विभिन्न काव्य-रूपों में प्रकृति को किस सीमा तक स्थान मिल सका है और वह किन सम्बंधों में उपस्थित हुई है, इस प्रकरण में विचार करना है।

§२—हम कह चुके हैं कि विभिन्न काव्य-रूपों में जीवन और प्रकृति का सम्बंध बदलता है। परन्तु प्रथम प्रकरण में हम देख चुके हैं कि जीवन के सम्बंध की दृष्टि से काव्य में प्रकृति आलम्बन तथा उद्दीपन के रूपों में उपस्थित होती है। शास्त्रीय दृष्टि से काव्य में प्रकृति का स्थान उद्दीपन-विभाव के अन्तर्गत अथवा अद्भुत तथा भयानक रसों के साथ, रसाभास आदि के आलम्बन के रूप में स्वीकार किया गया है। इस शास्त्रीय मत में मानवीय दृष्टिविन्दु की प्रमुखता है, इस अर्थ में यह ठीक है। काव्य में प्रकृति का प्रत्येक रूप मानवीय जीवन तथा भावों से प्रभावित रहता है। इस कारण काव्य में प्रकृति का आधार जीवन की स्थायी स्थितियों के माध्यम से ग्रहण किया जा सकता है। इस व्याख्या के अनुसार प्रकृति की चेतना, भावशीलता तथा संवेदना मानव से ग्रहण की हुई है, इस कारण उसे आलम्बन नहीं माना जा सकता है। लेकिन इस प्रकार आलम्बन और उद्दीपन का भेद नहीं किया गया है। आलम्बन आश्रय की स्थायी भाव-स्थिति पर क्रियाशील होता है, इस कारण प्रधानता आश्रय की भाव-स्थिति की है। आश्रय अपनी मनःस्थिति के अनुरूप आलम्बन को ग्रहण करता है। प्रकृति का सौन्दर्य इस प्रकार स्वतंत्र आलम्बन होता है, और इस स्थिति में मानवीय मनःस्थिति प्रकृति से प्रभाव ग्रहण करती

आलम्बन-रूप

। एक प्रकार से इस सौन्दर्य में भी मानवीय जीवन का सहयोग
, इस पर प्रथम प्रकरण में विचार किया गया है। इसके साथ जब प्रकृति
ानवीय जीवन तथा भावों के समानान्तर अथवा सहचरण के आधार
र प्रस्तुत की जाती है, उसमें विशुद्ध उद्दीपन की भावना नहीं रहती।
ब आलम्बन प्रत्यक्ष रूप से दूसरा व्यक्ति रहता है, प्रकृति उद्दीपन के
रूप में आती है। इसमें आश्रय का आलम्बन परोक्ष में है और वह
कृति के माध्यम से अपनी भाव-व्यंजना करता है। इस सीमा पर
कृति पर आश्रय की भाव-स्थिति का आरोप है। अन्य आलम्बन की
म्भावना को लेकर भी यह प्रकृति आश्रय की अभिव्यक्ति के माध्यम
रूप आलम्बन के समान है। इस कारण इन दोनों रूपों को उद्दीपन
के विशुद्ध-रूप से अलग माना गया है। और इनका विवेचन विभिन्न
काव्य-रूपों में प्रकृति के स्थान-निर्देश के साथ उपस्थित किया जायगा।
द्दीपन रूप के अध्ययन के लिये अन्य प्रकरण है।

गीति-काव्य की परम्परा

गीति का रूप

§३—हमारा समस्त संगीत स्वर-लय तथा संचलन के आधार पर
विकसित हुआ है, जो विकास के आरम्भ से मानव के सुख दुःख की
अभिव्यक्ति से सम्बंधित रहा है। यह संगीत सर्जन के
अनेक नक्षत्र और ग्रहमंडलों तथा प्रकृति के नाना
रूप-परिवर्तन का सम-ताल है, और हमारी रचना के अनुरूप भी है।
हमारा पद-संचलन, हृदय-स्पन्दन, श्वासोच्छ्वास, शारीरिक प्रक्रिया तथा
स्नायु-तन्तुओं की संवेदनशीलता इसी स्वर-लय के अन्तर्गत है। यही
संगीत जब शब्दों का भावरूप आधार ढूँढ़ता चलता है, गीति-काव्य के
रूप में अभिव्यंजित होता है। गीतियों की स्वाभाविक रागात्मकता में
जन-समाज की भावाभिव्यक्ति वर्षाकालीन नील आकाश में सतरंगी
इन्द्रधनुष की कल्पना के समान गहरी और स्पष्ट रहती है। अपने प्रेम-
वियोग, आनन्द-समारोह, करुणा तथा साहचर्य को मानव युग-युग

से स्वच्छन्द संगीत के स्वरों में मापता आया है। इन जन-गीतियों का अज्ञात इतिहास न जाने कितना प्राचीन है। जब जन-गायक स्वर-लय के सहारे भावों को प्रकाशित करने में अपनी अनुभूति को सम-ताल प्रदान करता है, उस समय शब्दों की आधार-भूमि का अधिक आश्रय वह नहीं लेता। भावों के पंखों पर उड़ती हुई जन-गीति का आकाश से उस आधार-भूमि को देखते रहना भर पर्याप्त है। इस कारण जन-गीतियों में एक एक शब्द अपने संयोग में अपार भावों का प्रगुम्फन छिपाये रहता है; शब्द अपनी साधारण स्थिति में इन सब भावों को व्यक्त करने में असमर्थ है। इन गीतों में संक्षिप्त शब्दों और स्वाभाविक गिनी हुई परिस्थितियों के सहारे नाना भावों की सूक्ष्म अभिव्यक्ति सरल ढंग से होती है, जैसे प्रिज़्म अपनी स्फटिक सरलता में प्रकाश किरणों से विभिन्न रंगों को विकिरित करता है। परन्तु कवि जब गीति को अपने भावों की अभिव्यक्ति का साधन बनाता है, उस समय वह शब्द और राग का ऐसा संतुलन स्थापित करता है जिससे व्यंजना अधिक गम्भीर हो जाती है और चित्र अधिक स्पष्ट हो जाता है। कवि अपनी समस्त रागात्मक अभिव्यक्ति में शब्दों की रूपात्मक चित्रमयता को नहीं छोड़ सकता। उसकी स्वानुभूति काव्य की कल्पना के रूप में सहृदय के मन में रस का संचार करने के लिये शब्दों की चित्रमय योजना का आश्रय लेती है। काव्य-गीति आनन्द या भाव-शीलता की तन्मय स्थिति नहीं है, वरन् इस तन्मयता की सचेष्ट अभिव्यक्ति है।

काव्यादर्श और गीति-काव्य

§ ४—मानवीय स्वानुभूति की जो अभिव्यक्ति गीतियों के स्वर-लय तरंगित प्राणों में होती है, उसको काव्य-रूप में पूर्ण रूप से स्वीकृति भारतीय साहित्य में कभी नहीं मिल सकी। भारतीय काव्य-सम्बंधी प्राचीन आदर्श में व्यक्तिगत अनुभूतियों की स्वच्छन्द-अभिव्यक्ति को काव्य-रूप नहीं स्वीकार किया गया है। उसके अनुसार काव्य में केवल व्यापक भावों और

अनुभूतियों का स्थान माना गया है। इस दृष्टि से व्यक्तिगत अनुभूतियाँ, सुख-दुःख की भावनाएँ समाज के व्यापक आधार पर काव्य का विषय हो सकती हैं। पर्वत के पार्श्व में झर-झर करता हुआ एकान्त निर्झर समतल पर आकर पावन मन्दाकिनी के नाम से पुकारा जाता है। और आकाश के नीले विस्तार में श्वेत मेघखण्ड कितने ही सुन्दर चित्र बनाकर मिट जाते हैं, परन्तु झुकझूम कर आकाशमण्डल को घेरनेवाली घटाएँ मानवीय 'जीवन' की सप्राणता से अभिनन्दित हैं। भारतीय आदर्श में काव्य व्यक्ति की व्यष्टि-भावना से अधिक समष्टिवादी होकर रहा है। और काव्य 'भाव' तथा 'विचार' के समन्वय से जीवन की सम्पूर्ण सीमाओं को स्पर्श करने की स्पृहा भी करता रहा है। परन्तु प्रत्येक 'भाव' को रूप और आकार प्रदान करने की साधना में हमारा साहित्य अधिकाधिक रूपात्मक (formal) और रूढ़िवादी होता गया है। यही कारण है कि संस्कृत साहित्य में गीति काव्य का रूप स्वाभाविक अर्थों में नहीं मिलता है। इसमें जनगीतियों की प्रेरणा से काव्य-गीति की परम्परा का विकास नहीं हो सका है। वस्तुतः संस्कृत का संगीत भाषा की विशेषता के अनुसार वर्णिक छन्दों में व्यापक है, उसमें ध्वनि के आधार पर छन्दोमय काव्यरूप अधिक प्रचलित रहे हैं। इस प्रकार संस्कृत साहित्य में व्यक्तिगत तथा मनस्-परक गीति-काव्य का रूप नहीं है, परन्तु विभिन्न काव्य-रूपों में उनकी स्वाभाविक प्रेरणाओं का अध्यन्तरित स्वरूप अवश्य मिलता है। यद्यपि व्यक्तिगत होना गीतियों की प्रत्यक्ष शर्त है और काव्य-गीतियाँ अधिकतर मनस्-परक होती हैं, पर उनकी प्रवृत्ति में उन्मुक्त वातावरण, स्वच्छन्द भावधारा तथा सहज अभिव्यक्ति आदि विशेषताएँ होती हैं। इन प्रवृत्तियों को हम अन्य काव्य-रूपों में पा सकते हैं, और इनसे प्रकृति का सम्बंध हम अगले अनुच्छेदों में देख सकेंगे।

§ ५—काव्य-रूपों में बिखरे हुए गीति-तत्वों के अतिरिक्त हम वैदिक परम्परा से विकसित प्राकृत भाषाओं में गीतियों का अनुमान अवश्य कर

सकते हैं, जिनका अधिकांश स्वरूप साहित्यिक न माने जाने के कारण समय के प्रवाह में लीन हो चुका है। साथ ही भारतीय गीति काव्य का प्रारम्भिक रूप वैदिक साहित्य के काव्यात्मक अंशों में रक्षित है। प्रस्तुत अध्ययन की सीमा में वैदिक गीतियाँ नहीं हैं, परन्तु अगली परम्परा के मूल स्रोत के रूप में इन पर संक्षेप में विचार कर लेना अप्रासंगिक नहीं माना जायगा। वैदिक गीतात्मक काव्य में प्रकृति का उन्मुक्त वातावरण है और उसके साथ सहज सम्बंध भी स्थापित किया गया है। वैदिक कवि ने प्रकृति के रूप को तन्मय होकर देखा है, उसके सामने सिन्धु का मुक्त प्रवाह है—

वैदिक गीतियों पर एक दृष्टि

दिवि स्वनो यतते भूम्योपर्यनन्तं शुष्ममुदियर्ति भानुना।
अभ्रादिव प्र स्तनयन्ति वृष्टयः सिन्धुर्यदेति वृषभो न रोरुवत् ॥

[सिन्धु नद का निर्घोष पृथ्वी और आकाश में व्याप्त है, सूर्य से अत्यन्त चमकता है। जब वह बैल की तरह गर्जन करता वेग से प्रवाहित होता है तो ऐसा लगता है मेघ-गर्जन के साथ वर्षा हो रही है।] इन दृश्यात्मक रूपों के साथ गायक प्रकृति की गति और क्षण-क्षण बदलनेवाले रूपों में किसी व्यापक और विशृंखल शक्ति का आवाहन करता हुआ उल्लसित होता है। अग्नि के तेजमय रूप के साथ उसके मन का उल्लास प्रतिबिम्बित है—

वि वातजूतो अतसेषु तिष्ठते वृथा जुहूभिः सृण्या तुविष्वणिः।
तृषु यदग्ने वनिनो वृषायसे कृष्णं त एम रुशदूर्मे अजर ॥

[वायु से प्रेरित भयंकर शब्द करता हुआ अग्नि अपनी छुरी सी तीक्ष्ण जिह्वा से अनायास ही लकड़ियों में फैल जाता है। हे तेजमय, ज्वाला-वाले अजर अग्नि! जब तू प्यासा होकर शक्तिशाली बैल की तरह वन के वृक्षों पर झपटता है, तब अन्धकार तेरा मार्ग हो जाता है।] वैदिक कवि प्रकृति के बिखरे हुए सौन्दर्य्य और चैतन्य में अपने जीवन की अनुरूपता पाता है और उनमें आह्लाद के साथ प्राण-प्रतिष्ठा करता है।

न्यदेव वर्षाकाल के मेघों की गर्जना के साथ मानवीय चेतना से
नुप्राणित हो जाते हैं—

रथीव कशयाश्वाँ अभिक्षिपन्नाविद् तान् कृणुते वर्ष्यां अह ।
दूरात्सिंहस्य स्तनथा उदीरते यत्पर्जन्यः कृणुते वर्ष्यं नभः ॥

विद्युत् रूपी कशाघात से बादल रूपी अश्वों को चलाते हुए रथीधीर वीर
समान वर्षा-देव आ गए हैं। जब पर्जन्य आकाश को वर्षामय बनाता
उस समय सिंहनाद सा होता है।] और इस चेतना का प्रत्यक्ष
नवीकरण करता हुआ गायक ऊषा के सौन्दर्य में मानवीय हाव-भाव
आरोप करता है—

कन्येव तन्वा३ शाशदानाँ एषि देवि देवमियक्षमाणम् ।
संस्मयमाना युवतिः पुरस्तादाविर्वक्षांसि कृणुषे विभाती ॥

हे ऊषे, तू अपना सौन्दर्य दिखाती हुई अपने प्रेमी देवता के पास जा
ी है। यौवन की आभा से चमकती हुई तू मुस्करा कर अपने शरीर
। प्रकाशित करती है।] मानव प्राण-चेतना से अनुप्राणित प्रकृति से
देक कवि आत्मीय सम्बंध स्थापित करता है और प्रकृति के प्रति यह
हचर्य की भावना गीतियों की व्यापक विशेषता है। वह चन्द्रिका-
र्चित रात्रि को निकट सम्पर्क में पाकर आत्मीयता से सम्बोधित
रता है—

ओर्वप्रा अमर्त्या निवतो देव्युद्वतः । ज्योतिषा बाधते तमः ।
सा नो अद्य यस्या वयं नि ते यामन्नविक्ष्महि । वृक्षे न वसतिं वयः ॥

अमर देवी ने समस्त प्रदेशों को उन्नत और गहरे स्थलों को व्याप्त कर
लया है और प्रकाश द्वारा अन्धकार दूर कर दिया है। तेरे आने पर
म अपने घरों में आ गए हैं, जैसे पक्षी वृक्षों पर बने हुए अपने नीड़ों
।] इस प्रकृति के सम्बंध में अपने विश्राम का भाव भी सन्निहित है,
नसमें भाव-तादात्म्य का रूप रक्षित है। निर्जन प्रदेश में वह प्रकृति
ी वनदेवी से अपना साहचर्य स्थापित करता है—

अरण्यान्यरण्यान्यसौ य प्रेव नश्यसि।
कथा ग्रामं न पृच्छसि न त्वा भारिव विन्दती३ ॥[1]

[हे वनदेवी ! मुझे ऐसा लगता है कि तू रास्ता भूल गई है। तू अपना मार्ग पूछती क्यों नहीं; तुझे क्या डर नहीं लगता !] इस सम्बोधन में एकान्त के कारण अपने मन की भय की भावना छिपी हुई है। वैदिक साहित्य में प्रकृति का उन्मुक्त तथा सहज वातावरण आ सका है और गायक ने अपने स्वरों में उसके प्रति आत्मीय साहचर्य्य का परिचय दिया है। यही साहचर्य्य की भावना गीतात्मक प्रवृत्ति में प्रकृति के रूपों की आधार-भूमि मानी जा सकती है। वास्तव में गीतियों की कोमल कल्पना का सारा प्रसार सहानुभूति के वातावरण में सम्भव है। उनके रागात्मक प्रवाह में जीवन की शुष्क उपादेयता तथा दर्शन की कठोर सत्यदर्शिता सहानुभूति से द्रवित होकर ही मिल पाती हैं। फिर प्रकृति का सौन्दर्य्य तथा सप्राणता तो उसके भावशील वातावरण में सहज ही मिल जुल जाता है।

§६—संस्कृत साहित्य के समान, उसके पूर्व अथवा समवर्ती प्राकृत-भाषाओं के साहित्य में काव्य गीतियों का प्रायः अभाव है। इनमें धार्मिक साहित्य है या काव्यात्मक रूप है। पाली साहित्य में गीतियों के कुछ रूप मिलते हैं, परन्तु धार्मिक प्रभाव के कारण इनमें कवित्व के स्थान पर आदेश की प्रवृत्ति अधिक है। बौद्ध-धार्मिक गाथाओं में व्यापक करुणा और विराग के साथ प्रकृति आनन्द तथा उल्लास का विषय है—

पाली गाथाएं

सुनीलगीवा सुसिखा सुपेखुणा सचित्तपत्तच्छदना विहङ्गमा।
सुमञ्जुघोसत्थ निताभिगज्जिनो ते तं रमिस्सन्ति वनम्हि झायिनं ॥

[ध्यानस्थ बैठे हुए तुम्हें, वन में गहरी नीली ग्रीवावाले सुन्दर शिखावाले शोभन चित्रित पंखों से युक्त विहंगम अपने सुमधुर कलरव से घोष भरे

---

१. ऋग्वेद ; १० ; ७५ ; ३ : १ ; ५८ ; ४ : ५ ; ८३ ; ३ : १ ; १२३ ; १० : १० ; १२८ ; २, ४ : १० ; १४६ ; १।

का अभिनन्दन कर आनन्द देंगे।] प्रकृति सौन्दर्य्य के प्रति
भाविक आनन्दोल्लास के अतिरिक्त कहीं किसी स्थल पर भाव-तादात्म्य
मिलता है। प्रकृति के वासन्ती नव शृंगार के साथ थेर अपनी आशा
स्वरूप देखता है, यद्यपि यह भाव साधना और करुणा द्वारा शान्त
र एकान्त चित्त की प्रेरणा से सम्बंधित है—

अङ्गारिनो दानि दुमा भदन्ते फलेसिनो छदनं विप्पहाय।
ते अच्चिमन्तो व पभासयन्ति समयो महावीर भगीरसानं॥
दुमानि फुल्लानि मनोरमानि समन्ततो सब्बदिसा पवन्ति।
पत्तं पहाय फलमाससाना कालो इतो पक्कमनाय वीर॥[२]

नीन कोंपल से अग्नि के समान शोभित वृक्षों ने फल की इच्छा से
र्णशीर्ण पल्लवों का परिधान त्याग दिया है। अब वे लौ से उद्भासित
रहे हैं। हे श्रेष्ठवीर तथागत, यह समय नूतन प्राण से स्पन्दित है।
नेक वृक्ष मनोरम फूलों से नेत्रों को आकर्षित करता है और प्रत्येक
शा सुगन्धित हो रही है। फल की आशा करते हुए वृक्ष पत्रों को
ाड़ रहे हैं। हे वीर! मुक्त होने का यही समय है।] थेरियों के वैराग्य
तों में उनकी कठोर साधना तथा संसार के प्रति उपेक्षा ऐसी व्याप्त है
प्रकृति का समस्त सौन्दर्य्य उस ग्राही उपेक्षा से बच नहीं सका है।
कृति का 'यौवन' और 'सौन्दर्य्य' उनके लिये काम का आवाहन
जिसको वे ठुकरा देती हैं। काम के इस आमन्त्रण में प्रकृति का
ल्लास अन्तर्निहित है—

दहरा च अपापिका चसि किं ते पब्बज्जा करिस्सति।
निक्खिप कासायचीवरं एहि रमामसे पुप्फिते वने॥

तुम युवती हो और अनुपम हो, इस पवित्र जीवन का क्या करोगी।
न काषाय वस्त्रों को त्याग कर आओ पुष्पित वन में विचरण करें।] एक
कार से यह प्रकृति का उद्दीपन रूप है जिसमें थेरियाँ अपनी अज्ञात

---

२. थेरगाथा; ११३६ : ५२७, ५२८।

भावना का प्रतिबिम्ब देख रही हैं। इसमें यह संकेत भी स्पष्ट है कि प्रकृति में शृंगार के सम्राट् मनोज के आवाहन मंत्र के समान सम्मोहन की शक्ति है। इसके अतिरिक्त जिन गाथाओं में वे अपने सौन्दर्य्य की क्षणिकता की व्यंजना प्रकृति के सहारे करती हैं, उनमें साहचर्य्य भाव और रूपात्मक व्यञ्जना का समन्वित रूप है—

काननस्मि वनखण्डचारिणी कोकिला व मधुरं निकूजितं।

तं जराय खलितं तहिं तहि सच्चवादिवचनं अनञ्जथा ॥[३]

[वनस्थली में विचरण करती हुई कोकिला की कुहुक के समान मेरे स्वर का राग आज जरा के कारण नष्ट होकर स्वरहीन हो गया है, ध्वंस का क्रम इसी प्रकार चल रहा है। सत्यवादी का कथन सत्य है।]
जन-गीतियों के समान काव्य-गीतियों में साहचर्य्य तथा भाव-साम्य की भावना प्रकृति को उद्दीपन रूप प्रदान करती है और संयोग-वियोग की सहज स्थितियों के साथ प्रकृति परिवर्तित रूपों में उपस्थित होती है। पर यह विषय छठे प्रकरण का है।

§७—गीति-काव्य की परम्परा में संस्कृत साहित्य में जयदेव के गीतगोविन्द का नाम लिया जा सकता है। यह काव्य जिस लुप्त परम्परा का प्रतिनिधि है उसमें गीति की समस्त प्रवृत्तियाँ मिलती होंगी और उस पर जन गीतियों का पूरा प्रभाव होगा। यह बात गीतगोविन्द की भाव-धारा से प्रकट होता है, साथ ही इसके समान जो काव्य-रूप आधुनिक भारतीय भाषाओं के प्रारम्भिक युग में पाये जाते हैं उनसे भी यही सिद्ध होता है। विद्यापति तथा चण्डीदास के गीति-पदों में उन्मुक्त तथा स्वच्छन्द वातावरण मिलता है और उनको जन-गीतियों से निश्चय ही प्रेरणा मिली है। पर इनका आदर्श गीतगोविन्द है। यह अपनी गेयता के साथ काव्य-सौन्दर्य से भी पूर्ण है। साथ ही इसमें गायक अपने भावों का अभ्यन्तर गोपी-कृष्ण के

गीतगोविन्द

३. थेरीगाथा ; ३७० : २६१।

प्रेम-विलास के साथ कर लेता है। इस कारण भावों की व्यंजना मुक्त होकर भी व्यक्तिगत तथा सहज नहीं है, जैसी जनगीति में होती है। और व्यक्तिगत न होने के कारण इसमें पाश्चात्य अथवा आधुनिक भारतीय भाषाओं की प्रगीतियों (Lyric) जैसी विषयि-पक्ष की प्रधानता नहीं है। इस काव्य में यौवन और शृंगार की प्रधानता है, इस कारण प्रकृति का रूप अधिकतर उद्दीपन-विभाव के अन्तर्गत आता है। गीतों की शैली में भावों की उन्मुक्त धारा के साथ प्रकृति की वर्णना को स्थान नहीं मिल पाता है। भावों के आश्रय के लिए प्रकृति या तो उद्दीपन-रूप में उपस्थित होती है या साहचर्य्य के आत्मीय सम्बंध में। भाव-तादात्म्य व्यक्तिगत गीतियों में अधिक सम्भव है। गीतगोविन्द में भाव-प्रवणता से स्थूल मांसलता अधिक है और सूक्ष्म भाव-व्यंजना से हाव तथा अनुभावों का विस्तार अधिक है। इस कारण प्रकृति संयोग और वियोग दोनों पक्षों में उद्दीपन के अन्तर्गत अधिक प्रयुक्त हुई है। प्रकृति का वातावरण मानवीय भावों से व्याप्त हो रहा है। ऐसे स्थल भी कम हैं जिनमें प्रकृति अपने उल्लास में केवल मानवीय उल्लास को व्यंजित करती है—

ललितलवङ्गलतापरिशीलनकोमलमलयसमीरे।
मधुकरनिकरकरम्बितकोकिलकूजितकुञ्जकुटीरे॥

[सुन्दर लवंगलता की सुगन्ध से युक्त कोमल मलय समीर चलता है। अलि के झुण्ड तथा कोकिल के शब्द से कुंज कुटीर कूजित हैं।] यह प्रकृति का समस्त उल्लास मानवीय भावों की पृष्ठ-भूमि मात्र है—

विहरति हरिरिह सरस वसन्ते नृत्यति।
युवतिजनेन समं सखि विरहिजनस्य दुरन्ते॥[४]

[विरहणियों को कष्ट देनेवाले इस वसन्त में युवतियाँ प्रेमियों के साथ नृत्य करती हैं, और कृष्ण विहार करते हैं।] इस प्रकार प्रकृति और मानव

---

४. गी० गो० ; स० १।

दोनों एक दूसरे से प्रतिबिम्बित होकर एक दूसरे के उल्लास में तदाकार हो रहे हैं।

§८—दूत-काव्य खण्ड-काव्य के रूप में हैं। परन्तु गति और प्रवृत्ति दोनों दृष्टियों से ये काव्य-गीतियों के अधिक निकट हैं। प्रकृति-साहचर्य की गेय भावना व्यापक सहानुभूति के रूप में संस्कृत साहित्य के दूत-काव्यों की प्रेरणा रही है।

दूत-काव्य

जन-गीतियों में गायक की भावना से प्रकृति सीधा और सरल साहचर्य स्थापित करती है, पर काव्य-गीतियों में यह सम्बंध अधिक स्पष्ट रेखाओं में व्यक्त होता है। इन काव्यों की स्थिति कुछ भिन्न है। इनमें कवि व्यक्तिगत अभिव्यक्ति के स्थान पर कल्पित चरित्र के साथ प्रकृति का कोमल सम्बंध व्यक्त करता है। इस अध्यन्तरित स्वरूप में चरित्र की परिस्थिति इस भाव-साम्य की आधार-भूमि हो जाती है, जब कि गीतियों की रागात्मकता स्वयं इसमें सहायक होती है। आकाश में उड़ते बादलों की स्थिति उनकी गति है, परन्तु निर्झर को बहने के लिये पर्वत का पार्श्व चाहिए। इस काव्य-रूप को गीति-काव्य के अन्तर्गत लेने का एक कारण यह भी है कि प्रकृति सम्बंधी सन्देश-काव्य का मूल जन-गीति में है। जन-गीतियों की प्रकृति-सहचरण सम्बंधी अभिव्यक्ति नीलाकाश जैसी उन्मुक्त और एक रस है। इन गीतों की विरहिणी बिना किसी उपचार के अपने 'पिय' का सन्देश कोयल, कागा अथवा चील्ह को देती है, और उसके पास अधिक से अधिक 'सोने से चोंच मढ़ाने' तथा 'सोने की कटोरी' में खीर खिलाने का प्रलोभन है। उनमें प्रकृति का रूप कम, भावों की तीव्रता अधिक रहती है। पर इन दूत-काव्यों में कथानक का सूक्ष्म आश्रय सतरंगी इन्द्रधनुष की गहरी कल्पना में हलके बादलों के समान रहता है। यह हलके छायातप की रेखा उसे रंगीन सौन्दर्य प्रदान करती है। कवि ने तटस्थ होकर अपने भावों को अपने चरित्र को दे दिया है। इस कारण उसे आमुख-रूप से विरह की मनःस्थिति का अनुभूति प्रधान होने की व्याख्या देनी पड़ती है। कालिदास

के विरही यक्ष ने यदि उमड़ते हुए बादलों के रूप में प्रकृति को संवेदनशील पाया तो यह उसकी मनःस्थिति के लिये स्वाभाविक है। अन्य कवियों की व्याख्या में कालिदास की अनुभूति नहीं है। धोयी कवि में प्रकृति के उद्दीपन स्वरूप से विरहिणी का पुष्पधन्वा कामदेव के प्रति संवेदनशील होना स्वीकार करते हैं। हंससन्देश के कवि ने भाव-संयोग के द्वारा इस स्थिति को व्यक्त करने का प्रयास किया है, परन्तु इसमें अनुभूति का रूप न होकर स्थूल रूपात्मक संयोग का आधार है। क्रमशः अलंकृत शैली के कारण पवन-दूत और हंस-दूत में वैचित्र्य की प्रवृत्ति अधिक है।

क—काव्यात्मक रूप के कारण कथा-सूत्र के साथ इनमें सामाजिक शालीनता का प्रदर्शन है। कुछ अभ्यन्तरित भाव-स्थिति के फलस्वरूप और कुछ कथा-वस्तु के आधार के कारण इनमें ऐसी योजनाओं के लिये स्थान रहा है। परन्तु कालिदास के मेघदूत में कवित्व के साथ सहज संवेदनशीलता है। अलका का यक्ष संस्कारों में अधिक शिष्ट है और उसकी सरल अभिव्यक्ति सौन्दर्य की कोमल कल्पना से युक्त है। रामगिरि शिखर पर उमड़ते हुए बादलों की 'वप्रक्रीड़ा' देखते हुए यक्ष के मन में जो आवेग उठता है, वह उसकी शालीनता के कारण अत्यन्त कोमल और मधुर रूप में हमारे सामने व्यक्त हुआ है। यक्ष का अर्घ्य-दान सामाजिक शिष्टता का प्रदर्शन है, पर अपनी सरलता में सजीव तथा साहचर्य्य-भावना में सहज है—

शिष्ट वातावरण

स प्रत्यग्रैः कुटजकुसमैः कल्पितार्घाय तस्मै।
प्रीतः प्रीतिप्रमुखवचनं स्वागतं व्याजहार॥[५]

[उसने कल्पित अर्घ्य के लिये कुटज के नवीन पुष्पों को हाथ में लेकर उससे (मेघ से) अपने आप कहना आरम्भ किया।] प्रकृति के प्रति

५. मेघ० ; पूर्व ; ४।

आत्मीय सम्बोधन का यह काव्यात्मक रूप है। बाद के कवियों ने इस सरल शिष्टता की कोमल भावना को सूखा उपचार मात्र बना दिया है। हंस-सन्देश में राम हंस को सीता के समान सुन्दर पाकर, दूत बनाने के लिये उसे कमल-दल की पूजा प्रदान करते हैं—

चक्रे तस्मै सरसिजदलैस्सोपचारां सपर्यां।
कान्ताश्लेषादधिकसुभगः कामिनां दूतलाभः॥[६]

इस पूजा में स्वाभाविक सरल आत्मीयता के स्थान पर स्थूलता अधिक है।

§ ६—साहचर्य की समीपता में हृदय का विश्वास आवश्यक है। मित्रता का स्नेह-सम्बंध विश्वास के दृढ़ आधार पर स्थिर है। विश्वास प्राप्त करना और विश्वास उत्पन्न करना इस स्नेह का आदान-प्रदान है। प्रकृति के चिरन्तन रूप और व्यापक गति में हमारा अपार विश्वास इस साहचर्य का आधार बन जाता है। और इस निकटता में प्रकृति से आत्मीयता स्थापित करने के लिये उसका विश्वास प्राप्त करना स्वाभाविक हो जाता है। यक्ष मेघ की शक्ति की अव्यक्त भावना से प्रेरित होकर प्रशंसा द्वारा विश्वास प्राप्त कर मित्रता स्थापित करता है—

साहचर्य-भावना : विश्वास

जातं वंशे भुवनविदिते पुष्करावर्तकानां।
जानामि त्वां प्रकृतिपुरुषं कामरूपं मघोनः॥[७]

[लोक-प्रसिद्ध पुष्करावर्त के वंश में उत्पन्न, तुमको मैं मेघ जानता हूँ। तुम प्रकृति-पुरुष के समान इच्छा-रूप धारण करनेवाले और इन्द्र के सखा हो।] यह यक्ष 'जिनसे प्राप्ति न भी हो ऐसे गुणी' से याचना करने का अपना आग्रह प्रस्तुत कर अपनी वियोग की करुण-स्थिति के प्रति संवेदनशील होने के लिये मेघ को जैसे बाध्य कर देता है। कवि धोयी ने पवन की अबाध गति का उल्लेख कर इसी प्रकार उसे कार्य के

---

६. हंस० ; ४।
७. मेघ० ; पूर्व० ; ६।

लिये उत्साहित किया है। इस वर्णन में व्यंगार्थ की गम्भीरता से विश्वास का आदान-प्रदान हुआ है। नायिका पवन को मारुति का उदाहरण दे रही है—

> वीक्ष्यावस्थां विरहविधुरां रामचन्द्रस्य हेतो
> र्यातः पारं पवन ! सरितां पत्युरप्याञ्जनेयः।
> तत्तातस्याप्रतिहतगतेर्यास्यतस्ते मदर्थं
> गौड़ी क्षौणी कति नु मलयक्ष्माधराद् योजनानि ॥[८]

[रामचन्द्र की विरह-वेदना को देखकर उनके लिये पवनसुत समुद्र पार गये। हे पवन ! जिसकी गति बेरोक है ऐसे पुत्र के पिता के लिये मलय जिसका आधा रास्ता है ऐसी गौड़ी नगरी क्या है ?] पवन की प्रशंसा करके उसे बाध्य करने की इस विधि में चतुरता अधिक है, पर मेघदूत जैसी सरलता इसमें नहीं है। हंस-दूत के कवि ने इस परम्परा का अनुसरण किया है—

> व्यक्तोत्कर्षो महति भुवने व्योमगानां पतिस्त्वम् ।
> विश्वस्रष्टा विधिरपि यतस्सारथित्वेन तस्थौ ॥[९]

पर इसमें साधारण प्रशंसा मात्र है, जिसमें साहचर्य्य की व्यंजना के स्थान पर रूढ़िपालन की भावना है।

क—इस विश्वास के साथ जिस आत्मीय-भाव की स्थापना प्रकृति के साथ होती है, कवि ने उसका निर्वाह किया है। कालिदास के मेघदूत

आत्मीयता

में आत्मीय सहानुभूति का वातावरण आदि से अन्त तक बना रहता है। यक्ष ने अपनी आत्मीयता के साथ मेघ के प्रकृति के अन्य रूपों से सहज सम्बंध की कल्पना की है। इन सम्बंधों में प्रकृति में आत्मीय स्नेह का वातावरण बन गया है। यक्ष मेघ से प्रकृति के सहज क्षेत्र में विचरण करने के लिये स्नेहपूर्ण

---

८. पवन ; ९।

९. हंस० ; ६।

आग्रह करता है और साथ ही अपने सन्देश के प्रति सचेष्ट करता जाता है। 'मेघ मार्ग में जब वर्षा द्वारा आम्रकूट पर्वत के वनों की अग्नि को बुझा देगा तो उसे वह विश्राम देने के लिये अपने शिखर पर धारण करेगा।' और इस मेघ को 'कदम्ब के हरे-पीले फूलों पर मँडराते हुए भौंरे, वन की धरती की तीव्र गन्ध सूँघते हुए हाथी और दलदलों में कन्दली की नई कलियों को कुतरते हुए हरिण मार्ग बताते चलेंगे।' इस प्रकार कवि ने मेघ के लिये प्रकृति में आत्मीय सम्बंधों और सहानुभूति की योजना की है और यक्ष अपनी विरह-वेदना में भी मेघ के सुख की बात नहीं भूलता—

> तां कस्यांचिद्भवनवलभौ सुप्तपारावतायां
> नीत्वा रात्रिं चिरविलसनात्खिन्नविद्युत्कलत्रः।
> दृष्टे सूर्ये पुनरपि भवान्वाहयेदध्वशेषं
> मन्दायन्ते न खलु सुहृदामभ्युपेतार्थकृत्याः॥[१०]

[बहुत समय तक चमकते रहने से थकी हुई अपनी पत्नी बिजली के साथ किसी मकान के ऐसे छज्जे पर सो जाना, जहाँ कबूतर सोये हुए हों। अनन्तर सूर्य्य के निकलते ही वहाँ से चल देना, क्योंकि जो अपने मित्रों का कार्य करने का बीड़ा उठाता है, वह देर नहीं करता।] इसमें मेघ के प्रति यक्ष का स्नेह व्यक्त होता है और आत्मीय आग्रह तथा प्रोत्साहन भी। इस आत्मीय स्नेह के घने वातावरण में यक्ष मेघ को मानवीय चेतना और प्राणों से संवेदित कर देता है। मेघ जैसे इस साहचर्य्य जन्य सहानुभूति से सप्राण हो जाता है—

१०. मेघ० ; पूर्व १७, २२, ४२। हंसदूत में राम हंस को पवन से चंचल कमलों से क्रीड़ा करने को कहते हैं (११) तथा समुद्र लांघने के पूर्व विश्राम करने को कहते हैं (५२)।

पवनदूत ; ७ में वियोगिनी पवन से मलयाचल का अर्घ्य लेने को कहती है।

गत्वा सद्यः कलभतनुतां शीघ्रसंपातहेतोः
क्रीडाशैले प्रथमकथिते रम्यसानौ निषण्णः।
अर्हस्यन्तर्भवनपतितां कर्तुमल्पाल्पभासं
खद्योतालीविलसितनिभां विद्युदुन्मेषदृष्टिम्॥[११]

[घर में शीघ्र प्रवेश करने के लिये, तुम सत्वर हाथी के छोटे बच्चे के समान बन कर पूर्वकथित रमणीय क्रीड़ाशैल की चोटी पर जा बैठना; और फिर अपनी बिजली की आँखें जुगनुओं के समान थोड़ी-थोड़ी चमका कर मेरे घर के अन्दर झाँकना।] कालिदास की कल्पना यक्ष की घनी सहानुभूति में परिणत होकर मेघ को सजीव कर देती है। अन्य दूत-काव्यों में कालिदास का अनुकरण है, पर जैसा कहा गया है उनमें वैचित्र्य की प्रवृत्ति अधिक है।

ख—गीति-भावना के सहचरण में प्रकृति से भाव-तादात्म्य के लिये मुक्त अवसर मिलता है। इन काव्य-गीतियों में वर्णना अधिक है,

भावशीलता

इस कारण यह तादात्म्य भावारोप के द्वारा व्यक्त किया गया है। व्यक्तिगत गीति में प्रकृति पर गायक अपनी मनःस्थिति का आरोप साम्य-विरोध के आधार पर सीधे ही कर देता है। पर इस अध्यन्तरित गीति में प्रकृति पर रूपात्मक आरोप के द्वारा भाव-तादात्म्य स्थापित किया गया है। प्रकृति में उल्लास है—'हे मेघ, कुटज पुष्पों से लदे उन सुगन्धित पर्वतों पर तुम ठहरते जाना, वहाँ मोर नेत्रों में आँसू भरकर अपनी केका से तुम्हारा स्वागत कर रहे होंगे। लेकिन तुम वहाँ रुकना मत।' यक्ष अपनी व्यथा में प्रकृति के उल्लास को सँभाल रहा है, क्योंकि मेघ के साथ वह प्रकृति की भावशीलता की उपेक्षा नहीं कर पाता। प्रकृति में वियोग की स्थिति व्यंजित करने के लिये अधिक अलंकृत प्रयोग किये गये हैं। पर कालिदास ने सम्बंधों के माध्यम को नहीं छोड़ा है—'हे मेघ, पतली

---

११. मेघ० ; उत्त० ; २१।

जल की धारा जिसकी वेणी है, तट के वृक्षों से गिरे हुए पुराने पत्तों की पीली आभा से, निर्विन्ध्या नदी अपनी विरहावस्था को प्रकट करती है। जिससे उसकी दुर्बलता मिटे, मेघ, तुम वही उपाय करना।' यहाँ सरिता के वियोग में भावारोप है और मेघ से प्रार्थना आत्मीय सहानुभूति का छायातप। अन्यत्र प्रकृति में प्रेम व्यापार की योजना है—

गम्भीरायाः पयसि सरितश्चेतसीव प्रसन्ने
छायात्माऽपि प्रकृतिसुभगो लप्स्यते ते प्रवेशम्।
तस्मादस्याः कुमुदविशदान्यर्हसि त्वं न धैर्या-
न्मोघीकर्तुं चटुलशफरोद्वर्तनप्रेक्षितानि ॥[१२]

[तुम्हारे सुन्दर शरीर की परछाहीं के प्रवेश को प्राप्त कर छायावाली गम्भीरा सरिता का जल चित्त के समान प्रसन्न है। इससे उसकी कुमुदों से उज्ज्वल तथा चंचल मछलियों के रूप में चल चितवनों का तुम जल्दी में अनादर मत करना।] इस भावशीलता के साथ प्रकृति यक्ष के मन की अन्तर्निहित भावना से एकरूपता स्थापित करती है। इस विरोध में, मेघ के प्रति अपनी आत्मीयता से यक्ष प्रकृति को सहचरी पाता है। आगे इस भावना में आरोप की अलंकृत प्रवृत्ति कालिदास में भी पाई जाती है।

§१०—कहा गया है कि ये दूत-काव्य खण्ड-काव्य हैं। इस कारण इनमें कथा-सूत्र के साथ वर्णना का विस्तार है। इन वर्णनों में कवि दूत-रूप प्रकृति के उपकरणों से भावात्मक सम्बंध स्थापित करता चलता है, जिसका निर्देश पिछले अनुच्छेद में किया गया है। पर मार्ग-स्थित प्रकृति-स्थलों का साधारण

वर्णना का विस्तार

१२. मेघ० ; पूर्व ; २४ , ३१ , ४४। पवन-दूत ; ३२ में कलात्मक ढंग से यमुना से न डरने को कहा गया है। पवन का भावशील सम्बन्ध क्रीड़ा करती स्त्रियों से स्थापित किया गया है; २२।

वर्णन भी मिलता है। और ये वर्णन विभिन्न शैलियों में हुए हैं। कालिदास तथा अन्य कवियों में भेद वैचित्र्य तथा अलंकृत शैली का है। बाद के कवियों में देश-गत वर्णना को चित्रमय करने से अलंकृत करने की प्रवृत्ति अधिक है। तथा इन्होंने कालिदास का अनुकरण अधिक किया है, इस कारण इनका महत्व भी कम है। कालिदास के मेघदूत में स्वाभाविक चित्र-योजना को अवसर मिला है—

त्वन्निष्यन्दोच्छ्वसितवसुधागन्धसम्पर्करम्यः
स्रोतोरन्ध्रध्वनितसुभगं दन्तिभिः पीयमानः।
नीचैर्वास्यत्युपजिगमिषोर्देवपूर्वं गिरिं ते
शीतो वायुः परिणमयिता काननोदुम्बराणाम्॥

[जब तुम देवगिरि की ओर जाओगे, तुम्हारी वर्षा से आनन्दोल्लसित धरती की गन्ध से मधुर पवन तुम्हारी सेवा करेगा; जिसे चिग्घाड़ते हुए हाथी अपनी सूँड़ों से पी रहे होंगे और जिसके चलने से वन के गूलर-फल पकने लगे होंगे।] पर कालिदास ने इस सरल वर्णना में प्रकृति का अपना आत्मीय (मेघ के सम्पर्क से) उल्लास भी व्यक्त किया है। यह उनकी विशेषता है कि चित्रमय या अलंकृत किसी प्रकार की वर्णन-शैली में वे मेघ और प्रकृति का सम्बंध उपस्थित कर सके हैं। 'गंगाजी के स्फटिक स्वच्छ जल में मेघ की चलती हुई छाया' के लिये कवि 'प्रयाग के गंगा-यमुना के सुन्दर संगम की कल्पना करता है।' इस चित्रमय कल्पना में गंगा और मेघ के मिलन का भाव रक्षित है। कैलास की आदर्श-प्रकृति के साथ भी मेघ के क्रीड़ा-कौतुक का उल्लेख है—

हेमाम्भोजप्रसवि सलिलं मानसस्याददानः
कुर्वन्कामं क्षणमुखपटप्रीतिमैरावतस्य।
धुन्वकल्पद्रुमकिसलयान्यंशुकानीव वातै-
र्नानाचेष्टैर्जलद ललितैर्निर्विशेस्तं नगेन्द्रम्॥[13]

१३. मेघ० ; पूर्व ; ४६ ; ५५ , ६६ । पवनदूत ; १५ में कावेरी का कलात्मक वर्णन ।

[हे मेघ, तुम वहाँ स्वर्ण कमलों से आच्छादित मानसरोवर का जल पीना, ऐरावत के मुख पर थोड़ी देर के लिये कपड़े सा छाकर उसका मन प्रसन्न करना और फिर पवन से कल्पद्रुम के कोमल नए पत्तों को बारीक कपड़े की भाँति हिला देना। इस प्रकार मेघ, तुम अनेक प्रकार के मनोरम खेल करते हुए कैलास शिखर पर विचरना।] कालिदास ने इस सन्देश-गीति को रूपात्मक आधार देकर भी सहज उन्मुक्त वातावरण में प्रस्तुत किया है। अन्य कवियों के अनुकरण में यह रूपात्मक आधार अधिक प्रत्यक्ष होता गया है।

मुक्तक तथा ऋतु-काव्य

§ ११—वस्तु-स्थिति तथा भाव-व्यंजना को प्रस्तुत करने की शैली की दृष्टि से मुक्तकों का विकास जन-गीतियों से माना जा सकता है।

परम्परा का विकास

स्थिति का उतना संकेतात्मक रूप तथा व्यंजना का वैसा उन्मुक्त वातावरण इनमें नहीं है। पर इनमें गीति के समान स्थितियों का संक्षिप्त उल्लेख और भाव-धारा का स्वच्छन्द प्रवाह मिलता है। संस्कृत साहित्य का मुक्तक काव्य सूक्तियों के रूप में है, उनमें भावों के प्रसार और वर्णना के विस्तार के लिये अधिक अवसर नहीं मिलता है। जीवन-व्यापार की एक क्रिया या भाव-स्थिति तथा प्रकृति के विस्तार का एक दृश्य इनमें सान्ध्यकालीन नीलाकाश में मेघखण्ड की भाँति अपनी अभिव्यक्ति में स्वयं सुन्दर हो उठता है। और इनकी तीव्र संयत गति में जीवन तथा प्रकृति एक दूसरे के प्रतिबिम्ब से उद्भासित होते भी देखे जाते हैं। यह सम्बंध गीतियों की मुक्त संवेदनशील भावना के निकट का है। वास्तव में इन मुक्तकों का विकास लोक-गीतियों के उस रूप से हुआ है जिसमें लोक-गायक सूक्तियों में अपनी भाव-धारा को विभाजित कर व्यक्त करता है। इससे सांकेतिक गोपनीयता के साथ भावों में तीव्रता आ जाती है। लोक-गायिका को अपने मन की बात आत्मीय व्यक्ति से कहनी है, फिर वह

सूक्तियों के माध्यम से अपने गीत को आगे बढ़ाती है। इसी शैली क
काव्यात्मक रूप मुक्तक है। हाल की गाथाओं में गीति-भावना अधिव
सुरक्षित है, इसी कारण हम इस प्राकृत-काव्य को अपने अध्ययन वे
अन्तर्गत ले रहे हैं। अमरूशतक तथा आर्यासप्तशती आदि अन्य
मुक्तक-काव्यों में काव्यात्मक वैचित्र्य तथा रूढ़ि बढ़ती गई है। ऋतु
काव्य की परम्परा संस्कृत साहित्य में अधिक प्रमुख नहीं हो सकी, प
महाकाव्यों में ऋतु-वर्णनों का निश्चित विधान था। ऋतु-काव्य तथ
महाकाव्यों के इन ऋतु-वर्णनों में मुक्तक की भावना तथा शैली रक्षि
है। कालिदास के ऋतुसंहार में तथा अन्य कवियों के ऋतु-वर्णनों
सभी चित्र मुक्त हैं और उनको अलग-अलग समझना चाहिए। ऋतु
वर्णन के साथ अपने सुख-दुःख को व्यक्त करने की जन-प्रवृत्ति से इ
काव्य-रूप का विकास स्पष्ट है। पर अन्य मुक्तकों के समान इन वर्णन
में काव्य रूप के साथ अलंकार और वैचित्र्य की रुचि अधिक ह
गई है।

§१२—इन मुक्तकों में यत्र-तत्र प्रकृति के चित्र बिखरे हुए हैं। क
हाल के कुछ वर्णनों में सहज जीवन से सम्बंधित स्थितियाँ हैं। कवि व

वर्णनात्मक सूक्तियाँ

दृष्टि 'भैंसे के कन्धों पर बैठे हुए मच्छरों पर भ
जाती है, जो सींग से प्रताड़ित होकर आहत वीण
के झंकृत शब्द के समान भनभना कर उड़ रहे हैं।' तथा 'वर्षा व
जलधारा की ओर मुख करके पंखों को लम्बा किये हुए तथा गरद
को टेढ़ी कर चक्कर लगाते हुए कौओं का' सूक्ष्म निरीक्षण कवि
किया है। निश्चय ही इस कवि ने प्रकृति के मौन व्यापारों को सहा
भूति के साथ देखा है—

भरणमिअणीलसाहग्गखलिअचलणद्धविहुअवक्खउडा।
तरुसिहरेसु विहंगा कह कह वि लहन्ति संठाणम्॥[१४]

---

१४. गाथा० ; श० ६ ; ६०, ६३ : श० ७ ; ६०।

[भार के कारण कोमल टहनिओं के झुक जाने से पक्षियों के पैर किञ्चित लड़खड़ा जाते हैं और फिर वे अपने पंखों को फड़फड़ाते हुए किसी किसी प्रकार से वृक्ष की शाखाओं पर अपने नीड़ पा लेते हैं।] सन्ध्या समय के इस दृश्य को कवि कोमल सहानुभूति के आधार पर देख सका है। जब कवि किसी दृश्य को उपस्थित करने के लिये कल्पना का सहारा लेता है, वह उसे प्रत्यक्ष कर देता है—'चारों ओर सभी दिशाओं में फैलते हुए, एक दूसरे पास-पास के शिखरों पर घिरते हुए बादलों के रूप में मानो विन्ध्य अपनी छाल को त्याग रहा है।' इन वर्णनों में अप्रत्यक्ष उल्लास की व्यंजना भी है—'वर्षा-काल में मयूर घास के अग्रभाग में लगे हुए जल-बिन्दुओं को मरकत की सुई से पिरोए हुए मोतियों के समान पी रहा है।' कवि 'शरद बादलों की उपमा श्वेत रुई की राशि तथा सैन्धव के पर्वत से देकर' काव्यात्मक रूप-सौन्दर्य उपस्थित करता है। हाल में प्रकृति-वर्णन सम्बंधी वैचित्र्य का आग्रह भी मिलता है—'वृक्षों की कोटरों से निकलते हुए तोतों की पंक्ति लगती है मानों शरद काल में वृक्ष ज्वर से लोहू के साथ पित्त का वमन करते हैं।' परन्तु इस प्रकार की वैचित्र्य-कल्पना अधिक नहीं है, हाल में उक्ति-वैचित्र्य की प्रवृत्ति कम है—

रेहन्ति कुमुअदलणिच्चलट्ठिआ मत्तमहुअरणिहाआ।
ससिअरणीसेसपणासिअस्स गण्ठि व्व तिमिरस्स॥[१५]

[कुमुद की पँखुड़ियों पर निश्चल होकर बैठा हुआ मत्त मधुकरों का समूह, ऐसा लगता है मानों शशि की किरणों से समाप्त किये हुए अन्धकार की शेष रह गई ग्रन्थि है।] इस प्रकार के वर्णन में वैचित्र्य का सौन्दर्य रक्षित है। आर्या के कवि में गाथाकार की प्रकृति सम्बंधी सूक्ष्म अन्वीक्षण की प्रवृत्ति नहीं है। पर चित्र-योजना में उसकी कल्पना में सर्जन की शक्ति है—

---

१५. गाथा० ; श० २; १५: श० ४ ; ९४ : श० ७ ; ७९ :श० ६; ६२, ६१।

पवनोल्लासितपल्लवगर्भेषु प्रविशतीव तमः ।
अतिनिविडसजातीयान्तरेण कृतनोदनं पश्चात् ॥

[अनन्तर अन्धकार अत्यधिक आत्मीय स्नेह से आग्रह करता हुआ पवन द्वारा चञ्चल किये हुए पत्तों के गर्भ में प्रवेश सा कर रहा है।] इसमें वृक्षों के पत्तों में सिमटते हुए अन्धकार का दृश्य भावशीलता के साथ अंकित है। गोवर्धनाचार्य में उद्दीपन के साथ वैचित्र्य की प्रवृत्ति विशेष है, परन्तु यह ऊहात्मक सीमा पर नहीं पहुँचती है—

मेचकयताऽम्बरमिदं जलदेन हलायुधत्वमुद्वाहि ।
तस्योद्रेकेण पुनर्यमुना प्रतिकूलगामिनी जाता ॥[१६]

[मेघ विस्तार के कारण श्याम-वर्ण हुए आकाश ने बलराम की शोभा धारण की है। और उसके उद्रेक (आधिक्य) से मानों फिर यमुना की धारा उलटी प्रवाहित हो गई है।] इस उक्ति में रूप-सादृश्य से वैचित्र्य का सौन्दर्य्य है।

सहज भावशीलता

§ १३—अभी तक मुक्तकों में इधर-उधर बिखरे हुए प्रकृति-चित्रों का उल्लेख हुआ है। इनमें प्रसंग के अनुसार भावों की आधार भूमि ढूँढ़ी जा सकती है, परन्तु प्रत्यक्ष रूप से इनमें स्थिति का चित्र मात्र है। मुक्तकों पर यह काव्य-वर्णना का प्रभाव है। क्योंकि गीति को भावना के साथ प्रकृति भावशील होकर उपस्थित होती है। कहीं कहीं इन वर्णनों में उल्लास या विलास की भावना का संकेत छिपा हुआ है, पर वह प्रत्यक्ष नहीं है। अन्यत्र प्रकृति से कवि भाव-सामंजस्य स्थापित करता है। और इस प्रकार के तथा उद्दीपन-विभाव के वर्णन, इन मुक्तकों में गीति-भावना के प्रभाव के कारण अधिक हैं। कभी प्रकृति की क्रीड़ा के प्रति सहज उत्सुकता की भावना लेकर 'किरात लोग अपने धनुष की कोटियों को पर्वत की चट्टानों पर टेककर विन्ध्य-शिखर पर घिरते हुए हाथियों के समान बादलों को देखते

---

१६ आर्या० श० ६ ; १०० ; श० ७ ; ७१ ।

है।' प्रकृति में मानवीय उल्लास की सहज भावना प्रतिघटित होती है—'ग्रीष्म के मध्याह्न में कठिन सूर्य की किरणों के स्पर्श से संतप्त वृक्ष वनों में लगातार झिल्ली की झंकार के रूप में रो रहे हैं।' प्रकृति की संवेदना का अनुभव जैसे आत्मीयता के वातावरण में होता है। इसी प्रकार प्रकृति में मानव का सहज उल्लास भी व्यंजित होता है—'सूर्य के किरण समूह के स्पर्श से कमलों का वन विकसित हो रहा है और उसमें मधु के लोभी भ्रमर झंकार कर रहे हैं।' वर्णन में क्रिया-व्यापारों से उल्लास की भावना व्यंजित की गई है। परन्तु यह उल्लास प्रकृति में प्रत्यक्ष भी दिखाई पड़ता है—

अहिणवपाउसरसिएसु सोंहइ साम्राइएसु दिअहेसु।
रहसपसारिअगीवाणँ णच्चिअं मोरवुन्दाणम् ॥[17]

[सुन्दर वर्षा-काल में बादलों से श्याम आभावाले तथा गरजन से पूर्ण दिनों में शीघ्रता से अपनी गरदन को ऊँचा करके नाचते हुए मोर शोभा बढ़ाते हैं।] अपने आप में आनन्दमग्न प्रकृति में कवि का अपना तादात्म्य है। आर्या के कवि ने अधिक चित्रमय ढंग से प्रकृति में उल्लास व्यंजित किया है—

जाम्बूनदवीरुदिव स्तम्भे लिखिता महेन्द्रनीलस्य।
सौदामिनी नवीने बलाहके वितनुते कुतुकम ॥

[इन्द्रनील मणि के खम्भे पर लिखी हुई यथ की स्वर्ण-रेखा के समान बिजली नवीन बादलों में कौतुक फैला देती है।] दृश्य की रूपात्मक चित्रमयता में गति के साथ उल्लास की अव्यक्त भावना छिपी हुई है। यह भावाभिव्यक्ति कभी अधिक प्रत्यक्ष आश्रय ग्रहण करती है। आर्या का कवि वसन्त के साथ काम की कल्पना करके प्रकृति में आनन्दोल्लास प्रतिबिम्बित करता है—

१७. गाथा० ; श० २ ; १६ : श० ५ ; ९४; ९५ : श० ६ ; ५९।

ऋतुराजसखरथोऽयं मलयमरुद्वण्यते विज्ञैः ।
तत्र मधुव्रतराजी विराजते वैजयन्तीव ॥[१८]

[विद्वानों से यह ऋतुराज के सखा (काम) का मलय पवन-रूपी रथ कहा गया है । जिस पर भ्रमरों की पंक्ति पताका के समान है ।] परन्तु काम के उल्लेख में रति की भावना अन्तर्हित है और इस कारण इसमें उद्दीपन का संकेत है ।

क—गीति-भावना से सम्बंधित भावोल्लास के अतिरिक्त व्यापक मानवीकरण के रूप में इन मुक्तकों में भावारोप हुआ है । भाव-व्यंजना की यह प्रवृत्ति काव्यात्मक है । ऊपर के चित्रों में भाव-व्यंजना तादात्म्य के रूप में हुई है, उनमें कवि या पात्र अपने भावों के साथ प्रकृति को एक रूप देखता है । और इस वर्णना में प्रकृति पर भावारोप किया गया है । प्रकृति मानव के भावों से अनुप्राणित है, पर कवि तटस्थ है । प्रकृति के विभिन्न रूपों में जैसे मानवीय आत्मीयता है—'इन्द्रधनुष की कोटि से मेघ-रूपी भैंसे का पेट विदीर्ण हुआ जान कर बिजली संवेदना में क्रन्दन करती जान पड़ती है ।' कवि प्रकृति की गतिशीलता और उसके रूप परिवर्तनों में जीवन का स्पन्दन पाता है—

भावारोप

खरपवणरअगलत्थिअगिरिऊडावडणभिण्णदेहस्स ।
धुक्काधुक्कइ जीअं व विज्जुआ कालमेहस्स ॥

[प्रचण्ड पवन के झोंके के वेग रूपी गलहस्त द्वारा पर्वत की चोटी से गिराये जाने से छिन्न-भिन्न हुए श्याम मेघ के जीव के समान बिजली कम्पित है ।] इस चित्र में पर्वत के शिखर से पवन द्वारा छिन्न-भिन्न किये बादलों में बिजली की चमक प्रत्यक्ष हो जाती है, साथ ही मानवीय भाव-सामंजस्य से दृश्य में सजीवता आ गई है । कभी भाव के स्थान पर स्थूल हाव तथा अनुभाव का आरोप प्रधान हो जाता है और ऐसी कल्पना में अलंकार की प्रवृत्ति अधिक रहती है—

---

१८. आर्या० ; श० ५ ; ४७ : श० ३ ; ३५ ।

रुन्दारविन्दमन्दिरमअरन्दाणन्दिआलिरिञ्छोली ।
झणझणइ कसणमणिमेहल व्व महुमासलच्छीए ॥[१९]

[विकसित कमलों के मन्दिर में मकरन्द से आन्दोल्लासित गुंजार करती हुई भ्रमरों की पंक्ति मधुमास की लक्ष्मी की कृष्णमणि की करधनी के समान झंकृत हो रही है।] परन्तु इस आरोप में उद्दीपन की भावना अन्तर्हित है। आर्याकार के चित्रों में स्थूल आरोप की प्रवृत्ति भावव्यंजना से अधिक है। 'प्रातःकाल किंचित पवन से स्फुरित पत्तियों के अन्दर भ्रमररूपी आँखों से कमल की कलियों पर घूँघट की कल्पना प्रत्यक्ष होती है।' इस वर्णन में वैचित्र्य की प्रवृत्ति के साथ रूप का आरोप अधिक है। साथ ही आर्या में उद्दीपन की भावना मानवीकरण में अधिक है। यह कहा गया है कि आरोप चाहे आकार का हो अथवा भाव का, बाद के काव्यों में उनमें उद्दीपन की प्रेरणा अधिक प्रबल होती गई है—

शालीनां परिपाकावस्थासम्प्राप्तरागवैजात्याम् ।
लब्धघनपाण्डुभावां शरदं नवयौवनां पश्य ॥[२०]

[धान के पक जाने पर, अपरिचित राग प्रकट हुआ है ऐसी युवती के समान शरद की घनी पियराई से व्यक्त युवावस्था को देखो।] इसमें आरोप इतना स्थूल है कि प्रकृति पार्श्वभूमि में पड़ जाती है और वह मानवीय भावों को अधिक व्यक्त करती जान पड़ती है। यहाँ से उद्दीपन-विभाव की सीमा प्रारम्भ होती है।

§ १४—ऋतु-काव्य की परम्परा जन-गीतियों की भावना से प्रभावित है। यद्यपि ऋतु-काव्य का स्वतंत्र अस्तित्व प्रमुख नहीं हो सका, पर महाकाव्यों में इनका रूप रक्षित है। अन्य वर्णनों के साथ ऋतु-वर्णन की आवश्यकता का निर्देश शास्त्रीय

ऋतु-काव्य

---

१९. गाथा० ; श० ६ ; ८४ , ८३ , ७४ ।

२०. आर्या० ; श० ५ ; ४६ : श० ८ ; २९ ।

ग्रन्थों में किया गया है और यह प्रवृत्ति प्रारम्भ से ही महाकाव्यों में पाई जाती है। परन्तु कुछ स्थलों को छोड़कर इन ऋतु-वर्णनों का सम्बंध कथानक से नहीं के बराबर है। इसके अतिरिक्त इन वर्णनों में काव्यात्मक रुचि के अन्तर्गत लोक-गीतियों के ऋतु-वर्णनों की मुक्त भावना के संकेत मिलते हैं। इनमें उद्दीपन की जो व्यापक प्रवृत्ति मिलती है, उस कारण भी इनके विकास का स्रोत गीति-भावना माना जा सकता है। समय की गति के साथ प्रकृति का स्वरूप परिवर्तित होता रहता है। दिन के प्रकाश के बाद रात्रि का अन्धकार प्रकृति के आयोजित एक सौन्दर्य-दृश्य को छिपा लेता है। और इसके बाद एक दूसरे रहस्यमय दृश्य-पट पर चन्द्रमा अपनी कलाओं के विकास और ह्रास के साथ विभिन्न छायातप डालता रहता है। और इससे विस्तृत तथा व्यापक परिवर्तन प्रकृति-जगत् में ऋतुओं के साथ होता है। ऋतु के साथ वनस्पति-जगत् नवीन और भिन्न रूपों में हमारे सामने उपस्थित होतो है। इन परिवर्तनों के साथ मनुष्य की कृषि का सम्बंध है। यह समस्त परिवर्तन युगों से मानव जीवन से सम्बंधित रहा है, और कृषि के कारण लोक-जीवन से अधिक घनिष्ठ हो गया है। वस्तुतः यह उसके जीवन के प्रवाह का अंग बन गया है। इस कारण जन-गीतियों में प्रकृति से आत्मीयता का सम्बंध सहानुभूति और संवेदना के आधार पर व्यक्त होता है। साथ ही ऋतु के परिवर्तन लोक गायक की सुख दुःख की सहज भावना के साथ हिल-मिल गये हैं। इस भाव-सामंजस्य के आधार पर काव्य में ऋतु-वर्णन शृंगार के उद्दीपन के अन्तर्गत अधिक हुए हैं। इन वर्णनों को संयोग-वियोग के रंगों में चित्रित किया गया है, और इनके साथ मानवीय उद्दीप्त भाव-विलास का प्रसार काव्य में अधिक हो गया है।

क—ऋतु-काव्य तथा अधिकतर महाकाव्यों के अन्तर्गत ऋतु-वर्णन मुक्तक के रूप में हैं। इस कारण कथा-वस्तु सम्बंधी वर्णनात्मक विस्तार इनमें नहीं है। और इनका विकास जन-गीतियों से माना गया है, इस कारण इनमें प्रकृति

वर्णना की स्थिति

मानवीय भावों के सम्पर्क में अधिक है। काव्यात्मक प्रभाव से वर्णन अलंकृत तथा चित्रमय हो गये हैं, पर इनमें किसी न किसी रूप में मानवीय भाव-व्यजना की प्रवृत्ति है। परम्परा में क्रमशः रूप का आरोप उद्दीपन की भावना तथा विलास का वर्णन अधिक प्रधान होता गया है। पर कालिदास के ऋतुसंहार में यह विलास का वर्णन और उद्दीपन की भावना विकसित रूप में पाई जाती है, शिशिर और हेमन्त में तो प्रकृति का आश्रय भर है। अन्य ऋतुओं के वर्णनों में प्रकृति स्वाभाविक संश्लिष्टता तथा चित्रमयता के साथ उपस्थित हुई है। ग्रीष्म के वर्णन में ताप से व्याकुल प्रकृति का वर्णन आदर्श-योजना के साथ स्वाभाविक है। 'अत्यधिक प्यास के कारण साहस और उत्साह ठंडा हो गया है, मुँह खोलकर बार-बार हाँफ रहा है और जीभ से ओठ चाटता जा रहा है, ऐसा सिंह जिसके कन्धे के अयाल हाँफने से हिल रहे हैं, हाथियों के पास होने पर भी उनपर आक्रमण नहीं करता।' इस चित्र में कवि ने आदर्श का आश्रय लिया है। पर प्रकृति की इन आदर्श कल्पनाओं में व्यापक रूप से संत्रस्त होने का भाव मिला हुआ है—

रविप्रभोद्भिन्नशिरोमणिप्रभो विलोलजिह्वाद्वयलीढमारुतः।
विषाग्निसूर्यातपतापितः फणी न हन्ति मण्डूककुलं तृषाकुलः॥

[जिसका मणि सूर्य की प्रभा से अधिक चमक उठा है और अपनी लपलपाती हुई दोनों जीभों से पवन पीता जा रहा है, ऐसा प्यासा साँप धूप की लपटों और अपने विष की झार से जलने के कारण मेढ़कों को नहीं मारता है।] ऋतुसंहार में सहज स्वाभाविक वर्णन भी हैं जिनका उल्लेख तृतीय प्रकरण में किया गया है। पर गीति-भावना के मुक्तक रूप के कारण इनमें अक्सर भावोल्लास का छायातप रहता है—'शरद ऋतु में शीतल पवन कमलों को स्पर्श करता हुआ बह रहा है; बादलों के अदृश्य हो जाने से सभी दिशाएँ सुहावनी लगती हैं; जलाशयों का नीर स्वच्छ हो गया है, पृथ्वी का कीचड़ सूख गया है और आकाश स्वच्छ किरणवाले चन्द्रमा तथा तारों से शोभित है।'

काव्य की कलात्मक शैली के प्रभाव से यत्र-तत्र इसमें चित्रमय योजना भी मिल जाती है—

> स्फुटकुमुदचितानां राजहंसाश्रितानां
> मरकतमणिभासा वारिणा भूषितानाम् ॥
> श्रियमतिशयरूपां व्योम तोयाशयानां
> वहति विगतमेघं चन्द्रतारावकीर्णम् ॥[21]

[चन्द्रमा से प्रकाशित तथा छिटके हुए तारों से भरा हुआ शरद का मेघहीन आकाश, विकसित कुमदों से पूर्ण नीलम के समान जलवाले उन सरोवरों की शोभा धारण किये हुए है जिनमें राजहंस संचरण कर रहा हो।] महाकाव्य के ऋतु-वर्णनों के ऐसे चित्रों का उल्लेख शैली के अन्तर्गत किया गया है। उनमें अपनी-अपनी प्रवृत्ति के अनुसार अपेक्षाकृत अलंकृत वर्णनों को अधिक अवसर मिला है, क्योंकि ऋतु-संहार मुक्तक-काव्य का रूप है।

§१५—कहा गया है कि ऋतु सम्बंधी मुक्तकों में गीतियों का मुक्त वातावरण मिलता है; यद्यपि संक्षेप के कारण मुक्तकों में भावात्मक अभिव्यक्ति उक्ति के रूप में मन पर प्रभाव डालती है। अपने भावों से प्रकृति को संवेदित कर देने की व्यापक प्रवृत्ति ऋतु सम्बंधी वर्णनों में मिलती है।

भाव-तादात्म्य
भावोल्लास

हम देख चुके हैं कि सहज वर्णनों में भी प्रकृति भावशील है। अन्य चित्रों में प्रत्यक्ष रूप से गायक अपना उल्लास प्रकृति के उल्लास में मिला देता है। उल्लास का यह भाव-सामंजस्य प्रकृति के सम्मुख मन की मुक्त स्थिति का रूप है—

> मुदित इव कदम्बैर्जातपुष्पैः समन्ता-
> त्पवनचलितशाखैः शाखिभिर्नृत्यतीव।

---

२१. ऋतु०; स० १; १४, २०: स० ३; २२, २१।

हसितमिव विधत्ते सूचिभिः केतकीनां
नवसलिलनिषेकाच्छिन्नतापो वनान्तः ॥

[पवन से झूमती हुई शाखाओं से नृत्य करता हुआ, केतकी की श्वेत कलियों के रूप में हँसता हुआ वन-प्रदेश वर्षा के नए जल से सन्तापहीन होकर चारों ओर खिले हुए कदम्ब के फूलों में मगन है।] यहाँ वन में कवि के मन का उल्लास प्रतिबिम्बित हो रहा है। पर अधिकतर प्रकृति और मानव का उल्लास तादात्म्य स्थापित करता है—'जिनका जल कमलों के पराग से लाल हो गया है और जिन पर हंस कूजते हैं ऐसी नदियाँ, जिनकी लहरें जल-पक्षियों के चोंचों से टकरा रही हैं और जिनके तीर पर कादम्ब और सारस पक्षियों के झुण्ड घूम रहे हैं, लोगों के मन को आकर्षित करती हैं।' अथवा 'जिनके तीर पर मस्त हंसों के जोड़े घूम रहे हैं, जिनमें निर्मल नील कमल खिले हुए शोभित हैं ऐसे ताल, जिनमें प्रातःकाल के मन्द पवन से लहरें उठ रही हैं अकस्मात् ही मन को चंचल कर देते हैं।' उल्लासमयी प्रकृति का यह रूप काव्यात्मक आदर्श का है। पर बीच-बीच में सहज प्रकृति में यही आनन्दोल्लास प्रतिध्वनित हो रहा है—

संपन्नशालिनिचयावृतभूतलानि
स्वस्थस्थितप्रचुरगोकुलशोभितानि ।
हंसैः ससारसकुलैः प्रतिनादितानि
सीमान्तराणि जनयन्ति नृणां प्रमोदम् ॥[२२]

[जहाँ खेतों में भरपूर धान के पौधे लहलहा रहे हैं, घास के मैदानों में बहुत सी गायें चर रह रही हैं और अनेक हंस तथा सारस के जोड़े मधुर स्वर कर रहे हैं, ऐसे गाँवों के सिमान (सीमान्त) लोगों को

---

२२. ऋतु० : स० २ ; २३ : स० ३ ; ८, ११, १६ (स० ४ ; ८ इसी के समान है)

उल्लसित करते हैं।] महाकाव्यों के ऋतु-वर्णनों में यह उल्लास का रूप बहुत कम आ सका है। उसका कारण प्रत्यक्ष ही इनका अधिक कलात्मक होना है। जानकीहरण में यह भाव-व्यंजना अधिक अलंकृत रीति से की गई है—

महीध्रमूर्ध्नि भ्रमरेन्द्रनीलैर्विभक्तशोभः शिखिकण्ठनीलैः।
गृहीतभास्वन्मुकुटानुकारस्ततान कान्तिं नवकर्णिकारः॥[23]

[जिसका सौन्दर्य्य नीलम के समान भ्रमरों से चित्रित हो गया है और जिसने नीले कण्ठवाले मयूरों से चमकीले मुकुट का अनुकरण किया है ऐसा गिर-शिखर पर फूला हुआ नवकर्णिकार अपनी शोभा का विस्तार कर रहा है।] इसमें भाव से चित्र का रूप अधिक प्रमुख हो गया है, इस कारण उल्लास का वैसा मुक्त तादात्म्य यहाँ प्रत्यक्ष नहीं हो सका है। भारवि की उल्लासमयी प्रकृति में स्वच्छन्द वातावरण से अधिक कवित्व का आग्रह और परम्परा का अनुसरण है—

व्यथितमपि भृशं मनो हरन्ती परिणतजम्बुफलोपभोगहृष्टा।
परभृतयुवतिः स्वनं वितेने नवनवयोजितकण्ठरागरम्यम्॥[24]

[पूर्ण रूप से पके हुए जामुन के फल खाकर पुष्ट हुई कोकिला युवती नए-नए ढंग से अपने कण्ठ के स्वर को निकालकर दुःखी मन को भी आकर्षित करती है।] इस चित्र में प्रकृति के आकर्षण और उल्लास के साथ युवती का उल्लेख किया गया है, जिससे उद्दीपन का किंचित संकेत मिलता है।

क—इन ऋतु-वर्णनों में काव्य-परम्परा का अनुसरण अत्यधिक है, इस कारण उन्मुक्त भावना के केवल संकेत इनमें देखे जा सकते हैं। इसी प्रवृत्ति के कारण भावारोप का अधिक विस्तार रूपात्मक है तथा उद्दीपन के अन्तर्गत आता

आरोप

२३. जान० ; स० ३ ; ८। अन्य उदाहरण वर्णन-शैली के अन्तर्गत देखे जा सकते हैं।

२४. किरा० ; स० १० ; २२।

है। भावतादात्म्य को व्यक्त करनेवाले आरोप इनमें कम हैं। समस्त भाव-धारा शृंगार तथा उसके उद्दीपक-विधान से ऐसी ओत-प्रोत है कि व्यापक भाव-स्थिति का प्रतिबिम्ब ग्रहण करनेवाले आरोपों के लिये अवसर बहुत कम मिला है। जो एक आध उदाहरण मिल जाते हैं, वे आकार प्रधान हैं। और जैसे ऊपर वर्णित उल्लासित प्रकृति एक प्रकार से उद्दीपन की व्यापक भावना का अंश है, इनमें भी व्यंजना उसी की छिपी है। वर्षा के इस रूप में नायिका की कल्पना है—'बिखरे हुए वैदूर्यमणि के समान लगनेवाली घास के कोमल अकुओं से भरी हुई, कन्दली के ऊपर निकले हुए पत्तों से आच्छादित तथा बीरबहूटियों से छाई हुई धरती मानों श्वेत रत्नों को छोड़कर और सभी रंग के रत्नों के आभूषण से सजी हुई है।' इस आरोप में व्यापक सौन्दर्य का आलम्बन प्रकृति में मानवीय रूप में प्रतिघटित हुआ है। परन्तु नायिका और शृंगार की कल्पना इतनी प्रधान हो उठती है कि प्रकृति पर आरोप प्रधान लगने लगता है जो अप्रत्यक्ष आलम्बन को साथ लिये हुए हैं। इसी प्रकार ऋतुसंहार के वसन्त-वर्णन में 'पलास के लाल वनों से ढकी हुई पृथ्वी को नव-वधू के रूप' में उपस्थित किया गया है। प्रकृति के व्यापारों में इसी प्रकार का आरोप है जिसमें व्यापक भाव-शीलता के साथ शृंगार का संकेत है—

सदा मनोज्ञं स्वनदुत्सवोत्सुकं विकीर्णविस्तीर्णकलापशोभितम्।
ससंभ्रमालिङ्गनचुम्बनाकुलं प्रवृत्तनृत्यं कुलमद्य बर्हिणाम्॥[२५]

[सदा मधुर बोलनेवाले, गरजते बादलों की शोभा पर रीझ उठनेवाले तथा अपने खुले पंखों से सुहावने लगनेवाले मोरों के झुण्ड तत्परता से अपनी प्यारी मोरनियों को गले लगाते तथा चूमते हुए आज नाच उठे हैं।] इस भावात्मक आरोप में आलिंगन आदि से उद्दीपन का संकेत

२५. ऋतु० ; स० २ ; ५ : स० ६ ; २१ : स० २ ; ६। (स० ३ ; १ में नव-वधू का आरोप है।)

आ गया है। आरोप के प्रयोग महाकाव्यों के अन्तर्गत ऋतु-वर्णनों में अधिक हैं। ये वर्णन अधिक अलंकृत शैली में हैं इस कारण इनमें मानवीकरण द्वारा भाव-व्यंजना का अधिक आश्रय लिया गया है। लेकिन समान रूप से शृंगार के उद्दीपन की प्रवृत्ति इनमें पाई जाती है। व्यापक भाव-शीलता को प्रतिघटित करके आलम्बन रूप में प्रकृति का चित्रण यत्र-तत्र ही हो सका है। पिछले प्रकरण में शैली के अन्तर्गत इन पर विचार किया गया है। रघुवंश में व्यापक भाव-व्यंजना का चित्र इस प्रकार है—

कुसुमजन्म ततो नवपल्लवास्तदनु षट्पदकोकिलकूजितम्।
इति यथाक्रममाविरभून्मधुर्द्रुमवतीमवतीर्य वनस्थलीम्॥

[पहले फूल विकसित हुए, फिर नई कोपलें फूटीं फिर भौंरे गुंजारने लगे और कोयल की कूक भी सुनाई देने लगी। इस प्रकार क्रमशः वसन्त धीरे-धीरे वनस्थली में प्रकट हो रहा है।] प्रकृति के इस रूप-क्रिया विस्तार में एक अदृश्य भाव-शीलता छिपी है। कवि लताओं को आकार देकर हाव-भावों में अनुप्रमाणित कर देता है—'खिले हुए कोमल पुष्पों के रूप में जिनकी मुस्कान में दाँतों की झलक है और भ्रमरों की मधुर गुंजार के रूप में जो गा रही हैं ऐसी वन के निकट की लताएँ पवन से हिलते हुए नवीन कल्ले रूपी हाथों से अभिनय सा कर रही हैं।'[२६] अन्य आरोपों में वैचित्र्य तथा उद्दीपन की प्रवृत्ति अधिक स्पष्ट हो गई है। भारवि के इस चित्रांकन में भावों की सहज व्यंजना आरोप के माध्यम से हुई है—

कुसुमनगवनान्युपैतुकामा किसलयिनीमवलम्ब्य चूतयष्टिम्।
क्वणदलिकुलनूपुरा निरासे नलिनवनेषु पदं वसन्तलक्ष्मीः॥[२७]

---

२६. रघु० ; स० ९ ; २६, ३५। व्यापक भावशीलता की दृष्टि दे० सेतु०, आ० १ ; २९, तृ० प्र० में उद्धत।

२७. किरा० ; स० १० ; ३१।

[पुष्पित वृक्षोंवाले वनों पर छा जाने की इच्छा करती हुई वसन्त की श्री, आम की नव-किसलयों से आच्छादित शाखाओं का सहारा लेकर कमलों के वन पर अलि की गुंजार से नूपरों की झंकार करती हुई पद रख रही है।] काव्यात्मक कल्पना के इस रूप में प्रकृति के सौन्दर्य्य में भावों का प्रतिबिम्ब स्पष्ट है; और कवि तथा पाठक की मनःस्थिति के लिये यह सौन्दर्य आलम्बन है। परन्तु ऐसा भावशील रूप सभी कवियों में कम मिलता है। माघ की आरोप सम्बंधी प्रवृत्ति का उल्लेख पिछले प्रकरण में किया गया है। इनके आरोप स्थूल-रूप का आश्रय लेकर भाव को व्यक्त करते है जिनमें वैचित्र्य के साथ उद्दीपन के संकेत स्पष्ट हो जाते है। जब प्रकृति में शृंगार के आलम्बन का आरोप किया जाता है, पर भावी मानवीय आलम्बन का परोक्ष रूप अधिक उभरने नहीं पाता है, तो वह रूप व्यापक रति-भाव का स्वतः आलम्बन माना जा सकता है। इसी दृष्टि से ऊपर के प्रसंग में शृंगार सम्बंधी आरोपों को लिया गया है। माघ वन-श्रेणी की कल्पना ऋत के साथ वधू के रूप में करते हैं—

अनुवनं वनराजिवधूमुखे बहलरागजवाधरचारुणि ।
विकचबाणदलावलयोऽधिकं रुरुचिरे रुचिरेक्षणविभ्रमाः ॥[२८]

[प्रत्येक वन में, अत्यन्त लाल रंग के जवाकुसुम रूपी ओठों से सुन्दर तथा विकसित नील झिण्टी के दल-समूह रूपी सुन्दर नेत्रों के भ्रूविलास से वनराजि वधू अत्यधिक शोभित हुई।] प्रकृति के आलम्बन-रूप के साथ इन आरोपों में जो भाव-रूप स्थापित किया जाता है वह शृंगार के आलम्बन-रूप के अति निकट है। इस कारण उसके किंचित संकेत मिलते ही यह रूप उद्दीपन-विभाव के अन्तर्गत आ जाता है। एक प्रकार से प्रकृति के आलम्बन तथा उद्दीपन रूपों की यह विभाजन सीमा है।

---

२८. शिशु० : स० ६ ; ४६ ।

§ १६—गीति-भावना से प्रभावित मुक्तक काव्य में और विशेष-कर ऋतु-काव्य में प्रकृति के प्रति आत्मीयता और निकटता की भावना स्वाभाविक है। इसी वातावरण में मानव प्रकृति से अपना सम्बंध स्थापित करता है। जिस निकटता से प्रकृति मानव जीवन को स्पर्श करती है, उसी के आधार पर मानव उसे अपनी सहानुभूति से अनुप्राणित करता है और उससे साहचर्य्य का सम्बंध स्थापित करता है। दूत-काव्य के अन्तर्गत इसका उल्लेख किया गया है। प्रकृति के प्रति आत्मीयता की घनी अनुभूति के कारण उपालम्भ-काव्य का विकास हुआ है। इस काव्य-रूप के लिये जितने मुक्त वातावरण की आवश्यकता है, वह संस्कृत के ऋतु-वर्णनों में नहीं मिलता है। इसका विकास लोक-भाषाओं के साहित्य में हुआ है। पर यत्र-तत्र इनमें सहानुभूति का वातावरण मिल जाता है। गाथाकार की साहचर्य्य-भावना व्याध के अश्रुओं के साथ एकरस हो गई है—

आत्मीयता का वातावरण

एक्कक्कमपरिरक्खणपहारसँमुहे कुरुङ्गमिहुणम्मि।
वाहेण मण्णुविअलन्तवाहधोअं धणुं मुक्कम्॥

[कुरंग के जोड़े में से जब प्रत्येक दूसरे को बाण से बचाने के लिये प्रहार के समान आने लगे तब करुणार्द्र व्याध ने अश्रुओं से धुला धनुष रख दिया।] परन्तु आर्या का कवि अपनी सहानुभूति प्रकृति में अभ्यन्तरित कर देता है—'विरह से कातर पुतली को अपने प्रिय की ओर लगाए हुए किरात के बाण से बिद्ध मृगी के प्राण मानों दृष्टि के मार्ग से निकल गये हैं।'[२९] ऋतु-वर्णनों की कलात्मक योजना में इस आत्मीयता और सहानुभूति के लिये बिलकुल अवसर नह है। यदि एक दो स्थल मिल जाते हैं, तो वे केवल इस भावना के अवशेष मात्र हैं। भारवि गोपियों के गीत से आकर्षित मृगियों का वर्णन करते हैं—

२९. गाथा० ; स० ७ ; १ : आर्या १ ; श० ; ३ ; ८३।

कृतावधानं जितबर्हिणध्वनौ सुरक्तगोपीजनगीतनिःस्वने ।
इदं जिघत्सामपहाय भूयसीं न सस्यमभ्येति मृगीकदम्बकम् ॥[30]

[गोपियों के मयूर के केका स्वर से मधुर गीत में एकाग्र चित्त होने से मृगियों के समूह अपने खाने की अत्यधिक इच्छा को त्याग कर धान नहीं खा रहे हैं।] इस प्रकार के उल्लेख इन वर्णनों के अन्तर्गत आकस्मिक माने जा सकते हैं, क्योंकि व्यापक प्रवृत्ति में इस भावना को स्थान नहीं मिल सका है। माघ के ऋतु-वर्णन में ऐसा ही चित्र आ गया है—

विगतसस्यजिघत्समघट्टयत्कलमगोपवधूर्न मृगव्रजम् ।
श्रुततदीरितकोमलगीतकध्वनिमिषेऽनिमिषेक्षणमग्रतः ॥[31]

[आश्विन मास में धान की रक्षा करनेवाली गोप-वधुओं ने, धान्य खाने की इच्छा त्याग कर आगे खड़े हुए, निर्निमेष नयनों से मधुर-गीतालाप को सुन रहे हिरणों को नहीं मारा।] भारवि के वर्णन को माघ ने कुछ अधिक विस्तार दिया है जिसमें आत्मीयता का वातावरण अधिक घना है। पर जैसा कहा गया है ये चित्र उदाहरण मात्र हैं।

क—परन्तु आत्मीय सहानुभूति की यह भावना इन काव्यात्मक रूपों में प्रकृति के मानवीकरण से व्यक्त की गई है। यह भावात्मक

आरोप में आत्मीयता

अध्यन्तरण कलात्मक अभिरुचि के अनुरूप है। इस प्रकार प्रकृति में मानवीय सम्बंधों का आत्मीय वातावरण प्रतिघटित होता है। भावारोप में भी इस प्रकार की प्रवृत्ति का आभास मिलता है। पर उसमें व्यापक भावशीलता का उल्लेख हुआ है। प्रकृति के विभिन्न उपकरणों की योजना में भावात्मक व्यंजना के लिये जब सम्बधों की कल्पना समन्वित की जाती है, तब यह एक प्रकार से मानव और प्रकृति की आत्मीयता का

३०. किरा० ; स० ४ ; ३३ ।
३१. शिशु० ; स० ६ ; ४९ ।

प्रतिबिम्ब होता है। दूत-काव्य परम्परा के अन्तर्गत इस प्रवृत्ति का उल्लेख हुआ है। कालिदास ऋतुसंहार में बादल और विन्ध्य के आत्मीय व्यवहार का उल्लेख फिर करते हैं—'जब हम पानी के बोझ से लदे आते हैं तो यही हमें सहारा देता है, यह समझ कर जल से भरे हुए झुक-झूमते बादल गरमी की आग की लपटों से झुलसे हुए विन्ध्याचल की तपन अपने ठंडे जल की फुहारों से बुझा रहे हैं।' कभी प्रकृति के अधिक व्यापक उपकरणों में कवि इसी सम्बंध की कल्पना करता है,—

जिगमिषुर्धनदाध्युषितां दिशं रथयुजा परिवर्तितवाहनः।
दिनमुखानि रविर्हिमनिग्रहैर्विमलयन्मलयं नगमत्यजत् ॥[३२]

[कुवेर की दिशा की ओर जाने की इच्छा है ऐसा जानकर सारथी अरुण ने घोड़ों की रास उसी ओर मोड़ दी है; और (वसन्त में) सूर्य ने प्रभात का पाला हटाकर उसे अधिक उद्भासित करते हुए मलय पर्वत से विदा ली।] पौराणिक प्रसिद्धियों के आधार पर कवि ने सौन्दर्य्य की उद्भावना में व्यापक आत्मीयता का संकेत छिपा दिया है। यह विश्व-प्रकृति के साथ मानवीय तादात्म्य की सुन्दर कल्पना है। महाकाव्यों के ऋतु-वर्णनों में अपनी अपनी प्रवृत्ति के अनुसार इस प्रकार के सम्बंधात्मक आरोप मिलते हैं। प्रवरसेन में सम्बंध का स्थूल रूप अधिक सामने आता है—

पर्याप्तकमलगन्धो मध्वार्द्रापसरन्नवकुमुदरजाः।
भ्रमद्भ्रमरोपजीव्यः सञ्चरति सदानशीकरो वनवातः ॥[३३]

[कमल गन्ध से अधिक सुगन्धित, नव कुमुदों की रज से युक्त तथा मधु से आर्द्र और मद के बिन्दुओंवाला वन का पवन गुंजार करते हुए भ्रमर सेवकों के साथ विचरण कर रहा है।] इस चित्र में शृंगार की

---

३२. ऋतु० : स० २ ; २८ : रघु० ; स० ९ ; २५।
३३. सेतु० ; आ० १ ; ३१।

भावना का संकेत है, इस कारण आत्यमीयता का भाव उभर नहीं सकता है। मानवीय सम्बंधों का वह आरोप जिसमें रति-भाव प्रधान है, उद्दीपन के अन्तर्गत आता है। भारवि की आत्मीयता के विस्तार में दिशाएँ आपस में वार्तालाप करती हैं—

सितच्छदानामपदिश्य धावतारुतैरमीषां ग्रथिताः पतत्रिणाम् ।

प्रकुर्वते वारिदरोधनिर्गताः परस्परालापमिवामला दिशः ॥[३४]

[आकाश, सरोवर और वनों की ओर उड़ते हुए श्वेत पंखवाले पक्षियों के ध्वनि-नाद से पूरित नीरभ्र दिशाएँ मानों आनन्दित होकर आपस में बातचीत कर रही हैं।] इस वार्तालाप में सखी-जन्य सौहार्द की व्यंजना है। माघ की 'कुन्दलता' की इस हँसी में भी साहचर्य की भावना व्यक्त होती है—

अधिलवङ्गममी रजसाधिकं मलिनिताः सुमनोदलतालिनः ।

स्फुटमिति प्रसवेन पुरोऽहसत्सपदि कुन्दलता दलतालिनः ॥[३५]

[लवंगलता के फूलों पर बैठे हुए भ्रमर उसकी रज से और भी मलिन हो गये हैं, इस कारण निकटवर्ती कुन्दलता अपने खिले फूलों से मानों उनकी हँसी उड़ाती है।] पर माघ की कल्पना में वैचित्र्य अधिक है। श्रीहर्ष की इस चित्र-योजना में आत्मीय भावशीलता अधिक है—

नवालतागन्धवहेन चुम्बिता करम्बिताङ्गी मकरन्दशीकरैः ।

दृशा नृपेण स्मितशोभिकुड्मला दरादराभ्यां दरकम्पिनी पपे ॥[३६]

[नल ने भय और उत्सुकता से देखा—जल में गन्ध धारण करनेवाले पवन से चुम्बित, मकरन्द के कणों से चित्रित लता किंचित पुलकित होकर अपनी कलियों में मुस्करा रही है।] परन्तु इस वर्णन में नल की

---

३४. किरा० ; स० ४ ; ३० ।

३५. शिशु० ; स० ६ ; ६६ ।

३६. नैष० ; स० १ ; ८५ ।

उपस्थिति में पवन और लता में जो प्रेमी-प्रेमिका का भाव व्यंजित किया गया है, उससे प्रकृति की भावशीलता उद्दीपन-विभाव के निकट है।

महाप्रबन्ध-काव्य

§१७—कथा-काव्य मानव जीवन के इतिवृत्त से सम्बंधित है। जीवन के सूत्र को ग्रहण कर चलनेवाले कथा-साहित्य में उसकी रूप-रेखा होती है और इन रेखाओं से जीवन-चरित्र का निर्माण होता है। जीवन की इन एकाइयों को सँजो कर चलनेवाला काव्य जीवन और जगत् की समष्टि-रूप घटनाओं तथा परिस्थितियों को सँभाले बिना एक पग नहीं चल सकता। व्यक्ति के जीवन को आकार में बाँधना होगा और परिस्थिति को वस्तु की स्थितियों में स्पष्ट करना पड़ेगा। यह आकार, यह वस्तु-स्थिति देश-काल की सीमाओं में फैले हुए रूप रंग, ध्वनि-नाद, गन्ध-स्पर्श से भिन्न क्या है! और यह बाह्य जगत् में बिखरा हुआ प्रकृति-विस्तार है। जीवन जब इस प्रकृति पर प्रतिक्रियाशील होता है, तब परिस्थिति का रूप सामने आता है। परिस्थिति का एक भाग मानव-चरित्र में छाया रहता है, और दूसरा देश-कालगत वस्तु-स्थितियों में फैला रहता है। परिस्थिति के इस प्रतिघटित विस्तार को चित्रित किये बिना कथा-काव्य का जीवन-प्राण स्पन्दित नहीं हो सकता। काव्य में स्पन्दित प्राणों से शून्य जीवन तथा अनुप्राणित रूप से हीन प्रकृति की अवतारणा उसके पतनोन्मुख होने का प्रमाण है। रूढ़िवादी काव्य में मानव को नख-शिख वर्णना में तथा प्रकृति को ऊहात्मक कल्पनाओं में घेरने की परम्परा चली भी है। कथानक के चरित्र में घटनात्मक क्रियाशीलता होती है और घटना तथा चरित्र का अन्योन्याश्रय सम्बंध है। इस प्रकार जीवन की जब क्रियाशीलता सचेष्ट होकर चरित्रों में व्यक्त होती है तो घटनाओं का जन्म होता है। पर जीवन की प्रकृति

कथा-काव्य और प्रकृति

पर प्रारम्भिक प्रतिक्रिया परिस्थिति के रूप में चरित्र के साथ सदा रहती है, और इस कारण वह घटनाओं का भी आधार रहती है। इस रूप में प्रकृति आश्रय तथा आलम्बन की समस्त क्रियाशीलता का आधार है। आश्रय की परिस्थिति रूप में वह पाठक के लिये घटना-स्थिति का संकेत देती है, और आलम्बन की परिस्थिति के रूप में भावाशील वातावरण प्रस्तुत करती है। इन दोनों रूपों में प्रकृति कथा-काव्य में उद्दीपन-विभाव के अन्तर्गत नहीं मानी जा सकती। इसके अतिरिक्त आश्रय तथा आलम्बन के भावों से प्रतिबिम्ब ग्रहण कर प्रकृति कथानक को कभी गति प्रदान करती है और कभी उसकी संवेदनशीलता को अधिक सघन कर देती है। कभी पात्र अपनी भाव-स्थिति में प्रकृति की आत्मीयता के निकट पहुँच जाता है और उससे अपने दुःख-सुख की बात कहता है। और कभी अपनी संवेदना का प्रतिबिम्ब प्रकृति में देखता है। जब कथानक के अन्तर्गत आश्रय की आलम्बन विषयक प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष भाव-स्थिति को प्रकृति प्रभावित करती है, तो वह उद्दीपन-विभाव के अन्तर्गत आती है, जिसका अध्ययन षष्ठ प्रकरण में प्रस्तुत किया जायगा।

§१८—कथात्मकता की दृष्टि से महाप्रबन्ध-काव्यों और महाकाव्यों में अत्यधिक भेद है। आगे ,महाकाव्यों के प्रसंग में हम देखेंगे कि

महाभारत के विस्तार में

इनमें कथा सम्बंधी आग्रह नहीं है। इनके विपरीत महाप्रबन्ध-काव्यों में कथा का व्यापक विस्तार मिलता है। इनमें भी महाभारत और रामायण में भेद है। महाभारत कथाओं का विस्तृत सागर है जिसमें एक कथा के साथ दूसरी अनेक कथाएँ चलती जाती हैं। आधिकारिक कथा-वस्तु में स्वतः अधिक गति है और उतार-चढ़ाव भी है। इस कथा-प्रवाह में प्रकृति-वर्णन के विस्तृत अवसर नहीं आ सके हैं। जो वर्णन बीच में आते हैं वे प्रासंगिक हैं। किसी घटना की स्थिति का निर्देश करने के लिये अथवा मार्ग आदि के संकेत देने के लिये महाभारत में प्रकृति-वर्णन

का अवसर आया है। इन वर्णनों में अधिकतर जैसा शैली के अन्तर्गत कहा गया है, रेखा-चित्र हैं। इनमें प्रकृति का रूप अपनी देश-काल गत सीमाओं में सामने नहीं आता, केवल व्यापक रूप उभर कर वन, पर्वत, नदी आदि का सामान्य भान करा देता है। आरण्यक पर्व में ऐसे अवसर अपेक्षाकृत अधिक आये हैं। परन्तु यत्र-तत्र प्रसंग के अनुसार जब कोई पात्र प्रकृति के सम्पर्क में आ जाता है, तब जैसे विवश होकर कवि को प्रकृति का वास्तविक रूप सांश्लिष्टता के साथ उपस्थित करना होता है। परन्तु ऐसे स्थल पर संश्लिष्ट योजना से हमको केवल प्रकृति के उस पक्ष का बोध होता है जिससे पात्र और घटना का सम्बंध है। उससे प्रकृति की स्थान गत विशेषता का कोई रूप सामने नहीं आता। पिछले प्रकरण में ऋषि के आश्रम का जो वर्णन उद्धृत किया गया है, उसमें आश्रम का वातावरण अधिक प्रत्यक्ष है, स्थान की स्थिति का बोध स्पष्ट नहीं है। इसी प्रकार दमयन्ती अकेली निःसहाय जिस वन में घूम रही है, उसका चित्र अपनी व्यापक योजना में केवल भय तथा आतंक का वातावरण प्रस्तुत करता है—

> **निकुञ्जान्पक्षिसंघुष्टान्दरीश्चाद्भुतदर्शनाः ।**
> **नदीः सरांसि वापीश्च विविधांश्च मृगद्विजान ॥**
> **सा बहून्भीमरूपांश्च पिशाचोरगराक्षसान् ।**
> **पल्वलानि तडागानि गिरिकूटानि सर्वशः ।**
> **सरितः सागरांश्चैव ददर्शाद्भुतदर्शनान् ॥** [३७]

[दमयन्ती ने उस अद्भुत वन को देखा। वहाँ लताकुंजों में पक्षियों का समूह कोलाहल कर रहा था और भयानक बीहड़ गुफाएँ दिखाई दे रही थीं। नदी, सरोवर, झीलों के पास नाना प्रकार के पशु विचर रहे थे। अत्यन्त भयानक पिशाच, राक्षस तथा सर्प वहाँ विचर रहे थे।

---

३७. महा० ; आर० पर्व ; अ० ६१ ; ६ , ७

तालाब, पोखर और पर्वत की चोटियाँ चारों ओर घेरे हुए थीं। नदियाँ, बड़ी-बड़ी झीलें सभी मिलाकर वह वन अत्यधिक भयानक दिखाई देता था।] इस वर्णन में न कोई क्रम है और न कोई देश-काल का विचार ही। केवल प्रकृति के नाना उपकरणों को इस सघनता के साथ वर्णना में प्रस्तुत किया गया है कि दृश्य में भय की व्यंजना व्याप्त हो गई है। इसके अतिरिक्त महाभारत में मानवीय जीवन-व्यापार का ऐसा प्रसार है कि मानव तथा प्रकृति में किसी प्रकार की आत्मीयता अथवा प्रतिबिम्बित भावशीलता के लिये कोई स्थान नहीं है। प्रकृति का मानवीय जीवन से केवल घटनात्मक सम्बंध है। पर यदि घटना के रूप में प्रकृति उपस्थित होती है तो उसके वर्णन में काव्यात्मक प्रतिभा का परिचय मिलता है। उदाहरण के लिये आरण्यक पर्व के अन्तर्गत एक आँधी का वर्णन अत्यधिक सजीव और सशक्त है—

ततो रेणुः समुद्भूतः सपत्रबहुलो महान्।
पृथ्वीं चान्तरिक्षं च द्यां चैव तमसावृणोत्॥
न स्म प्रज्ञायते किंचिदावृते व्योम्नि रेणुना।
न चापि शेकुस्ते कर्तुमन्योन्यस्याभिभाषणम्॥
न चापश्यन्त तेऽन्योन्यं तमसा हतचक्षुषः।
आकृष्यमाणा वातेन साश्मचूर्णेन भारत॥[३८]

[(जब वे गन्धमादन पर्वत पर पहुँचे प्रचण्ड आँधी और वर्षा प्रारम्भ हुई) धूल और पत्तों से पूर्ण उस आँधी ने पृथ्वी, आकाश तथा क्षितिज को अन्धकार से ढँक दिया। आकाश में धूल इस प्रकार व्याप्त हो गई कि कुछ भी पहचाना नहीं जा सकता था और आपस में बातचीत करना भी असम्भव हो गया। आँखों में रजकण इस प्रकार भर गये कि एक-दूसरे को देख सकना भी सम्भव नहीं था।] इस प्रकृति के रूप में स्वाभाविक प्रवेग है, साथ ही इसका वर्णन घटना-स्थिति के बिलकुल

३८. वही ; वही ; अ० १४३ ; ७, ८, ९।

अनुरूप है। आँधी के साथ पाण्डवों की व्याकुलता का सामंजस्य अत्यधिक सजीव हो गया है। इस प्रकार महाभारत में प्रकृति बिलकुल निर्पेक्ष है, वह मानवीय भावों के प्रति कोई संवेदनात्मक सम्बंध स्थापित नहीं करती। अपने सौन्दर्य्य में जैसी वह मुक्त है, वैसे ही अपने भयानक स्वरूप में निर्मम भी है। दमयन्ती वन में प्रकृति से संवेदना की, आत्मीयता की प्रार्थना करती घूमती है, पर प्रकृति मौन है वह अपने में व्यस्त है—

श्रुत्वारण्ये विलपितं ममैष मृगराट् स्वयम्।
यात्येतां मृष्टसलिलामापगां सागरं गमाम्॥[३९]

[मुझ विलाप करती हुई को सुन कर यह सिंह स्वच्छ नीरवाली सागर की ओर प्रवाहित इस सरिता की ओर जा रहा है।] इस प्रकार मानवीय तथा प्रकृति की संवेदना में तादात्म्य महाभारत में नहीं मिलता है।

§ १६—रामायण की कथा-वस्तु अपनी एक-सूत्रता में निश्चित है। इसमें आधिकारिक कथा-वस्तु के अन्तर्गत अन्य कथाओं का विस्तार नहीं मिलता। जो प्रक्षेप आदि के कारण आ गई हैं वे या तो आदि तथा उत्तरकाण्ड के अन्तर्गत हैं या बिल्कुल अलग जान पड़ती हैं। इसके अतिरिक्त रामायण की रचना चरित-काव्य के आदर्श पर हुई है और वह एक कवि की कृति है। इस कारण उसके कथा-विस्तार में घटना-स्थिति—परिस्थिति आदि के रूप में प्रकृति का देश-काल गत आधार सदा बना रहता है। कवि इस मानवीय चरित के आधार को सदा प्रस्तुत करता चलता है। महाभारत जैसा घटनाओं का आग्रह रामायण में नहीं है। उसमें कथा मन्थर गति से प्रवाहित है और आदि कवि की कल्पना उसके साथ चतुर्दिक फैली प्रकृति से वातावरण का निर्माण करती है।

रामायण में कथा का आधार

---

३९. वही ; वही : अ० ६१ ; ३४।

राम-कथा का वन-वास के बाद का घटना-स्थल वन-पर्वत है। और कवि ने इस क्षेत्र में कथा के प्रवेश के साथ प्रकृति का संकेत देना प्रारम्भ कर दिया है। राम सीता लक्ष्मण के साथ संगम की ओर जाते हैं—

ते भूमिभागान्विविधान्देशांश्चापि मनोहरान्।
अदृष्टपूर्वान्पश्यंतस्तत्र तत्र यशस्विनः॥
यथा क्षेमेण संपश्यन्पुष्पितान्विविधान्द्रुमान।

× × ×

[वे यशस्वी उन अपरिचित नवीन अनेक प्रकार के सुन्दर प्राकृतिक प्रदेशों को देखते हुए जा रहे थे। मार्ग में वे आनन्दपूर्वक अनेक पुष्पित वृक्षों को देखते जाते थे।] ये पात्र अपने चारों ओर की प्रकृति के प्रति सचेष्ट भी हैं। यहाँ प्रकृति घटना की स्थिति मात्र नहीं है, वरन् कथा-वस्तु की परिस्थिति है। जिस वन-मार्ग में राम आदि जा रहे हैं उसके प्रति वे निरपेक्ष नहीं हैं। वे मुक्त भाव से प्रकृति के रूप-विस्तार को देखते जाते हैं, जैसे वे उसी को देखने के लिये विचर रहे हैं—

ते गत्वा दूरमध्वानं लम्बमाने दिवाकरे।
ददृशुः सहिता रम्यं तटाकं योजनायतम्।
पद्मपुष्करसम्बाधं गजयूथैरलंकृतम्।
सारसैर्हंसकादम्बैः संकुलं जलजातिभिः।

[उन्होंने मार्ग में अधिक दूर जाने के बाद सूर्य्य के ढल जाने पर एक योजन विस्तार का तालाब देखा। उसमें असंख्य कमल के पुष्प लगे हुए थे, हाथियों का समूह क्रीड़ा कर रहा था, तथा सारस, हंस कादम्ब आदि जलचरों के समूह विचर रहे थे।] इस प्रकार आदि कवि राम के वन-वास के जीवन में प्रकृति के भाग को प्रत्येक अवसर पर उपस्थित करते हैं। यही नहीं वरन् ये पात्र आपस में प्रकृति के रूप-विस्तार के प्रति बात-चीत करते चलते हैं। राम लक्ष्मण का ध्यान आकर्षित करते हुए कहते हैं—

नूनं प्राप्ताः स्म संभेदं गंगायमुनयोर्वयम्।
यथा हि श्रूयते शब्दो वारिणोर्वारिघर्षजः॥
दारूणि परिभिन्नानि वनजैरुपजीविभिः।
छिन्नाश्चाप्याश्रमे चैते दृश्यंते विविधा द्रुमाः॥[40]

[अब निश्चय ही हम गंगा-यमुना के संगम के पास पहुँच गए हैं, क्योंकि जल-संघात का शब्द सुनाई दे रहा है। उपजीवी हाथियों के द्वारा अत्यन्त नष्ट-भ्रष्ट किये जाने पर भी आश्रम के नाना प्रकार के ये वृक्ष दिखाई दे रहे हैं।] यहाँ प्रकृति जीवन का अंग बन कर उपस्थित होती हैं इन वर्णनों तथा उल्लेखों में चित्रमयता नहीं है; पर कथा-प्रवाह में ये प्रसंग दृश्यों की पूरी रूप-रेखा में प्रत्यक्ष हो जाते हैं।

§ २०—इन वर्णनात्मक उल्लेखों के अतिरिक्त विस्तृत चित्र-योजना के स्थल रामायण में अनेक हैं। वन-पर्वतों में विचरण करते राम-सीता लक्ष्मण का ध्यान उनकी ओर आकर्षित होना स्वाभाविक है; और कवि के लिये कथा-विस्तार के रूप में इनका संकेत देते चलना आवश्यक है। परन्तु वन-प्रसंग में कुछ स्थल ऐसे हैं जिनका सम्बंध राम के जीवन से रहा है। इन स्थलों पर इन्होंने अपना समय बिताया है, और इसलिये इनकी वर्णना का अवसर अधिक विस्तार से मिला है। परन्तु इन वर्णनों को कवि ने अपनी ओर से प्रस्तुत नहीं किया है। जिस प्रकार कथा के साथ इन स्थलों का अति निकट का सम्बंध है, उसी प्रकार इनका वर्णन पात्र ही करते हैं। इस प्रकार के वर्णनों में प्रकृति का रूप कथा का अंग बन गया है। इनमें कुछ वर्णन इस प्रकार के हैं जो किसी पात्र के द्वारा किसी परोक्ष स्थल के हैं। भरद्वाज राम को चित्रकूट पर बसने के लिये कहते हैं और बताते हैं कि यह चित्रकूट इस प्रकार का है—

वर्णना की योजना

४०. रामा० ; अयो० का० ; स० ५४ : ३, ४ : अर० का० : स० ११ ; ५, ६ : अयो० का० ; स० ५४ ; ६, ७।

मयूरनादाभिरतो गजराजनिषेवितः ।
गम्यतां भवता शैलश्चित्रकूटः सुविश्रुतः ॥
पुण्यश्च रमणीयश्च बहुमूलफलैर्युतः ।
तत्र कुञ्जरयूथानि मृगयूथानि चैव हि ॥
विचरन्ति वनान्तेषु तानि द्रक्ष्यसि राघव ।
सरित्प्रस्रवणप्रस्थान्दरीकन्दरनिर्झरान् ॥

[आप मयूर के मधुर नाद से गुंजारित तथा हाथियों से सेवित प्रसिद्ध चित्रकूट पर्वत पर जावें । उस स्थान पर पवित्र और सुन्दर अनेक मूल-फल प्राप्त होते हैं और साथ ही हाथी और मृग के समूह फिरते हैं । हे राघव ! आप वहाँ विचरण करते हुए अनेक प्रवाहित नदियों तथा घाटियों की कन्दराओं से निकलते हुए झरनों को देखेंगे ।] परन्तु इस प्रकार के परोक्ष वर्णनों में व्यापक योजना भर रहती है जिनसे स्थान की कल्पना सामने आ जाती है । यह प्रयोग स्वाभाविक है । परन्तु जब उस स्थल पर पहुँच कर पात्र प्रकृति को देखता है तो वह उसके रूप-विस्तार का संश्लिष्ट वर्णन अपने साथ के लोगों से करता है । इस वर्णना में देश की सीमाएँ तथा रंग-रूप जैसे फैला हुआ हो और पात्र सामने पाकर उनकी ओर दूसरों का ध्यान आकर्षित करता है । चित्रकूट सामने है, और राम कभी सीता और कभी लक्ष्मण को सम्बोधित करके उसकी ओर उनका ध्यान आकर्षित करते हैं—'हे सीता, देखो चारों ओर पुष्पित पलास वृक्ष चमक उठे हैं । शिशिर के आगमन में किंशुक ने अपने फूलों की मालाएँ धारण कर लीं हैं । और देखो ये भिलावे और बेल के वृक्ष फल-फूलों से कैसे झुके हुए हैं । लक्ष्मण, देखो वृक्षों पर मधुमक्खियों से एकत्र किये हुए मधु के छत्ते द्रोण (एक बरतन) के समान लटक रहे हैं । यह जल कौआ कैसा बोल रहा है और यह मोर उसका बोल सुनकर कैसा केका-नाद कर रहा है । इस रमणीय वन-प्रदेश की भूमि फूलों से ढकी हुई है ।' एक-एक दृश्य के रूप को सामने लाकर सारा चित्र जैसे फैलता जाता है । जैसे आगे बढ़ता हुआ कोई व्यक्ति

प्रत्येक दृश्य को ध्यानपूर्वक देखकर चल रहा हो। इसी चित्रकूट को वशिष्ट भरत को दिखा रहे हैं —

अयं गिरिश्चित्रकूटस्तथा मन्दाकिनी नदी।
एतत्प्रकाशते दूरान्नीलमेघनिभं वनम् ॥
गिरेः सानूनि रम्याणि चित्रकूटस्य संप्रति।
वारणैरवमृद्यंते मामकैः पर्वतोपमैः ॥[41]

[देखो, यही चित्रकूट पर्वत है और यही मन्दाकिनी नदी है। यह वन दूर से नील मेघ के समान जान पड़ता है। चित्रकूट पर्वत की रमणीय चोटियाँ हमारे हाथियों से मर्दित हो रही हैं।] स्थिति और कथा के अनुसार वाल्मीकि के चित्रण की योजनाएँ चलती हैं। इनके अधिकांश वर्णन इस प्रकार है कि कोई देख रहा है अथवा कोई पात्र उनका स्वयं वर्णन कर रहा है। स्वतंत्र रूप से अनेक संक्षिप्त देश-काल के संकेत मिलते हैं।

सौन्दर्य्यानुभूति : आनन्दोल्लास

§२१—इन पात्रों द्वारा वर्णित प्रकृति-स्थलों में सदा निरपेक्ष प्रकृति का रूप नहीं है। राम द्वारा किये गये वर्णनों में साधारणतः एक सौन्दर्य्य के प्रति आकर्षण का भाव छिपा रहता है। वन-प्रदेशों के दृश्यों के प्रति उनके मन में एक आकर्षण है जो प्रकृति के सौन्दर्य्य-रूप के साथ व्यक्त होता है और उसी की ओर वे दूसरों को भी आकर्षित करते जान पड़ते हैं। लेकिन इन वर्णनों के अतिरिक्त अन्यत्र भी कवि ने सहज प्रकृति के क्रियाकलापों के साथ मानवीय जीवन का सामंजस्य स्थापित किया है। अनसूया कथा कहते-कहते सीता का ध्यान सन्ध्या की ओर ले जाती हैं—

---

४१. रामा० ; अयो० का० ; स० ५५ ; ४०—४२ : स० ५६ ; ६—९ : स० ९३ ; ८, ९।

दिवसं परिकीर्णानामाहारार्थं पतत्रिणाम् ।
सन्ध्याकाले निलीनानां निद्रार्थं श्रूयते ध्वनिः ॥
अग्निहोत्रे च ऋषिणा हुते च विधिपूर्वकम् ।
कपोतांगारुणो धूमो दृश्यते पवनोद्धतः ॥
अल्पपर्णा हि तरवो घनीभूताः समंततः ।
विप्रकृष्टेंद्रिये देशे न प्रकाशंति वै दिशः ॥[४२]

[देखो सन्ध्या हो रही है—दिन भर भोजन की खोज में इधर-उधर उड़ते रहनेवाले पक्षी बसेरा लेने के लिये अपने-अपने घोंसलों को वापस आ रहे हैं, उन्हीं का यह शब्द सुनाई दे रहा है।......विधि-पूर्वक किये हुए होम का कपोत के रंग का धुआँ पवन से ऊपर फैल रहा है। दूर होने के कारण घने दिखाई देनेवाले ये अल्प-पत्तों वाले वृक्ष अन्धकार से और भी घने जान पड़ते हैं।] इस चित्र में सन्ध्या विश्रान्ति का भाव लेकर उपस्थित होती है जो मानव जीवन के समानान्तर है। परन्तु इसमें यह भाव ध्वनित भर होता है। राम द्वारा वर्णित दृश्यों में आश्चर्य्य और उल्लास का भाव अधिक प्रत्यक्ष है। राम पंचवटी को देखकर कह उठते हैं—'यह सुन्दर समतल देश है, यह पुष्पित वृक्षों से आच्छादित है। इसी सुन्दर स्थान पर आश्रम बनाना चाहिए। हे लक्ष्मण, देखो यह सूर्य्य के समान चमकती हुई पुष्करिणी है। यह निकट ही कमलों से भरी हुई कितनी सुन्दर दिखाई पड़ती है। जैसा अगस्त्य मुनि ने कहा था, यह मेरे मन को भा गई है। देखो, यह पुष्पित वृक्षों से घिरी हुई गोदावरी नदी है।' इस दृश्य के उल्लेख के साथ राम के मन का उल्लास छिपा है। जैसे वे अपने वन-जीवन में सुन्दर प्रकृति का सहवास पाकर प्रसन्न हो उठे हैं। एकाएक प्रकृति का रूप उनके सामने अपने सौन्दर्य्य-विस्तार के साथ प्रकट हो गया है, इस कारण किंचित आश्चर्य्य का भाव भी इस उल्लास में मिल गया है।

---

४२. वही ; वही ; स० ११९ ; ४,६,७ ।

जब कभी इस प्रकार इन वन-वासियों के सामने प्रकृति का रूप आया है, इनके मन में प्रकृति-सौन्दर्य्य के प्रति सहज आश्चर्य्य का भाव रहा है। परन्तु जब प्रकृति से परिचय प्राप्त निश्चित भाव स्थिति में राम सीता और लक्ष्मण से प्रकृति का वर्णन करते हैं, उस समय सौन्दर्य्य-बोध के साथ आनन्द की अदृश्य भावना उल्लास के प्रत्यक्ष रूप में मिल जाती है। प्रकृति-सौन्दर्य्य के प्रति सहज आनन्दोल्लास की भावना संस्कृत साहित्य में अन्यत्र बहुत कम स्थलों पर पाई जाती है। और इस भाव-सामंजस्य के रूप में केवल वाल्मीकि प्रकृति-सौन्दर्य्य को उपस्थित कर सके हैं। राम जब निश्चिंत बैठकर चतुर्दिक फैले हुए चित्रकूट के सौन्दर्य्य का उल्लेख सीता से करते हैं, तब उसमें उनके मन का उल्लास व्यंजित होता है—

जलप्रपातैरुद्भेदैर्निष्यन्दैश्च क्वचित्क्वचित्।
स्रवद्भिर्भात्ययं शैलः स्रवन्मद इव द्विपः॥
गुहासमीरणो गन्धान्नानापुष्पभवान्बहून्।
घ्राणतर्पणमभ्येत्य कं नरं न प्रहर्षयेत॥

[हे सीता, देखो स्थान-स्थान पर झरनों और सोतों के बहने से यह पर्वत मद बहानेवाले गजेन्द्र के समान शोभित है। पवन नाना गुफाओं को स्पर्श करता हुआ अनेक प्रकार के पुष्पों की गन्ध लेकर बह रहा है। यह सुन्दर प्रकृति किसके मन को हर्षित नहीं करती।] जब ऋतु-वर्णनों में आगे के कवियों में उद्दीपन और आरोप की प्रवृत्ति प्रधान हो गई है, रामायण के कथानायक राम हेमन्त के प्रकृति-रूपों के साथ अपना उल्लास व्यक्त करते हैं—'ये जौ और गेहूँ के खेतों से युक्त वन ओस से भरे हुए हैं, और सूर्य्य के उदय होने पर क्रौंच-सारस की ध्वनि से निनादित आकर्षक लगते हैं। ये सुनहरे शालि के समूह खजूर के फूलों की तरह अपने बालों के बोझ से कुछ झुके हुए कैसे शोभित हैं। यह सूर्य्य कितना ऊँचा चढ़ आया है, पर पाला और ओस के मारे किरणें पूरी तरह फैल नहीं रही हैं; इस कारण वह चन्द्रमा के समान दिखाई दे

रहा है। जब प्रातःकालीन सूर्यातप हिमकणों से युक्त हरी घास के मैदान पर पड़ता है, तब वन की शोभा देखते ही बनती है।' इस प्रकार ऋतु के साथ वन की शोभा को देखकर राम मुग्ध-भाव से उसका वर्णन कर रहे हैं। और वर्णना से लगता है, सीता तथा लक्ष्मण उनके साथ प्रकृति-सौन्दर्य के प्रति भाव-मग्न होकर मौन हैं। कभी इसी स्थिति में जब प्रकृति में भाव प्रतिबिम्बित हो जाता है, तब भावात्मक तादात्म्य के द्वारा आनन्दोल्लास अधिक व्यंजित हो उठता है—

> **नानाविधैस्तीररुहैर्वृतां पुष्पफलद्रुमैः।**
> **राजंतीं राजराजस्य नलिनीमिव सर्वतः॥**
> **मृगयूथानि पीतानि कलुषाम्भांसि साम्प्रतम्।**
> **तीर्थानि रमणीयानि रतिं सञ्जनयन्ति मे॥**
> **पश्यैतद्वल्गुवयसो रथांगाह्वयना द्विजाः।**
> **अधिरोहन्ति कल्याणि निष्कूजन्तः शुभा गिरः॥[४३]**

[अनेक प्रकार के फल-फूलवाले वृक्षों से जिसका तट घिरा हुआ है ऐसी इस कुबेर के पद्म-सरोवर के समान सुशोभित मन्दाकिनी को देखो। निकट ही जिसके रमणीय तट-स्थलों पर मृगों के समूह मटमैला पानी पी रहे हैं ऐसी इस नदी को देख कर मेरा मन आनन्दित हो रहा है। हे कल्याणी, देखो (वृक्षों से गिरे हुए) पुष्पों के ढेर पर चढ़े हुए सुन्दर चक्रवाक पक्षी मधुर नाद कर रहे हैं।] इस प्रकृति के क्रिया-कलाप में एक भाव-व्यंजना छिपी है जिसमें मानवीय मनःस्थिति का प्रतिबिम्ब है। पात्रों के मन का उल्लास मानों प्रकृति में प्रतिघटित हो उठा है।

§२२—आदि कवि की कल्पना मुक्त है। उसमें काव्यादर्श का आधार खोजा जा सकता है, पर परम्परा की रूढ़ियाँ नहीं हैं। प्रकृति-सौन्दर्य्य के सम्पर्क में पात्र आह्लादित होते हैं, पर ऐसा भावों की अनुकूल स्थिति में होता हो ऐसा ही नहीं

प्रतिकूल भाव-स्थिति

४३. वही; अर० ; स० १५ : १०—१२ : अयो० ; स० ९४ ; १३ , १४ : अर० ; १६ ; १६—२० अयो० ; स० ९५ ; ४ , ५ ,११ ।

है। उनके लिये प्रकृति की नाना-रूपात्मक रमणीयता स्वतः आनन्द का विषय है। राज्य का ऐश्वर्य-सुख छोड़कर आये हुए राजकुमारों तथा राजकुमारी के लिए उसका सम्पर्क और वातावरण जीवन का मुक्त उल्लास देता है। यह प्रकृति का सौन्दर्य्य दुःख की स्थिति में भी उन्हें शांति दे सकता है। सीता-वियोग के बाद राम द्वारा वर्णित पम्पास, वर्षा तथा शरद आदि के वर्णनों से यह स्पष्ट है। पम्पासर को देख कर राम स्वयं कहते हैं कि 'भरत के दुःख से तथा सीताहरण से मेरे मन में बड़ी वेदना है, फिर भी यह पम्पासर मुझे सुख दे रहा है'—

सौमित्रे शोभते पम्पा वैदूर्यविमलोदका।
फुल्लपद्मोत्पलवती शोभिता विविधैर्द्रुमैः॥
सौमित्रे पश्य पम्पायाः काननं शुभदर्शनम्।
यत्र राजन्ति शैला वा द्रुमाः सशिखरा इव॥

[हे सौमित्र, अनेक प्रकार के वृक्षों से घिरा हुआ, फूले हुए कमलों से युक्त इस नीलम के समान जलवाले पम्पा सरोवर को देखो। हे लक्ष्मण, यह पम्पा के प्रान्त-भाग का वन भी कितना सुन्दर है। यहाँ शिखर वाले पर्वतों के समान वृक्ष शोभित हैं।] वियोग की मनःस्थिति में समुत्सुक करनेवाला प्रकृति का यह रूप सौन्दर्य्य-भावना से ओत-प्रोत है। कभी मन का उद्वेग स्वाभाविक रूप में उच्छ्वसित हो उठता है, पर प्रकृति उसे शांत कर देती है। वर्षा और शरद के वर्णनों में उद्दीपन की भावना भी है, पर उसमें सौन्दर्य्य का व्यापक आकर्षण बना हुआ है—'वर्षाकाल में सर्ज और कदम्ब के पुष्पों से युक्त तथा मयूर के केका शब्द से निनादित, पर्वत से निकलने वाली नदी का गैरिक जल तेज प्रवाहित हो रहा है। भ्रमर जैसी काली रसीली जामुनों का आनन्द लिया जाता है। अनेक रंग के आम पवन के झकझोरने से भूमि पर गिर रहे हैं। इन्द्रनील पर्वत के समान मेघ बलाकों की माला धारण कर और बिजली की पताका ले मत्त ऐरावत के समान गरज रहे हैं। इस संश्लिष्ट योजना में सौन्दर्य्य का रूप रक्षित है, परन्तु पिछले चित्रों

जैसा आह्लाद का भाव नहीं है। इसमें शांत-भाव की व्यंजना है, क्योंकि प्रकृति यहाँ मानवीय भाव-स्थिति को संयत करती है। परन्तु कभी इन चित्रों में वेदना का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है, जो प्रकृति में सहानुभूति सम्बंधी भाव-तादात्म्य का रूप है—

> एषा घर्मपरिक्लिष्टा नववारिपरिप्लुता ।
> सीतेव शोकसन्तप्ता मही बाष्पं विमुञ्चति ॥
> कशाभिरिव हैमीभिर्विद्युद्भिरभिताडितम् ।
> अन्तस्तनितनिर्घोषं सवेदनमिवाम्बरम् ॥
> नीलमेघाश्रिता विद्युत्स्फुरन्ती प्रतिभाति मे ।
> स्फुरन्ती रावणस्यांके वैदेहीव तपस्विनी ॥[४४]

[यह धूप से क्लान्त नवीन घटाओं से सिंचित पृथ्वी सीता के समान शोक से व्याकुल होकर वाष्प (आँसू) छोड़ रही है। आकाश में मेघों की गर्जन से जो नाद हो रहा है, मानों बिजली के स्वर्ण-कोड़े की चोट से वह आन्तरिक वेदना से कराह रहा है। और नील मेघ में चमकती हुई बिजली मुझे ऐसी लगती है मानों रावण की गोद में साध्वी सीता विकल हो।] राम यहाँ प्रकृति में अपनी वेदना-जन्य मनःस्थिति का आरोप कर रहे हैं।

§ २३—हम देख चुके हैं कि वन-प्रसंग के विस्तृत कथानक में रामायण के पात्र प्रकृति की गोद में विचरण करते हैं और निवास करते हैं। उसके सौन्दर्य पर वे मुग्ध हैं, उसके बीच में वे प्रसन्न हैं। एक प्रकार का सम्बंध भी प्रकृति से उनका हो गया है। परन्तु साहचर्य की आत्मीय भावना इन पात्रों में प्रकृति के प्रति नहीं मिलती है। प्रकृति का क्षेत्र उनके उल्लासमय जीवन से सम्बंधित है, पर इस लम्बे सम्पर्क में प्रकृति से वे आत्मीय सम्बंध स्थापित नहीं कर सके हैं। लेकिन दुःख की स्थिति में जैसे यह परोक्ष

आत्मीय सहानुभूति

४४. वही; किष्क०; स० १; ५, ३४: स० २८; १८—२०: वही; ७, ११, १२।

आत्मीयता का भाव जागरित हो जाता है। रावण द्वारा अपहरण की जाती हुई सीता वन-सरिता से अपना सन्देश कहती हैं—

आमन्त्रये जनस्थानं कर्णिकारांश्च पुष्पितान्।
क्षिप्रं रामाय शंसध्वं सीतां हरति रावणः॥
हंससारससंघुष्टां वन्दे गोदावरीं नदीम्।
क्षिप्रं रामाय शंसध्वं सीतां हरति रावण॥

[मैं जनस्थान के पुष्पित कर्णिकारों को पुकार कर कहती हूँ, तुम शीघ्र राम को सूचित करो कि रावण सीता का हरण कर रहा है। हे हंस तथा सारसों से युक्त गोदावरी, मैं प्रार्थना करती हूँ, तुम राम को शीघ्र सूचित करो कि रावण सीता का हरण कर रहा है।] आगे चलकर अपने आभूषणों को फेंकती हुई विलाप करती सीता को रावण द्वारा ले जाते देखकर प्रकृति सहानुभूति से संवेदित हो उठती है—'पवन से चंचल और विविध पक्षियों से आकुल वृक्ष अपनी हिलती हुई शाखाग्र-भागों से मानों कह रहे हों—भय मत करो। जिसमें कमल नष्ट हो गये हैं तथा मीन आदि जलचर त्रस्त हो उठे हैं ऐसी झील मानों सीता के प्रति सखी भाव से निराशा से चिन्तित है। चारों ओर से सिंह, व्याघ्र तथा मृगादि वनचर एकत्र होकर सीता की छाया का अनुसरण करते हुए क्रोध से दौड़ रहे हैं। पर्वत अपने चोटियों रूपी बाहों को उठाकर तथा झरनों के नाद से सीता के हरण किये जाने पर मानों क्रोध प्रकट कर रहे हैं।' लेकिन प्रकृति में यह संवेदना का आरोप है। रामायण में प्रकृति सजीव आत्मीय सम्बंध में उपस्थित नहीं हो सकी है। राम के विलाप के प्रति प्रकृति मौन है और उसी रूप में यत्र-तत्र सहानुभूति व्यक्त होती है। 'मृगों का समूह सहसा उठकर दक्षिण दिशा की ओर जाकर सीता की खोज का संकेत देता है।' इससे अधिक प्रकृति में सजीव आत्मीयता का परिचय नहीं मिलता है।[४५]

---

४५. वही ; अर० ; स० ५० ; ३० , ३१ : स० ५२ ; ३४—३७: स० ६४ ; १७ , १८।

§ २४—महाभारत के प्रसंग में कहा गया है कि उसमें किसी वन अथवा पर्वत आदि के वर्णन के लिये मुख्य-मुख्य उपकरणों का उल्लेख किया गया है। उनमें कुछ काल्पनिक आदर्श वस्तुओं का तथा कवि-प्रसिद्धियों का उल्लेख भी मिलता है।

आदर्शीकरण

रामायण में संश्लिष्ट वर्णनों की स्वाभाविक योजना के साथ आदर्श रूपों को उपस्थित करने की प्रवृत्ति और प्रत्यक्ष हो गई है। इसका विस्तृत अध्ययन अगले भाग में प्रस्तुत किया जा सकेगा। वाल्मीकि ने कुछ स्थलों पर प्रकृति का आदर्श रूप प्रसंग के अनुरूप दिया है। गंगा अपने आकाश-मार्ग पर इस प्रकार प्रवाहित है,—'आकाश में बिजली के समान चमकती हुई और जल में उठे हुए सफ़ेद-सफ़ेद फेन फैलाती हुई बह रही है। लगता है हंसों के झुण्ड से युक्त इधर उधर बिखरे हुए शरद के मेघ हों। आकाश में गंगा का जल सहस्रों सूर्य की आभा के समान फैल गया और उसमें बीच-बीच में सूंसों और मछलियों का झुंड उछल जाता है।' इस वर्णन में स्वाभाविकता है, पर आकाश में जल-प्रवाह की कल्पना आदर्श है जो प्रसंग के अनुकूल है। लेकिन आदर्श प्रकृति का चित्रण कवि स्थल विशेष पर करता है, 'स्वयंप्रभा की गुफा में स्वर्ण-वृक्षों के वन तथा स्वर्ण-कमलों के सरोवर आदि का उल्लेख है।' हनुमान समुद्र-स्थित मैनाक पर्वत को इसी आदर्श-रूप में देखते हैं—

> स सागरजलं भित्वा बभूवात्युच्छ्रितस्तदा।
> यथा जलधरं भित्त्वा दीप्तरश्मिर्दिवाकरः॥
> शातकुम्भमयैः शृंगैः सकिन्नरमहोरगैः।
> आदित्योदयसंकाशैरालिखद्भिरिवाम्बरम्॥
> तस्य जाम्बूनदैः शृंगैः पर्वतस्य समुत्थितैः।
> आकाशं शस्त्रसंकाशमभवत्काञ्चनप्रभवम्॥४६

---

४६. वहीं; बाल०; स० ४३ : २१, २२, २३ : किष्कि०; स० ५१; ४ से १० तक, सुन्द० : स० १; ९७—९९।

[वह मैनाक पर्वत सागर के जल के बीच में निकला हुआ ऐसा जान पड़ा मानों जलधर को भेदकर अपनी किरणों में उद्भासित सूर्य्य निकल आया हो। किन्नर और महासर्पों से युक्त स्वर्ण शृंगों में वह पर्वत ऐसा दिखाई दिया जैसे सूर्य्य के उदय होते समय उसके निकट बादल आ गये हों। उस पर्वत की सोने की श्रेणियाँ इस प्रकार उठी हुई थीं मानों आकाश स्वर्ण आभावाले शस्त्रों से उद्भासित हो उठा है।] परन्तु आदि कवि की आदर्श प्रकृति का रूप कभी वैचित्र्य कल्पनाओं से निर्मित नहीं हुआ है। इस आदर्श रूप में केवल रूप रंगों का संयोग कल्पनात्मक है; पर ये प्रसंग के अनुकूल हैं।

पञ्चम प्रकरण

विभिन्न काव्य-रूपों में प्रकृति (क्रमशः)

महाकाव्यों की परम्परा

वर्णना का आदर्श

§१—एक स्थल पर रवीन्द्र ठाकुर ने लिखा है—'वर्णना-तत्त्व की आलोचना और अवान्तर प्रसंगों से भारतीय कथा का प्रवाह पग-पग पर खण्डित होने पर भी प्रशान्त भारतवर्ष का धैर्यच्युत होते नहीं देख पड़ता।' भारतीय-साहित्य का आदर्श ऐसा ही रहा है। कथा के विस्तार की दृष्टि से भारत का यही आदर्श माना जा सकता है। कथा और वर्णना सम्बन्धी इस आदर्श के आधार में भारतीय संस्कृति का अपना दृष्टिकोण है। आधुनिक युग में कथात्मक जीवन का प्रवाह व्यक्तिगत चरित्र के आधार पर मापा जाता है, पर प्राचीन साहित्य में प्रतिनिधि चरित्र को लेकर कथा-वस्तु का निर्माण किया जाता था। उस युग में मानव अपनी आदर्श कल्पनाओं और व्यापक भावनाओं के साथ कथा का चरित्र-नायक बनता था। इन निश्चित चरित्रों और स्थापित आदर्शों को

लेकर रचे गये कथा-काव्यों में घटनात्मक उत्सुकता के लिये अवसर नहीं है। उनमें चरित्रों की व्यापकता तथा महानता का आकर्षण स्वयं पाठक के मन को घेरे रहता है। इस साहित्य को समाज के सामने पुण्य की विजय के आदर्श को उपस्थित करना था, और कथा की यह निश्चित नियताप्ति व्यग्र उत्सुकता के लिये अवकाश नहीं देती। साथ ही संस्कृति साहित्य जन-साहित्य नहीं है, वह उच्च-स्तर के परिष्कृत रुचिवालों का साहित्य रहा है। यह बात काव्य के विषय में अधिक लागू होती है। कथानक के प्रवाह के प्रति चढ़ाव-उतार के साथ उत्सुकता का भाव जन-मन में अधिक होता है। इतनी कौतूहल की भावना पण्डित-वर्ग को नहीं हो सकती। उनके काव्यानन्द के लिये सौन्दर्य्य का आकर्षण और रसानुभूति पर्याप्त है। इसलिये कथा-वस्तु के घटना-क्रम के विषय में संस्कृत का कवि कभी व्यग्र नहीं होता। वह अपने वर्णनात्मक विस्तार में वस्तु-स्थिति तथा चरित्र-चित्रण का सौन्दर्य्य-बोध का आदर्श लेकर चलता है। इस प्रकार काव्य में कथा-वस्तु तो केवल सूत्र रूप में रहती है जिसके सहारे कवि महाकाव्य का पुष्पहार सजाता है।

प्रकृति का स्थान

क—संस्कृत के काव्यों की प्रवृत्ति चरित्रों के घटनात्मक विकास की ओर नहीं है; उनमें घटना केवल चरित्र की व्याख्या करती है। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि इन काव्यों में जीवन का रूप स्पष्ट नहीं है, या इन कवियों के सामने समाज का जीवन प्रत्यक्ष नहीं था। इन कवियों के सम्मुख जीवन अवश्य था, और इन काव्यों का संबन्ध जीवन से निश्चित है। केवल जीवन की घटना उत्सुकता इनकी काव्यात्मक प्रेरणा की व्यग्र-साधना नहीं थी, जिसमें दूसरी ओर ध्यान ले जाने का अवसर ही नहीं मिलता। इनमें प्रस्तुत जीवन सरिता का गतिशील प्रवाह न होकर सागर की उत्ताल हिल्लोर है जिसमें गति से अधिक गम्भीरता और प्रवाह से अधिक व्यापकता है। अन्य देशों के प्राचीन महाप्रबन्ध काव्यों में यह भावना

पाई जाती है, केवल जीवन संबन्धी निश्चित आदर्श के कारण यह भारतीय काव्य की मुख्य प्रवृत्ति मानी गई है। वर्णना के इस आदर्श के फलस्वरूप काव्यों में प्रकृति को विस्तार से स्थान मिल सका है। प्रथम प्रकरण में कहा गया है कि मानवीय सौन्दर्य्य-कल्पना में प्रकृति का व्यापक स्थान रहा है। काव्य-वर्णना के व्यापक क्षेत्र में प्रकृति अनेक रूपों में प्रयुक्त होती है। मानवीय रूप और उसको भावों के अथवा उसकी निर्माण के सौन्दर्य्य को व्यक्त करने के लिये प्रकृति उपमानों का आश्रय लिया ही जाता है। परन्तु इसके अतिरिक्त काव्यों में मानवीय जीवन तथा भावों के साथ प्रकृति अनेक संबन्धों में उपस्थित की जाती है। महाकाव्यों में वर्णना सम्बन्धी मुक्त प्रवृत्त के कारण स्वतन्त्र प्रकृति-वर्णन की परम्परा चल पड़ी है जिनका कथानक के प्रसंग से नहीं के बराबर संबन्ध रहता है। यह वर्णन का रूप बाद के कवियों में अधिक मिलता है। तृतीय प्रकरण में उल्लिखित बाद के कवियों की वैचित्र्य की प्रवृत्ति के साथ उनमें कथानक से निरपेक्ष वर्णनों के रूढ़िपालन का आग्रह भी बढ़ गया है। ये कवि अपने महाकाव्यों में शास्त्रीय ग्रन्थों में निर्दिष्ट प्रकृति के विभिन्न रूपों के वर्णन इधर-उधर जमाने का प्रयास करते रहे हैं जिनमें कथा से कोई सामंजस्य नहीं है। इनमें वर्णना सौन्दर्य्य अथवा वैचित्र्य का आदर्श रह गया है।

§ २—कथा-वस्तु की घटनाओं को आधार प्रदान करने के लिये प्रकृतिगत स्थितियों की योजना आवश्यक हो सकती है। पात्रों के चरित्र का वह अंश जो नागरिक जीवन में विकसित होता है प्रकृति की रंगस्थली से संबन्धित नहीं है, पर नगर के वन-उपवन-सरोवरों में प्रकृति का रूप रक्षित है और उनके आधार रूप चित्रित करने की परम्परा संस्कृत काव्यों में रही है। इसके अतिरिक्त प्रकृति के बीच में जीवन की बहुत सी घटनाएँ होती हैं, और प्रकृति के परिवर्तनों के साथ मानव जीवन विकसित होता है। दिन-रात, प्रातः सायंसन्ध्याएँ, ऋतुएँ जीवन के साथ चल रही

कथा-वस्तु का आधार देश

हैं। इस प्रकार काव्य की कथा-वस्तु में प्रकृति के आधार की, चरित्र की व्याख्या की दृष्टि से हो अथवा सौन्दर्य्य-चित्र को पूर्ण करने के उद्देश्य से हो आवश्यकता है। पिछले कवियों में देश-काल तथा स्थिति के रूप में प्रकृति का वर्णन घटनाओं से संबन्धित है, पर क्रमशः बाद के कवियों में घटनाओं से सामंजस्य स्थापित रखने की भावना कम हो गई है। बुद्धघोष में धार्मिक आग्रह अधिक है, इस कारण उनमें वर्णनों का आग्रह अधिक नहीं है। पर उन्होंने जहाँ प्रकृति को उपस्थित किया है वह कथा के अनुरूप है। सौन्दरनन्द के प्रथम सर्ग में उल्लिखित आश्रम का वर्णन कपिल मुनि की तपस्या की पृष्ठभूमि है—

शुचिभिस्तीर्थसंख्यातैः पावनैर्भावनैरपि।
बन्धुमानिव यस्तस्थौ सरोभिः ससरोरुहैः॥

[कमल के फूलों से भरे हुए तथा अनेक पैडियोंवाले सरोवरों से पवित्र भावना से पूर्ण हुआ वह आश्रम बन्धु के समान (तपश्चर्या आदि के लिये) स्थित था।] इस प्रकार अश्वघोष में घटना-स्थिति के अनुरूप प्रकृति को प्रस्तुत किया गया है, वर्णना का कथा से भिन्न अस्तित्व इनमें नहीं है। प्रकृति-वर्णना की दृष्टि से कालिदास का क्षेत्र बहुत व्यापक है, और देश-काल-स्थिति संबन्धी प्रकृति वर्णन भी उनमें बहुत अधिक हैं। परन्तु महाकवि ने प्रकृति और घटना के सामंजस्य को किसी स्थल पर भंग नहीं होने दिया है। साधारणतः कालिदास देशगत विशेषताओं के चित्रण के साथ वातावरण आदि की व्यंजना करते हैं। परन्तु जहाँ केवल देश की सीमागत विशेषता का वर्णन उन्होंने किया है, उन स्थलों का उपयोग कथा के आधार के रूप में है। रघु की दिग्विजय के प्रसंग में कवि यत्र-तत्र देशों के निर्देश से कथा को सौन्दर्य्य का अधिक व्यक्त आधार प्रदान करता है—

---

१. सौ०; स० १; ८।

विशश्रमुर्नमेरूणां छायास्वध्यास्य सैनिकाः ।
दृषदो वासितोत्सङ्गा निषण्णमृगनाभिभिः ॥

[रघु के सैनिक वहाँ जिनमें से कस्तूरी मृगों के बैठने से सुगन्ध आ रही थी ऐसी सुरपुन्नाग के वृक्षों के नीचे पड़ी हुई पथरीली पाटियों पर बैठ कर सुस्ताने लगे ।] इसी प्रकार विदर्भ जाते समय अज के मार्ग में नर्मदा के तट का उल्लेख किया गया है—'वहाँ से चल कर अज ने अपनी उस सेना का पड़ाव, जिसकी पताकाएँ मार्ग को धूल से मटमैली हो गई थीं, नर्मदा नदी के किनारे डाला जहाँ शीतल पवन के झोंकों से करंजक के पेड़ झूम रहे थे ।' देश का चित्र उसकी प्रमुख विशेषताओं में उभारने में कालिदास विशेष कौशल का परिचय देते हैं । और इसके साथ घटना की स्थिति मिल कर एक रूप हो जाती है । इन्दुमती के स्वयंवर में सुनन्दा अनेक राजाओं का वर्णन उनके देश की पार्श्वभूमि के साथ कलापूर्ण ढंग से करती है—

अनेन सार्धं विहाराम्बुराशेस्तीरेषु तालीवनमर्मरेषु ।
द्वीपान्तरानीतलवङ्गपुष्पैरपाकृतस्वेदलवा मरुद्भिः ॥ २

[चाहो तो—ताड़ों के जंगलों के मर्मर शब्द से गुंजित सागर के तटों पर तुम इस राजा के साथ विहार करो, जहाँ दूसरे निकट के द्वीपों से लौंग के फूलों के सुगन्ध से बसा हुआ शीतल पवन प्रवाहित होकर तुम्हारा पसीना सुखा देगा ।] ऐसे अनेक उल्लेखों के अतिरिक्त देश संबन्धी जो विस्तृत वर्णन हैं वे स्थिति, घटना अथवा वातावरण की योजनाओं के रूप हैं; उनका उपयोग यथा स्थान किया जायगा । बुद्धघोष को अपने महाकाव्य में अनेक देशों के उल्लेख का अवसर नहीं मिला है, पर सिद्धार्थ के मार्ग का वर्णन वे इसी प्रकार करते हैं । कुछ वर्णन पूर्ण-स्थितियों के चित्र हैं, पर पर्वत का वर्णन संकेतात्मक है—

---

२. रघु० ; स० ४ ; ७४ : स० ५ ; ४२ : स० ६ ; ५७ ।

निर्झरीपूरनिर्धौतकलधौतशिलातलम् ।
मेखलोपान्तविलसत्पुलिन्दपृतनापतिम् ॥[3]

[तीव्र प्रवाहित नदियों से धुलकर चाँदी के समान निर्मल चट्टानोंवाले उस पर्वत (पर पहुँचे) जिसके प्रान्त भाग में शबरों की सेना सुशोभित हो रही थी।] कथा-विस्तार में घटनाओं के साथ आनेवाले स्थानों के वर्णन बाद के कवि इतने विस्तार से करते हैं कि वे अपने आप में मुक्त लगते हैं। घटना को आधार देनेवाले द्योतक वर्णनों का रूप कम मिलता है। ऐसे वर्णन कहीं-कहीं मिल जाते हैं। जानकी-हरण में राजा दशरथ के मृगया प्रसंग में वन का उल्लेख इस प्रकार किया गया है—

तस्य क्वणन्निर्झररेणुविद्धैर्वातैर्विधूतागरुपादपान्ते ।
अधिज्यधन्वा धनदप्रभावश्चचार मैनाकगुरोर्निकुञ्जे ॥[4]

[वह राजा अपने धनुष की प्रत्यंचा को झंकारता हुआ मैनाक पर्वत के ढाल के निकुंजों में विचर रहा था, जिसके किनारे के अगरुवृक्ष, पर्वतीय निर्झरों के जलकण से युक्त पवन से झकझोर उठते थे।] सेतुबन्ध में विस्तृत स्थिति योजनाओं के बीच में यत्र-तत्र देश का निर्देश घटना के साथ आ गया है। राम वानर सेना के साथ विन्ध्य-पर्वत के पास पहुँचते हैं—

आलोकते च विन्ध्यं धनुःसंस्थानस्य सागरस्य भरसहम् ।
संहितनदीस्रोतःशरमुभयावकाशघटितमिव जीवाबन्धम् ॥[5]

[सागर विस्तार को रोकनेवाले विन्ध्य को राम में प्रवाहित नदियाँ जिसमें शर के समान और दोनों प्रान्त-भागों पर जिसमें प्रत्यंजा आरोपित की गई है ऐसे धनुष के आकार में फैले देखा।] इस वर्णन

३. पद्य० ; स० ९ ; ५०।
४. जा० ; स० १ ; ५२।
५. सेतु० ; आ० १ ; ५४।

में देश के संकेत में अलंकृत शैली का प्रयोग किया गया है, इस कारण उसकी विशेषता अधिक प्रत्यक्ष नहीं हो सकी है। अन्य महाकाव्यों में स्थान के वर्णन स्थिति के चित्रण के रूप में हुए हैं।

§३—देश के समान काल की स्थिति भी है। महाकाव्यों में विभिन्न ऋतुओं के वर्णन तथा प्रातः-सायं सन्ध्या और रात्रि के वर्णन की परम्परा रही है। परन्तु कथावस्तु को आधार प्रदान करनेवाले काल का छायातप अथवा निर्देश इन वर्णनों में तत्र-तत्र ही मिलता है। जैसा कहा गया है प्रकृति और कथा-वस्तु के सामंजस्य में कालिदास सबसे कुशल कवि हैं। काल सम्बंधी ऋतु-वर्णनों को उन्होंने कथा में स्वाभाविक रीति से उपस्थित किया है। रघुवंश में दशरथ की विजय के बाद और उनकी मृगया के पूर्व कालिदास वसन्त के प्रकट होने का वर्णन करते हैं—

काल

अथ समावबृते कुसुमैर्नवैस्तमिव सेवितुमेकनराधिपम्।
यमकुबेरजलेश्वरवज्रिणां समधुरं मधुरञ्चितविक्रमम्॥

[यम कुबेर, वरुण तथा इन्द्र के समान विक्रमशील उन एकछत्र राजा का अभिनन्दन करने के लिये वसन्त ऋतु भी नवीन पुष्पों की भेंट लेकर वहाँ आ पहुँची।] आगे चलकर कुश द्वारा अयोध्या को फिर से बसाये जाने के बाद उनकी जलक्रीड़ा के पहले कवि ग्रीष्म का निर्देश करता है—'प्रतिदिन घर की बावलियाँ सेवार जमी हुई पैड़ियों को छोड़कर पीछे हटने लगीं और कमल-नाल जिसमें दिखाई देने लगे हैं ऐसा जल घट कर स्त्रियों की कमर तक रह गया है।'[६] कवि ने इस निर्देश में जल-बिहार की भूमिका स्थापित कर ली है। काल गत विस्तृत तथा भावशील योजनाओं का उपयोग अन्य अनेक रूपों में कवि ने किया है जिसका उल्लेख बाद में किया जायगा। इसी प्रकार कुमारसम्भव में

६. रघु० ; स० ९ ; २४ : स० १६ ; ४६ ।

सायं-सन्ध्या का प्रवेश शंकर-पार्वती के प्रेममय उल्लास की भूमिका में सहज रूप से होता है—

इत्यभौममनुभूय शङ्करः पार्थिवं च दयितासखः सुखम् ।
लोहितायति कदाचिदातपे गन्धमादनवनं व्यगाहत ॥[७]

[इस प्रकार अपनी प्रेयसि के साथ सांसारिक तथा स्वर्गीय सुख भोगते हुए शिव किसी दिन गन्धमादन पर्वत पर पहुँचे । उस समय सन्ध्या हो चली थी जिससे सूर्य्य रक्ताभ दिखाई पड़ रहा था ।] बुद्धघोष ने देश के समान काल का वर्णन कथा-वस्तु के अनुरूप किया है । वातावरण आदि के अतिरिक्त घटना के आधार के रूप में काल का निर्देश कवि कुछ स्थलों पर करता है । बुद्धदेव के मार्ग में सूर्य्योदय का उल्लेख, कवि भविष्य की घटना के सामंजस्य में करता है—

अज्ञानमेवं जगतामपसार्यं त्वयेत्यपि ।
अस्यादिशन्निव रविरन्धकारमपाकरोत् ॥[८]

[जिस प्रकार संसार का अज्ञान आपके द्वारा दूर होगा, उसी प्रकार दिशाओं का अंधकार सूर्य्य ने दूर कर दिया ।] यद्यपि इस उल्लेख में भविष्य का संकेत है, पर इसको वातावरण के रूप में नहीं लिया जा सकता । वातावरण-निर्माण के लिये विस्तृत अथवा संश्लिष्ट योजना अपेक्षित है । जैसा कहा गया है वर्णन-प्रियता के परिणाम-स्वरूप काल का निर्देश केवल कथा-वस्तु के आधार के रूप में बाद के कवियों में नहीं मिलता है । कुमारदास ने दशरथ के मृगया-प्रसंग में सूर्य्यास्त का उल्लेख घटना के साथ किया है, पर उसकी वैचित्र्य की प्रवृत्ति के साथ सामंजस्य की भावना दब गई है । इसी प्रकार राम और सीता के विलास-वर्णन के अवसर पर कवि ने सन्ध्या का वर्णन कलात्मक शैली में एक सीमा तक अवसर के अनुरूप किया है—

---

७. कुमा० ; स० ८ ; २८ ।

८. पद्य० ; स० ९ ; २५ ।

दिङ् मुखादपसरन्तमातपं नष्टतेजसमनुव्रजन्मुहुः ।
रश्मिभिः समवबध्य भानुना कृष्यमाणमिव लक्ष्यते तमः ॥[९]

[दिशा के मुख से हटती हुई तेजहीन धूप का धीरे-धीरे पीछा करता हुआ अंधकार किरणों से भली भाँति बँधे हुए सूर्य्य से खींचा गया जान पड़ता है ।] वास्तव में यह वर्णन राम द्वारा किया गया है, और इसमें भाव-तादात्म्य की स्थिति लक्षित है; पर भाव-स्थिति अधिक प्रत्यक्ष नहीं है, इस कारण काल का निर्देश ही मानना चाहिए । अन्य महाकाव्यों में काल सम्बंधी विस्तृत वर्णनों की प्रवृत्ति मिलती है जिनमें भावात्मक सामंजस्य आदि का समन्वय किया गया है । प्रवरसेन ने समय के निर्देश में भावात्मक संकेत सम्मिलित कर दिये हैं । राम की यात्रा के अनुकूल शरद को कवि 'सुग्रीव के यश के मार्ग के समान, राघव के जीवन के लिये प्रथम अवलम्ब के समान और सीता के अश्रुओं को दूर करनेवाले रावण के वध-दिवस के समान आया हुआ' कहता है । इस प्रकार कपि-दल के उत्पात के बाद सन्ध्या के उल्लेख में कवि ने रावण के चरित्र को समन्वित कर दिया है—

तावच्चासन्नस्थितकपिबलनिर्घोषकलुषितस्य भयंकरम् ।
दशवदनस्य समपसृतपरिजनं मुञ्चति दृष्टिपातं दिवसः ॥[१०]

[निकटवर्ती कपिदल के हूहाकार से अत्यन्त क्रुद्ध दशमुख के भयंकर दृष्टिपात को, जिसके सामने सभी परिजन पलायन करते हैं, दिन भी छोड़ रहा है । अर्थात् कुपित रावण के सामने सन्ध्या का अन्धकार छा रहा ।] भारवि अस्त होते सूर्य्य के उल्लेख से सन्ध्या का वर्णन प्रारम्भ करते हैं—

मध्यमोपलनिभे लसदंशावेकतश्च्युतिमुपेयुषि भानौ ।
द्यौरुवाह परिवृत्तिविलोलां हारयष्टिमिव वासरलक्ष्मीम् ॥[११]

---

९. जान ; स० ८ ; ५७ ।
१०. सेतु० ; स० १ ; १६ : स० १० ; ५ ।
११. किरा० ; स० ९ ; २ ।

[प्रसरित होती हुई रश्मियों के साथ एक ओर डूबते हुए सूर्य को मध्यनग के रूप में प्राप्त कर आकाश प्रत्यावर्तन से चंचल दिवस की श्री-रूपी मुक्तावली को धारण किये हुए है।] इस काल के उल्लेख में घटना का आधार नहीं के बराबर है, पर इससे वर्णना का प्रारम्भ अवश्य होता है, जो अपने कलात्मक सौन्दर्य में कथा-वस्तु से अधिक सम्बंधित नहीं है।

§४—देश अथवा काल के विस्तृत वर्णनों में प्रकृति के अनेक उपकरणों की भिन्न स्थितियों का आश्रय लिया जाता है। और प्रकृति की प्रत्येक रूपात्मक स्थिति देश की किसी सीमा तथा काल के किसी निश्चित छाया प्रकाश से घिर कर व्यक्त होती है। इस कारण देश-काल-स्थिति को इस प्रकार अलग-अलग नहीं किया जा सकता है। आगे के प्रकृति-रूपों में ऐसा नहीं किया गया है। परन्तु केवल कथा-वस्तु के आधार रूप में प्रमुखता के दृष्टिबिन्दु से यह विभाजन स्वीकार किया गया है। कभी कवि का उद्देश्य देश-काल का निर्देश करना न होकर केवल प्रकृति-स्थिति को उपस्थित करना हो सकता है। अश्वघोष के सौन्दरनन्द में इस प्रकार की स्थितियों का वर्णन आदर्श तथा अलौकिक है। दूसरे अनुच्छेद में निर्दिष्ट तपोवन के वर्णन में देश के साथ स्थिति अधिक प्रत्यक्ष हुई है जो स्वाभाविक कही जा सकती है। शाक्य मुनि ने नन्द को जो प्रकृति का रूप पक्षी के रूप में दिखलाया है, वह पहले आदर्श है—'श्वेत शिखरों पर बहुत संख्या में मोर अपने पंखों को फैलाये सो रहे थे, जैसे बलवान स्वस्थ गोरी भुजा पर नीलमणि का केयूर बँधा हो।' बाद में क्रमशः प्रकृति का रूप अलौकिक होता जाता है।

(iii) स्थिति

वैदूर्यनालानि च काञ्चनानि पद्मानि वज्राङ्कुरकेशराणि।
स्पर्शक्षमाण्युत्तमगन्धवन्ति रोहन्ति निष्कम्पतला नलिन्यः॥[१२]

१२. सौन्द० ; स० १० ; ८, २४।

[सरोवर के कम्पनहीन जल पर नीलमणि के नालवाले वज्र की किरण-केशरवाले सोने के कमल उग रहे हैं, जिनमें बहुत उत्तम गन्ध आ रही है और जिनका स्पर्श नहीं किया जा सकता है।] कालिदास ने अधिकतर स्थिति के चित्रणों को निरपेक्ष नहीं रखा है, उनसे वातावरण का निर्माण किया है अथवा उनमें भावात्मक संकेत अन्तर्हित कर दिये हैं। यत्र-तत्र स्वतंत्र स्थिति का रूप वस्तु के आधार में उपस्थित हुआ है। नन्दनी को चराकर लौटते समय दिलीप के मार्ग में सन्ध्या-समय का चित्र ऐसा ही है, जिसका उल्लेख किया जा चुका है। इसी प्रकार 'राजा दिलीप की परीक्षा लेने के लिये नन्दनी ने झट हिमालय की उस गुफा में प्रवेश किया जिसमें गंगाजी की धारा गिर रही थी और जिसके तट को घनी घास आच्छादित किये हुए थी।' इस वर्णन में स्थिति का निर्देश है। घटना के साथ स्थिति को चित्रित करने में कालिदास अद्वितीय हैं। दशरथ के मृगया प्रसंग में एक स्वाभाविक चित्र इस प्रकार है—

> उत्तस्थुषः सपदि पल्वलपङ्कमध्या-
> न्मुस्ताप्ररोहकवलावयवानुकीर्णम्।
> जग्राह स द्रुतवराहकुलस्य मार्गं
> सुव्यक्तमार्द्रपदपङ्क्तिभिरायताभिः॥[13]

[इसके अनन्तर राजा ने, शीघ्र ही सरोवर के कीचड़ से उठकर भागते हुए सुअरों के झुण्ड के, स्थान-स्थान पर आधे चबे हुए मोथ की घास के बिखरे हुए मुट्ठों तथा पैर की गीली छापों की पाँत से निर्दिष्ट मार्ग का अनुसरण किया।] जानकीहरण में दशरथ हिमालय पर मृगया के लिये जाते हैं। और वहाँ का वर्णन कवि आदर्श-रूप में करता है—'गुफाओं से अपना आधा शरीर निकाल कर पशुओं को खींचते हुए नागों से जान पड़ता है पर्वत स्वयं जीभ फैला कर जीवों को निगल रहा है।' कवि ने कालिदास के समान मृगया का एक स्थिति चित्र बहुत सहज प्रस्तुत किया है—

---

१३. रघु०; स० २; २६: स० ९; ५९।

उत्कर्णमुत्पुच्छयमानमासे विदर्शिताभ्याहतकन्दुकोत्थम्।
पारिप्लवाक्षं मृगशाववृन्दमीषन्निपातेन शरेण राजा ॥[१४]

[राजा ने दिखाये गये मृग-शावक समूह को हलका बाण चलाकर भगा दिया; वह झुण्ड बीच के हिरण के गेंद लगने से विचलित हो गया था और चंचल नेत्रों से कान-पूँछ उठा कर भाग रहा था।] यहाँ घटना के साथ प्रकृति-स्थिति एक रूप हो जाती है। सेतुबन्ध में प्रकृति वर्णना का व्यापक विस्तार है जिसमें स्थितियों का आदर्श और अलौकिक रूप अधिक चित्रित किया गया है। कथा का सारा विस्तार सागर के चारों ओर फैला हुआ है, इसलिये कवि को पर्वत, नदी, तट, सागर आदि के वर्णन का विस्तृत अवसर मिला है। परन्तु जैसा कहा गया है प्रवरसेन की प्रमुख प्रवृत्ति आदर्श चित्रण की है। परन्तु इस प्रवृत्ति में कवि की अन्तर्दृष्टि तथा सूक्ष्म पर्यावेक्षण का पता चल जाता है। प्रवरसेन प्रकृति की स्वाभाविक स्थितियों से परिचित हैं। देशगत स्थितियों में आदर्श की भावना अधिक है पर काल सम्बंधी स्थितियां में सहज चित्र मिल जाते हैं। कवि चाँदनी में वृक्ष की छाया का वर्णन इस प्रकार करता है—

दरमिलितचन्द्रकिरणा दरधाव्यमानतिमिरपरिपाण्डुरालोकाः।
दरप्रकटतनुविटपा दरबद्धच्छायामण्डला भवन्ति द्रुमाः ॥

[किंचित चन्द्रकिरणों के व्याप्त होने से जिनके बीच का अन्धकार चन्द्रिका के प्रकाश से दूर हो गया है ऐसे वृक्ष मण्डलाकार छायाओं में आभासित हो उठे हैं।] पर प्रकृति की सहज स्थिति से कहीं अधिक प्रवरसेन उसकी आदर्श स्थिति से आकर्षित होते हैं। विस्तृत वर्णनों में आदर्शीकरण की व्यापक प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। कभी यह आदर्श-रूप कारण की कल्पना का परिणाम लगता है। कवि सुवेल पर्वत के वर्णन प्रसंग में कहता है कि 'उन्होंने दूर-दूर तक दिशाओं में फैले हुए सुवेल को देखा जिसका विकराल आकार सागर के जल में इस प्रकार

१४. जान० ; स० १ ; ४९ , ५४ ।

प्रतिबिम्बित था मानों उसकी चोटी पर वज्र प्रहार होने से उसका एक भाग समुद्र में गिर गया है।' पर यह अलंकृत शैली में स्वाभाविक प्रकृति का रूप है। आदर्श-रूप की वर्णना कवि वस्तुओं के रूप-रंगों की योजना में करता है—

मरकतमणिप्रभाहतहरितायमानजरठप्रवालकिसलयम्।
सुरगजगन्धोद्धावितकरिमकरासन्नवृत्तमेघमुखपटम्॥

[उस सागर में अधिक दिनों के प्रवाल के किसलय नीलमणि के प्रभा से युक्त होकर हरित हो रहे हैं। और ऐरावत आदि देवताओं के हाथियों के मद की गन्ध से आकर्षित होकर जब मगरमच्छ सागर से अपना मुख निकालते हैं तब मेघ उन पर वस्त्र की भाँति छा जाते हैं।] यह स्थिति की योजना प्रकृति का आदर्श रूप चित्रित करती है। कभी यह रूप-क्रिया तथा परिस्थितियों के माध्यम से प्रस्तुत की गई है—

शशिबिम्बपार्श्वनिघर्षणकृष्णशिलाभित्तिप्रसृतामृतलेखम्।
ज्योत्स्नाजलप्लावितविषमोष्मायमाणज्ञातरविरथमार्गम्॥[१५]

[सुवेल पर्वत की काली शिलाओं के बगल से चन्द्रमा घर्षण करता हुआ निकलता है, जिससे अमृत की धारा प्रवाहित होती है। और उस पर जब चाँदनी के जल से प्लावित मार्ग से होकर विषम ऊष्णता के साथ सूर्य्य निकलता है तब उठी हुई भाप से उसके रथ का मार्ग जान पड़ता है।]

भारवि ने स्थिति का स्वतंत्र चित्र बहुत कम उपस्थित किया है। सन्ध्या समय चरकर लौटती हुई गायों का यह वर्णन स्वाभाविक है—

उपारताः पश्चिमरात्रिगोचरादपारयन्तः पतितुं जवेन गाम्।
तमुत्सुकाश्चक्रुरवेक्षणोत्सुकं गवां गणाः प्रस्नुतपीवरौधसः॥[१६]

[दिन डूबते समय गोचर-भूमि से लौटती हुई, उत्सुक होने पर भी अयन के भार से शीघ्र न चल सकनेवाली तथा जिनके स्तनों से दूध बह

१५. सेतु० ; आ० १० ; ३७ : आ० ९ ; १३ : आ० २ ; २२ : आ० ९ ; १०।
१६. किरा० ; स० ४ ; १०।

रहा है ऐसी गायों के समूह ने उसको देखने के लिये उत्सुक कर दिया।] सहज प्रकृति के चित्रण में भी मात्र का आग्रह आलंकारिक वैचित्र्य का रहता है—'श्रीकृष्ण ने समुद्र-तट पर मेघ के समान नीलवर्ण तथा लता-बधुओं के साथ अनेक वृक्षों को अपने ही बहुत से शरीरों की भाँति लक्ष्मीयुत देखा।' अनेक स्थलों पर ये वर्णन आदर्श-रूप में चित्रित किये गये हैं—'दीपित मणियों की नूतन किरण-राशि रैवतक पर्वत की स्वर्णमयी चोटियों पर फैल कर व्याप्त हो रही थी। उसे श्याम रंग की शिलाएँ शोभित कर रही थीं और भ्रमरों को आमंत्रित करती हुई लताएँ उसका आश्रय लिए हुए थीं।' इस आदर्श प्रकृति में स्थिति का चित्रात्मक सौन्दर्य्य है। पर जब इस रूप में कवि उक्ति-वैचित्र्य का निर्वाह करने लगता है, तब स्थिति अपने आप उसी में खो जाती है—

निःश्वासधूमं सह रत्नभाभिर्भित्त्वोत्थितं भूमिमिवोरगाणाम्।
नीलोपलस्यूतविचित्रधातुमसौ गिरिं रैवतकं ददर्श॥[१७]

[मणियों के प्रकाश के साथ गेरू आदि अनेक धातुओं से विचित्र रंग-वाले उस रैवतक पर्वत को कृष्णजी ने देखा मानों सर्पों की निश्वास धूम-राशि ही नाना विध रत्नों की आभा के साथ भूतल को भेद कर निकल रही है।] इसमें स्थिति का रूप सामने लाने से अधिक कवि का ध्यान वैचित्र्य कल्पना के निर्वाह की ओर है। श्रीहर्ष का प्रकृति की स्थितियों के प्रति अधिक आग्रह नहीं रहा है। इन्होंने प्रकृति-वर्णन को अपेक्षाकृत कम महत्त्व दिया है। और इनके वर्णनों में स्वतंत्र-स्थिति का नितान्त अभाव है; पर सोते हुए हंस का यह चित्र स्वाभाविक बन पड़ा है—

अथावलम्ब्य क्षणमेकपादिकां तदा निदद्रावुपपल्वलं खगः।
स तिर्यगावर्जितकन्धरः शिरः पिधाय पक्षेण रतिक्लमालसः॥[१८]

---

१७. शिशु०; स० ३; ७१ : स० ४; ३, १
१८. नैष०; स० १; १२१।

[इसके बाद वह पक्षी (हंस) रति-विलास से शिथिल होकर सरोवर के निकट, गरदन झुकाए हुए अपने शिर को पंखों से छिपा कर क्षण भर के लिये एक पैर पर खड़ा-खड़ा सो गया।] इस सहज-स्थिति में जो सौन्दर्य्य रक्षित है उससे स्पष्ट है कि श्रीहर्ष में पर्यावेक्षण की शक्ति है पर उन्होंने अपने काव्य में मानव जीवन को अधिक महत्त्व दिया है। साथ ही जैसा शैली के प्रसंग में कहा गया है उनमें पांडित्य अधिक है।

§ ५—अभी तक जिन प्रकृति-स्थितियों का उल्लेख किया गया है वे किसी न किसी रूप में कथा-वस्तु का आधार प्रस्तुत करती हैं। परन्तु संस्कृत काव्य में प्रकृति स्वयं कथानक की घटना के रूप में उपस्थित होती है। इस स्थिति में प्रकृति की विभिन्न स्थितियों की नियोजना कथानक की दृष्टि से अपना महत्त्व रखती है। भारतीय कल्पना में प्रकृति सजीव और स्पन्दित ही नहीं वरन् मानव जीवन का अंग बन गई है। प्रकृति से मानवीय जीवन किस प्रकार आत्मीयता और साहचर्य्य स्थापित करता चलता है यह पिछले प्रकरण में बताया गया है और महाकाव्यों के विस्तार में अगले अनुच्छेदों में दिखाया जायगा। परन्तु जीवन के व्यापक अंग के रूप में प्रकृति इतिवृत्त की घटना बनकर अनेक अवसरों पर इन काव्यों में उपस्थित हुई है। इस घटना में प्रकृति के उपकरण कभी पात्रों के समान व्यवहार करते पाये जाते हैं और कभी कथावस्तु के पात्रों के कार्य के साथ घटना-स्थिति का रूप धारण कर लेते हैं।

प्राकृतिक घटनाओं की नियोजना

क—प्राकृतिक घटनाओं की नियोजनाएँ कभी स्वाभाविक होती हैं। इस स्थिति में सहज रूप से प्रकृति और मानव जीवन घटनात्मक सम्बंध में उपस्थित होते हैं। प्रकृति की स्वाभाविक घटना-स्थिति में आखेट सम्बंधी प्रकृति-वर्णन आ जाते हैं। कालिदास तथा कुमारदास के आखेट-वर्णन का पीछे उल्लेख किया गया है। अन्य घटना-स्थितियों में नर्मदा नदी में प्रियम्वद का हाथी के

(i) स्वाभाविक

रूप में निकलने का चित्र स्वाभाविक है। जहाँ तक घटना की स्थिति का प्रश्न है इसका वर्णन सहज है, पर हाथी का रूप-परिवर्तन अलौकिक घटना मानी जायगी। अज की सेना ने नर्मदा के तट पर पड़ाव डाला था कि इसी बीच उसके जल से एक हाथी निकला—

निःशेषविक्षालितधातुनापि वप्रक्रियामृक्षवतस्तटेषु।
नीलोर्ध्वरेखाशबलेन शंसन्दन्तद्वयेनाश्मविकुण्ठितेन॥

[नहाने से दाँतों में लगी गेरु की लाली के छूट जाने पर भी पत्थर की रगड़ से उसके दाँतों पर पड़ी हुई नीली-नीली रेखाओं से जान पड़ता था कि उसने ऋक्षवान पर्वत की शिलाओं से टक्कर मारने की क्रीड़ा की है।] यही हाथी अज के बाण से प्रताड़ित होकर दिव्य पुरुष का रूप धारण कर लेता है। पुरदेवी ने कुश से जो अयोध्या नगरी की विध्वंस-स्थिति का वर्णन किया है वह एक प्राकृतिक घटना के समान है। नगरी का यह वर्णन वातावरण जैसा जान पड़ता है; पर वह अपने आप में घटना है, क्योंकि अन्य किसी घटना की पार्श्वभूमि के रूप में नहीं है। यह घटनात्मक-स्थिति की योजना यथार्थ और सहज सजीवता के साथ प्रस्तुत हुई है—'स्वामी के बिना मेरी निवास-भूमि अयोध्या ध्वस्त अट्टालिकाओं और प्राकारों से, सूर्यास्त के के समय पवन वेग से इधर-उधर छितराए बादलोंवाली सन्ध्या के समान उदास जान पड़ती है।' उजड़ी हुई नगरी का यह चित्र स्थिति को सामने प्रत्यक्ष कर देता है—

वृक्षेशया यष्टिनिवासभङ्गान्मृदङ्गशब्दापगमादलास्याः।
प्राप्ता दवोल्काहतशेषबर्हाः क्रीडामयूरा वनबर्हिणत्वम्॥[१९]

[अड्डों के टूट जाने से वृक्षों का आश्रय लेनेवाले, मृदंग न बजने से जिनका नाचना भी बन्द हो गया है ऐसे पालतू मोर वन की आग से झुलसे हुए पखोंवाले जंगली मोरों के समान हो गये हैं।] आखेट के

---

१९. रघु० ; स० ५ ; ४४ ; स० १६ ; ११ , १४।

प्रसंग में कुमारदास ने कालिदास के समान घटना-स्थिति के रूप में प्रकृति का उल्लेख किया है। स्थिति के अन्तर्गत एक चित्र उपस्थित किया जा चुका है। इन स्थितियों को घटना के रूप में लिया जा सकता है, क्योंकि इनमें प्रकृति का योग क्रियात्मक है—'सिंह की गति वाले तथा लक्ष्य भेदन करने के समय अदृश्य भुजावाले राजा दशरथ ने अपने बाणों से, घोड़े को मारने के लिये छलाँग भरकर आक्रमण के लिये सिकुड़े हुए चीता के प्रत्येक चिह्न को एक क्षण में ही वेध दिया।' आगे चलकर कुमारदास ने रघुवंश से प्रेरणा ग्रहण कर विश्वामित्र के राक्षसों द्वारा ध्वस्त आश्रम का चित्र उपस्थित किया है। इसमें कालिदास जैसी स्वाभाविक सजीवता नहीं है, फिर भी कवि के पर्यवेक्षण का पता चल जाता है—

> **भुवि भोगिनिभं विलोकयंस्तद्रुमो हारमहार्यवेपथुः।**
> **हरिहस्तहतस्य दन्तिनः कररन्ध्रे निभृतं निलीयते॥**[२०]

[पृथ्वी पर पड़ी हुई फूलों की माला सर्प के समान जान पड़ती है। और उससे भयभीत एक चूहा लगातार काँपता हुआ सिंह की चपेटों से मारे गये हाथी के दाँत की कोटर में चुपचाप जा छिपा है।] प्रवरसेन के सेतुबन्ध में प्रमुख घटना प्रकृति के क्षेत्र से सम्बंधित है। पर सेतु बाँधने की योजना स्वयं में अलौकिक घटना है; फिर साथ ही कवि की प्रवृत्ति आदर्शीकरण की है। इसलिये सेतुबन्ध में स्वाभाविक प्राकृतिक घटना-स्थिति का ढूँढ़ना सरल नहीं है। अन्य काव्यों में मानव जीवन में सहज रूप से प्रकृति को स्थान नहीं मिल सका है।

(ii) आदर्श

§६—कथा-वस्तु के अनुरूप कभी महाकाव्यों में ये घटना-स्थितियाँ आदर्श प्रकृति का निर्माण करती हैं। सौन्दरनन्द में दशम सर्ग में वर्णित दृश्य नन्द को विशेष उद्देश्य से दिखाया गया है, इस कारण देशगत-स्थिति के साथ इस

२०. जान० ; स० १ ; ६० : स० ४ ; ५५।

वर्णना में घटनात्मक विशेषता है। नन्द के आकर्षण के लिये जिस स्वर्गीय सौन्दर्य्य की कल्पना की गई है वह आदर्श प्रकृति का रूप है—

चित्रैः सुवर्णच्छदनैस्तथान्यैः वैदूर्य्यनीलैर्नयनैः प्रसन्नैः।
विहङ्गमा शीञ्जिरिकाभिधाना रुतैर्मनः श्रोत्रहरैर्भ्रमन्ति॥[२१]

[सोने के पंखोंवाले नाना प्रकार के पक्षी तथा नीलमणि के नयनों वाले शींजीरक नाम के पक्षी अपनी प्रसन्नता के मधुर स्वर से मन को आकर्षित करते हैं।] कालिदास ने कुमारसम्भव की सारी घटना को प्रकृति से एक रूप कर दिया है। हिमवान् कथावस्तु की घटना-स्थली के रूप में ही नहीं है, वरन् स्वयं एक पात्र है। साथ ही वसन्त, कामदेव आदि की भूमिका में प्रकृति घटना के रूप में अवतरित हुई है। इस महाकाव्य के प्रमुख पात्र शंकर-पार्वती की कल्पना प्रकृति के व्यापक सौन्दर्य्य से ग्रहण की गई है। फलस्वरूप इसकी प्रत्येक घटना में प्रकृति का योग स्वाभाविक हो गया है, और पौराणिक कल्पना के आधार के कारण प्रकृति का यह रूप कहीं आदर्श और कहीं अलौकिक है। प्रारम्भ में हिमालय का वर्णन कथानक की भूमिका जान पड़ता है, परन्तु सौन्दर्य्य का यह चित्रण कथावस्तु से इतना अभिन्न है कि उसकी घटना का अंग बन गया है। यह समस्त वर्णना प्रकृति के आदर्श सौन्दर्य्य का रूप है। प्रकृति का यह आदर्श-रूप कुमारसम्भव की कथा के अनुरूप है—

यश्चाप्सरोविभ्रममण्डनानां सम्पादयित्रीं शिखरैर्बिभर्ति।
बलाहकच्छेदविभक्तरागामकालसन्ध्यामिव धातुमत्ताम्॥
आमेखलं सञ्चरतां घनानां छायामधःसानुगतां निषेव्य।
उद्वेजिता वृष्टिभिराश्रयन्ते शृङ्गाणि यस्यातपवन्ति सिद्धाः॥[२२]

---

२१. सौन्द० ; स० १० ; २९।
२२. कुमा० ; स० १ ; ४, ५।

[इस हिमालय के शिखरों पर रंग-बिरंगी चट्टानें हैं। निकट आये हुए बादलों पर इनकी छाया पड़ने से अप्सराएँ सन्ध्या के भ्रम से हड़बड़ी में नाच-गाने के लिये अपना शृंगार प्रारम्भ कर देती हैं। शिखरों के निचले भाग में विचरते हुए मेघों की छाया में आनन्द से रहनेवाले सिद्ध अधिक वर्षा से घबड़ा कर धूपवाली चोटियों पर जाकर रहने लगते हैं।] बौद्ध-काव्यों में बुद्ध के जन्म के समय प्रकृति में अलौकिक घटना घटित होती है; उसमें कहीं-कहीं प्रकृति अपने आदर्श रूप में भी उपस्थित होती है। बुद्ध-चरित में जन्म के समय—'मृग और पत्नी चुप हो जाते हैं और नदियाँ नीरव जल के साथ प्रवाहित होती हैं। दिशाएँ स्वच्छ हो गईं और आकाश निरभ्र होकर प्रकाशित हो जाता है। गगन में देवता दुन्दुभियाँ बजाने लगते हैं।' इसी प्रकार पद्य-चुडामणि में बुद्धघोष आदर्श प्रकृति को चित्रित करते हैं—

शाखासु शाखासु समुद्भवद्भिर्विचित्रपत्रैः शतपत्रजातैः ।
चकाशिरे तस्य विलोकनाय सञ्जातनेत्रा इव शाखिनोऽपि ॥[२३]

[वृक्षों की डाली-डाली पर नाना रंगों के विचित्र शतपत्र कमल उत्पन्न हो गये मानों उनको (बुद्ध देव को) देखने के लिये वृक्षों के नेत्र लग गये हैं।] पिछले अनुच्छेद में प्रवरसेन के सेतुबन्ध में प्राकृतिक घटनाओं की आदर्श योजना का निर्देश किया गया है। वास्तव में सेतु बाँधने की सारी घटना प्रकृति से एक रूप हो गई है। राम के मार्ग में समुद्र विराट बाधा के रूप में फैला हुआ है—

गगनस्येव प्रतिबिम्बं धरण्या इव निर्गमं दिशामिव निलयम् ।
भुवनस्येव मणितडिमं प्रलयस्येव सावशेषजलविच्छर्दम् ॥

[आकाश के प्रतिबिम्ब के समान, पृथ्वी के निकास के द्वार के समान, दिशाएँ जिसमें विलीन हो जाती हैं ऐसा सागर भुवन-मण्डल की नील-मणि की परिखा के समान प्रलय के अवशेष जल के रूप में फैला है।]

---

२३. बुद्ध०, स० १; २६। पद्य०; स० ३; १२।

इस चित्र में स्वाभाविक विस्तार है पर कल्पना के साथ आदर्श जान पड़ता है। राम के बाण से प्रताड़ित होने पर समुद्र की दशा का वर्णन आदर्श-स्थितियों से भरा हुआ है। 'बाण के आघात से समुद्र के एक भाग का जल उछल गया है और दूसरे भाग का जल आलोड़ित होता हुआ उस खाली भाग की ओर आ रहा है।' और इतना ही नहीं—

भिन्नगिरिधात्वाताम्रा विषमच्छिन्नप्लवमानमहीधरपक्षाः ।
क्षुभ्यन्ति क्षुभितमकरा आपातालगभीराः समुद्रोद्देशाः ॥[२४]

[तीर से गिराई हुई गिरिधातुओं से ताम्रवर्ण के, और जिसमें टूटे हुए विषम पर्वतों के खण्ड तैर रहे हैं ऐसे पाताल तक गहरे समुद्री भाग अत्यन्त क्षुभित हो गये हैं और उनमें मकरों का समूह भी विकल हो उठा है।] ऐसी आदर्श घटना-स्थितियों से समस्त सेतु-बन्ध प्रसंग प्रस्तुत किया गया है, जिसमें यत्र-तत्र अलौकिकता की छाप है। किराता-र्जुनीय की घटना-स्थली हिमालय का प्रदेश है। अर्जुन अपनी तपस्या के लिये जिस प्रकृति के मध्य में पहुँचते हैं, वह उनके इतने निकट आ जाती है कि उस घटना का भाग बन जाती है—'मणियों की किरणों के जाल रूपी वस्त्र से शोभित, जिसके लता-गृहों में सुरवधुएँ निवास करती हैं और जिसमें ऊँची शिलाओं के द्वार हैं ऐसा वह पर्वत पुष्पित उपवन वाले नगर के समान पृथ्वी पर स्थित था।' आगे इन्द्रकील पर अप्स-राओं का वर्णन स्वयं प्रकृति के साथ मिलजुल कर एक रूप हो गया है—

माहेन्द्रं नगमभितः करेणुवर्याः पर्यन्तस्थितजलदा दिवः पतन्तः ।
सादृश्यं निलयननिष्प्रकम्पपक्षैराजग्मुर्जलनिधिशायिभिर्नगेन्द्रैः ॥[२५]

[चारों ओर से मेघों से घिरा हुआ श्रेष्ठ हाथी आकाश से इन्द्रकील पर्वत पर उतरता हुआ ऐसा जान पड़ा मानों सागर में बड़े-बड़े पर्वत

---

२४. सेतु० ; आ २ ; २ : आ० ५ ; १६ , ३७।
२५. किरा० ; स० ७ ; २०।

निश्चल पत्तों के साथ सो रहे हैं।] अन्य महाकाव्यों में प्रकृति का आदर्शीकरण किया है, पर वह कथानक का अंग इस रूप में नहीं बन सकी है।

§ ७—प्रकृति जब स्वाभाविक के विरुद्ध व्यवहार करती हुई कथानक की घटना का अंग बन जाता है, तब उसका अलौकिक रूप हमारे सामने आता है। भारतीय महाकाव्यों में प्रकृति के इस अलौकिक रूप के आधार में दो सिद्धान्त प्रमुखतः हैं। पहली बात है कि यहाँ जीवन और प्रकृति एक दूसरे के इतने निकट स्वीकृत रहे हैं कि प्रकृति के विभिन्न उपकरणों का मानव के समान व्यवहार करना सहज हो गया है। और दूसरी बात है कि प्रकृति से महाप्राण का इतना तादात्म्य माना गया है कि किसी महत्त्वपूर्ण मानवीय घटना के साथ प्रकृति का अलौकिक हो उठना सरल है। प्रकृति की ये घटना-स्थितियाँ एक प्रकार से वातावरण का सचेष्ट रूप हैं जिसमें प्रकृति क्रियाशील जान पड़ती है। अश्वघोष, शाक्य-मुनि तथा मार के युद्ध के पूर्व प्रकृति के अलौकिक रूप को 'अन्धकारपूरित आकाश, काँपती हुई पृथ्वी और प्रज्वलित तथा निनादित दिशाओं में' देखते हैं। और प्रकृति की इस अलौकिक स्थिति में—

अलौकिक

विष्वग्ववौ वायुरुदीर्णवेगस्तारा न रेजुर्न बभौ शशाङ्कः।
तमश्च भूयो विततान रात्रिः सर्वे च सञ्चुक्षुभिरे समुद्राः॥[२६]

[मुक्त वेग से पवन चारों ओर प्रवाहित हुआ, आकाश में न तारे प्रकाशित हुए और न चन्द्रमा। रात्रि ने अन्धकार को और भी घनीभूत कर लिया तथा सभी समुद्र क्षुब्ध हो गये।] कालिदास के कुमार-सम्भव में कथावस्तु के अनुरूप प्रकृति अलौकिक घटनाओं में अनेक स्थलों पर उपस्थित हुई है। वसन्त कामदेव की आज्ञा से अपना विस्तार करता है; असमय ही शिव के मन को चंचल करने के लिए प्रकृति

२६. बुद्ध० ; स० १३ ; २८, २९।

में वसन्त छा जाता है। पर कहाँ शिव और कहाँ बेचारा वसन्त। शिव के अनुचर नन्दी के एक संकेत से प्रकृति मौन हो जाती है—

निष्कम्पवृक्षं निभृतद्विरेफं मूकाण्डजं शान्तमृगप्रचारम्।
तच्छासनात्काननमेव सर्वं चित्रार्पितारम्भमिवावतस्थे॥

[उसका संकेत पाकर वृक्षों ने हिलना बन्द कर दिया, भौंरों की गुंजार बन्द हो गई, पक्षिगण मौन हो गये और पशुओं ने भी संचरण बन्द कर दिया। इस प्रकार उसकी आज्ञा से सारा कानन चित्रलिखित सा हो गया।] आगे सप्तऋषि जब हिमालय के पास विवाह का प्रस्ताव लेकर जाते हैं, उस समय हिमालय के व्यक्तित्व का वर्णन प्रकृति को अलौकिक कर देता है। ऋषियों ने हिमालय को ठोस बोझीले पग रखते हुए आते देखा जिससे पृथ्वी झुक-झुक जाती थी, और देखते ही उन्होंने पहचान लिया—

धातुताम्राधरः प्रांशुर्देवदारुबृहद्भुजः।
प्रकृत्यैव शिलोरस्कः सुव्यक्तो हिमवानिति॥[२७]

[धातुओं की लाल चट्टानों के ओठोंवाला, देवदारु की विशाल भुजाओंवाला और स्वभाव से ही शिलाओं की चौड़ी और दृढ़ छाती वाला हिमालय यही है।] यहाँ अलौकिकता प्रकृति की स्थिति में नहीं है, वरन् उसके व्यक्तीकरण में है। बुद्धघोष ने बुद्धदेव के जन्म के समय प्रकृति में अलौकिक घटनाओं का उल्लेख किया है—'मेरु पर्वत चलायमान हो गया जो नाम से ही अचल प्रसिद्ध है, सिन्धु ने अपना खारीपन छोड़ कर माधुर्य स्वीकार कर लिया और सदा प्रवाहित होनेवाली नदियाँ भी विस्मय से स्थिर हो गईं।' और भी—

ववर्ष वर्षासमयं विनापि बलाहको वारिधिघोरघोषः।
आश्चर्यकर्माणि बभूवुरित्थं जाते सतामग्रसरे कुमारे॥[२८]

---

२७. कुमा० ; स० ३ ; ४२ : स० ६ ; ५१।
२८. पद्म० ; स० ३ ; २० , २१।

[इस प्रकार के आश्चर्य कार्य कुमार के जन्म के समय हुए, जैसे वर्षाकाल के बिना ही मेघों ने वर्षा की और समुद्र ने गम्भीर घोष किया ।] कहा गया है कि प्रवरसेन में सेतुबन्ध की घटना को आदर्श तथा अलौकिक घटना-स्थिति से निर्माण किया है । इसमें समुद्र का व्यक्तीकरण अपनी कल्पना में अलौकिक है—'धुआँ से व्याप्त पाताल के वन को छोड़ कर दिग्गज के समान समुद्र बाण की ज्वाला से झुलसे हुए सर्पों और वृक्षों के समूह के साथ बाहर निकला।' इसके साथ कवि ने समुद्र के व्यक्तित्व को और भी प्रत्यक्ष किया है । सेतुबन्ध के लिये कपि-सेना का पर्वत लाने.जाने का वर्णन अलौकिकता में अद्वितीय है । कपि-सेना के चलने से समुद्र क्षुब्ध हो उठता है—

प्लवगक्षोभितमहीतलधूतमलयपतच्छिखरमुक्तकलकलः ।
उद्धावितोऽनागतघटमानधरणिधरसंक्रम इव समुद्रः ॥[२९]

[बानरों से क्षुभित पृथ्वीतल के हिलने से मलय पर्वत के शिखरों के गिरने से कोलाहल व्याप्त हो गया है जिसमें ऐसा समुद्र मानों सेतु बँधने के समय पर्वतों से आक्रान्त होने का समय आ गया जान कर उछल रहा है ।] सेतु बाँधने का दृश्य भी आदर्श कल्पनाओं के साथ अलौकिक है । किरातार्जुनीय में भारवि ने अर्जुन की तपस्या-भंग करने के लिये आनेवाली अप्सराओं के विलास आदि का जो चित्र उपस्थित किया है वह घटना की दृष्टि से अलौकिक माना जायगा, यद्यपि उसमें वर्णनात्मक स्थितियों का रूप आदर्श प्रकृति का विशेष है । 'आकाश-मार्ग से आती हुई अप्सराओं के रत्नजटित आभूषणों ने जलहीन मेघों में निकले हुए खण्डित इन्द्रधनुष को पूरा कर दिया है ।'[३०]

---

२९. सेतु० ; आ० ६ ; १ , २१ ।

३०. किरा० ; स० ७ ; १६ । इसी प्रकार बादलों के पुल से उनके रथों के उतरने की कल्पना है—

'सेतुत्वं दधति पयोमुचां विताने संरम्भादभिपततो रथाञ्जवेन ।
आनिन्युर्नियमितरश्मिभुग्नघोणाः कृच्छ्रेण क्षितिमवनामिनस्तुरङ्गाः ॥१९॥

इसमें स्थिति का सौन्दर्य्य आदर्श है, पर घटना अलौकिक है। शिशुपालवध में रैवतक पर श्रीकृष्ण के विलास-वर्णन में यत्र-तत्र अलौकिकता है, पर वास्तव में कथानक की घटना से इसका कुछ सम्बंध नहीं है। नैषधीय में हंस का व्यक्तित्व अलौकिक है, इसके अतिरिक्त उसके कथानक में प्रकृति का घटना-स्थिति के रूप में कोई स्थान नहीं है।

§ ८—पिछले अनुच्छेदों में प्रकृति के कथानक के आधार के रूप में प्रयोग पर विचार किया गया है अथवा वह घटना-स्थिति के रूप में कथावस्तु का किस प्रकार अंग बन जाती है यह बताया गया है। परन्तु पार्श्व-भूमि के रूप में चित्रित प्रकृति कथानक से अनेक स्थलों पर सम्बंध स्थापित कर लेती है। उस समय वह कथानक की केवल आधारभूमि नहीं रह जाती वरन् वातावरण का निर्माण करती है। पार्श्वभूमि के रूप में प्रकृति केवल देश-काल की स्थितियों का बोध भर कराती है, पर वातावरण के रूप में वह घटना अथवा चरित्र से सम्बंध स्थापित करती है। जब प्रकृति की वर्णना में कथानक के क्रम की छाया पड़ती हो या भविष्य सम्बंधी संकेत सन्निहित हों अथवा पात्रों के चरित्र की व्यंजना अन्तर्निहित हो, तब वह वातावरण का रूप ग्रहण करती है। इस प्रकार प्रकृति के नीरव और स्वच्छ आकाश में इतिवृत्त का छाया-प्रकाश वातावरण की उद्भावना करता है।

वातावरण का निर्माण

क—वातावरण के निर्माण में कभी प्रकृति तथा घटना में सहज अनुरूपता रहती है। कवि जैसी घटना का वर्णन करने जा रहा है अथवा चरित्र का जो रूप प्रस्तुत करनेवाला है पार्श्वभूमि की प्रकृति में उसी के अनुरूप वातावरण का निर्माण करेगा। इस प्रकार के प्रयोग से प्रकृति और मानव जीवन में एक सहज सम्बंध स्थापित हो जाता है और प्रकृति की यह अवतारणा अधिक प्रभावोत्पादक होती है। सौन्दरनन्द में अश्वघोष कपिल

सहज अनुरूप

मुनि के आश्रम का वर्णन इसी वातावरण के साथ करते हैं—'हिमालय की पार्श्वभूमि में विस्तृत क्षेत्रवाली पवित्र कपिल की तपोभूमि थी,' जो—

पर्य्याप्तफलपुष्पाभिः सर्व्वतो वनराजिभिः।
शुशुभे ववृधे चैव नरः साधनवानिव ॥[31]

[साधना करनेवाले पुरुष की भाँति अत्याधिक फल-फूलों से आच्छादित वनसमूहों से शोभित थी और वर्धमान थी।] तपोभूमि की समस्त वर्णना में इस प्रकार शांति तथा पवित्रता की भावना वातावरण बनकर फैली हुई है। कालिदास प्रकृति के सौन्दर्य्य को वातावरण का रूप देने में सब से अधिक सफल हुए हैं। रघुवंश के प्रथम सर्ग में दिलीप के मार्ग में प्रकृति अनुरूप वातावरण प्रस्तुत करती है—'मन की इच्छाओं के पूर्ण होने का संकेत देता हुआ पवन उनके अनुकूल ऐसी दिशा से प्रवाहित हो रहा था कि धूल न देवी सुदाक्षिणा के बालों को छू पाती थी और न राजा दिलीप की पगड़ी को।' और—

सरसीष्वरविन्दानां वीचिविक्षोभशीतलम्।
आमोदमुपजिघ्रन्तौ स्वनिःश्वासानुकारिणम् ॥

[मार्ग में पड़नेवाले तालों के कमलों की, अपनी साँस के समान, पवन से चंचल की हुई लहरों के झकोरों से शीतल गन्ध को ग्रहण करते हुए वे चल जा रहे थे।] नन्दिनी को चराते समय भी प्रकृति राजा दिलीप के अनुकूल है और उनके ऐश्वर्य्य के अनुरूप वातावरण प्रस्तुत करती है—'मार्गवर्त्ती वृक्षों पर अनेक मतवाले पक्षियों ने अपने कलरव से जिसके साथ सेवक नहीं हैं ऐसे राजा दिलीप का मानों जय-जयकार किया।' रघु की दिग्विजय की यात्रा में प्रकृति अपने वातावरण में उनके अनुकूल चित्रित की गई है—

---

३१. सौ० ; स० १ ; ५ , ९ ।

भूर्जेषु मर्मरीभूताः कीचकध्वनिहेतवः।
गङ्गाशीकरिणो मार्गे मरुतस्तं सिषेविरे॥

[वहाँ मार्ग में भोजपत्रों को मर्मर करता हुआ पर्वतीय बाँसों के छेदों में बाँसुरी सी बजाता हुआ और गंगा जी की फुहारों से ठण्ढा हुआ पवन रघु की सेवा कर रहा था।] विमान से लौटते समय राम प्रकृति के जिस रूप का उल्लेख करते हैं, उसमें वातावरण सम्बन्धी भावात्मक अनुरूपता है—

अमूर्विमानान्तरलम्बिनीनां श्रुत्वा स्वनं काञ्चनकिङ्किणीनाम्।
प्रत्युद्व्रजन्तीव खमुत्पतन्त्यो गोदावरीसारसपङ्क्तयस्त्वाम्॥

[देखो, विमान के नीचे लटकती हुई सोने की किंकिणियों का शब्द सुन कर गोदावरी नदी से सारसों की पाँतें मानों तुम्हारी अगवानी करने के लिये उड़ी चली आ रही हैं।] कालिदास ने कुमारसम्भव में इसी प्रकार अनुरूप वातावरण कई स्थलों पर प्रस्तुत किया है। पिछले अनुच्छेद में घटना-स्थल के रूप में हिमालय के आदर्श तथा अलौकिक वर्णन का जो उल्लेख किया है वह वातावरण के निर्माण के लिये हुआ है। तीसरे सर्ग में वसन्त ने जो उद्दीपक प्रसार प्रकृति में किया है वह भी एक प्रकार से शिव की तपस्या-भंग के अनुरूप वातावरण की उद्भावना है, पर इसका विचार उद्दीपन-विभाव के अन्तर्गत किया जायगा। शंकर-पार्वती के विलास के साथ प्रकृति का चित्र अनुकूल है—'घूमते हुए वे मलय पर्वत पर पहुँचे, जहाँ चन्दन की कोमल शाखाओं को कम्पित करनेवाला और लौंग के फूलों की केसर उड़ाने वाला मलय पवन संभोग में थकी हुई पार्वती जी की थकावट मीठी बातों से किसी के मन बहलाने के समान, दूर कर रहा था।'[32] बुद्धघोष ने सिद्धार्थ की तपस्या की पार्श्वभूमि में साल-वन का वर्णन अनुरूप

---

३२. रघु० ; स० १ ; ४२ , ४३ : स० २ ; ९ : स० ४ ; ७३ : स० १३ ; ३३ । कुमा० ; स० ८ ; २५ ।

वातावरण के निर्माण के लिये किया है। इस वन का उल्लास तपस्या की सिद्धि के अनुकूल व्यक्त किया गया है—

उत्फुल्लमञ्जरीपुञ्जपिञ्जरीकृतसत्पथे।
भ्रमद्भ्रमरझङ्कारहुङ्कारचकिताध्वगे॥[33]

[जिस वन में विकसित मंजरियों के पुंज से व्याप्त आकाश पीला था और जिसमें गुंजार करते हुए भौंरों के स्वर से पथिक चकित हो रहे थे।] इस पुष्पित तथा मन्द पवन वाले कानन में शाक्य मुनि ने तपस्या प्रारम्भ की है। यह वातावरण शृंगार प्रधान होने के कारण तपस्या के प्रतिकूल कहा जा सकता है, परन्तु सिद्धि का फल इतना प्रत्यक्ष है कि यह प्रतिकूलता अनुकूल अधिक जान पड़ती है।

ख—कभी कवि घटना से वातावरण को अधिक प्रधान चित्रित करता है। ऐसी स्थिति में वातावरण सघन हो जाता है और वह घटना का एक अंग बन जाता है। सेतुबन्ध कथानक की दृष्टि से वातावरण प्रधान महाकाव्य है। उसका सारा विस्तार वातावरण की सघनता में खो गया है, इसका एक कारण जैसा कहा गया है इसकी प्राकृतिक घटनाओं की नियोजना भी है। इस महाकाव्य में सेतुबन्धन की घटना ही प्रधान है, और इसी के चारों ओर रामकथा को ले लिया गया है। इस कारण समुद्र के वर्णन से लेकर सेतु सम्पूर्ण होने तक की समस्त वर्णना प्राकृतिक घटनाओं की जिस शृंखला में उपस्थित होती है वह कथा का सघन वातावरण ही है। घटना की पार्श्व-भूमि में प्रकृति की अवतारणा और इस घटनात्मक वर्णना में वातावरण का रूप भिन्न होता है। पहली स्थिति में वातावरण कथा की घटना को आधार प्रदान करती है अथवा उस पर किसी प्रकार का छायातप डालता है, पर दूसरी स्थिति में वातावरण कथा का अंग बन जाता है। प्रवरसेन ने प्राश्वभूमि के रूप में भी वातावरण का

सघन वातावरण

---

३३. पद्म० ; स० ९ ; ६५।

निर्माण किया है। और इसकी योजना अपनी सघनता में घटना के अनुकूल पृष्ठभूमि प्रस्तुत करती है। प्रथम आश्वास में हनूमान का सीता का सन्देश देने के पूर्व शरद् का वर्णन इसी भावना से प्रभावित है—'जिस काल में नाल रूपी अपने कण्टकित (पुलकित) शरीर को जल रूपी वस्त्रों में छिपाये हुए किंचित किंचित विकसित होती हुई मुग्ध स्वभाववाली नलिनी सूर्य किरणों से चुम्बित होते से अपने कमल रूपी मुख को हटाती नहीं।' इसमें आरोप द्वारा राम के विरह को उद्दीप्त करने की प्रवृत्ति है, पर यह वर्णना का व्यापक विस्तार सीता-सन्देश तथा उससे उत्साहित होकर सेतुबन्ध की योजना की अनुरूप पार्श्व-भूमि है। यह भावना आगे अधिक व्यक्त हुई है—

इति प्रहसितकुमुदसरसि भटीमुखपङ्कजविरुद्धचन्द्रालोकायाम ।
जातायां स्फुरत्तारायां लक्ष्मीस्वयंग्राहनवप्रदोषे शरदि ॥[३४]

[इस प्रकार जिसमें सरोवरों में कुमुद विकसित हो गये हैं, जिसमें शत्रु-योद्धाओं की स्त्रियों के मुख-रूपी कमल को म्लान करनेवाला चन्द्रमा का आलोक फैलता है, ऐसी चमकते हुए तारों से युक्त तथा लक्ष्मी के स्वयं वरण की गोधूलि के समान शरद् ऋतु के आ जाने पर] राम के आशा के सम्बल के समान पवनसुत आ जाते हैं। इस प्रकार वातावरण में भविष्य का संकेत भी छिपा है, जिसकी व्याख्या अगले अनुच्छेद में की जायगी।

जैसा कहा गया है सेतुबन्ध में घटनात्मक वातावरण का प्रस्तार अधिक है, जिसमें सघन प्रगुम्फन है। समुद्र का विस्तार विक्षुब्ध समुद्र, वानरों द्वारा पर्वतों का आकाश-मार्ग से लाया जाना, पर्वतों से आकुल समुद्र, सेतु-बन्धन तथा उसके बाद का समुद्र-दर्शन आदि सभी इसी के अन्तर्गत आ जाते हैं। सभी वर्णनों में समान रूप से कल्पना के वैचित्र्य के साथ वातावरण घना हो उठा है। द्वितीय भाग में इनको

---

३४. सेतु० ; आ० १ ; ३२ ; ३४ ।

विस्तार से प्रस्तुत किया जायगा। राम के बाण से समुद्र इस प्रकार व्याकुल है—'जिसका प्रवाल-पुंज बिखर गया है, संक्षोभ के कारण ऊपर आये हुए अधः जलस्तर से निकले हुए रत्नों की ज्योति से युक्त, फेन की भाँति मुक्ता-समूह को उछालता हुआ, वेलाप्रदेश में प्लावित समुद्र का जल तट-प्रदेश में पृथ्वी के नत और उन्नत भागों में फैल रहा है।' वानर सेना द्वारा पर्वतों के उखाड़े जाने का चित्र ऐसा ही वातावरण प्रस्तुत करता है—'वर्षा में बादल बरस कर जिनको छोड़ चुके हैं, शरत् काल के अवतीर्ण होने पर कुछ सूखे हुए और कोमल होने के कारण केवल एक बार के प्रयत्न से वानर सैनिकों द्वारा उत्खात पर्वत खण्ड-खण्ड हो रहे हैं।' और भी—

दलितमहीवेष्टशिथिला मूलावलग्नभुजगेन्द्रकृष्यमाणाः।
सञ्चाल्यमाना एवायान्ति गुरवो रसातलं धरणिधराः॥[३५]

[उखाड़े जाने पर धरातल से सम्बंध विच्छिन्न होने के कारण शिथिल, मूल में लगे हुए पातालीय सर्पों द्वारा नीचे की ओर आकृष्ट वानरों द्वारा उत्तोलित होते भारवाही पर्वत रसातल की ओर खिसके जा रहे हैं।] इन वर्णनों की सघनता का पूरा आभास विस्तृत योजना में ही मिल सकता है।

ख—कथानक की घटना से सम्बंधित वातावरण-निर्माण की दृष्टि से भारवि ने कुमारदास, माघ तथा श्री हर्ष से अधिक सफल प्रयोग किये हैं। बाद के कवियों में जिस प्रकार घटना का आग्रह कम होता गया है उसी प्रकार प्रकृति का प्रयोग भी रूढ़िवादी हो गया है। प्रकृति का वर्णन कथानक से अधिक सामंजस्य नहीं बनाये रख सका है और न घटनाओं के वातावरण के रूप में उपस्थित हो सका है। इन स्वतंत्र वर्णनों में उद्दीपन का वातावरण अवश्य है जिसका सम्बंध कथानायक के क्रीड़ा-विलास की पार्श्वभूमि से

अन्य कवियों में

३५. वही; आ० ५; ४०: आ० ६; ३४, ३६।

स्थापित किया गया है, और इस अर्थ में वह वातावरण के अन्तर्गत आ सकता है। उद्दीपन-विभाव के प्रकरण के अन्तर्गत इस पर विचार किया जायगा। परन्तु भारवि ने घटना-स्थिति का वातावरण निमार्ण किया है। पिछली विवेचना में अर्जुन के मार्ग में शरद-वर्णन का उल्लेख किया गया है जिसमें कवि ने अनुरूप वातावरण प्रस्तुत किया है। इसके अतिरिक्त इन्द्रकील का वर्णन अर्जुन की साधना के अनुरूप है—

अधिरूह्य पुष्पभरनम्रशिखैः परितः परिष्कृततलां तरुभिः
मनसः प्रसत्तिमिव मूर्ध्नि गिरेः शुचिमाससाद स वनान्तभुवम् ॥ [३६]

[ऊपर चढ़ कर अर्जुन पर्वत शिखर के वन के सीमान्त पर पहुँचा, जिसका निचला भाग चारों ओर से फूलों के भार से झुके हुए वृक्षों से विभूषित अपनी पवित्रता (सौन्दर्य) से मन की शान्ति का अनुकरण करता था।]

चारित्रिक संकेत

§९—कभी कवि पृष्ठभूमि रूप वर्णना में अपने पात्र का चरित्र व्यंगित करता है, और कभी चरित्र के समानान्तर वर्णना करता है। यह वर्णना का रूप एक प्रकार से वातावरण के अन्तर्गत आता है। इस प्रयोग के सफल कलाकार कालिदास हैं। नन्दिनी को चराते समय मार्ग में प्रकृति दिलीप का स्वागत कर रही है—

स कीचकैर्मारुतपूर्णरन्ध्रैः कूजद्भिरापादितवंशकृत्यम्।
शुश्राव कुञ्जेषु यशः स्वमुच्चैरुद्गीयमानं वनदेवताभिः ॥

[राजा दिलीप सुन रहे थे छेदों में वायु भर जाने के कारण मधुर स्वर निकलने से जिनके साथ बाँस मधुर बाँसुरी का काम कर रहे थे ऐसे वन-देवता वन के कुंजों में ऊँचे स्वर से उसका यश गा रहे हैं।] इस प्रसंग में प्रकृति अपने उल्लास में राजा का स्वागत करती हुई उनके महान चरित्र को प्रकट करती है। रघुवंश के चौथे सर्ग में शरद् ऋतु के

---

३६. किरा० ; स० ६ : १७।

वर्णन के साथ रघु के प्रताप और ऐश्वर्य्य को व्यक्त किया गया है—'वर्षा बीत जाने पर मेघ हट जाने से मुक्त आकाश में सूर्य्य के प्रकाश के साथ ही शत्रु नष्ट हो जाने पर राजा रघु का प्रताप भी फैल गया। शरद् ऋतु ने कमल के छत्र और फूले हुए काँस के चँवर से रघु की होड़ की पर उनकी शोभा नहीं पा सकी।' पाँचवें सर्ग में वन्दीजन अज के सौन्दर्य्य और प्रताप के समानान्तर प्रातःकाल का वर्णन करते हैं—

ताम्रोदरेषु पतितं तरुपल्लवेषु
निर्धौतहारगुलिकाविशदं हिमाम्भः।
आभाति लब्धपरभागतयाधरोष्ठे
लीलास्मितं सदशनार्चिरिव त्वदीयम्॥[३७]

[हार के मुक्तामणियों के समान निर्मल ओस के कण वृक्षों के लाल-लाल पत्तों पर गिर कर, तुम्हारे हँसने के समय लाल-लाल ओठों पर पड़ी हुई दाँतों की चमक के समान सुन्दर लग रहे हैं।] कालिदास प्रकृति और पात्र में इस प्रकार के सामंजस्यपूर्ण सम्बंध के किसी अवसर को छोड़ते नहीं। रघुवंश के नवम सर्ग में वसन्त राजा दशरथ के ऐश्वर्य्य को प्रकट करता हुआ फैल जाता है—

नवगुणोपचितामिव भूपतेः सदुपकारफलां श्रियमर्थिनः।
अभिययुः सरसो मधुसंभृतां कमलिनीमलिनीरपतत्रिणः॥[३८]

[अपने सुन्दर गुणों से अर्जित और प्रजा का उपकार करनेवाली राजा की लक्ष्मी की याचना करने के लिए जैसे याचक एकत्र होते थे, वैसे ही वसन्त की शोभा से युक्त ताल को कमलिनी के आसपास भौंरे और हंस भी मँडराने लगे।] अन्य कवियों ने इस प्रकार के प्रयोग बहुत कम किये हैं। प्रवरसेन प्रकृति में एक स्थल पर चरित-नायक के गौरव को प्रतिध्वनित करते हैं—

---

३७. रघु० ; स० २ ; १२ : स० ४ ; १५ ; १७ : स० ५ ; ७०।
३८. वही ; स० ९ ; २७।

नन्तरं च मलयगुहामुखभृतोद्वृत्तस्फुटनिर्ह्रदप्रतिरवम् ।
पवनेनोदधिसलिलं प्रभाततूर्यमिवाहतं रघुपतेः ॥[३९]

[अनन्तर मलय पर्वत की कन्दराओं में प्रविष्ट होकर गर्जता हुआ और प्रतिध्वनित होता हुआ समुद्र की ओर लौटता हुआ समुद्र का जल रघुपति के लिये प्रातःकाल के मंगलवाद्य का कार्य कर रहा था।] श्रीहर्ष ने भी प्रकृति को राजा नल के प्रति आदर-सम्मान प्रदर्शित करते उपस्थित किया है—

फलानि पुष्पाणि च पल्लवे करे
वयोतिपातोद्गतवातवेपिते ।
स्थितैः समादाय महर्षिवद्धिका—
द्रुने तदातिथ्यमशिक्षि शाखिभिः ॥[४०]

[ऊपर उड़ते हुए पक्षियों के कारण उत्पन्न पवन के झोंके से हिलती हुई शाखाओं रूपी हाथों में पुष्प और फल लेकर वृक्षों ने वन के ऋषि-समूह से राजा के आतिथ्य करने की शिक्षा ली।] वास्तव में इस प्रकार कवि प्रकृति और पात्रों के सम्बंध को व्यंजित करता है। परन्तु जिस सीमा तक ऐसे प्रयोगों से चरित्र के ऐश्वर्य्य आदि पक्षों पर प्रभाव पड़ता है, इनको वातावरण के अन्तर्गत ही स्वीकार करना उचित है।

§१०—वातावरण के विस्तार में कथानक के भविष्योन्मुखी संकेत कभी छिपे रहते हैं। इस प्रकार कवि प्रकृति की योजना में भविष्य की व्यंजना अन्तर्निहित कर देता है। कथानक में प्रकृति का यह कलात्मक प्रयोग है। रघुवंश में वशिष्ठ के आश्रम की ओर जाते समय राजा दिलीप को मार्ग में प्रकृति के वातावरण में मनोरथ सफल होने के संकेत मिलते हैं। इसी प्रकार नन्दिनी को चराते समय प्रकृति अपने आचरण में दिलीप की भविष्य में होने-

भविष्योन्मुखी

---

३९. सेतु० ; स० ५ ; ११ ।
४०. नैष० ; स० १ ; ७७ ।

वाली सफलता को छिपाये हुए है—

शशाम वृष्ट्यापि विना दवाग्निरासीद्विशेषा फलपुष्पवृद्धिः ।
ऊनं न सत्त्वेष्वधिको बबाधे तस्मिन्वनं गोप्तरि गाहमाने ॥[४१]

[उस प्रजापालक राजा के वन में प्रवेश करने पर वर्षा के बिना ही वन की आग ठण्डी हो गई, वहाँ के वृक्ष फल फूलों से लद गये और बलशाली जीवों ने छोटे जीवों को सताना छोड़ दिया ।] अश्वघोष ने भी सिद्धार्थ के तपोवन प्रवेश के अवसर पर प्रकृति के उल्लास में ऐसी ही प्रेरणा सन्निहित कर दी है—

हृष्टाश्च केका मुमुचुर्मयूरा दृष्ट्वाम्बुदं नीलमिवोन्नमन्तः ।
शष्पाणि हित्वाभिमुखाश्च तस्थुर्मृगाश्चलाक्षा मृगचारिणश्च ॥[४२]

[प्रसन्न होकर उठते हुए मोर बोलने लगे जैसे नीले बादलों को देखा हो । तृण छोड़ कर चंचल आँखोंवाले मृग और मृगों के समान विचरण करनेवाले तपस्वी सामने खड़े हो गये ।] इस प्रकार मानों प्रकृति ने बुद्धदेव की सफलता का पहले ही स्वागत किया है । बुद्धघोष ने भी प्रकृति को सिद्धार्थ की दीक्षा के समय आनन्दित प्रस्तुत किया है—

अथावलोक्य लोकेशं दीक्षितं शक्रदिङ्मुखम् ।
आनन्दमन्दहसितैरिव पाण्डरतामयात् ॥[४३]

[लोकपति सिद्धार्थ को दीक्षित देख कर प्राची का मुख मानों हँसी और आनन्द के उल्लास से प्रकाशित हो गया है ।] प्रातः के वर्णन में कवि ने सिद्धि की भावना व्यंजित की है । सेतुबन्ध में प्रथम आश्वास के शरद् वर्णन में राम-विजय का संकेत वातावरण के साथ मिला हुआ है । और इसी प्रकार बारहवें आश्वास में प्रभातकाल का वर्णन है—

---

४१. रघु० : स० २ ; १४ ।
४२. बुद्ध० ; स० ७ ; ५ ।
४३. पद्य० ; स० ९ ; २२ ।

तावच्च दरदलितोत्पलप्रलुठितधूलिमलिनायमानकलहंसकुलः ।
जातो दरसम्मीलितहरितायमानकुमुदाकरः प्रत्यूषः ॥[४४]

[(ज्योंही त्रिजटा द्वारा आश्वासित सीता का विलाप शान्त हुआ) त्यों ही किंचित विकसित कमलों से उड़े हुए परिमल रूपी धूल से मलिन होते हुए हंसों से युक्त तथा किंचित मुँदे हुए कुमुदों से हरिताभ सरोवरों वाला प्रभात काल प्रकट हुआ।] प्रातःकाल के प्रकाश के साथ मानों राम की विजय हमारे समाने प्रत्यक्ष हो उठती है। अन्य काव्यों में जिस प्रकार कथा-वस्तु का वर्णना से सम्बंध कम हो गया है, उसी प्रकार ऐसे प्रयोगों के लिये स्थान नहीं रह जाता।

§ ११—पिछले प्रकरण में गीति-काव्य के अन्तर्गत प्रकृति और मानवीय जीवन के आत्मीय साहचर्य्य का उल्लेख किया है। दूत-काव्य में यह साहचर्य्य की भावना व्यक्तिगत थी; परन्तु महाकाव्यों में व्यापक दृष्टि से इस भावना पर विचार किया जा सकता है। गीतियों की व्यक्तिगत भाव-धारा में प्रकृति जिस निकटता से उपस्थित होती है, उसकी कल्पना महाकाव्यों में की भी नहीं जा सकती। महाकाव्यों की घटनाओं के विस्तार में अथवा चरित्रों के प्रसार में प्रकृति पात्रों के जीवन के निकट आ जाती है और इस निकटता में आत्मीयता की भावना भी कभी कभी सम्मिलित हो जाती है।

आत्मीय साहचर्य्य

क—महाकाव्यों की घटनाओं की योजना में अथवा उनके चरित्रों के निर्माण के समानान्तर कभी प्रकृति अपने सौन्दर्य्य-विस्तार में फैल जाती है। उस स्थिति में मानवीय जीवन और प्रकृति एक दूसरे के इतने समीप रहते हैं कि उनका सम्बंध स्वाभाविक जान पड़ता है। प्रकृति और जीवन का यह साहचर्य्य किसी सम्बंध की व्याख्या न करके भी आत्मीय बना रहता है। सौन्दरनन्द के

प्रकृति और जीवन

---

४४. सेतु० ; आ० १२ ; १ ।

प्रथम सर्ग में अश्वघोष तपोवन में—'विचरण करते हुए, तपस्वियों से विनय की शिक्षा पाये हुए मृगों',[४५] का उल्लेख इसी प्रकार करते हैं। कालिदास ने वशिष्ठ के आश्रम में प्रकृति को इसी जीवन के धरातल पर उपस्थित किया है—

आकीर्णमृषिपत्नीनामुटजद्वाररोधिभिः
अपत्यैरिव नीवारभागधेयोचितैर्मृगैः।
सेकान्ते मुनिकन्याभिस्तत्क्षणोज्झितवृक्षकम्।
विश्वासाय विहंगानामालवालाम्बुपायिनाम्॥[४६]

[ऋषि-पत्नियों के बच्चों के समान तिन्नी के दानों को खाने का अभ्यास हो गया है जिनको ऐसे बहुत से मृग वहाँ आश्रम में इधर-उधर पर्ण-कुटियों के द्वार रोके खड़े थे। सींचने के बाद ऋषि-कन्याएँ वहाँ से हट गई थीं जिससे आश्रम के पक्षी उन पौधों के थावलों का जल विश्वस्त होकर पी सकें।] इस प्रकृति के आश्रम-जीवन में आत्मीयता का भाव स्वतः आ गया है। कभी कवि प्रकृति को पात्र के साथ इस प्रकार चित्रित करता है कि वह पूरा चित्र एक रस होकर हमारे सामने आता है। दिलीप को मार्ग में हरिणियाँ देख रही हैं—'वे उनके हाथों में धनुष देखकर भी डरी नहीं, क्योंकि वे उन्हें देखकर समझ गईं कि ये अत्यत कोमल हृदयवाले हैं। वे राजा को एकटक देखती रहीं, मानों अपने नेत्रों के बड़े होने का सच्चा फल उन्हें मिला हो।' यही नहीं अचर प्रकृति की स्थिति भी जीवन के अनुरूप आत्मीयता का वातावरण प्रस्तुत करती है—

पृक्तस्तुषारैर्गिरिनिर्झराणामनोकहाकम्पितपुष्पगन्धी।
तमातपक्लान्तमनातपत्रमाचारपूतं पवनः सिषेवे॥[४७]

---

४५. सौ० ; स० १ ; १३।
४६. रघु० ; स० १ ; ५० , ५१।
४७. वही ; स० २ ; ११ ; १३।

[पर्वतीय झरनों की शीतल फुहारों से लदा हुआ, मन्द-मन्द कम्पित वृक्षों के फूलों की गन्ध में बसा हुआ पवन उन सदाचारी राजा को ठंडक देता हुआ बह रहा था, जिन्हें छत्र न होने के कारण धूप कष्ट दे रही थी।] कभी प्रकृति की विशेष स्थिति को उपस्थित कर कवि जीवन-प्रकृति की अनुरूपता प्रकट कर देता है—

आविशद्भिरुटजाङ्गणं मृगैर्मूलसेकसरसैश्च वृक्षकैः।
आश्रमाः प्रविशदग्र्यधेनवो बिभ्रति श्रियमुदीरिताग्नयः ॥[४८]

[पर्णकुटियों के आँगन में आते हुए हरिणों से, सींचे हुए मूलवाले हरे-भरे पौधों से, वापस आती हुई सुन्दर दुधारू गौओं से और हवन की जलती हुई आग से ये आश्रम कैसे सुहावने लगते हैं।]

अन्य महाकाव्यों में प्रकृति का ऐसा रूप कम मिलता है। यह स्थिति मुक्त भावना के अनुरूप है, और महाकाव्यों की परम्परा में स्वच्छन्द भावना के लिए स्थान नहीं रहा है। जानकीहरण में आश्रम में राम लक्ष्मण को 'चीतल के चिह्नों को गिनते हुए ऋषिकुमारों को दिखाते हैं।' यह वर्णन शाकुन्तल के अनुकरण पर है। और एक स्थल पर राजा दशरथ को रात्रि में प्रकृति का सामीप्य प्राप्त है—

राजा रजन्यामधिशय्य तस्मिन् शिलातलं शीतलमिन्दुपादैः।
खेदं विनिन्ये मृदुभिः समीरैरासारसारैर्गिरिनिर्झराणाम् ॥[४९]

[चन्द्र-किरणों से शीतल उस शिलातल पर रात्रि में सोकर राजा ने पर्वत के झरनों के जलकणों के स्पर्श से मृदुल समीर से अपनी थकान दूर की।] इसमें प्रकृति और जीवन की समीपता की वह स्थिति नहीं है जो आत्मीय सम्बंध को व्यक्त कर सके। सेतुबन्ध में यद्यपि प्रकृति का व्यापक विस्तार है और जैसा कहा गया प्राकृतिक घटनाओं की विस्तृत योजनाएँ भी हैं, पर उसको जीवन की यह समीपता प्राप्त नहीं हो सकी

---

४८. कुमा० ; स० ८ ; ३८।
४९. जा० ; स० ५ ; २३ ; स० १ ; ६७।

है। ऐसा जान पड़ता है कि प्रवरसेन के सम्मुख प्रकृति अपने रंग-रूपों में इतनी गहरी होकर भी अपनी सजीवता में मानवीय जीवन के धरातल पर उससे सम्बंध नहीं स्थापित कर सकी है। जहाँ इस महाकाव्य प्रकृति में मानव-जीवन के समीप आयी है, उस स्थल पर वह प्राकृतिक घटना का अथवा वातावरण का निर्माण करती है। इन चित्रणों में आत्मीय साहचर्य की भावना का अभाव है। छठें आश्वास में समुद्र मानव के रूप में राम के समीप आता है—

शरघातरुधिरकुसुमस्त्रिपथगावल्लीपिनद्धमणिरत्नफलः।
रामचरणयोरुदधिर्दृढपवनाविद्धपादप इव निपतितः॥[५०]

[बाणों के आघात से स्रवित रक्त-बिन्दु रूपी फूलों, त्रिपथगा रूपी लता द्वारा धारण किये हुए मणि और रत्न रूपी फलों से युक्त, प्रबल पवन से प्रेरित वृक्ष की भाँति समुद्र राम के चरणों पर गिर पड़ा।] पर इस समस्त प्रसंग में प्राकृतिक घटना की नियोजना मात्र है। किरातार्जुनीय में एक स्थल पर अर्जुन 'गोपों को अपने गृहों में आश्रित पशुओं के साथ सस्नेह वनों में सुशोभित' देखते हैं। छठे सर्ग में प्रकृति अपने स्वागत में अर्जुन की आत्मीयता के निकट पहुँच जाती है—

तमनिन्द्यबन्दिन इवेन्द्रसुतं विहितालिनिक्वणजयध्वनयः।
पवनेरिताकुलविजिह्मशिखा जगतीरुहोऽवचकरुः कुसुमैः॥[५१]

[आकुलित भौरों की गुंजार रूपी जयध्वनि करनेवाले तथा पवन से प्रेरित चंचल शाखाओं वाले वृक्षों ने स्तुतिपाठकों के समान अर्जुन पर पुष्प-वर्षा की।] इस चित्र में अर्जुन की भविष्य में होनेवाली सफलता का संकेत भी निहित है।

§ १२—मानव जीवन के निकट आकर कभी-कभी प्रकृति आत्मीय

---

५०. सेतु० ; आ० ६ ; ७।

५१. कि० ; स० ४ ; १३ : स० ६ ; २।

सहानुभूति के स्तर तक आ जाती है। इस सीमा पर सम्बंध अधिक कोमल व्यंजनाओं में व्यक्त होता है। पिछले वर्ग में जीवन और प्रकृति का सामीप्य अपेक्षित था, परन्तु इस रूप में आत्मीयता का सम्बंध भी वांछित है। इस प्रकार के प्रयोग में कालिदास ही सर्वश्रेष्ठ हैं। उनके मेघदूत पर हम विचार कर चुके हैं और आगे शाकुन्तल में हम आत्मीय सहानुभूति का कोमल रूप देखेंगे। रघुवंश के आठवें सर्ग में विलाप करते हुए राजा अज अपनी प्रिया के 'आम और प्रियंगुलता' का इसी भावना से प्रेरित होकर उल्लेख करते हैं। और तेरहवें सर्ग में राम 'पंचवटी में ऊपर सिर उठाकर विमान की ओर देखते हुए सीता द्वारा पालित मृगों को सीता को दिखाते हैं।' यह राम के हृदय का स्नेह उनके प्रति व्यंजित होता है। राजा दशरथ मृगया खेलते समय हरिण और हरिणी के प्रेम से करुणार्द्र हो जाते हैं—

आत्मीय सहानुभूति

लक्ष्यीकृतस्य हरिणस्य हरिप्रभावः
प्रेक्ष्य स्थितां सहचरीं व्यवधाय देहम्।
आकर्णकृष्टमपि कामितया स धन्वी
बाणं कृपामृदुमनाः प्रतिसंजहार ॥[५२]

[विष्णु के समान शक्तिमान् राजा दशरथ ने लक्ष्य किये हुए हरिण के बीच में व्यवधान के रूप में हरिणी को आया देख कर, स्वयं प्रेमी होने के कारण, कृपा से कोमल हृदय होकर कान तक खींचे हुए बाण को भी नहीं छोड़ा।] कुमारसम्भव में पार्वती और हरिणों के स्नेह का सहज वर्णन है—

अरण्यबीजाञ्जलिदानलालितास्तथा च तस्यां हरिणा विशश्वसुः।
यथा तदीयैर्नयनैः कुतूहलात्पुरः सखीनाममिमीत लोचने ॥[५३]

---

५२. रघु० ; स० ८ ; ६१ : स० १३ ; ३४ : स० ९ ; ५७।
५३. कुमा० ; स० ५ ; १५।

[अपने हाथ से तिन्नी के दाने खिलाने से जो विश्वस्त हो गये थे ऐसे हरिणों को मन बहलाने के लिए अपनी सखियों के आगे जाकर उनके नेत्रों से अपने नेत्र मापा करती थीं ।] इस कोमल आत्मीयता से सहज सहानुभूति व्यक्त होती है । जानकीहरण के कवि ने रघुवंश की मृगया के अनुकरण पर राजा दशरथ को दयार्द्रता का वर्णन किया है—

अन्योन्यवक्त्रार्पितपल्लवाग्रग्रासं नृवीरस्य कुरङ्गयुग्मम् ।
प्रियानुनीतौ भृशमिष्टचाटुचेष्टस्य घाताभिरतिं निरासे ॥[५४]

[एक दूसरे के मुख में घास के तिनकों को रखते हुए हरिणों के जोड़े ने, प्रिया को प्रसन्न करनेवाले तथा चाटुकारी की कलाओं में चतुर राजा के मन से मृगया का आकर्षण दूर कर दिया ।] सेतुबन्ध में मानव और प्रकृति की सहानुभूति का अभाव है, क्योंकि जैसा कहा गया है इसमें आत्मीयता का वातावरण नहीं है । प्रकृति में स्वयं आत्मीय सहानुभूति एक-दो स्थल में मिल सकती है, जो मानवीय जीवन का आरोप कहा जायगा । यूथ-पति के विरह में हथिनियाँ व्याकुल हैं—

लोचनपक्ष्मान्तरितान्कणान्रुदत्यो
धारयन्ति बाष्पमयान्करेणुपंक्तयः ।
मन्यन्ते चास्वादं विषं नवतृणस्य
विरहे यूथपतेर्विषण्णवदनस्य ॥[५५]

[यूथपति के विरह में खिन्न मुख और रोती हुई हथिनियों की बरौनियों में आँसू छलक आये हैं और वे नये तृणों के आस्वादन को भी विष के समान मान रही हैं ।]

क—आत्मीय सहानुभूति के वातावरण में ही उपालम्भ की भावना उत्पन्न होती है । लोक-गीतों में प्रकृति के प्रति उपालम्भ की भावना व्यापक रूप से पाई जाती है । परन्तु संस्कृत-काव्य में उपालम्भ-काव्य की परम्परा नहीं मिलती है । हिन्दी

उपालम्भ

५४. जा० ; स० १ ; ५७ ।
५५. सेतु० ; आ० ६ ; ६८ ।

में इसकी परम्परा सम्भवतः लोक-साहित्य से आई जान पड़ती है। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि अन्य साहित्यों पर इसका प्रभाव नहीं है। नैषधीय में प्रकृति के प्रति उपालम्भ की भावना पाई जाती है, परन्तु इसमें स्वाभाविकता के स्थान पर उक्ति का आग्रह और उद्दीपन की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। चौथे सर्ग में विरह की स्थिति में चन्द्रमा के प्रति ऐसी ही उक्तियाँ हैं—

निशि शशिन्भज कैतवभानुतामसति भास्वति तापय पाप माम।
अहमहन्यवलोकयितास्मि ते पुनरहर्पतिनिह्नुतदर्पताम्॥[५६]

[हे पापी चन्द्र, रात में तू सूर्य के भेष में सूर्य की अनुपस्थिति में मुझे जला ले; परन्तु जब दिन होगा, मैं देखूँगी कि तेरा दर्प सूर्य द्वारा कैसे अपहरण किया जाता है।] इन उक्तियों में विरह की उद्दीपक भाव-स्थिति अधिक सामने आती है।

§ १३—कवि प्रकृति पर मानव-जीवन का आरोप करता है, और यह आरोप प्रकृति तथा मानव की आत्मीय सहानुभूति का अभ्यन्तरित रूप है। मनुष्य प्रकृति को अपने जीवन के निकट पाकर उसमें अपने क्रिया-कलाप का आरोप कर लेता है। उस समय प्रकृति मानव के समान सप्राण और स्पन्दित हो जाती है। युग-युग के सम्बंध से मानव ने प्रकृति को अपनी आत्मीयता का यह दान दिया है। केवल आलंकारिक प्रयोग में जो आरोप किया जाता है, उसके मूल में भी यह भावना है। परन्तु उसका उल्लेख शैली के अन्तर्गत किया गया है। यहाँ जब यह आरोप प्रमुख हो जाता है उसका विचार करना है। रघुवंश के पाँचवें सर्ग में सूतों के पुत्र प्रातःकाल के वर्णन में सूर्य और अरुण का उल्लेख इसी प्रकार करते हैं—'सूर्यके उदय होने के पहले ही उनका चतुर सारथी अरुण संसार का अँधेरा दूर कर देता है।' इसी प्रकार ग्यारहवें सर्ग में मुनि के आश्रम में प्रकृति

जीवन का आरोप

---

५६. नैष० ; स० ४ ; ५४।

मानव के समान व्यवहार करती पाई जाती है—

आससाद मुनिरात्मनस्ततः शिष्यवर्गपरिकल्पितार्हणाम् ।
बद्धपल्लवपुटाञ्जलिद्रुमं दर्शनोन्मुखमृगं तपोवनम् ॥[५७]

[अनन्तर मुनि अपने आश्रम में पहुँचे जहाँ शिष्यों ने पूजा की सब सामग्री एकत्र की थी । वहाँ वृक्ष भी अपने पत्तों की अंजलियाँ बाँधे खड़े थे और मृग बड़ी उत्सुकता से इन लोगों को देख रहे थे ।] कुमार-सम्भव में तो प्रकृति के अनेक पात्रों की कल्पना है और वे मानव-जीवन में अवतरित हुए हैं । प्राकृतिक घटनाओं की नियोजना के अन्तर्गत वसन्त, हिमालय, स्वयं शंकर और पार्वती के व्यक्तित्व का उल्लेख किया गया है । विलाप करती हुई रति कामदेव के साथ प्रकृति का आत्मीय सम्बंध व्यक्त करती है—'हे अनंग, तुम्हारे प्यारे मित्र चन्द्रमा को जब पता चलेगा कि उसके प्रिय बन्धु का शरीर केवल कहानी भर रह गया है, तब वह अकारथ उगा हुआ शुक्ल पक्ष में भी बड़ी कठिनाई से अपनी दुर्बलता छोड़ पावेगा । सुन्दर हरे और अरुण रंग में बँधा हुआ और कोयल के मीठे स्वर से गूँजता हुआ आम का नवीन बौर, बताओ अब किसका बाण बना करेगा ।' इस प्रकार के संयोगों के उल्लेख से प्रकृति में जीवन का स्पन्दन अभिगत होता है, मानों मानव के समान प्रकृति भी वियोग का अनुभव कर रही है । प्रकृति रति के साथ दुःखी है—

अलिपंक्तिरनेकशस्त्वया गुणकृत्ये धनुषो नियोजिता ।
विरुतैः करुणस्वनैरियं गुरुशोकामनुरोदितीव माम् ॥

[जिन भ्रमर-पंक्तियों को तुमने अनेक बार अपने धनुष की डोरी बनाया था उनकी दुःखभरी गुंजार ऐसी जान पड़ती है मानो वे भी मुझ दुःख में बिलखती हुई के साथ रो रही हैं ।] आठवें सर्ग में गन्धमादन की वनदेवी शंकर-पार्वती के सामने प्रकट भी होती है—

---

५७. रघु० ; स० ५ ; ७१ ; स० ११ ; २३ ।

लोहितार्कमणिभाजनार्पितं कल्पवृक्षमधु बिभ्रती स्वयम्।
त्वामियं स्थितिमतीमुपागता गन्धमादनवनाधिदेवता ॥[५८]

देखो, तुम्हें यहाँ बैठी हुई देखकर लाल सूर्य्यकान्तमणि के प्याले में कल्पवृक्ष की मदिरा लिए हुए गन्धमादन की वनदेवी अपने आप तुम्हारा स्वागत करने आ पहुँची हैं।] पद्यचुडामणि में सन्ध्या के वर्णन में इसी प्रकार का आरोप किया गया है—'सूर्य्य पति के नष्ट होने पर सन्ध्या-धात्री ने कमलनी के कमल रूपी मुख से भ्रमरों की पंक्ति रूपी मंगल-सूत्र उतार लिया।' और भी—

विश्लेषदुःखादिव तिग्मभानोः संकोचभाजां नलिनीवधूनाम्।
शोकाग्निधूमालिरिवोज्जजृम्भे भृङ्गावली पङ्करुहाननेभ्यः।[५९]

सूर्य्य के वियोग के दुःख से संकोच को प्राप्त नलिनी वधुओं के कमल-मुखों पर शोकाग्नि की धूम-रेखा के समान भ्रमरों की पंक्ति उठ रही है।] बुद्धघोष की कल्पना और शैली दोनों कालिदास से प्रभावित हैं।

क—क्रमशः बाद के कवियों में आलंकारिक आरोप अधिक प्रधान होता गया है, शैली के अन्तर्गत इसका उल्लेख किया गया है। स्वाभाविक रूप से प्रकृति में मानव जीवन की समानान्तरता के स्थान पर काल्पनिक आरोप इन कवियों में अधिक पाये जाते हैं। पहले चित्रों में स्वाभाविक आत्मीयता का भाव अधिक है। यद्यपि सेतुबन्ध में अलंकृत आरोप की प्रवृत्ति अधिक है, पर एक दो स्थलों पर अप्रत्यक्ष आरोप भी मिलते हैं। इनमें प्रकृति के क्रिया-कलापों के माध्यम से भान होने लगता है मानों मानवीय जीवन का चित्र हो। सन्ध्या समय—'आतप के क्षीण हो जाने के कारण कान्तिहीन, मकरन्द से मस्त भ्रमरों के चंचल

अप्रत्यक्ष और अलंकृत

---

५८. कुमा० ; स० ४ ; १३, १४, १५ : स० ८ ; ७५।
५९. पद्य० ; स० ८ ; ९, १०।

पंखों से पुँछ गया है मधु जिनका ऐसे कमलों के दल मुँद रहे हैं।' इस वर्णन में बन्द होते कमलों के साथ अलसित नायिका का चित्र स्वभावतः सामने आ जाता है। इसी प्रकार इन हरिण और हरिणियों की दशा का वर्णन कवि करता है—

भिन्नमीलितमपि भिद्यते पुनरप्येकैकक्रमावलोकनसुखितम्।
शैलास्तमननतोन्नततरङ्गह्रियमाणकातरं हरिणकुलम् ॥[६०]

[पर्वतों के डूबने से उठती हुई ऊँची-नीची तरंगों से प्लावित होने से व्याकुल, फिर भी एक दूसरे के अवलोकन से सुखी हरिण-समूह (जल के वेग से) एक दूसरे से अलग होकर फिर मिलते हैं और मिलकर फिर अलग हो जाते हैं।] इस चित्र की स्वाभाविक उद्भावना के साथ हरिणों में मानवीय आत्मीय स्नेह की कल्पना सन्निहित है। जैसा कहा गया है अन्य महाकाव्यों में यह आरोप प्रधानतः आलंकारिक प्रयोगों में सीमित हो गया है। किरातार्जुनीय में भ्रमरों का चित्र ऊपर के हरिणों के वर्णन के समान है—

अमी समुद्धूतसरोजरेणुना हृता हृतासारकणेन वायुना।
उपागमे दुश्चरिता इवापदां गतिं न निश्चेतुमलं शिलीमुखाः ॥[६१]

[आपद में पड़े हुए दुश्चरित व्यक्ति के समान, कमल के पराग को उड़ाने वाले तथा जलकणवाही पवन से आकृष्ट, ये भौंरे अपनी गति निश्चित करने में असमर्थ हैं।] इसमें भौंरे को 'दुश्चरित व्यक्ति' कह कर स्थिति को स्पष्ट किया गया है। माघ उत्प्रेक्षा द्वारा प्रकृति पर जीवन प्रतिघटित करते हैं—

अपराह्णशीतलतरेण शनैरनिलेन लोलितलताङ्गुलये।
निलयाय शाखिन इवाह्वयते ददुराकुलाः खगकुलानि गिरः ॥[६२]

---

६०. सेतु० ; आ० १० ; ११ ; आ० ७ ; २४।
६१. किरा० ; स० ४ ; ३५।
६२. शिशु० ; स० ९ ; ४।

[दिवस के अन्तिम प्रहर, प्रवाहित शीतल पवन द्वारा धीरे-धीरे लता रूपी अंगुलियों को हिलाकर मानों वृक्ष पक्षियों को घर लौटने के लिए संकेत कर रहे हैं; और ये पक्षी भी मधुर-रव करते हुए मानों प्रत्युत्तर में कहते हैं—'अभी आये'।] इस वर्णना में अलंकृत होने पर भी सहज वातावरण रक्षित है, पर ऐसे स्थल इन कवियों में अत्र-तत्र ही हैं।

§ १४—अभी तक प्रकृति और जीवन के सम्बंध की व्याख्या बाह्य दृष्टि से की गई है; अर्थात् प्रकृति मनुष्य के जीवन से किन रूपों में सम्बंधित है इस पर विचार किया गया है। परन्तु प्रकृति मानव के भाव-जगत् से भी इसी प्रकार सम्बंधित है, वह उसके भावों को प्रभावित करती है और उसके भाव जगत् से स्वयं भी प्रभावित होती है। प्रकृति का निर्भर सौन्दर्य्य मनुष्य के मन के लिए स्वतः आकर्षण का विषय है और उससे प्रभावित होकर उस सौंदर्य्य-वर्णन में कवि या पात्र के मन का उल्लास भी सम्मिलित हो जाता है। हम पहले ही कह चुके हैं कि मुक्त प्रगीतियों के अभाव में ऐसे प्रकृति-रूपों का संस्कृत में प्रायः अभाव है। जैसे प्रकृति मानव के समान सप्राण है वैसे ही उसके समान भावों से आकुल भी। और प्रकृति पर मानवीय भावों का आरोप है, अलंकृत शैली में प्रयुक्त भावारोप पर विचार हम कर चुके हैं। प्रभावित करती हुई प्रकृति, मानव जीवन के अन्य भावों की पृष्ठभूमि में, उद्दीपन की सीमा पर पहुँच जाती है।

भाव-तादात्म्य का वातावरण

§ क—हम कह चुके हैं कि मनस्-परक प्रगीतियों के अभाव में संस्कृत-काव्य में प्रकृति के निर्भर सौन्दर्य्य की अवतारणा बहुत कम हो सकी है। अपेक्षाकृत वाल्मीकि रामायण में ऐसे स्थल अधिक हैं। यह प्रकृति के सौन्दर्य्य को वह स्थिति है जिसके सामने मनुष्य मौन होकर आनन्द की अनुभूति प्राप्त करता है। इसमें कवि अथवा पात्र की मानसिक स्थिति प्रत्यक्ष होकर भी

निर्भर सौन्दर्य्य

मौन रहती है। प्रकृति का ऐसा रूप कालिदास ने शंकर द्वारा वर्णित सन्ध्या के वर्णन में उपस्थित किया है। मानों तन्मय होकर शंकर और पार्वती प्रकृति के सौन्दर्य्य का उपभोग कर रहे हैं—

सीकरव्यतिकरं मरीचिभिर्दूरयत्यवनते विवस्वति।

इन्द्रचापपरिवेषशून्यतां निर्झरास्तव पितुर्व्रजन्त्यमी॥

[हे प्रिये, देखो ! ज्यों-ज्यों दिन ढलता जाता है, सूर्य्य की किरणें हिमालय के झरनों की फुहारों से हटती जाती हैं और उनके हटते ही उन फुहारों में बने हुए इन्द्र-धनुष भी छिपते जा रहे हैं।] इसमें पात्र की मनःस्थिति प्रकृति के सीधे सम्पर्क में है और वह सौन्दर्य्य से अभिभूत है। ऐसा ही वर्णन अन्धकार का है तथा चन्द्रोदय का भी है। 'सामने फैलते हुए अंधकार को देखकर शंकर कहते हैं—'हे दीर्घ नेत्रोंवाली, सूर्य्यास्त हो जाने से रात्रि और दिवस की सन्धि करनेवाली सन्ध्या का सब प्रकाश सुमेरु पर्वत के बीच में आ जाने से जाता रहा और अब यह घोर अंधकार चारों ओर मनमाने ढंग से फैल रहा है।' चन्द्रमा के उदित होने के समय का सौन्दर्य्य-चित्रण भी ऐसा ही है—

नूनमुन्नमति यज्वनां पतिः शार्वरस्य तमसो निषिद्धये।

पुण्डरीकमुखि ! पूर्वदिङ्मुखं कैतकैरिव रजोभिरावृतम्॥[६३]

[हे कमलनेत्रि, केतकी के फूल के बिखरे हुए पराग के समान पूर्व दिशा के अगले भाग में फैलते हुए उजाले से यह निश्चित जान पड़ता है कि रात का अँधेरा दूर करने के लिए चन्द्रमा निकलता आ रहा है।] इन सब सौन्दर्य्य-चित्रों में एक ऐसी निर्भरता है जिसके अन्तराल में शंकर-पार्वती की आनन्दमयी भाव-स्थिति सहज ही छिपी हुई है।

अन्य महाकाव्यों में ऐसे अवसर आए हैं, जब किसी पात्र के सम्मुख प्रकृति का मुक्त सौन्दर्य्य आ गया है। उनका वर्णन कवि करता है अथवा किसी पात्र के मुख से कराया जाता है। पर अलंकृत प्रयोग

---

६३. कुमा० ; स० ८ ; ३१, ५५, ५८।

ऊहात्मक कल्पनाओं के कारण इन कवियों में न तो प्रकृति का सौन्दर्य्य एकान्त रूप से सम्मुख आ पाया है और न पात्र की आनन्दविभोर मनःस्थिति का आभास ही मिल सका है। जानकीहरण में सन्ध्या और रात्रि का वर्णन दो प्रसंगों में किया गया है। एक में दशरथ के सम्मुख और दूसरे में राम-सीता के सम्मुख प्रकृति का यह रूप उपस्थित हुआ है। दोनों स्थलों में सौन्दर्य्य की निर्भरता कम और कला तथा कल्पना का आग्रह अधिक है। यह अन्य कवियों के विषय में भी कहा जा सकता। 'अस्त होता हुआ सूर्य्य (जगत् का सर्जन करनेवाला) दिवस की सन्ध्या-वेला में विचरण करनेवाली अपनी विद्रुम के समान लाल आभा तथा स्वर्ण-किरणों (करों) वाला सूर्य्य अपने कमल-हस्त की अँगुलियों को कमलों के साथ ही समेट रहा है।' इस चित्र में सौन्दर्य्य का आधार कलात्मक हो गया है। राम सीता से रात्रि का वर्णन इसी प्रकार करते हैं। चन्द्रोदय से 'यद्यपि अन्धकार उसकी किरणों से नष्ट हो गया है, परन्तु पुष्पित कुमुद की गन्ध से एकत्र कोकिल और भ्रमरों के रूप में मानों शेष रह गया है।' तथा—

पत्रजालशतरन्ध्रविच्युतः सामिसिक्त इव भूरुहस्तले।
स्थण्डिले निरवशेषमिन्दुना भाति मुक्त इव रश्मिसंचयः॥[६४]

[चन्द्रमा द्वारा डाले हुए किरण-समूह ने पत्तों के जाल के असंख्य छिद्रों से वृक्षों के निम्न भाग का अधूरा छिड़काव किया है, पर पवित्र वेदियों को भली-भाँति डुबो दिया है।] कलात्मकता के साथ भी इन प्रकृति चित्रों में जो सौन्दर्य्य-कल्पना है वह पात्र की मानसिक भाव-स्थिति से सम्बंधित अवश्य है। किरातार्जुनीय में यक्ष द्वारा वर्णित शरद तथा अर्जुन के सामने फैले हिमालय के वर्णन में कुछ चित्र मिल जाते हैं, जिनमें सौन्दर्य्य का यह रूप रक्षित है, परन्तु वर्णना की व्यापक प्रवृत्ति कलात्मकता और वैचित्र्य की ओर ही है। अर्जुन के सम्मुख हिमालय

---

६४. जान० ; स० ३ ; ५ : स० ८; ८०, ८१।

एकाएक प्रत्यक्ष हो जाता है—

इति कथयति तत्र नातिदूरादथ ददृशे पिहितोष्णरश्मिबिम्बः ।
विगलितजलभारशुक्लभासां निचय इवाम्बुमुचां नगाधिराजः ॥[६५]

[इस प्रकार जब यक्ष शरद का वर्णन कर रहा था, अर्जुन ने निकट ही सूर्य्य के मण्डल को तिरोहित करनेवाले हिमालय को जल भार से हलके होने से श्वेत चमकवाले बादलों के समूह के समान देखा ।] इस सौन्दर्य्य को देखकर पात्र के मन में उत्सुकता का जो आनन्द उत्पन्न हुआ है वह भी चित्र में व्यंजित है । शिशुपालवध में दारुक द्वारा रैवतक का वर्णन ऐसी ही परिस्थिति का है, परन्तु उसमें ऊहात्मक कल्पनाएँ और भी वैचित्र्य मूलक हैं, इस कारण सौन्दर्य्य का यह रूप व्यक्त नहीं हो सका है । कुछ स्थल आकर्षक अवश्य हैं—

उत्क्षिप्तमुच्छ्रितसितांशुकरावलम्बै-
रुत्तम्भितोडुभिरतीवतरां शिरोभिः ।
श्रद्धेयनिर्झरजलव्यपदेशमस्य
विष्वक्तटेषु पतति स्फुटमन्तरीक्षम् ॥[६६]

[यह रैवतक पर्वत चन्द्र की उठी हुई किरणों रूपी हाथों से और नक्षत्र-मण्डल रूपी सिरों से आकाश को उठाये हुए है । किन्तु आकाश झरनों के जल के बहाने इसके चारों ओर की निम्न-भूमि पर स्पष्ट ही उतरा आ रहा है ।] परन्तु इसके साथ पात्र की मनःस्थिति का तादात्म्य नहीं हो सका है । नैषधीय में सन्ध्या तथा रात्रि का वर्णन नल-दमयन्ती के सामने इसी परिस्थिति में किया गया है, पर ऊहात्मक वैचित्र्य की प्रवृत्ति सौन्दर्य्य-बोध की बाधक है । नन्दी प्रातः सौन्दर्य्य की ओर ध्यान आकर्षित करता है—

नभसि महसां ध्वान्तध्वाङ्क्षप्रमापणपत्त्रिणा-
मिह विहरणैः श्यैनंपातां रवेरवधारयन् ।

---

६५. किरा० ; स० ४ ; ३७ ।

६६. शिशु० ; स० ४ ; २५ ।

शशविशसनत्रासादाशामयाच्चरमां शशी
तदधिगमनात्तारापारापतैरुदडीयत ॥[६७]

[आकाश में भ्रमित बाज रूपी किरणों से कौओं रूपी अन्धकार को नष्ट कर सूर्य्य ऐसा जान पड़ा, मानों अपने भागते हुए शत्रु को पश्चिम दिशा में पछाड़ कर उसके सुमेरु के चारों ओर के परिभ्रमणों को सफलता मिली हो ।] इस प्रातःकालीन सौन्दर्य्य-चित्र में मानवीकरण का आरोप इतना प्रधान हो गया है कि दृश्य का भावात्मक प्रभाव नष्ट हो गया है । वह वर्णनात्मक सौन्दर्य्य मात्र रह गया है ।

§१३—प्रकृति के सौन्दर्य्य के साथ अप्रत्यक्ष आनन्द की भावस्थिति का उल्लेख पिछले अनुच्छेद में किया गया है । परन्तु कभी यह स्थिति उल्लास के रूप में वर्णन के साथ आती है । यह रूप प्रगीतियों में प्रमुखतः मिलता है । महाकाव्यों की वर्णना में इसके लिए विशेष अवसर नहीं है । कभी पात्र की मनःस्थिति का योग वर्णना-सौन्दर्य्य के साथ हो गया है । अधिकतर प्रकृति का प्रभाव इन महाकाव्यों में उद्दीपन के रूप में वर्णित है । पिछले अनुच्छेद में जिस कुमारसम्भव के प्रसंग का उल्लेख किया गया उसमें कभी शंकर-पार्वती के मन का उल्लास प्रत्यक्ष भी होता है । शंकर पार्वती से कहते हैं—'देखो, ये बन्द होते कमल इस समय पलभर के लिए अपना मुख किंचित इसलिए खुला रखते हैं, जिससे जो भौंरे बाहर रह गये हों उन्हें भी वे प्रेम से भीतर बसा लें ।' यहाँ पात्र के मन की प्रेम की भावना ही उल्लसित होकर व्यक्त हुई है । और आगे शंकर पार्वती को सान्ध्य-कालीन बादलों को दिखा कर जैसे मुग्ध हो उठते हों—

भावोल्लास

रक्तपीतकपिशाः पयोमुचां कोटयः कुटिलकेशि ! भान्त्यमूः ।
द्रक्ष्यसि त्वमिति सन्ध्ययानया वर्तिकाभिरिव साधुमण्डिताः ॥[६८]

---

६७. नैष० ; स० १९ ; १२ ।

६८. कुमा० ; स० ८ ; ३९ ; ४५ ।

[हे घुँघराले बालोंवाली, सामने बिखरे हुए ये लाल-पीले और भूरे बादलों के टुकड़े ऐसे लग रहे हैं मानो सन्ध्या ने यह जानकर ही रंग दिया है कि तुम इन्हें देखोगी।] परन्तु इन चित्रों में भी भावोल्लास का स्पष्ट रूप सामने नहीं आया है; ऐसे वर्णन केवल वाल्मीकि रामायण में हैं जिनका उल्लेख पिछले प्रकरण में किया गया है। सेतुबन्ध में वर्णना का ऐसा घटाटोप है कि उसके सामने पात्र और उसकी मनःस्थिति दोनों ही खो जाते हैं। ऐसी स्थिति में भावोल्लास के प्रत्यक्ष समन्वय का रूप पाना असम्भव ही है। सौन्दर्य्य-वर्णन के भावारोप में इस मनःस्थिति का अध्यन्तरण इन कवियों में अवश्य पाया जाता है, जिस पर अगले अनुच्छेद में विचार किया जायगा। किरातार्जुनीय में अर्जुन शरद के सौन्दर्य्य पर मुग्ध होते हैं—

विनम्रशालिप्रसवौघशालिनीरपेतपङ्काः ससरोरुहाम्भसः।

ननन्द पश्यन्नुपसीम स स्थलीरुपायनीभूतशरद्गुणश्रियः ॥[६९]

[शालि के अन्न से झुके हुए पौधों से सुन्दर, निष्पंक तथा कमलों से आच्छादित सरोवरोंवाली, गाँव के पास की स्थली को शरद के सौन्दर्य्य की भेंट के समान देखकर अर्जुन प्रसन्न हुए।] परन्तु जैसा कहा गया है प्रकृति-सौन्दर्य्य के साथ भावोल्लास का तादात्म्य इन महाकाव्यों में नहीं मिलता है।

भावारोप की स्थिति

§ १४—जिस प्रकार प्रकृति पर मानवीय जीवन का आरोप किया जाता है उसी प्रकार भावों का आरोप भी होता है। परन्तु प्रकृति वर्णना में आरोपों का अलंकृत प्रयोग दूसरी बात है और प्रकृति को मानवीय जीवन तथा भावों से स्पन्दित चित्रित करना सर्वथा भिन्न बात है। पहले में भावों का आरोप कल्पना-प्रधान होता है, परन्तु दूसरे में कवि या पात्र प्रकृति को भावात्मक स्थिति में सहज रूप से पाता है। परन्तु महाकाव्यों में इस प्रकार

---

६९. किरा० ; स० ४ ; २।

का प्रकृति में सहज भाव-तादात्म्य बहुत कम मिलता है, अधिकाश स्थलों पर अलंकारों के माध्यम से ही यह भावात्मक आरोप चित्रित किया गया है। कुमारसम्भव के आठवें सर्ग के एक चित्र (३६) का उल्लेख पिछले अनुच्छेद में किया गया है, जिसमें प्रकृति की भावात्मकता का संकेत है। इसके अतिरिक्त 'सूर्य के पीछे अन्तर्धान होती हुई सन्ध्या जा रही है, क्योंकि प्रातः उदय के समय जो सूर्य के आगे रही वह सूर्य की विपत्ति में उनका साथ भला कैसे छोड़ दे' इस चित्र में भी कवि ने भावात्मक व्यंजना की है। परन्तु इस दृश्य में सहज अभिव्यक्ति नहीं है। अलंकृत प्रयोग के साथ भी इस चित्र में अधिक भाव-सौन्दर्य है—

मन्दरान्तरितमूर्तिना निशा लक्ष्यते शशभृता सतारका।
त्वं मया प्रियसखीसमागता श्रोष्यतेव वचनानि पृष्ठतः॥[70]

[मन्दराचल के पीछे छिपा हुआ चन्द्रमा इस तारोंवाली रात में ऐसा लगता है, जैसे आई हुई प्रिय सखियों से तुम्हारी बात पीछे से मेरे द्वारा सुनी जाय।] वास्तव में अलंकृत भावारोप के उदाहरण महाकाव्यों में कम ही मिलते हैं, अधिक आरोप शारीरिक क्रियाओं और मधुक्रीड़ाओं के हैं। बुद्धघोष ऐसे आरोपों से भाव-व्यंजना करते हैं—

आवर्ज्य शाखां करपल्लवेन प्रसह्य पुष्पापचयोन्मुखायाः।
रुषेव कस्याश्चिदशोकयष्टिस्तिरस्करोति स्म दृशं परागैः॥[71]

[कोई अशोक का वृक्ष हठात्, पुष्पों को ग्रहण करनेवाली शाखा की अपने करपल्लवों से अवहेलना कर रुष्ट होकर दृष्टि को पराग से भर देता है।] पर इसमें भाव के स्थान पर क्रिया अधिक प्रधान है। जानकीहरण में इस प्रकार व्यंजनाएँ अधिक सुन्दर हैं। 'वापी अपने मित्र (सूर्य) के लिए देर तक विलाप करने के बाद मूर्छित हो गई है, क्योंकि कलहंस का कूजन अधिक तीव्र होने के उपरान्त शांत हो चुका

---

७०. कुमार ; स० ८ ; ४४, ५९।

७१. पद्य ; स० ७ ; १५।

है और बन्द कमलों के रूप में उसके नेत्र बन्द हो गये हैं।' यहाँ प्रकृति स्वतः शोक से अभिभूत है।—'हंसिनी अपने राजहंस को रजत-तट पर श्वेत चाँदनी के पुंज के रूप में खोया पाकर रुदन कर रही है', इस चित्र में दृश्य भावात्मक संवेदना से पूर्ण है। और आगे सरोजिनी के वियोग की स्थिति का चित्र है—

तिग्मरश्मिविरहे सरोजिनी लोकमिन्दुकिरणावगुण्ठितम्।
नाभिवीक्षितुमिव क्षपागमे मीलयत्यसितवारिजेक्षणम्॥[७२]

[रात्रि के आगमन पर कमल-सरोवर ने सूर्य के विरह में अपने नील-कमलों के रूप में नेत्रों को बन्द कर लिया, जिससे इन्दु की किरणों से अवगुण्ठित संसार को न देख सके।] सेतुबन्ध में भी इस प्रकार की सुन्दर भाव-व्यंजनाएँ अधिक हैं। इस दृश्य में कमल की अनुभूति का रूप है—'बादलों के अवरोध से छुटकारा पाये हुए सूर्य की किरणों के स्पर्श से, भौंरों की गुन-गुन से सचेष्ट हुए जल में स्थित नालवाले कमल सुख का अनुभव करते हुए विकसित हो रहे हैं।' समग्र चित्र में प्रकृति मानवीय भावों से अभिभूत चित्रित है। छठे आश्वास में उदास हंसिनी का चित्र इस प्रकार है—

कम्प्यमानधराधरशिखरसमाविद्धजलधररवोद्विग्ना।
गतसुखवर्त्मनिषण्णा वेपते हंसी सहस्रपत्रनिषण्णा॥[७३]

[(वानरों द्वारा उखाड़े जाने पर) पहाड़ों के शिखरों पर लटके बादल गरज उठते हैं, उससे वर्षा ऋतु का आगमन समझ कर स्वच्छन्द विचरण का समय बीत जाने का भान कर कमल पर बैठी हुई हंसिनी खिन्नमना हो रही है।] किरातार्जुनीय में अर्जुन के सम्मुख फैली हुई प्रकृति मानवीय भावों को व्यक्त करती है। 'सरिता कहीं अपने प्रवाह में अन्दर छिपे हुए अनेक प्रकार के मणि-समूह के कारण अपनी चंचल

---

७२. जा० ; स० ८ ; ८४,८५ ; ८६।
७३. सेतु; आ० १ ; २८ ; आ० ६ ; ३८।

तरंगों से विभिन्न रंगों के रूप में अपना मनोभाव व्यक्त करती है' और कहीं 'केतकी के समान उठते हुए अपने झाग से, जो मरुत के स्फालन द्वारा चट्टानों से टकराने से उत्पन्न होता है, अर्जुन ने नदी को अट्टहास करते देखा'। और उस सरिता के तट पर एक दूसरा भी ऐसा ही दृश्य है—

अनुहेमवप्रमरुणैः समतां गतमूर्मिभिः सहचरं पृथुभिः।
स रथाङ्गनामवनितां करुणैरनुबध्नतीमभिननन्द रुतैः॥[७४]

[स्वर्ण-शिखरों की समीपता से अरुण लहरों की समता में छिपे हुए अपने सहचर को करुणा से रोती हुई चक्रवाकी को ढूढ़ते देखकर उसका मनोरंजन हुआ।] चक्रवाकी का अपने प्रिय सहचर का यह ढूढ़ना मानवीय करुणा और वेदना से भी अधिक संवेदक है। शिशुपालवध में प्रवृत्ति में भाव-व्यंजना के स्थान पर मधु-क्रीड़ाओं के आरोप की प्रकृति अधिकाधिक विकसित हो गई है। परन्तु कुछ स्थलों पर व्यंजना सुन्दर बन पड़ी है। चकवा और चकवी इस प्रकार विरह में व्याकुल हैं—

विगततिमिरपङ्कं पश्यति व्योमयाव-
द्धुवति विरहखिन्नः पक्षती यावदेव।
रथचरणसमाह्वस्तावदौत्सुक्यनुन्ना
सरिदपरतटान्तादागता चक्रवाकी॥

[जब तक अन्धकार शून्य आकाश को देख उड़ने के लिए विरह-दुःख से दुखित चकवा अपने पंखों को फड़फड़ाता है; इसी बीच में चकवी उत्कण्ठित होकर नदी के दूसरे तीर के प्रान्त में आकर उसके पास उपस्थित हो गई।] इस दृश्य में चकवा-चकवी की व्याकुल उत्सुकता का चित्र अत्यंत सहज बन पड़ा है। इन सीधे आरोपों के स्थान पर अलंकृत आरोपों की प्रवृत्ति महाकाव्यों की परम्परा में अधिक है।

---

७४. किरा; स० ६; ९, १०, ८।

प्रातः के दृश्य-चित्र पर माघ की कल्पना इस प्रकार भावात्मक रंग भरती है—

> **सपदि कुमुदिनीभिर्मीलितं हा क्षपापि**
> **क्षयमगमदपेतास्तारकास्ताः समस्ताः ।**
> **इति दयितकलत्रश्चिन्तयन्नङ्गमिन्दु**
> **र्वहति कृशमशेषं भ्रष्टशोभं शुचेव ॥**[७५]

[हा, समस्त कुमुदिनियाँ निद्रित हो गईं (अचेतन), रात भी क्षीण हो गई और तारे भी अन्तर्हित हो गये । मानों शोक से इस प्रकार की चिन्ता करता हुआ पत्नी-प्रिय चन्द्र क्षीण और शोभाशून्य सम्पूर्ण अंग धारण कर रहा है ।] वास्तव में महाकाव्यों में इस प्रकार के आरोप की प्रवृत्ति ही प्रारम्भ से रही है ।

---

७५. शिशु०; स० ११; २६, २४ ।

षष्ठ प्रकरण

विभिन्न काव्य-रूपों में प्रकृति (क्रमशः)

गद्य-कथा-काव्य

§ १—प्रकृति का कथा-वस्तु के साथ, इन कथा-काव्यों में अधिक सहज सम्बंध है। पिछले प्रकरण में महाकाव्यों में प्रकृति के रूपों पर विचार किया गया है। उसमें हम देख चुके हैं कि इन महाकाव्यों में वर्णना सम्बंधी कथात्मक प्रवाह का आग्रह नहीं है, वरन् अपने कलात्मक काव्य-सौन्दर्य्य के चित्रण के सम्बंध में ये अधिक सतर्क हैं। गद्य-काव्यों में कलात्मक अभिरुचि तो उसी श्रेणी की है, परन्तु प्रवाह में एक सूत्रता और क्रमिकता अधिक है, और इस कारण कथानक में प्रकृति का स्थान देश-काल की शृंखला में उपस्थित हुआ है। और इस शृंखला में प्रकृति स्वाभाविक रूप से कथा-वस्तु का आधार प्रस्तुत करती है, वातावरण निर्माण करती है। कवि घटनाओं की योजना के पूर्व देश-काल की सीमाओं को प्रत्येक रेखा और रंग में घेरने का प्रयत्न करता है। और कभी यह वर्णन अपनी सघनता और गहरी अभिव्यक्ति के साथ वातावरण बन जाता है

कथा और प्रकृति

और कभी भाव-स्थिति की व्यंजना करने लगता है। कादम्बरी का अधिकांश कथा-क्षेत्र सुन्दर प्रकृति-प्रदेश है, इस कारण उसके अनेक वर्णन घटना-स्थिति के अंग जान पड़ते हैं। साथ ही कुछ प्राकृतिक घटनाएँ कथावस्तु की शृंखला पूर्ति भी करती हैं। बाण की वर्णन-शैली का संकेत शैली के प्रकरण के अन्तर्गत मिल चुका है। बाण ही वास्तव में गद्य-काव्य के क्षेत्र में प्रमुख हैं। इनकी शैली में संश्लिष्टात्मक वर्णना से लेकर ऊहात्मक वैचित्र्य तक का संयोग मिलता है; परन्तु अपनी व्यापक प्रवृत्ति में वे चित्रमय योजना के कलाकार हैं। इनके वैचित्र्य प्रधान अलंकृत वर्णन सघन वातावरण के साथ दृश्य को चित्रमय ही करते हैं। घटना हो, पात्र हो, चरित्र हो अथवा प्रकृति हो, बाण उसकी वर्णनात्मक अवतारणा में अद्वितीय हैं। वर्णन की योजना वे इस प्रकार करते हैं जिससे समस्त वस्तु या स्थिति क्रमशः सामने आकर प्रत्यक्ष हो जाती है। समग्र चित्र की कल्पना अपने पूर्ण रंग-रूपों में बाण के वर्णनों की विशेषता है। जैसे आज के चित्र-पट पर दृश्य को क्रमिक रूप से घटना-स्थिति की ओर केन्द्रित कर के दर्शक के मन को एकाग्र किया जाता है, उसी प्रकार बाण अपने वर्णनों में व्यापक आधार-भूमि से चल कर क्रमशः घटना-स्थिति को प्रत्यक्ष करते हैं। सुबन्धु की वासवदत्ता में देश-काल के रूप में यत्र-तत्र प्रकृति का वर्णन आ गया है, यद्यपि शैली का रूप बाण के निकट है। कथा और प्रकृति-वर्णना का सामंजस्य जैसा स्वाभाविक इन कथा-गद्य-काव्यों में बन पड़ा, ऐसा बाल्मीकि रामायण के अतिरिक्त किसी अन्य काव्य में नहीं सम्भव हो सका है।

§ २—कथा वस्तु में देश-काल का आधार प्रस्तुत करने में बाण अद्वितीय है। कादम्बरी में विन्ध्याचल की अटवी में दण्डकारण्य स्थिति अगस्त्य के आश्रम के समीप के पम्पासर के पश्चिम किनारे पर पुराने ताल वृक्षों के कुंज के पास एक बड़े जीर्ण सेमर के वृक्ष पर तोतों की स्थिति का वर्णन करने के लिये कवि वर्णना की देशगत विशाल योजना करता है। और घटना की

देश-काल का आधार

स्थिति को अधिक प्रत्यक्ष करने के लिये सूर्योदय का कालगत चित्र भी उपस्थित करता है। कवि जावालि के आश्रम की घटना के पूर्व उसका वर्णन करता है और सन्ध्या के दृश्य को उपस्थित कर घटना-स्थिति को अधिक साकार कर देता है। कुमार चन्द्रापीड़ मृगया से थक कर क्रमशः किस प्रकार सरोवर का अनुमान लगाते हुए अच्छोद सरोवर पर पहुँचता है, और फिर सरोवर के दक्षिण तट पर, संगीत की ध्वनि का अनुसरण करता हुआ महादेव के मन्दिर में जाता है। इस समस्त घटना का आधार प्रकृति को व्यापक प्रदेश की वर्णना है। इसी प्रकार कवि हर्ष-चरित के प्रारम्भ में सरस्वती के शाप के उपरान्त सन्ध्या का वर्णन कर घटना-स्थिति को काल का आधार देता है और सरस्वतो के पृथ्वी पर आते समय मन्दाकिनी का वर्णन देश की सीमाएँ प्रस्तुत करता है। सोन नदी के तट-प्रदेश का चित्रण सरस्वतो के आश्रम की भूमिका है। द्वितीय उच्छ्वास का विस्तृत ग्रीष्म-वर्णन काल का व्यापक और कलात्मक संश्लिष्ट चित्र है। जैसा कहा गया है सुबन्धु की वासवदत्ता में देश-काल का आधार प्रस्तुत किया गया है, परन्तु उनमें बाण जैसी व्यापकता नहीं है।

क—अगले भाग में विस्तार से प्रमुख कवियों के वर्णनों को उपस्थित करना है, इस कारण यहाँ हम प्रकृति के विभिन्न रूपों के प्रयोग पर ही विचार करेंगे। देश हो अथवा काल

देश

बाण उसको सम्पूर्ण स्थिति के साथ ही चित्रित करते हैं। उनमें स्थिति को देश-काल से अलग नहीं किया जा सकता। और न शैली की दृष्टि से वर्णनात्मक, चित्रात्मक तथा ऊहात्मक आदि वर्णनों को अलग-अलग देखा जा सकता है। इसी प्रकार प्रकृति के स्वभाविक, आदर्श तथा अलौकिक रूपों का संयोग भी देखा जाता है। स्वभाविक के साथ आदर्श और आदर्श के साथ अलौकिक प्रकृति के चित्र मिले-जुले हुए हैं। चन्द्रापीड़ को सरोवर की खोज में जो चिह्न मिलते हैं वे प्रकृति-रूप के स्वाभाविक अंग हैं—

सरलसालसल्लकीप्रायैरविरलैरपि निःशाखतया विरलैरिवोपलक्ष्यमाणैः पादपैरुपेतेन, स्थूलकपिलवालुकेन, शिलाबहुलतया विरलतृणोलपेन, वनद्विपदशनदलितमनःशिलाधूलिकपिलेन, आभङ्गिनीभिरुत्कीर्णाभिरिव पत्रभङ्गकुटिलाभिः पाषाणभेदकमञ्जरीभिर्जटिलीकृतशिलान्तरालेन…।[1]

[(वह देखता है) सरल, साल और सल्लकी के बहुत से वृक्षों से (वह प्रदेश) भरा है जिनके ऊपर के भाग में छत्र-मंडन के आकार के होने पर भी टहनियाँ न होने से जो विरल से दीखते हैं; वहाँ की बालू मोटी और कपिल है; चट्टानों के होने से जहाँ थोड़े ही घास और तृण उगते हैं; वनैले हाथियों के दाँतों से टूटी हुई मैनसिल की धूल से वह धूसर दीखता है; चारों ओर मुड़ी हुई—और उत्कीर्ण सी मालूम होतीं—पत्र-भंग के समान,कुछ-कुछ गोल, पाषाण-भेद वृक्ष की मंजरियाँ उसकी शिलाओं के बीच के छेदों में एकत्र पड़ी हैं ।] इस वर्णना में संश्लिष्ट शैली की योजना है। बाण ने स्थान-स्थान पर प्रकृति को आदर्श-रूप में चित्रित किया है। कवि विन्ध्याचल की अटवी का आदर्श-चित्र इस प्रकार उपस्थित करता जाता है—'इसमें जंगली हाथियों के मदजल के सिंचन से वृक्षों का संवर्धन हुआ है, उनकी चोटियों पर अत्यंत प्रफुल्लित श्वेत पुष्पों के गुच्छे अधिक ऊँचाई के कारण तारागण के समान देख पड़ते हैं; वहाँ मद-मत्त कुरर पक्षी मिर्चे के पत्तों को कुतरते हैं और हाथी के बच्चों की सूड़ों से मसले गए

---

१. काद०; पू० भा०; जला०; पृ० २६१। वासवदत्ता में, जब चिन्तामणि मकरन्द के साथ मृगया के लिये जाता है, उस समय विन्ध्यकूट का वर्णन इस प्रकार है—'अगस्त्यवचनसंहृतब्रह्माण्डगतशिखरसहस्रः कन्दरान्तराललतागृहसुखसुप्तविद्याधरमिथुनगीताकर्णनसुखितचमरीशतमारणोत्सुकिनशबरशस्त्रसम्बाधकच्छः......गन्धवाहशिशिरितशिलातलः सुदूरपतनभग्नतालफल रसार्द्रकरतलास्वादनोत्सुकशाखामृगः...आदि। इन वर्णनों में सभी प्रकार की शैलियों का संयोग है।

तमाल के पत्तों की सुगन्ध फैल रही है;……दिनरात उड़ती हुई फूलों की रज से वहाँ के लता-मंडप मलिन हो गए हैं और वे वन-लक्ष्मी के रहने के महलों के समान मालूम होते हैं।'[२] कलात्मक चित्रमयता से दृश्य के रंगरूप तथा स्थिति को प्रत्यक्ष करने में बाण की कल्पना असीम है। अन्यत्र अच्छोद सरोवर के पास का दृश्य भी कभी आदर्श कल्पनाओं से युक्त है और कभी उसमें अलौकिक प्रकृति का रूप है। मन्दिर के पास प्रकृति का रूप आदर्श है—

सर्वतो मरकतहरितैः, हारिहारीतरुतिरमणीयैः, भ्रमद्भृङ्गराजनखर-जर्जरितजरठकुड्मलैः, उन्मदकोकिलकुलकवलीकृतसहकारकोमलाग्र-पल्लवैः, उन्मदषट्चरणचक्रवालवाचालितविकचचूतकलिकैः, अचकित-चकोरचुम्बितमरिचाङ्कुरैः, चम्पकपरागपुञ्जपिञ्जरकपिञ्जलजग्धपिप्पली-फलैः, फलभरनिकरपीडितदाडिमनीडप्रसूतकलविङ्कैः, प्रक्रीडितकपिकुल-करतलताडनतरलितताडीपुटैः…।[३]

[सब ओर लगे हुए मरकत के समान हरे वृक्ष लगे हुए थे। मनोहर हारीत पक्षियों की गुंजार से जो रमणीय लगते थे; जिनकी कलियाँ उड़ते हुए भृंगराज पक्षी के नखों से जर्जरित हो गई थीं; जहाँ आमों की कोमल कोंपलों को उन्मत कोकिल खा जाते थे और खिली हुई कलियों पर मदमत्त भ्रमरों के झुंड गुंजार करते थे; डरे हुए चकोर पक्षी मिर्च के अंकुर खाये जाते थे; चंपा के बहुत से पराग से पीले पड़े हुए चातक पीपल के फल खाते थे; फल के भार से लचे हुए घने अनारों के पेड़ों के घोंसलों में चिड़ियों ने बच्चे दिये थे; खेलते हुए बन्दरों के कर-प्रहार से ताड़ के वृक्ष हिलने लगते थे…।] यहाँ कवि ने केवल स्थिति में आदर्श कल्पना की है। बाण की इस कल्पना में प्रवरसेन के समान वैचित्र्य की प्रधानता न होकर स्वाभाविकता अधिक

---

२. वही; वही; विन्ध्य०, पृ० ३९-वनकरिकुल…लतामण्डपैः।

३. वही; वही; शिव०, पृ० २७२।

है। बाण वर्णन के लिए वैचित्र्यमूलक अलंकारों का प्रयोग अवश्य अधिक करते हैं, परन्तु उनकी प्रकृति का रूप अपने रंग-रूप और स्थितियों में अधिकतर सहज है। देश-काल की सीमा का प्रकृतिगत विशेषताओं में अतिक्रमण भारतीय आदर्श भावना में स्वाभाविक रूप से ग्रहीत रहा है, यही कारण है कि बाण के इन आदर्श चित्रों में जो अतिक्रमण है वह स्वाभाविक जैसा जान पड़ता है। इसी प्रकार अच्छोद सरोवर के वर्णन में पौराणिक कल्पनाओं के साथ प्रकृति का अलौकिक रूप मिलता है—

क्वचिद्वरुणहंसोपात्तकमलवनमकरन्दम्, क्वचिद्दिग्गजमज्जनजर्जरित-जरन्मृणालदण्डम्, क्वचित्त्र्यम्बकवृषभविषाणकोटिखण्डिततटशिलाखण्डम्, क्वचिद्यममहिषशृङ्गशिखरविक्षिप्तफेनपिण्डम्, क्वचिदैरावतदशनमुसल-खण्डितकुमुदखण्डम्—।[४]

[उस सरोवर के किसी भाग में वरुण के हंस कमल-वन का मकरन्द पी रहे थे ; किसी किसी स्थल में दिग्गजों के नहाने से पके हुए मृणाल-दण्ड जर्जरित हो गये थे ; किसी किसी स्थल में शंकर के बैल के सींगों की नोक से तट की शिलाएँ टूट गई थीं , कहीं कहीं यम के महिष ने सींग की नोक से फेन इधर-उधर फैला दिया था ; और कहीं कहीं ऐरावत के दंत रूपी मूसल से कुमुद-खंड टुकड़े टुकड़े हो गये थे।] इसमें चित्रण सम्बंधी कोई अलौकिता नहीं है, वरन् स्थिति की कल्पना मात्र से ऐसा किया गया है।

ख—बाण जिस प्रकार देश के चित्रण में प्रत्येक वस्तु और स्थिति का सूक्ष्म और संश्लिष्ट विवरण कलात्मक और वैचित्र्य की शैली में प्रस्तुत करते हैं; उसी प्रकार काल की वर्णना में वे परिवर्तित परिस्थितियों और घटनात्मक क्रिया-स्थितियों का निर्माण भी करते हैं। इस प्रकार के वर्णन में कथा-वस्तु के घटना-

काल

४. वही; वही; अच्छो०, पृ० २६५। वास० में रेवा के वर्णन में कुछ भाग।

प्रवाह में बाधा भले ही पड़ती हो, पर उसका आधार दृश्य-पट के समाने गोचर और प्रत्यक्ष हो जाता है। चित्र की एक एक रेखा उसे सजीव बनाती हुई उभरने लगती है। प्रातः सायं सन्ध्याओं, मध्याह्न और रात्रि के सूक्ष्म रंग और रूप के परिवर्तनों तथा व्यापारों की योजना से बाण खूब परिचित हैं। इनके चित्रण के लिए काल्पनिक अलंकृत योजना भी वे उसी प्रकार करते हैं। किसी भी कथा-वस्तु की घटना को इन प्राकृतिक परिवर्तनों के मध्य में बाण प्रत्यक्ष करने की प्रतिभा रखते हैं। विन्ध्य-अटवी में सूर्योदय काल की स्वाभाविक वर्णना इस प्रकार है—'पाले की बूँदें टपक रही थीं, मोर जाग चुके थे; सिंह जँभाई ले रहे थे; हथनियाँ मद-गजों को जगा रही थीं; रात को ओस पड़ने से जिनकी केसर ठिठर गई थीं ऐसे फूल पेड़ों से गिरने लगे थे; वह ओस की बूँदों से शीतल कमल-वन को कम्पित करता हुआ, वन के भैंसों की जुगाली के झागों की बूँदों को साथ लिए हुए, कम्पित टहनियों को खूब नचाता हुआ खिले हुए कमलों के रस की वर्षा करता हुआ, फूलों की गन्ध से भौंरों को तृप्त करता हुआ, रात्रि के अन्त होने से शीतल प्रभातकाल का पवन मन्द-मन्द चल रहा था।'[५] अन्यत्र भी प्रभात-काल का चित्र कवि सहज संश्लिष्ट स्थितियों और कार्यों की योजना में खींचता है—

सशेषनिद्रालसैश्चिरप्रसारणाविशदजङ्घाङ्घ्रिभिर्हठाकृष्टदीर्घपदसंचारिभिर्मृगकदम्बकैरुन्मुच्यमानासूपरशय्यासु, इच्छावखण्डितोत्खातपल्वलोपान्तरूढमुस्ताग्रन्थिष्वरण्यगह्वराभिमुखेषु वराहयूथेषु, निशावसानप्रचारनिर्गतैर्गोधनैरितस्तो धवलायमानासु ग्रामसीमान्तारण्यस्थलीषु, आलोक्यमानजनपदविनिर्गमेषु प्रसूयमानेष्विव ग्रामेषु, यथार्ककिरणावलोकोद्गमं चोन्नाम्यमान इव पूर्वदिग्भागे, समुत्सार्यमाणास्विवाशासु।[६]

---

५. वही; वही; प्रभात०, पृ० ५६—'तुषारबिन्दुवर्षिणि.....मातरिश्वनि'
६. वही; वही; मार्गे प्रातःकाल, पृ० ५४७।

[जब नींद शेष रह जाने से अलसित हरिनों के झुण्ड, बहुत देर से फैला रखने के कारण अकड़ी हुई जंघाओं तथा पैरों को जोर से खींच कर लम्बे-लम्बे पैर रखते तृण-रहित भूमि पर उठ कर दौड़ने लगे; तालाबों के किनारे पर उगे हुए नगार मोथे की गाँठों को उखाड़ कर स्वेच्छा से काटते बराहों के झुण्ड वन की गुफाओं की ओर जाने लगे; जब रात्रि के अंत में चरने के लिए जानेवाली गायों के झुण्डों से ग्राम की सीमा के अन्त के वन के स्थल इधर-उधर सफ़ेद दीखने लगे; बाहर आते जाते लोगों के दीखने के कारण गाँव मानों नवीन उत्पन्न हुए मालूम होने लगे; सूर्य्य की किरणों के प्रकाश के साथ-साथ जब पूर्व दिग्भाग मानों ऊँचा हो गया; दिशाएँ मानों आगे बढ़ती गईं ···· ··।] इस संश्लिष्टता में दृश्य का क्रमशः सामने फैलता जाता है और इसमें प्रयुक्त उत्प्रेक्षाओं से स्वाभाविक स्थिति का प्रत्यक्षीकरण ही हुआ है। महाश्वेता के वृत्तान्त सुनाते-सुनाते सन्ध्या आ जाती है और कवि उसके परिवर्तित होते रंगों को कलात्मक तूलिका से चित्रात्मक शैली में उतारता है—'फिर जब दिन क्षीण हो गया, आकाश में लटकता हुआ रवि-मंडल पकी हुई प्रियंगुलता की मंजरी की रज के समान पीले रंग से रंग गया; पुष्पित फूलों के रस से रंगे हुए वस्त्र के समान अस्त समय की कोमल धूप ने दिशाओं के मुख को छोड़ दिया; आकाश का नीला रंग दूर होकर चकोर की पुतली के समान पिंगल रंग वहाँ लिप गया; कोकिल के लोचनों के समान पिंगल सन्ध्या के प्रकाश से भुवन लाल हो गया ···· ।' इस वर्णना में बाण ने सायंकाल के रंगों को उपमानों से अधिक प्रत्यक्ष और व्यक्त कर दिया है, रंगों के स्वाभाविक सामंजस्य में बाण अप्रतिम है, प्रवरसेन में काल्पनिक रंगों का संयोग अद्वितीय है। साथ ही इस चित्र में भावात्मक वातावरण भी रक्षित है,

७. वही; पूर्व०; सन्ध्या०, पृ० ३६८-० 'अथ क्षीणे दिवसे.....सान्ध्यये भुवनमर्चिपि'।

महाश्वेता के वियोगजन्य दुःख अभिभूत हृदय से प्रकृति का दृश्य तादात्मय स्थापित करता है। अगले अनुच्छेद में इस विषय में अधिक विचार करना है। बाण के अलंकृत वर्णनों में भी कलात्मक सौन्दर्य तथा काल का सजीव रूप रक्षित है। सायं-सन्ध्या की इस अलंकृत योजना में दृश्य की कल्पना अधिक प्रत्यक्ष हुई है—

आलोहितांशुजालं जलशयनमध्यगतस्य मधुरिपोर्विगलन्मधुधारमिव नाभिनलिनं प्रतिमागतमपरार्णवे सूर्यमण्डलमलक्षयत। विहायाम्बरतल-मुन्मुच्य च कमलिनीवनानि शकुनय इव दिवसावसाने तरुशिखरेषु पर्वताग्रेषु च रविकिरणाः स्थितिमकुर्वत। आलग्नलोहितातपच्छेदा मुनि-भिरालम्बितलोहितवल्कला इव तरवः क्षणमदृश्यन्त। अस्तमुपगते च भगवति सहस्रदीधितावपरार्णवतलादुल्लसन्ती विद्रुमलतेव पाटला सन्ध्या समदृश्यत।[८]

[पश्चिम समुद्र में कुछ-कुछ लाल किरणोंवाले सूर्य्य-मण्डल का प्रतिबिम्ब ऐसा दीखने लगा मानों जल-शय्या पर सोये हुए विष्णु की नाभि-कमल से मधु-धारा निकल रही हो। पृथ्वीतल को त्याग कर तथा कमल-वन को छोड़ कर, सन्ध्या काल, सूर्य्य की किरणों ने पक्षी के समान तपोवन के वृक्षों और पर्वतों की चोटियों पर वास किया। ऊपर कहीं-कहीं लाल धूप पड़ने से थोड़ी देर तक आश्रम के वृक्ष ऐसे दीखने लगे मानों मुनियों ने उन पर लाल वल्कल लटकाए हैं। सूर्य्यास्त के बाद पश्चिम समुद्र के तट में से निकलती लाल-लाल सन्ध्या प्रबाल-लता के समान दीखने लगी।] इस अलंकृत वर्णना में प्रयुक्त उत्प्रेक्षाओं में जिन उपमानों का आधार है वे (स्वतःसम्भावी और प्रौढ़ोक्ति-सम्भव दोनों रूपों में) वैचित्र्य की प्रवृत्ति रखते हुए भी सौन्दर्य्य का सर्जन करते हैं। जैसा शैली के प्रकरण के अन्तर्गत कहा गया है, चमत्कृत वैचित्र्य तथा ऊहात्मक कल्पनाएँ बाण के वर्णनों में

---

८. वही; वही; सन्ध्या०, पृ० १०४।

बिखरी हुई है, परन्तु देश-काल की घटनात्मक स्थिति-योजना के वे अनुकूल हैं तथा वर्णना-विस्तार के सौन्दर्य-बोध के साथ एक-रूप हो जाती हैं। रात्रि के दृश्य में चमत्कृत उपमान-योजना मिली जुली है— 'चन्द्रमा से भूषित और तारा रूपी कपाल के टुकड़ों से अलंकृत शिव के मस्तक के समान आकाश से सागर को भरती हुई गंगा के समान हंस-धवल चाँदनी पृथ्वी पर छिटकी'। परन्तु इस चमत्कृत कल्पना के साथ ही कलात्मक सौन्दर्य-बोध को व्यंजित करनेवाले उपमानों की योजना है—

हिमकरसरसि विकचपुण्डरीकसिते चन्द्रिकाजलपानलोभादवतीर्णो निश्चलमूर्तिरमृतपङ्कलग्न इवादृश्यत हरिणः। तिमिरजलधरसमयापगमानन्तरमभिनवसितसिन्दुवारकुसुमपाण्डुरैरर्णवागतैरवगाह्यन्त हंसैरिव कुमुदसरांसि चन्द्रपादैः।[१]

[चन्द्रमा के बिम्ब में हरिन ऐसा लगता है मानों पुष्पित श्वेत कमलों के सरोवर में पानी पीने के लोभ से उतरा हुआ निश्चल हरिन कीचड़ में फस गया हो। अंधकार दूर होने के बाद तालाब में चन्द्रमा की किरणें ऐसी शोभित हुईं मानों वर्षा-ऋतु के बाद, सिंधुवार के ताजे फूल के समान सफ़ेद हंस आकाश से उतर कर कुमुद-सरोवर में तैरते हों।]

इस प्रकार देश-काल की सुन्दर अवतारणा कवि कथानक की घटना-स्थली को प्रत्यक्ष गोचर करने के लिए करता है जिससे वस्तु को आधार और वातावरण दोनों ही मिलता है।

§३—कथा-वस्तु के अन्तर्गत प्रकृति की स्थिति घटना के आधार को प्रस्तुत करने के अतिरिक्त वातावरण निर्माण करती है। कवि-कथाकार अपनी वस्तु की देश-काल गत स्थिति को पाठक के सामने प्रत्यक्ष करना चाहता है, साथ ही वह वस्तु-योजना की घटना-स्थिति को व्यंजित करनेवाला वातावरण भी

वातावरण निर्माण

---

१. वही; वही; रात्रि०, पृ० १०६-१०७।

प्रस्तुत करता है। महाकाव्यों में वर्णना और कथा वस्तु का सामंजस्य सदा रक्षित नहीं रहा है, और जैसा विचार किया गया है बाद के कवियों ने प्रकृति के वर्णनों को परम्परा पालन के दृष्टिकोण मात्र से रखा है। परन्तु कथा-गद्य-काव्यों में स्थिति ऐसी नहीं है। वर्णना का विस्तार अपनी कलात्मकता तथा सूक्ष्म विवरण में चाहें जितना व्यापक और सघन हो, परन्तु कथा की शृंखला से उसका घनिष्ट सम्बंध सदा बना रहता है। वर्णना सौन्दर्य्य में रस लेनेवाली भारतीय प्रवृत्ति के लिए ये घटनाओं के क्रमिक विकास और कथावस्तु के प्रवाह में बाधक न होकर चित्रमयता उत्पन्न करते हैं।

सहज अनुरूप

क—बाण ने सभी स्थलों पर प्रकृति को इस सघनता के साथ उपस्थित किया है कि उसका एक वातावरण बन गया है। प्रारम्भ में विन्ध्य-अटवी के वर्णन में वन जैसी भयंकरता और सरोवर के वर्णन में एकान्त-शून्य की भावना मन में उत्पन्न हो जाती है। चित्रमय सौन्दर्य्य के साथ यह भावना प्रकृति को वातावरण का रूप देती है। अनेक स्थलों पर यह वातावरण देश-काल की उद्भावना से सम्बंधित है, कथा-वस्तु की घटना और पात्रों से नहीं। पर ऐसे भी स्थल हैं जहाँ घटना की स्थिति अथवा पात्र की मनःस्थिति के अनुकूल प्रकृति वातावरण का निर्माण करती है। कथामुख भाग में शिकारियो का झुण्ड आपस में जिस प्रकृति का उल्लेख करता है वह शिकार की घटना के अनुरूप वातावरण प्रस्तुत करती है—'इस ओर से हाथियों की कुचली हुई कमलिनियों की गन्ध आती है, इधर से शूकरों के काटे हुए मोथे के रस की सुगन्ध आती है, इस ओर हाथी के बच्चों से तोड़ी गई सल्लकी की गन्ध आती है; इधर झड़े हुए सूखे पत्तों की खड़खड़ाहट सुनाई देती है; इस दिशा में जंगली भैंसों से तोड़ी गई वल्मीकों की धूल है।'[१०] और कभी प्रकृति का वातावरण पात्र की

१०. वही; वही; शबरमृगया, पृ ५९—गजयूथपति——वल्मीकधूलिः।

मनःस्थिति के अनुरूप फैल जाता है—

वनमहिषमलीमसवपुषि च मुषिततारकापथपथिम्नि कालिमान-मातन्वति शार्वरे तमसि, अतनुतिमिरतिरोहितहरिततासु गहनतां यान्तीषु वनराजिषु, रजनिजलजालबिन्दुजनितजडिम्नि बहलवनकुसुमपरिमलानुमितगमने चलितलताविटपगहने प्रवृत्ते च पवने, निद्रानिभृत-पतत्रिणि···। [11]

[वन-महिष के समान श्याम रंगवाला और आकाश के विस्तार को लीन करता हुआ रात्रि का अंधकार अधिकाधिक काला होने लगा; अपना हरा रंग घने अंधेरे में ढक जाने से वृक्षों की झाड़ियाँ गहन दीखने लगीं; ओस की बूँदों से जड़ता उत्पन्न करती हुई, वन-पुष्पों के अतिशय परिमल से जिसके चलने का अनुमान होता था, ऐसी लता और वृक्ष-कुंजों को हिलाती हुई वायु बहने लगी; और रात आने से पक्षी निद्रा के कारण चुप हो गये...।] रात्रि के अन्धकार में फैली हुई निद्रा और तन्द्रा की भावना के साथ महाश्वेता के वियोगी मन का सामंजस्य है।

ख—कभी कभी इसी वातावरण में दृश्य का रूप इस प्रकार सामने आता है जिसमें प्रकृति स्वयं भाव-निमंजित दिखाई पड़ती है। कवि अपनी कल्पना से प्रकृति में भावात्मक वातावरण का निर्माण करता है। यह वातावरण कभी स्वतः में पूर्ण होता है और घटना से व्यापक सम्बंध मात्र स्थापित करता है। सन्ध्या की वर्णना में यहाँ ऐसे ही वातावरण की अवतारणा हुई है—'फिर हृदय-स्थित कमलिनी के राग से मानों जब सम्पूर्ण भुवन मंडल के

भावात्मक प्रसार

वासवदत्ता में वातावरण के लिए दे० रेवा-वर्णन—'मदकलकलहंससारसरसितोद्-भ्रान्तभाः······मदमुखराजहंसकुलकोलाहलमुखरितकूलपुलिनया······ आदि।

११. वही ; वही ; सान्ध्यविधि, ३६९।

चक्रवर्ती, कमलों के प्राणनाथ, भगवान भास्कर रक्त होने लगे; दिन बड़ा कर देने से कुपित होती कामिनियों की लाल लाल दृष्टि से ही मानों आकाश जब लाल लाल हो गया; रवि-वियोग से बन्द हुए पद्मवाले कमल-वन जब हरे दीखने लगे...।' [१२] यह रागात्मक वातावरण महाश्वेता और चन्द्रापीड के प्रेम से भावात्मक अनुरूपता स्थापित करता है। कुछ स्थलों पर प्रकृति का यह रूप पात्र के मन को प्रभावित करता जान पड़ता है। ऐसे वर्णनों का भावात्मक वातावरण पात्र की मनःस्थिति से सीधे सम्बंधित है। नवयौवन में प्रवेश करती हुई महाश्वेता के लिए चैत्र का वातावरण भावाशील है—

अथ विजृम्भमाणनवनलिनवनेषु, अकठोरचूतकलिकाकलापकृतकामुकोत्कलिकेषु, कोमलमलयमारुतावतारतरङ्गितानङ्गध्वजांशुकेषु, मदकलितकामिनीगण्डूषसीधुसेकपुलकितबकुलेषु, मधुकरकुलकलङ्ककालीकृतकालेयककुसुमकुड्मलेषु। [१३]

[नये कमल वन खिल रहे थे; आम की कोमल कलियों का कलाप कामियों को उत्कंठित कर रहा था; मलयाचल की ठंडी पवन चलने से कामदेव की ध्वजा फहरा रही थी; मदमत्त कामिनियों के मुख से छिड़के गए मधु से बकुल वृक्ष-पुलकित हो रहे थे; मधुकर-कुल रूपी कलंकसे चमेली की कलियाँ काली हो गई थीं...।] यही भावात्मकता जब पात्र की मनःस्थिति के स्थायी भाव को प्रभावित करने लगती है, उस समय प्रकृति उद्दीपन-विभाव के अन्तर्गत आ जाती है।

§४—कथा-वस्तु की शृंखला में प्राकृतिक घटनाओं की आवतरणा तभी सम्भव हो सकती है जब कथानक प्रकृति से घटना के रूप में सम्बंधित हो। और यह स्थिति हर्षचरित और वासवत्ता में नहीं मिलती है। इनमें कथानक प्रकृति से एक रूप

नियोजित घटनाएँ

१२. वही ; वही ; सन्ध्या, पृ० ४२१ —अथ हृदय ...कमलवनेषु।

१३. वही ; वही ; महाश्वेतास्नानागमन वृत्तान्त , पृ० २९६—९७।

नहीं हो सका है। पर कादम्बरी की कथावस्तु प्रकृति से अति निकट से सम्बंधित है, उसकी कल्पना के प्रसार में घटना, पात्र और प्रकृति सब एक रस हो जाते हैं। वास्तव में कादम्बरी की कथा का अधिक भाग प्रकृति की गोद में अभिनीत हुआ है। इसके पात्रों में कुछ पशु-पक्षी तथा गन्धर्व-किन्नर आदि हैं, जिससे प्रकृति की स्थिति का वस्तु की घटना के रूप में अवतरित होना सहज है। कथामुख भाग में शबरों की मृगया और वृद्ध शबर का पक्षि-संहार प्राकृतिक घटनाएँ हैं जो कथा-वस्तु के अन्तर्गत आती हैं। मृगया की घटना का वर्णन बड़ा ही सजीव है—'इतने ही में वन में अनेक प्रकार के शब्द होने लगे ; लेप करने से आर्द्र हुए मृदंग की ध्वनि के समान धीर और पर्वतों की गुफाओं से उठते हुए प्रतिशब्द से गम्भीर भीलों के बाणों से घायल हुए सिंहों का नाद होने लगा ; त्रास पाये हुए झुंड से बिछुड़े हुए अकेले भटकते गजपतियों की कंठ-गर्जना मेघ-निर्घोष के समान हो रही थी और उसीके साथ बार बार ताड़ना की गई सूँड़ों का शब्द सुनाई दे रहा था ; कुत्तों से काटे जाने से लटक गये हैं अवयव जिनके और जिनकी आँखों की पुतलियाँ चंचल कातर और क्षुब्द हैं ऐसे हरिणों की करुणामय चीत्कार हो रही थी ...।'[१४] इस कथा काव्य में प्रकृति की विस्तृत वर्णनाएँ अपने आप घटनाएँ जैसी गम्भीर जान पड़ती हैं ; वातावरण की सघन व्यंजना में प्रकृति का विस्तार कथा-वस्तु की घटनाओं का अंग बन जाता है। परन्तु ऊपर का दृश्य घटना-क्रम की स्वतंत्र शृंखला है। धीरे-धीरे सेना के संक्षोभ से उड़ती हुई धूल का वर्णन घटना का अंग माना जा सकता है—

शनैः शनैश्च बलसंक्षोभजन्मा क्षितेरनेकवर्णतया क्वचिज्जीर्णशफरक्रोडधूम्रः क्वचित्क्रमेलकसटासंनिभः, क्वचित्परिणतरल्लकरोमरल्लवमलिनः,

---

१४. वही ; वही ; मृगयाकोलाहल , पृ० ६१—'अथ नाति···कुजितेन।

क्वचिदुत्पन्नोर्णातन्तुपाण्डुरः, क्वचिज्जरठमृणालदण्डधवलः, क्वचिज्जरत्कपिकेशकपिलः । [१५]

[वह धूल पृथ्वी के अनेक वर्णन होने के कारण, कहीं बूढ़े मत्स्य की छाती के समान धुँधली, कहीं ऊँट के बाल के समान मटियाली, कहीं बूढ़े हरिण के रोयें के समान मलीन, कहीं धुले हुए रेशमी वस्त्र के तागे के समान पाण्डुर, कहीं पके हुए मृणाल की डंडी के समान धौली, और कहीं बूढ़े बानर के बालों के समान कपिल थी ।]

§ ५—इन काव्यों में कथा के क्रम की भावना प्रधान रहती है। इस कारण कथावस्तु के विस्तार में प्रकृति का रूप चित्रात्मक अधिक है, और प्रकृति तथा पात्रों का सम्बंध आधार तथा वातावरण का विशेष है। वर्णना के आग्रह में कवि प्रकृति और मानवीय जीवन का भावात्मक आत्मीय सम्बंध बहुत कम स्थलों पर स्थापित कर पाता है। इसी प्रकार प्रकृति में आत्मीय सहानुभूति का दृश्य या आरोप भी बहुत कम है। कादम्बरी की काल्पनिक कथा में शुक, मैना तथा सारिका आदि पात्र हैं और प्राकृतिक पृष्ठ-भूमि का उल्लेख किया गया है। बाण इनको मनुष्य-पात्र के समान उपस्थित करते हैं। कादम्बरी की मैना और तोता को कवि ने इस प्रकार व्यक्तित्व प्रदान किया है—'कुमुदों की केसर के समान पीले चरणवाली, चंपा की कली के समान मुख वाली, कुवलय-पत्र के समान श्याम पंखोंवाली, और इस कारण पुष्पमयी लगनेवाली एक मैना सहसा जल्दी जल्दी आई। उसके पीछे पीछे एक इन्द्र-धनुष सदृश तीन रंग का कठला गर्दन में पहने, प्रबालांकुर सदृश लाल चोंचवाला और मरकत की कांति के समान पक्षमूलवाला तोता मन्दगति से चला आता था।'[१६] प्रकृति में ऐसे पात्रों की कल्पना और उनका स्वाभाविक

आत्मीय सहानुभूति पात्र

१५. वही ; वही ; दिग्विजयप्रस्थानम्, पृ० २४७—४८।

१६. वही ; वही ; शुकसारिकामुखेन कौतुकारम्भ ; पृ० ४०२–३—'अथ सहसैव···कुसुममयीवागत्य सारिका'।

व्यवहार आत्मीयता का सूचक है। कभी प्रकृति के सौन्दर्य की कल्पना कवि पात्र के रूप में कर लेता है और इस प्रकार प्रकृति में मानवीय अनुभूति की व्यंजना करता है। वनदेवी स्वयं प्रकट होकर पुण्डरीक को पारिजात की मंजरी प्रदान करती हैं—

साक्षान्मधुमासलक्ष्मीदत्तललितहस्तावलम्बया बकुलमालिकामेखलया कुसुमपल्लवग्रथिताभिराजानुलम्बिनीभिः कण्ठमालिकाभिर्निरन्तराच्छादितविग्रहया नवचूताङ्कुरकर्णपूरया पुष्पासवपानमत्तया वनदेवतया...। [१७]

[वसंत लक्ष्मी ने जिसको अपने ललित हाथ का सहारा दिया था, बकुल-माला की जिसने मेखला पहिनी थी, पुष्प पल्लवों से गुँथी हुई और जाँघों तक लटकती हुई मालाओं से जिसका सम्पूर्ण शरीर ढका हुआ था और आम के नये अंकुर का जिसने कर्णपूर पहना था ऐसी, पुष्पों का आसव पीने से मत्त हुई साक्षात् नन्दनवन की देवी ने आकर...।] इस कल्पना में मानों कवि ने अपनी सहानुभूति द्वारा प्रकृति के सौन्दर्य को ही साकार कर दिया है।

क—मानव और प्रकृति के सहानुभूति-पूर्ण आत्मीय सम्बंधों की कल्पना के लिए यत्र-तत्र अवसर मिला है। कवि ने पंचवटी के प्राकृतिक दृश्यों के वर्णनों में राम-सीता के निवास की स्मृति दिला कर इस स्नेहमय सम्बंध को व्यक्त किया है।

सम्बंध

बाण की कल्पना में आज भी प्रकृति को राम की स्मृति है और उनके वियोग में वह विषाद-मग्न भी है—'वहाँ पूजा के लिए फूल तोड़ती हुई सीता के हाथों से लगा हुआ लाल रंग मानों लता और पत्तों में चमक रहा है; सीता के पाले हुए जिन पुराने हरिनों के सींग बुढ़ापे के कारण जर्जरित हो गये हैं, वे वर्षा-काल में नव-मेघों की गम्भीर गर्जना सुनकर भगवान् रामचन्द्र के त्रिभुवन-व्यापी धनुष-टंकार का आज भी

१७. वही ; वही ; पुण्डरीकजन्मवृतान्त , पृ० ३११ ।

स्मरण करते हैं, पर दिन-रात बहती अश्रुधारा से व्याप्त दीन नेत्रों से दशों दिशाओं को शून्य देख कर घास की एक मुट्ठी भी नहीं खाते हैं'।[१८] इसी प्रकार की भावना जाबालि के आश्रम के वर्णन के प्रसंग में पाई जाती है। आश्रम के जीवन में प्रकृति से कैसी आत्मीयता उत्पन्न हो जाती है इसका उल्लेख महाकाव्यों के प्रसंग में किया गया है। यह सम्बंध कहीं कल्पना द्वारा व्यक्त किया गया है और कहीं वस्तु-स्थित से—

विकचकुमुदवनमृषिजनमुपासितुमवतीर्णं ग्रहगणमिव निशासूद्वहन्तीभिर्दीर्घिकाभिः परिवृतम्, अनिलावनमितशिखराभिः प्रणम्यमानमिव वनलताभिः, अनवरतमुक्तकुसुमैरभ्यर्च्यमानमिव पादपैः, आबद्धपल्लवाञ्जलिभिरुपास्यमानमिव विटपैः ...।

[सरोवर में फूले हुए कुमुद ऐसे देख पड़ते थे मानों रात्रि में ऋषियों की सेवा करने के लिए नीचे उतरे तारे हों; पवन से झुकी हुई अपनी चोटियों से वन-लताएँ मानों उसे प्रणाम करती थीं; दिन-रात फूल गिरा-गिरा कर सब वृक्ष मानों उसकी पूजा करते थे; पल्लवों की अंजलि बना कर डालियाँ मानों उसकी सेवा करती थीं...।] यह आत्मीयता तो उत्प्रेक्षाओं के माध्यम ये व्यक्त हुई है, परन्तु सहज सम्बंध का चित्र भी इसी प्रसंग में मिलता है—'बटुओं के पाठ को सुन कर वषट्कार शब्द का उच्चारण करने से तोते वाचाल हो रहे थे; असंख्य मैना वेद का घोष कर रही थीं; पास की बावली में रहते हुए कल-हंस के बच्चे नीवार की कलिका का आहार करते थे; हरिनियाँ अपनी पल्लव के समान कोमल जिह्वाओं से मुनियों के बालकों को चाटती थीं;...।'[१९] इस दृश्य में प्रकृति और मानव का जीवन जैसे हिल-मिल गया है। प्रकृति के व्यापारों में आत्मीय सहानुभूति का आरोप बहुत कम स्थलों पर

---

१८. वही; वही; आश्रम, पृ० ४६— 'अधुनापि···जीर्णमृगाः।

१९. वही; वही; जाबाल्याश्रम, पृ० ८५, ८६—'अनवरत···मुनिबालकम्'।

मिलता है, इसका कारण, जैसा कहा गया है बाण की प्रवृत्ति दृश्यों को चित्रमय करने की अधिक है। सन्ध्या के इस वर्णन में मानवीय जीवन और भावों का प्रकृति में आरोप किया गया है। इस व्यंजना में भी रूपान्तर का प्रत्यक्ष आधार अधिक स्पष्ट है—

अभिनवपल्लवलोहिततलेन करेणेवाधोमुखप्रसृतेन रविबिम्बेन वासरः कमलरागमवशेषं ममार्ज। कमलिनीपरिमलपरिचयागतालिमालाकुलितकण्ठं कालपाशैरिव चक्रवाकमिथुनमाकृष्यमाणं विजघटे। [२०] [दिवस ने नये पल्लव-सदृश लाल हथेलीवाले हाथ के समान नीचे लटकते सूर्य्य-बिम्ब से मानों समस्त कमल-राग को पोंछ दिया। कमलिनी की महक से आकृष्ट हुए भ्रमरों से घिरे हुए कंठवाले चक्रवाक मिथुन कालपाश से खींचे गये की भाँति एक दूसरे से अलग हो गये।] परन्तु यह आरोप मानवीय जीवन की व्यापक रेखाओं तथा भावना की गम्भीर परिस्थितियों तक नहीं पहुँचा है।

नाट्य-काव्य की परम्परा

§ ६—नाटक दृश्य-काव्य है उसमें घटनाओं की अवतारणा रंगमंच पर की जाती है। ऐसी स्थिति में प्रकृति-वर्णन के लिए कोई स्थान नहीं रह जाता। परन्तु यह भी याद रखना चाहिए कि प्राचीन रंगमंच पर देश-काल के अनुरूप स्थिति सजाने की सुविधा नहीं थी और इन नाटकों में कवित्व भी अधिक है। इस कारण देश-काल का ज्ञान कराने के लिए और वातावरण की योजना के लिए प्रकृति का चित्रण दृश्य-काव्यों में यत्र-तत्र हुआ है। इन वर्णनों को अवसर के अनुरूप पात्रों के मुख से कराया गया है। परन्तु इन नाटकों में उनकी प्रवृत्ति के अनुसार प्रकृति का उपयोग हुआ है। मुद्राराक्षस में राजनीतिक वातावरण अधिक

प्रकृति का स्थान

---

२०. वही; वही; सन्ध्या-वर्णन, पृ० २११।

प्रधान है, और प्रबोध चन्द्रोदय नाटक में धर्म तथा उपदेश की ऐसी प्रवृत्ति है जिससे उसे नाटक की श्रेणी में लेना भी उचित नहीं जान पड़ता। ऐसे नाटकों में प्रकृति के लिए कोई स्थान नहीं रहा है, इनमें एकाध स्थल पर काल के रूप में प्रकृति का उल्लेख मात्र हुआ है। स्वप्नवासवदत्ता तथा मालविकाग्निमित्र में भी प्रेमकथा राज-प्रासादों में चलती रही है और इस कारण प्रकृति की वर्णना का अवसर नहीं आया है। प्रतिमा, कुन्दमाला तथा महावीरचरित नाटक रामकथा से सम्बंधित हैं। इनकी कथा इस प्रकार विकसित हुई है कि देश-काल के संक्षिप्त उल्लेखों के अतिरिक्त प्रकृति की अवतारणा विशेष नहीं हुई है। मृच्छकटिक, नागानन्द और रत्नावली में प्रकृति की रंगस्थली नाटक की कथावस्तु का अंग बनी है और इस कारण इनमें प्रकृति का रूप अधिक उभरा है। अभिज्ञानशाकुन्तल, विक्रमोर्वशीय, मालतीमाधव तथा उत्तररामचरित का वातावरण प्रकृति से निर्मित है। इन नाटकों की स्वच्छन्द भावना में प्रकृति का आत्मीय स्थान है। प्रकृति के सामीप्य से इन नाटकों में सौन्दर्य तथा आकर्षण बढ़ गया है। इनमें अभिज्ञान-शाकुन्तल तथा उत्तररामचरित में प्रकृति मानवीय जीवन से तादात्म्य स्थापित करती हुई आत्मीय सहानुभूति से अनुप्राणित हो उठी है। विक्रमोर्वशीय तथा मालतीमाधव में प्रकृति ने व्यापक भावात्मक वातावरण प्रस्तुत किया है।

देश-काल की स्थिति

§ ७—दृश्य-काव्य की कथा-वस्तु को देश-काल की स्थिति में उपस्थित करने के लिए प्राचीन रंग-मंच पर इसके अतिरिक्त कोई उपाय नहीं था कि पात्र उनका वर्णन करें। इस प्रकार कथा-वस्तु का आधार देश-काल की स्थिति-जन्य सीमाओं में इन वर्णनों के आधार पर प्रस्तुत हो सका है। भास संस्कृत साहित्य के प्रारम्भिक नाटककार माने जाते हैं, और उनके नाटकों में उपस्थित प्रकृति-चित्रों की सरल स्वाभाविक शैली से इसी सत्य का संकेत मिलता है। स्वप्नवासवदत्ता में प्रकृति की स्थितियों के चित्रण के

लिए अवसर नहीं मिला है, परन्तु राजप्रासाद के जिस प्रमदवन में इस प्रेम-कथा का केन्द्र स्थापित किया गया है उसकी कुछ रेखाओं का निर्देश मिलता है। चेटी पद्मावती का ध्यान 'लाल कमलों की माला के समान सुन्दर पंक्ति में आगे बढ़ते हुए सारसों के समूह'[२१] की ओर आकर्षित करती है। प्रतिमा में राम-कथा के वनवास प्रसंग के साथ प्रकृति का कुछ अधिक सम्पर्क है, परन्तु भास कथानक के विकास में अधिक ध्यान देते हैं। प्रारम्भिक कवियों के समान भास प्रकृति-वर्णना को अधिक विस्तार नहीं देते हैं। शीघ्र ही सिंचे हुए वृक्षों को देख कर राम सीता का पता पा लेते हैं और प्रकृति की स्थिति का यह चित्र इस प्रकार है—

भ्रमति सलिलं वृक्षावर्ते सफेनमवस्थितं
तृषितपतिता नैते क्लिष्टं पिबन्ति जलं खगाः।
स्थलमभिपतन्त्यार्द्राः कीटा बिले जलपूरिते
नववलयिनो वृक्षा मूले जलक्षयरेखया ॥[२२]

[वृक्षों के थावलों में फेनिल जल पूरित होकर चक्कर लगा रहा है ; प्यास के कारण उतरे हुए पक्षी सरलता से जल पी रहे हैं ; बिलों में पानी भर जाने से भीगे हुए कीड़े सूखी भूमि की ओर आ रहे हैं ; और वृक्ष इन पानी की रेखाओं से नवीन कड़े पहने हुए जान पड़ते हैं।] इस दृश्य में सहज स्थिति के साथ कवि की सूक्ष्म अन्वेषण शक्ति का पता चलता है।

§ ८—कालिदास ने अपने नाटकों में कुशल कलाकार के समान प्रकृति का प्रयोग किया है। मालाविकाग्निमित्र की प्रेम-कथा में प्रकृति के लिए अवसर नहीं मिला है, पर दोपहर का चित्र दूसरे अंक में बहुत अच्छा बन पड़ा है। विक्रमोर्वशीय में जैसा हम आगे विचार करेंगे, सघन आत्मीयता का वातावरण प्रस्तुत किया

कालिदास

२१. स्वप्न० ; अ० ४ ; पृ० ३।
२२. प्रतिमा ; अं० ५ ; २।

गया है। परन्तु अभिज्ञानशाकुन्तल में आत्मीय सहानुभूति के प्रसार के साथ देश-काल की स्थितियों के चित्र हैं। इस नाटक की रंग-स्थली का अधिकांश प्रकृति की गोद में ही अभिनीत हुआ है, परन्तु कालिदास देश-काल की स्थितियो में अधिकतर वातावरण का निर्माण करते हैं। नाटक के प्रारम्भ में कवि ग्रीष्म ऋतु के आगमन का उल्लेख करता है। आगे चलकर प्रथम अक के अंतिम भाग में नेपथ्य से एक स्थिति-चित्र का उल्लेख किया गया है जिससे आखेट का तपोवन पर प्रभाव व्यक्त होता है—'आखेट प्रेमी राजा के घोड़ों की टापों से उठी हुई साँझ की ललाई के समान लाल-लाल धूल टिड्डी दल के समान उड़कर आश्रम के उन वृक्षों पर पड़ रही है जिनकी शाखाओं पर गीले वल्कल के वस्त्र फैलाये हुए हैं।' छठे अंक में राजा चित्र-फलक पर कण्व के आश्रम का जो दृश्य खींचने को कहता है वह स्थिति सौन्दर्य्य का उदाहरण है—

> **कार्या सैकतलीनहंसमिथुना स्रोतोवहा मालिनी**
> **पादास्तामभितो निषण्णहरिणा गौरीगुरोः पावनाः।**
> **शाखालम्बितवल्कलस्य च तरोर्निर्मातुमिच्छाम्यधः**
> **श्रृंगे कृष्णमृगस्य वामनयनं कण्डूयमानां मृगीम्॥**

[अभी, जिसकी बालुका पर हंस के जोड़े बैठे हों ऐसी मालिनी नदी बनानी है; उसके दोनों ओर हिमालय की वह तलहटी दिखानी है जहाँ हरिण बैठे हों। मैं एक ऐसा वृक्ष भी चित्रित करना चाहता हूँ जिस पर वल्लक के वस्त्र टँगे हों और जिसके नीचे एक हरिणी अपनी बाईं आँख काले हरिण के सींग से रगड़ कर खुजला रही हो।] इस सौन्दर्य में राजा के मन की भावना का छायातप व्यंजित है। स्वर्ग से उतरते समय राजा मातलि को पृथ्वी का दृश्य दिखा रहा है जो सहज कल्पना में सजीव हो उठा है—

> **शैलानामवरोहतीव शिखरादुन्मज्जतां मेदिनी**
> **पर्णस्वान्तरलीनतां विजहति स्कन्धोदयात्पादपाः।**

संतानैस्तनुभावनष्टसलिला व्यक्तिं भजन्त्यापगाः
केनाप्युत्क्षिपतेव पश्य भुवनं मत्पार्श्वमानीयते ॥[२३]

[जान पड़ता है मानो धरती पर्वतों की ऊँची चोटियों से नीचे उतर रही हो, पत्तों में छिपी हुई वृक्षों की शाखाएँ अब दिखाई देती जा रही हैं, दूर से पतली जान पड़ने वाली नदियाँ अधिकाधिक व्यक्त होती जा रही हैं और यह पृथ्वी इस प्रकार हमारी ओर उठी चली आ रही है मानों कोई इसे ऊपर को उछाल रहा है ।] इस प्रकार स्थितियों को प्रत्यक्ष करने में कालिदास ने सूक्ष्म अन्वेषक की दृष्टि का परिचय दिया है ।

§ ६—देश-काल की स्थिति-जन्य अवतारणा के लिए मुद्राराक्षस में अवसर नहीं है, ऐसा कहा गया है । इसके राजनीतिक हलचल से परिपूर्ण

तीन नाटक

कथानक में नाटककार को अन्यत्र ध्यान ले जाने का अवसर नहीं मिल सका है । समस्त कथानक पाटलिपुत्र में प्रतिघटित है और घटनाओं का सम्बंध वन उपवनों से नहीं है । केवल इस नाटक में चन्द्रिकोत्सव का उपयोग किया गया है, इस कारण चन्द्रगुप्त सुगांगप्रासाद पर से शरद ऋतु की शोभा निहारता है—'सब दिशाओं की शोभा कैसी सुन्दर लग रही है, इस ऋतु में आकाश कैसा निर्मल नीला है । चन्द्रमा पूर्ण कलाओं से उदित है, सरोवर में सुन्दर कमल छाये हुए हैं, और नदियों के किनारे चारों ओर श्वेत हंस विचर रहे हैं ।'[२४] परन्तु इस वर्णन में काल का कोई निश्चित रूप नहीं आता है, केवल व्यापक रेखाओं का निर्देश है । विशाखदत्त

---

२३. अभि०; अं० १; २८ : अं० ६; १७ : अं० ७; ८ ।

२४. मुद्रा०; अं० ३; ७ में दसों दिशाओं का वर्णन प्रवाहित शरत्कालीन सरिताओं के रूप में किया गया है —

शनैः श्यानीभूताः सितजलधरच्छेदपुलिनाः
समन्तादाकीर्णाः कलविरुतिभिः सारसकुलैः ।
चिताश्चित्राकारैर्निशि विकचनक्षत्रकुमुदै—
र्नभस्तः स्यन्दन्ते सरित इव दीर्घा दश दिशः ॥

का यह नाटक अपने कथानक के रूप और विकास की दृष्टि से संस्कृत के अन्य नाटकों से भिन्न है; कथा-वस्तु में उत्सुकता का तत्व विशाखदत्त की अपनी विशेषता है। दिङ्नाग के कुन्दमाला की राम-कथा प्रकृति के रंगमंच पर अधिक अभिनीत हुई है। तृतीय अंक में राम ढलती हुई दोपहरी को देखते हैं—'कठिन दोपहर का समय वृक्षों के मूलों में व्यतीत कर अब छाया शनैः शनैः बाहर निकल चली है।' इसी प्रकार कण्व अपने आश्रम के आस पास के दृश्य राम को दिखाते हैं—'पुष्पों से वासित सभी दिशाओं में हरियाली छाई हुई है और फूलों से आच्छादित डाली डाली सुन्दर है। यह श्याम वनमाला इस प्रकार घिरी हुई है मानों मेघमाला झुक आई हो। क्या यह दृश्य तुम्हारी आँखों को सुख देता है?'[२५] मृच्छकटिक की प्रेमकथा में कवि ने प्रकृति का स्वच्छन्द वातावरण प्रस्तुत किया है। इसमें देशकाल की स्थितियों को शुद्रक ने अनेक स्थलों पर उपस्थित किया है। चन्द्रमा से प्रकाशित राजमार्ग का उल्लेख चारुदत्त करते हैं—'कामिनी के कपोल के समान गौर चन्द्रमा तारा-समूह के साथ राजमार्ग को प्रकाशित करता हुआ उदित हो रहा है। जिसकी उज्जवल किरणें अंधकार में इस प्रकार पड़ रही हैं मानों कीचड़ के बीच में दूध की धारा गिर रही हो।' इस दृश्य में स्थिति का सुन्दर रूप हमारे सामने आता है। अन्यत्र विट और शकार उद्यान की शोभा की स्थिति को प्रत्यक्ष करते हैं —

बहुकुशुम-विचित्तिदा अ भूमी
कुशुम-भलेण विणामिदा अ लुक्खा।
दुम शिहल लद अ लम्बमाणा
पणशफला विअ वाणला ललन्ति ॥[२६]

२५. कुन्द०; अं० ३; १६ : अं० ४; ३।
२६. मृच्छ; अं० १ ; ५४ : अं० ८; ७।

[पृथ्वी अनेक रंगों के फूलों से चित्रित है; फूलों के भार से डालें भूमि पर गिरी सी पड़ती हैं। वृक्ष की चोटियों से लताएँ लटक रही हैं। वृक्षों पर बन्दर कटहल के फल के समान लटके हुए हैं।] इन स्थितियों की योजना से शुद्रक ने अनेक स्थलों पर वातावरण का निर्माण किया है जिनका आगे उल्लेख किया जायगा।

§१०—महाकवि भवभूति के दो नाटक उत्तररामचरित तथा महावीर-चरित राम-कथा से सम्बंधित हैं। इन दोनों में प्रकृति का विस्तार है।

भवभूति

महावीरचरित में राम के वनवास प्रसंग में प्रकृति रंगस्थली है और उत्तररामचरित का अधिकांश वन और आश्रम के वातावरण से सम्बंधित है। मालतीमाधव की प्रेम-कथा की उन्मुक्त भावना के साथ प्रकृति की व्यापक अवतारणा कवि ने की है। इस प्रकार भवभूति प्रकृति के रंगमंच पर मानव-जीवन का अभिनय कराने में श्रेष्ठ कलाकार हैं। महावीरचरित में जटायु समुद्र से जन-स्थान की ओर उड़ता हुआ प्रस्रवण पर्वत का वर्णन करता है—'जन-स्थान के बीच में यह प्रस्रवण नामक पहाड़ है जिसका नीला रंग बार-बार पानी के बरसने से धूमिल हो गया है और जिसकी कन्दराएँ सघन वृक्षों के सुन्दर वनों के किनारे गोदावरी की हिल्लोरों से गुंज रही हैं।'[२७] इस स्थिति की स्थापना के बाद जटायु सीता-हरण की घटना का उल्लेख करता है। उत्तर० और मालती० में प्रकृति का व्यापक विस्तार है जिससे घटनाएँ एकरूप हो गई हैं, इस कारण इनमें देश-काल की स्थिति के साथ वातावरण और घटनाओं की नियोजना मिल-जुल गई है। श्मशान में कपालकुंडला सन्ध्या के दृश्य में वातावरण की व्यंजना भी सन्निहित कर देती है—

ज्योत्स्नस्तापिच्छगुच्छावलिभिरिव तमोवल्लरीभिर्व्रियन्ते
पर्यन्ताः प्रान्तवृत्त्या पयसि वसुमतीनूतने मज्जतीव।

---

२७. महा०; अ० ५; पृ० १६।

वात्यासंवेगविष्वग्विततवलयितस्फीतधूम्याप्रकाशं
प्रारम्भेऽपि त्रियामा तरुणयति निजं नीलिमानं वनेषु ॥

[व्योम तमाल के फूल के गुच्छे के समान अन्धकार (तम) की वल्लरी से आच्छादित हो रहा है। पृथ्वी चारों ओर से फैले हुए अन्धकार रूपी नवनीर में डूबती जाती है। अपने प्रवेश के समय से ही रजनी, वात-चक्रों के सम्यक् वेग से चारों ओर फैलते हुए धूम्र-पुंज के समान मण्डलाकार चक्कर में वन में अपने नीले अन्धकार को सघन कर रही है।] इस अन्धकार में डूबती हुई सन्ध्या के चित्र में काल के परिवर्तित रूप की स्थिति है। सौदामिनी ने नवें अंक के विष्कम्भक में विन्ध्य-पर्वत का दृश्य उपस्थित किया है—'ऊँचे पर्वतों से सरिताओं का जल गिरकर मेघ के समान गम्भीर गर्जना करता है, उससे आस-पास के शैलों के कुंज इस प्रकार गुंजित होते हैं मानो गणेश के गले की गर्जना हो।'[२८] इस प्रकार इस अंक की पृष्ठभूमि तैयार हो जाती है। उत्तर-रामचरित के आदि और अन्त के अंकों को छोड़कर अन्य सभी अंकों का स्थल वन और आश्रम है। इस कारण कवि को स्थान तथा काल का स्थिति-बोध कराने के लिए मुक्त अवसर मिला है। वास्तव में इस नाटक के करुण-रस के साथ प्रकृति भी तादात्म्य स्थापित करती जान पड़ती है। अनुरूप वातावरण तथा आत्मीय सहानुभूति जन-स्थान तथा दंडकारण्य की प्रकृति में जैसे बिखरी हुई हो। वासन्ती जनस्थान में बढ़ती हुई दोपहरी के साथ प्रकृति का रूप उपस्थित करती है—

कण्डूलद्विपगण्डपिण्डकषणोत्कम्पेन सम्पातिभि-
र्घर्मस्रंसितबन्धनैः स्वकुसुमैरर्चन्ति गोदावरीम् ।
छायापस्किरमाणविष्किरमुखव्याकृष्टकीटत्वचः
कूजत्क्लान्तकपोतकुक्कुटकुलाः कूले कुलायद्रुमाः ॥[२९]

---

२८. माल०; अं० ५; ६ : अं० ९; ३।
२९. उत्तर०; अं० २; ९ ।

[जिनके घोंसलों में थके हुए कबूतर और कुक्कुट कुजन कर रहे हैं; जिनकी छाया में छाल से अपना खाना खोजते हुए पक्षी चोंच से कीड़े खींच रहे हैं ऐसे, तनों पर मत्त हाथियों के गण्डस्थल के खुजाने से कम्पित तटवर्ती वृक्ष, जिनके वृन्त धूप के कारण शिथिल हो गये हैं ऐसे फूलों की वर्षा करके गोदावरी की अर्चना कर रहे हैं।] आगे भवभूति ने समस्त जनस्थान के दृश्यों के साथ सहानुभूति और आत्मीयता का एक वातावरण प्रस्तुत कर दिया है।

§११—श्री हर्षदेव के नाटकों में रत्नावली तथा प्रियदर्शिका की कथा राज-प्रासादों में ही विकसित हुई है। परन्तु इनकी प्रेम-कथाओं के स्वच्छन्द वातावरण के निर्माण के लिए उपवन तथा कुंज आदि के रूप में प्रकृति का अवतारणा की गई है। नागानन्द को कथा-वस्तु मलयगिरि के चारों ओर घूमती है इस कारण उसमें देश-काल की रूप-योजना के लिए अधिक अवसर मिला है। रत्नावली में राजा वासवदत्ता का ध्यान सन्ध्या की ओर आकर्षित करता है—

श्री हर्षदेव

उदयगिरितटान्तरितमियं प्राची सूचयति दिङ्निशानाथम्।
परिपाण्डुना मुखेन प्रियमिव हृदयस्थितं रमणी॥

[अपने पीले विस्तार से प्राची का आकाश उदयगिरि के ढालों पर छिपे हुए निशापति की सूचना देता है, जैसे रमणी के हृदय में प्रेमी की स्मृति है।] इस काल की सूचना में भावात्मक संकेत सन्निहित है। तृतीय अंक में विदूषक डूबते हुए सूर्य्य को जब दिखाता है, उस समय राजा के सम्मुख—'उदयाचल पर रुका हुआ सूर्य्य जान पड़ता है इस चिन्ता से कि अपने एक चक्र पर वह सारे विश्व के परिभ्रमण के बाद प्रातःकाल नहीं लौट सकेगा, किरणों के समूह जिसके स्वर्ण-आरें हैं ऐसे उदयाचल रूपी पहिये को खींचता है।'[३०] इन वर्णनों में अलंकृत

३०. रत्ना०; अं० १; २५ : अं० ३; ५०।

योजना की प्रवृत्ति स्पष्ट है। प्रियदर्शिका के प्रथक अंक के अन्त में राजा मध्याह्न का वर्णन अधिक चित्रमयता के साथ करता है—

आभात्यर्कांशुतापक्कथदिव शफरोद्वर्तनैर्दीर्घिकाम्भः

छत्राभं नृत्तलीलाशिथिलमपि शिखी बर्हभारं तनोति।

छायाचक्रं तरूणां हरिणशिशुरुपैत्यालवालाम्बुलुब्धः

सद्यस्त्यक्त्वा कपोलं विशति मधुकरः कर्णपालीं गजस्य॥[३१]

[सूर्य की किरणों के प्रकाश पड़ने से वापी का जल मछलियों के आवर्तन में चमक रहा है। नृत्य की क्रीड़ा से शिथिल होने पर भी मयूर अपनी पूँछ को छत्र के समान फैलाता है। आलवाल के जल के आकर्षण से हरिण के बच्चे वृक्षों की छाया के नीचे एकत्र हैं। भौंरे हाथी के कपोल को छोड़ अभी ही कानों के नीचे बैठ रहे हैं।] इस दृश्य में वस्तु-स्थिति का समग्र चित्र सम्मुख आ जाता है। नागानन्द के प्रारम्भ में ही मलयगिरि का दृश्य सामने आ जाता है—

माद्यत्कुञ्जरगण्डभित्तिकषणैर्भग्नस्रवच्चन्दनः

क्रन्दत्कन्दरगह्वरो जलनिधेरास्फालितो वीचिभिः।

पादालक्तकरक्तमौक्तिकशिलः सिद्धाङ्गनानां गतैः।

सेव्योऽयं मलयाचलः किमपि मे चेतःकरोत्युत्सुकम्॥

[यह मलयाचल रहने के योग्य है और न जाने क्यों मेरे मन को उत्सुक बना रहा है। इसमें मदमस्त हाथियों के गण्डस्थलों की रगड़ से चन्दन वृक्ष भग्न होकर स्रवित हो रहे हैं; इसकी गिरि-कन्दराओं में सागर की तरंगों के स्फालन की ध्वनि गूँजती है और जहाँ मुक्ता-शिलाएँ घूमती हुई सिद्ध की स्त्रियों के पैर की महावर से रंजित है।] इसी प्रकार तृतीय अंक में कुसुमाकरोद्यान की स्थिति भी नाटककार दर्शकों के सम्मुख उपस्थित करता है—'इस कुसुमाकर उद्यान की शोभा तो देखिए। एक ओर चन्दन के वृक्षों से रस टपक टपक कर लतागृह के फर्श को शीतल

३१. प्रिय०; अं० १; १२।

कर रहा है; निकट ही मोर फुहारों की ध्वनि सुनकर नाच रहे हैं, और धारा-यन्त्रों से तीव्रता से प्रवाहित जल की धार, जो प्रवाह में बहे हुए फूलों के पराग से रक्तपीत हो गई है, वृक्षों के थावलों को भरती हुई बह रही है।'[३२] इस वर्णन में दृश्य की रूप-रेखा उभर आती है, और दर्शक अपनी कल्पना में घटना के लिए देश-काल का आधार प्रस्तुत कर लेता है।

§१२—जहाँ तक नाटकों की कथा-वस्तु में प्राकृतिक घटनाओं का प्रश्न है, प्राचीन रंग-मंच पर ऐसी अवतारणा करना सम्भव नहीं था। जैसे प्रकृति का रूप वर्णनों द्वारा प्रेक्षक के मन पर घटना के आधार के समान प्रस्तुत किया जाता था, उसी प्रकार प्रकृति की घटनात्मक योजना की स्थिति भी है। इस रूप में प्रकृति एक प्रकार से कथा-वस्तु का आधार न रह कर उसका अंग बन जाती है, इस कारण नाटकों में ऐसे कम स्थल प्रस्तुत किये गए हैं। प्रतिमा-नाटक में भरत रथ पर वेग से प्रवेश करते हैं और यह घटना उनके शब्दों में साकार होती है—

प्राकृतिक घटना

द्रुमा धावन्तीव द्रुतरथगतिक्षीणविषया
नदीवोद्वृत्ताम्बुर्निपतति मही नेमिविवरे।
अरव्यक्तिर्नष्टा स्थितमिव जवाच्चक्रवलयं
रजश्चाश्वोद्धूतं पतति पुरतो नानुपतति॥[३३]

[रथ की तेज गति के कारण जिनके रूप स्पष्ट नहीं हैं ऐसे वृक्ष दौड़ते जान पड़ते हैं; पृथ्वी बढ़े हुए जलवाली नदी के समान मानों केन्द्रस्थ विवर में प्रवेश कर रही है; तीव्र गति के कारण आरों के सदृश्य हो जाने से चक्र की परिधि स्थिर जान पड़ती है और घोड़ों से उठाई हुई धूल आगे दीखती है पर उसका अनुसरण नहीं कर पाती है।] इसमें

---

३२. नागा०; अं० १; ८ : अं० ३; ७।
३३. प्रति०; अं० ३; २।

रथ के वेग की घटना सामने चित्रित हो जाती है और वास्तव में यह प्रकृति का एक अंग है। कुन्दमाला में देवी सीता के प्रभाव से प्रकृति का जो रूप सब लोगों के सामने उपस्थित होता है वह कथा-वस्तु की एक घटना ही है—

उदन्वन्तः शान्ताः स्तिमिततरकल्लोलवलया
निरारम्भो व्योम्नि प्रकृतिचपलोऽप्येष पवनः।
प्रवृत्ता एतस्मिन्निभृततरकर्णा गजघटा
जगत् कृत्स्नं जातं जनकतनयोक्तावहितम् ॥[३४]

[उस समय समुद्र तरंगों के कोलाहल के निश्चल होने से शान्त हो गया; प्रकृति से चंचल पवन आकाश में स्पन्दनरहित हो गया; समस्त दिशाओं के दिग्गज स्तब्ध कर्ण हो कर खड़े हो गये और इस प्रकार सारा संसार सीता को सुनने के लिए निस्तब्ध हो गया।] प्रकृति की इस घटना-स्थिति में अलौकिक भावना सन्निहित है।

§ १३—कालिदास वास्तव में प्रकृति के कवि हैं। उनके काव्य में और वैसे ही नाटकों में प्रकृति का सघन विस्तार है। उनकी कल्पना में

कालिदास

में प्रकृति और मानव जीवन एक रूप हो गये हैं, उनकी सौन्दर्य-सृष्टि से प्रकृति के रंग-रूपों को न निकाला जा सकता है और न प्रकृति के सौन्दर्य से मानवीय प्राणों का स्पन्दन ही। कालिदास के नाटकों में भी प्रकृति और मानव-जीवन इसी प्रकार घुल-मिल गये हैं। देश-काल की पार्श्वभूमि के अतिरिक्त कभी प्रकृति घटना का रूप भी ग्रहण कर लेती है। अभिज्ञानशाकुन्तल के प्रारम्भ में ही भागते हुए हरिण का दृश्य मृगया की घटना का अंग है—'बार बार पीछे की ओर इस रथ को एकटक देखता हुआ सुन्दर लगने वाला हरिण, बाण लगने के भय से पिछले आधे शरीर को सिकोड़ कर आगे के भाग से मिलाता हुआ, थकावट के कारण जिसके

---

३४. कुन्द०; अं० ६; २३।

खुले हुए मुख से आधी चबाई हुई कुशा मार्ग में गिरती जा रही है, देखो इतनी लम्बी छलाँगें भर रहा है कि जान पड़ता है पैर पृथ्वी पर पड़ ही नहीं रहे हैं, मानों आकाश में उड़ा जा रहा है।' इसी प्रकार प्रथम अंक के अन्त में नेपथ्य से ऐसी ही घटना की सूचना मिलती है—

तीव्राघातप्रतिहततरुः स्कन्धलग्नैकदन्तः
पादाकृष्टव्रततिवलयासङ्गसंजातपाशः।
मूर्तो विघ्नस्तपस इव नो भिन्नसारङ्गयूथो
धर्मारण्यं प्रविशति गजः स्यन्दनालोकभीतः।

[और देखो—अपनी करारी टक्कर से एक वृक्ष उखाड़ लिया है जिसमें उसका एक दाँत फँसा हुआ है और टूटी हुई लताएँ फन्दे के समान उसके पैरों में उलझी हुई हैं, ऐसा राजा के रथ से डरा हुआ यह जंगली हाथी हमारी तपस्या के लिए साक्षात् विघ्न बना हुआ हरिणों के झुंड को तितर-बितर करता हुआ तपोवन में घुसा आ रहा है।] चौथे अंक में कण्व के शिष्य लता-वृक्षों द्वारा आभूषण दिये जाने का उल्लेख करते हैं। यह इस अंक के प्रकृति के आत्मीय वातावरण के अनुरूप है। सातवें अंक में आकाश मार्ग से लौटते हुए राजा दुष्यन्त मातलि से रथ की गति का वर्णन करता है। यह दृश्य स्थिति के रूप में भी घटना का अंग ही माना जायगा—

अयमरविवरेभ्यश्चातकैर्निष्पतद्भि-
र्हरिभिरचिरभासां तेजसा चानुलिप्तैः।
गतमुपरि घनानां वारिगर्भोदराणां
पिशुनयति रथस्ते सीकरक्लिन्ननेमिः॥[35]

[यह तो जल-कणों से भींगा हुआ आप के रथ का धुरा ही बतला रहा है कि हम जल-भरे मेघों के ऊपर से चले जा रहे हैं; जिसके घोड़े

---

३५. अभि०; अं० १; ७, २९ : अं० ७; ७।

बिजली की चमक से चमक उठते हैं और पहियों के अरों के बीच से निकल-निकल कर चातक इधर-उधर उड़ते फिर रहे हैं।] विक्रमोर्वशीय के चौथे अंक का समस्त वातावरण और उसकी समस्त घटना प्रकृति को लेकर ही है। इस अंक में एक ओर पार्श्वभूमि में प्रकृति की प्रतीकात्मक घटना का उल्लेख नाटककार करता चलता है। हंस-हंसी, हाथी तथा सुअर आदि की क्रीड़ाओं का जो उल्लेख नेपथ्य से किया गया है, वह एक प्रकार से इस अंक की घटना का प्रतीक-चित्र है। सहजन्या और चित्रलेखा के प्रवेश के साथ कवि—'अपनी सखी के दुःख में घबराई हुई और एक दूसरी को प्यार करने वाली आँखों से आँसू बहाती हुई, तालाब के तीर पर बैठी हुई सिसकती हुई दो हंसिनियों' का उल्लेख नेपथ्य में कर देता है। इस प्रकार यह रंग-मंच की घटना का प्रकृति की घटना के साथ सामंजस्य है। राजा पुरुरवा के विलाप के साथ हाथी का यह उल्लेख भी ऐसा ही है—

> दइआरहिओ अहिअं दुहिओ बिरहाणुगओ परिमंथरओ।
> गिरिकाणणए कुसुमुज्जलए गजजूहवई बहुझीणगई॥[३६]

[प्रेमिका के विरह से अत्यन्त दुःखी होकर यह हाथी फूलों से उज्ज्वल इस पहाड़ी वन में धीरे-धीरे घूम रहा है।] इसके अतिरिक्त राजा उद्विग्न मनःस्थिति में अनेक प्रकृति के उपकरणों को सम्बोधित करता है, वे कभी-कभी इस अंक में घटना के पात्र के समान जान पड़ते हैं। इस अंक में अनेक प्रकृति के चित्र उपस्थित होकर घटना के समान जान पड़ते हैं—

> अस्यान्तिकमायान्ती शिशुना स्तनपायिना मृगी रुद्धा।
> तामयमनन्यदृष्टिर्भुग्नग्रीवो विलोकयति॥[३७]

३६. विक्र०; अं० ४; २, १४। परन्तु इस भाग के कालिदास कृत होने में विद्वानों को सन्देह है।

३७. विक्र०; अं० ४; ५८।

[हरिण को देखकर राजा कहता है—इसके पास जो इसकी हरिणी चली आ रही थी, जिसे दूध पीनेवाले मृगछौने ने बीच में ही रोक लिया है उसकी ओर आँख लगाए यह एक-टक देख रहा है।] इस प्रकार राजा शब्द-चित्रों से दर्शकों के सामने प्रकृति की पूर्ण घटना-स्थिति उपस्थित करता है।

§१४—भवभूति के मालतीमाधव में प्रकृति को व्यापक रूप से स्थान मिला है, परन्तु उसकी कथावस्तु में प्रकृति का घटना के रूप में स्थान नहीं है। महावीरचरित तथा उत्तररामचरित दोनों की कथावस्तु ऐसे प्रयोगों के उपयुक्त है। लक्ष्मण

iii भवभूति

दिव्यास्त्रों के प्रकट होने के दृश्य को उपस्थित करते हैं—'अचानक ही कनक के रंग से दिशाएँ उत्तप्त हो उठी हैं, कपिल हो जाने के कारण दिवस सन्ध्या में तिरोहित होता उद्भासित हो रहा है; दिव्यास्त्र से व्याप्त आकाश निरन्तर चमकती हुई बिजली से पिशंग वर्ण हुआ ऐसा जान पड़ता है मानों दीप्त ध्वजा समूह से आच्छादित हो गया है।' इस घटना का रूप अलौकिक है। पर यह अलौकिकता वस्तु-स्थिति से सम्बंधित नहीं, वरन् अस्त्र की प्रभावशीलता के कारण है। आकाश में इस प्रकार का परिवर्तन वैसे स्वाभाविक है, लेकिन अस्त्र के कारण होने से यह अलौकिक हो गया है। जटायु के आगमन की सूचना देते समय सम्पाति प्रकृति की एक ऐसी घटना का उल्लेख करता है, जो वस्तु के रूप में स्वाभाविक है पर अपनी स्थितियों में अलौकिक है—

दूरोद्वेल्लितवाडवस्य जलधेरुल्लोलभिन्नाम्भसो
रन्ध्रैरापतितेन वेगमरुता पातालमाध्मायते।
यद्वै कुण्डवराहकण्ठकुहरस्फारोच्चलद्भैरव-
ध्वानोच्चण्डमकाण्डकालरजनीपर्जन्यवद्गर्जति ॥[३८]

अत्यधिक उद्वेलित वड़वाग्नि से अत्यंत चलित और भिन्न स्थानों से

---

३८. महा०; अ० १; ४३ : अ० ५; २।

हटा हुआ समुद्र का जल (जटायु के पंखों की) वायु के वेग से छिद्रों के भरने से पाताल तक व्याप रहा है। पाताल में जो बराह है उसके मुख से निकली हुई कठोर और भयंकर ध्वनि ऐसी जान पड़ती है मानों काल-रात्रि में प्रलय मेघ गर्जन कर रहा है।] यह घटना की सूचना नाटक की कथावस्तु का अंग है, इसलिए यह घटना ही स्वीकार की जायगी। उत्तररामचरित का बहुत बड़ा अंश प्रकृति के व्यापक क्षेत्र से सम्बंधित है। जनस्थान में जो घटनाएँ अवतरित हुई हैं उनको हम प्रकृति से अलग नहीं कर सकते। उसमें जो प्रकृति पात्र के रूप में आई है, चित्रण के रूप में उपस्थित हुई है या वातावरण बनकर फैली है, वह सब घटना का अंग बन गई है। इस अंक की घटना प्रकृतिमयी है और प्रकृति घटनामयी है। प्रकृति स्वय वनदेवी वासन्ती के रूप में राम की करुण-स्थिति में उन्हें सान्त्वना देती है। तमसा और मुरला नदियाँ सीता की सखी के रूप में उन्हें सँभालती हैं। और इसके साथ जनस्थान का सारी प्रकृति राम-सीता के प्रेम की साक्षी है। इसमें राम-सीता द्वारा पाले गये हाथी का वर्णन घटना की योजना ही है—

लीलोत्खातमृणालकाण्डकवलच्छेदेषु सम्पादिताः
पुष्प्यत्पुष्करवासितस्य पयसो गण्डूषसंक्रान्तयः।
सेकः शीकरिणा करेण विहितः कामं विरामे पुन-
र्यत् स्नेहादनरालनालनलिनीपत्रातपत्रं धृतम्॥

[यह करी क्रीड़ा भाव से मृणाल के खण्ड के कौरों से करिणी को खिलाता है; फूले हुए कमल से सुवासित जल को सूँड़ में लेकर पिलाता है; जल-कणों से बार-बार उसके शरीर का सिंचन करता है और पत्तों के साथ मृणाल-दण्ड को लेकर स्नेह-पूर्वक उस पर छत्र लगता है।] इस प्रकार यह अंक प्रकृति और जीवन को एक-रूप उपस्थित करता है। आगे चल कर युद्ध के वर्णन में प्रकृति घटना के रूप में उपस्थित हुई है। इसमें प्रकृति का अलौकिक रूप जान पड़ता है। चन्द्रकेतु जृम्भकास्त्र के प्रभाव का वर्णन करता है—'निश्चय ही यह अत्यन्त

तेजरूप जृम्भकास्त्र का प्रयोग है। चारों ओर अन्धकार तथा विद्युति-प्रकाश साथ फैल रहा है, जिससे आँख चौंधियाती है और दृष्टिगोचर कुछ नहीं होता। सब लोग चित्र लिखे से वेहोश हो गये हैं।' अन्यत्र विद्याधर और विद्याधरी युद्ध का वर्णन करते हैं, जिसमें बाणों के प्रभाव के साथ प्रकृति की घटना-स्थिति का भी उल्लेख है—

हन्त ! हन्त ! भो भोः ! सर्वमतिमात्रं दोषाय यत् प्रबलवातावलिक्षोभगम्भीरगुणगणायमानमेघमेदुरान्धकारनीरन्धनिबद्धम् एकबारविश्वग्रसनविकटविकरालकालकण्ठमुखकन्दरविवर्त्तमानमिव युगान्तयोगनिद्रानिरुद्धसर्वद्वारनारायणोदरनिविष्टमिव भूतजातं प्रवेपते। [३९]

[हाय हाय, अरे रे ! अति सब की बुरी होती है। देखो, बड़े प्रबल बगूले से क्षुब्ध हुए सघन बादलों के अंधेरे से संसार बँधा हुआ जान पड़ता है; और विश्व को एक ही बार लीलने के लिए कराल काल के मुँह में चक्कर खाता हुआ सा प्रलय के समय योग-निद्रा से रोके हुए चारों ओर से बन्द नारायण के पेट में पड़ा हुआ सा काँप रहा है।]

iv श्रीहर्ष

§ १५—श्री हर्ष के नाटकों में प्रियदर्शिका तथा रत्नावली दोनों की कथावस्तु राजप्रासादों से अधिक सम्बंधित है तथा इनमें राजाओं का प्रेम प्रसंग है। इस कारण इनमें प्रकृति तथा प्राकृतिक घटनाओं के लिए विशेष स्थान नहीं रहा है। रत्नावली के चौथे अंक में अग्निकाण्ड का वर्णन घटना के रूप में अवश्य है—'अन्तःपुर में अग्नि के प्रज्वलित होने से उसकी ज्वाल-मालाओं से भवन सुनहले शिखरों से शोभित हो गया है; झुलसती हुई उपवन के वृक्ष-समूह की चोटियों से अग्नि की ज्वाला का पता चल रहा है; और धुओं के छा जाने से क्रीड़ाशैल श्याम जलधर के समान लगता है।'[४०] परन्तु नागानन्द में अपेक्षाकृत प्रकृति का विस्तार

---

३९. उत्त०; अं० ३; १६ : अ० ५; १३ : अ० ६; पूर्व ६।

४०. रत्ना०; अं० ४; ७८।

अधिक है। इसका घटनास्थल वन-पर्वत है और गरुड़ के वर्णन के साथ प्रकृति घटना के रूप में अवतरित होती है। गरुड़ के चरित्र के अनुरूप यह घटना-स्थिति अलौकिक है। जीमूतवाहन गरुड़ को आता देखकर उसका वर्णन करता है—'पावस के मेघों के समान अपने पंखों से आकाश को आच्छादित करते हुए; अपने वेग से सागर के जल को तट पर गिरा कर मानों पृथ्वी को प्लावित करते हुए; सहसा कल्पान्त की शंका उत्पन्न करते हुए जिसको देखकर दिग्गज भयभीत हो गये, उसने अपने बारह आदित्यों के समान:कान्तिवाले शरीर से दसों दिशाओं को कपिश कर दिया।' इस वर्णन में स्थिति में स्वतः उतनी अलौकिकता नहीं है जितनी उसकी वर्णना में। ऐसी ही स्थिति की ओर शंखचूड़ संकेत करता है। उसके सामने पर्वत की चोटी पर गरुड़ बैठा है—

> **कुर्वाणो रुधिरार्द्रचञ्चुकषणैर्द्रोणीरिवाद्रेः शिलाः**
> **प्लुष्टोपान्तवनान्तरः स्वनयनज्योतिःशिखासंचयैः।**
> **मज्जद्वज्रकठोरघोरनखरप्रान्तावगाढावनिः**
> **श्रृङ्गाग्रे मलयस्य पन्नगरिपुर्दूरादयं दृश्यते॥**[४१]

[लोहू लगी हुई अपनी चोंच के संघर्षण से पर्वत शिला को द्रोणी बनाता हुआ; अपने नेत्रों की ज्योति के समूह से पास के वनों को झुलसाता हुआ तथा अपने वज्र-कठोर पंजों को (नायक को दबोच कर) पृथ्वी पर गड़ाता हुआ सर्पों का शत्रु गरुड़ सामने मलय पर्वत के शिखर पर दिखाई देता है।] इस चित्र में भी घटना का रूप स्वाभाविक है पर उसका वर्णन अलौकिक जान पड़ता है।

§ १६—नाटकों में देश-काल की स्थिति प्रत्यक्ष करने के अतिरिक्त प्रकृति वातावरण के रूप में भी उपस्थित हुई है। परन्तु ऐसा मुक्त वातावरण वाले नाटकों में ही सम्भव हुआ है। जैसा कहा गया है राजप्रासादों के अन्दर जिन नाटकों की कथावस्तु विकसित हुई है उनमें प्रकृति को अधिक स्थान नहीं मिला

वातावरण (i) अनुरूप

४१. नागा०; अ० ४; २२ : अं० ५; १३।

है। वातावरण के रूप में प्रकृति की अवतारणा के लिए अधिक स्वच्छन्द भूमिका की आवश्यकता है। कालिदास के शांकुतल में यत्र-तत्र सहज-अनुरूप वातावरण प्रस्तुत किया गया है। चौथे अंक में प्रातःकाल के उल्लेख में शंकुतला की विदा का संकेत छिपा है—'एक ओर औषधियों के पति चन्द्रमा अस्ताचल को चले जा रहे हैं और दूसरी ओर अपने सारथी अरुण को आगे लिए हुए सूर्य्य निकल रहे हैं।' और कंचुकी द्वारा वसंत के इस वर्णन में दुष्यन्त के वियोग-जन्य दुःख की भूमिका वातावरण बन गई है—

> चूतानां चिरनिर्गतापि कलिका बध्नाति न स्वं रजः
> संनद्धं यदपि स्थितं कुरबकं तत्कोरकावस्थया।
> कण्ठेषु स्खलितं गतेऽपि शिशिरे पुंस्कोकिलानां रुतं
> शङ्के संहरति स्मरोऽपि चकितस्तूणार्धकृष्टं शरम्॥[४२]

[आम की मजरी निकल आई है, पर उनमें पराग अभी तक नहीं आ पाया है। फूलने के लिए तत्पर कुरबक का फूल अभी तक अस्फुटित कली के रूप में ही है। शिशिर के बीतने पर भी कोयल की कूक उसके गले तक आकर ही रुक गई है। कामदेव भी अपने तूणीर से बाण निकालता है पर भयभीत होकर उसीमें रख देता है, छोड़ नहीं पाता।] प्रकृति की इस स्थिति में मानव के दुःख का वातावरण छिपा हुआ है। ऐसे ही अनुरूप वातावरण की स्थापना कुन्दमाला में नैमिश की हुई है। इस शांत आश्रम में

> अस्मिन् कपोलमदपानसमाकुलानां
> विघ्नं न जातु जनयन्ति मधुव्रतानाम्।
> सामध्वनिश्रवणदत्तमनोऽवधान-
> निष्पन्दमन्दमदवारणकर्णतालाः॥[४३]

---

४२. अभि०; अ० ४; २: अं० ६; ४
४३. कुन्द०; अं० ४; ९।

[आँख मूँदे हुए, स्तब्ध-कर्ण, स्पन्द-हीन, अपने गालों पर मंडराते मधुपीने में मग्न, भ्रमरों की अभिलाषाओं को भग्न न करते हुए मत्त मतंग यहाँ सामगान सुनने में लवलीन हैं ।] भवभूति के मालतीमाधव और उत्तररामचरित में प्रकृति का वर्णन वातावरण के रूप में हुआ है, पर यह सहज रूप में है । मालतीमाधव के नवें अंक में घाटी के वर्णन में एक-दो स्थलों पर अनुरूप वातावरण है—

> वानीरप्रसवैर्निकुञ्जसरितामासक्तवासं पयः
> पर्यन्तेषु च यूथिकासुमनसामुज्जृम्भितं जालकैः ।
> उन्मीलत्कुटजप्रहासिषु गिरेरालम्ब्य सानूनितः
> प्राग्भागेषु शिखण्डिताण्डवविधौ मेघैर्वितानायते ।[४४]

[बेत के निकुंज से फूलों के झरने से सरिता का पानी सुवासित हो गया है । नदी का तट जुही के पुष्प-समूह से विकसित है । गिरि भागों में विकसित कुटज-पुष्पों से हँसती हुई चोटियों का आलम्बन किये हुए मेघ मयूरों के नृत्य के लिए मण्डप के रूप में फैल रहे हैं ।] श्रीहर्ष की रत्नावली में विदूषक अनुरूप प्रकृति का वर्णन इस प्रकार करता है—'इस मकरन्द उद्यान ने तुम्हारे स्वागत के लिए रेशमी पटवितान फैलाया है । मलय पवन से दोलित आम की मंजरी का मकरन्द उसमें फैल रहा है, कोकिल के मधुर-स्वर तथा भ्रमरों के गुंजार के रूप में उसमें संगीत चल रहा है ।'[४५] इसी प्रकार नागानन्द के प्रारम्भ में तपोवन का वर्णन है । इसका शांत वातावरण समस्त कथा-वस्तु के अनुरूप है—

---

४४. माल०; अं० ९; १५ इसमें पाँचवें अंक के १९ वे श्लोक में श्मशान का अनुरूप वातावरण प्रस्तुत किया गया है—'गुञ्जत्कुञ्ज...परेश्मानं सरित्।

४५. रत्ना०; अं० १; पूर्व १८ ।

मधुरमिव वदन्ति स्वागतं भृङ्गशब्दै-
नतिमिव फलनम्रैः कुर्वतेऽमी शिरोभिः।
मम ददत इवार्घ्यं पुष्पवृष्टिं किरन्तः
कथमतिथिसपर्यां शिक्षिताः शाखिनोऽपि ॥[४६]

[देखो, किस प्रकार इन वृक्षों को अतिथियों के सत्कार की शिक्षा दी गई है। ये भ्रमर-शब्दों के मिस मधुर स्वागत कर रहे हैं, फलों से नमित शाखाओं से मानों वे सिर झुका कर नमस्कार कर रहे हैं और फूलों को बिखरा कर मुझे अर्ध्य दे रहे हैं।] प्रकृति का यह रूप एक प्रकार से भावों के अनुरूप है।

§ १७—जब वातावरण में किसी प्रकार की व्यंजना नहीं रहती है, उस समय सहज रूप में उसका चित्रण होता है। यह वर्णना देश-काल तथा घटना के समान वातावरण की सृष्टि मात्र करती है। वातावरण के इस रूप में वस्तु से किसी प्रकार का सम्बंध परिलक्षित नहीं होता। कालिदास के सहज वातावरण में भी किसी प्रकार की कथात्मक अनुरूपता मिल जाती है। मृच्छकटिक के आठवें अंक में देश-काल के साथ सहज वातावरण को भी प्रस्तुत किया गया है। दोपहर का वर्णन शकार इस प्रकार करता है—

ii सहज

शिलशि मम णिलीणे भाध। शुज्जरश पादे,
शउणि-खग-विहङ्गा लुक्खशाहाशु लीणा।
णल-पुलिश-मनुश्शा उण्हदीहं शशन्ता
घल-शलण-णिशण्णा आदवं णिव्वहन्ति ॥[४७]

[सूर्य्य की किरणें मेरे सिर पर आकर पड़ीं; अनेक प्रकार के पक्षी वृक्षों की शाखाओं में छिप रहे; सभी लोग गर्मी के कारण हाफते हुए घरों में छिप कर दोपहर के कठिन घाम को बिता रहे हैं।] इस चित्रण

---

४६. नागा०; अं० १; ११।
४७. मृच्छ०; अं० ८; ११।

में काल का रूप वातावरण बन कर फैल गया है, परन्तु कथा-वस्तु का कोई संकेत इसमें न होने से यह सहज है। कुन्दमाला के प्रथम अंक में लक्ष्मण गंगा के तट का वर्णन सहज रूप में करते हैं। इस चित्र में प्रकृति अपने आप में सहज है, वह कथा-वस्तु के प्रति पूर्ण रूप से निरपेक्ष है—

आदाय पङ्कजवनान्मकरन्दगन्धान्
कर्षन्नितान्तमधुरान् कलहंसनादान्।
शीतास्तरङ्गकणिका विकिरन्नुपैति
गंगानिलस्तव सभाजन काङ्क्षयेव॥[४८]

[कमल-वनों की मकरन्द-गंध को लेकर, कलहंस के समूह के मधुर नाद को वहन करता हुआ, तरंगों से उच्छलित शीतल जल के छींटों को बिखेरता हुआ पवन तुम्हें प्रसन्न करने को गंगा की ओर से प्रवाहित हो रहा है।] ऐसे चित्रों के लिए नाटकों में अधिक स्थान नहीं मिलता है। परन्तु कभी कभी नाटककार घटना आदि के समान मुक्त वातावरण प्रस्तुत कर देता है। नागानन्द में समुद्र के तट के वर्णन में वातावरण की ऐसी उद्भावना है—

उन्मज्जज्जलकुञ्जरेन्द्ररभसास्फालानुबन्धोद्धतः
सर्वाः पर्वतकन्दरोदरभुवः कुर्वन् प्रतिध्वानिनीः।
उच्चैरुच्चरति ध्वनिः श्रुतिपथोन्माथी यथायं तथा
प्रायः प्रेङ्खदसंख्यशङ्खधवला वेलेयमागच्छति॥[४९]

[क्योंकि यहाँ पानी से निकलते हुए जल-हस्तियों की टक्कर तथा स्फालन से बढ़ा हुआ कानों के परदों को फाड़ता हुआ शोर पर्वत की कन्दराओं को प्रतिध्वनित कर रहा है, इससे जान पड़ता है चक्कर लगाते हुए असंख्य शंखों से धवलित ज्वार आ रहा है।] भवभूति के नाटकों में

---

४८. कुन्द०; अं० १; ५।
४९. नागा०; अं० ४; ३।

प्रकृति के स्थल अधिक हैं, साथ ही वे प्रकृति की सघन स्थिति के चित्रण मे अधिक सफल हुए हैं। उनके वातावरण में यही सघनता प्रत्यक्ष हुई है। इस वातावरण म वस्तु-स्थिति की अनुरूपता की अपेक्षा सहज प्रकृति को उपस्थिति करने का प्रयास अधिक है। मालतीमाधव में श्मशान का चित्र भयानक है और वह घटना-स्थिति के अनुरूप अवश्य है। परन्तु कवि की प्रवृत्ति प्रकृति की स्थिति को सघनता के साथ सहज रूप में चित्रित करने की है। मालतीमाधव में विन्ध्याचल तथा उत्तररामचरित में दण्डकवन का वर्णन इसी प्रकार हुआ है। गुफाओं का यह वर्णन दोनों में एक ही है—'यहाँ पर्वत की खोहों में भालू के बच्चों के गुर्राने का नाद प्रतिध्वनित होकर गुंज रहा है और मदमत्त हाथियों द्वारा विदीर्ण सल्लकी के वृक्षों का गाठों की शीतल, कडुई और कसैली गंध फैल रही है।' उत्तररामचरित में कवि सघन वातावरण की सहज अवतारणा इस प्रकार करता है—

कूजत्कुञ्जकुटीरकौशिकघटाघुत्कारवत्कीचक-
स्तम्बाडम्बरमूकमौकुलिकुलः क्रौञ्चावतोऽयं गिरिः।
एतस्मिन् प्रचलाकिनां प्रचलतामुद्वेजिताः कूजितै-
रुद्वेल्लन्ति पुराणचन्दनतरुस्कन्धेषु कुम्भीनसाः॥[५०]

[यह क्रौंचावत पर्वत है। इसके सघन बाँसों के कुंज अपने घोंसलों में घुघुआते हुए उल्लुओं से गुंजित है और उससे भयभीत होकर कौए चुप हैं और यहाँ इधर-उधर उड़ते हुए मोरों के कूजन को सुनकर साँप बरगद की पुरानी कोटरों में व्याकुल होकर काँपते हैं।] इस चित्र में स्थितिओं के साथ ध्वनियों के संयोग से वातावरण की सघनता का निर्देश किया गया है।

§ १८—नाटकों में प्रकृति के भावात्मक चित्रण के लिए अधिक अवसर नहीं मिलता। पात्रों द्वारा उल्लिखित प्रकृति में यत्र-तत्र ही

५०. माल०, अं०९; ६। महा०; अं० ५; ४१। उत्त०; अं० २; २१, २९।

भावात्मक आरोप मिलता है। परन्तु अपनी प्रकृति के अनुसार कुछ नाटकों में भावात्मक वातावरण प्रस्तुत करने वाले चित्र मिलते हैं। इसमें कालिदास का विक्रमोर्वशीय तथा भवभूति का मालतीमाधव प्रमुख हैं। शांकुतल के पाँचवें अंक में नेपथ्य का गीत भावात्मक प्रकृति के प्रतीक चित्र के रूप में है—

iii भावात्मक

अहिणवमहुलोलुवो भवं
तह परिचुंबिअ चुअमंजरिं।
कमलवसइमेत्तणिव्वुदो
महुअर ! विम्हरिओ सि णं कहं ॥[५१]

[हे नये नये मधु के लोलुप मधुकर ! एक बार इस रसाल की मधुर मंजरी को चूम कर तुमने कमलकोश में निवास पाकर इसे कहो एकदम कैसे भुला दिया।] इसमें प्रिय की निष्ठुरता के प्रति उपालम्भ की स्पष्ट व्यंजना है। पिछले तेरहवें अनुच्छेद में विक्रमोर्वशीय के चौथे अंक के प्रकृति तथा मानव जीवन के सामंजस्य का उल्लेख किया गया है। इस अंक में प्रकृति का सघन वातावरण भावों से अनुप्राणित है। पृष्ठभूमि से जिन प्रतीक चित्रों का उल्लेख किया गया है, वे समस्त चित्र इस अंक को भावपूर्ण वातावरण प्रदान करते हैं। चित्रलेखा और सहजन्या की मानसिक स्थिति तथा वेदना को व्यक्त करते हुए दो हंसियों का उल्लेख किया जाता है—'एक दूसरे को प्यार करने वाली दो हंसनियाँ अपनी सखी के दुःख में घबराई हुई आँखों में आँसू भरे हुए तालाब के तीर पर बैठी सिसक रही हैं !' और इसी प्रकार राजा के वियोग दुःख को व्यक्त करने वाला हंस का चित्र है—

हिअआहि अपिअ दुक्खओ सरवरए धुदपक्खओ।
वाहोग्गअ णअणओ तम्मइ हंसजु आणओ ॥

[यह युवा हंस अपनी प्रेमिका के वियोग में पंख फड़फड़ाता हुआ

५१. शाकु०; अं० ५; १।

आँखों में आँसू भरे सरोवर के किनारे बैठा सिसक रहा है।] राजा के सामने प्रकृति उसकी वेदना से अपरिचित अपने आप व्यस्त है—'सुगन्ध से झूमनेवाले भ्रमरों के गान के साथ कोयल की बोली में बजनेवाली बंसियों की ध्वनि से गूँजते हुए पवन से सुन्दरता से अनेक प्रकार के हाव-भाव के साथ नाचता हुआ कल्प-वृक्ष अपने कोमल पत्ते हिला रहा है।' नायक स्वयं भी अपने सामने की अपने आप में मुग्ध प्रकृति का वर्णन करता है—

आलोकयति पयोदान्प्रबलपुरोवातताडितशिखण्डः।
केका गर्भेण शिखी दूरोन्नमितेन कण्ठेन ॥[५२]

[प्रबल पवन से छितराई हुई कलँगीवाला यह मोर अपना कण्ठ ऊँचा उठा कर केका करता हुआ सामने बादलों को देख रहा है।] प्रकृति का यह उल्लास मानवीय वेदना के विरोध में व्यक्त हुआ है। कुन्दमाला में गंगा के तट-प्रदेश में लक्ष्मण प्रकृति को अपनी भावशील स्थिति में उपस्थित करते हैं—'शीतल समीर चंचल तरंगों को उठा रहा है। किसी स्थान पर कल-हंस अपने कलकण्ठ से मनोहर गा रहे हैं और छाया सखी के समान गले मिलती हुई सुख दे रही है। इस प्रकार इस वन में अकेली होने पर भी आप परजिनों से युक्त जान पड़ती हैं।' यह प्रकृति मनःस्थिति के अनुकूल है, परन्तु आगे की घटना का करुण संकेत भी छिपाये हुए है। तीसरे अंक में लक्ष्मण दुःखी राम के मन को सान्त्वना देने के लिए उनका ध्यान आनन्दमग्न प्रकृति की ओर आकर्षित करते हैं—

मरकतहरितानामम्भसामेकयोनि-
र्मदकल कलहंसीगीतरम्योपकण्ठा।
नलिनवनविकासैर्वासयन्ती दिगन्तान्
नरवर पुरतस्ते दृश्यते गोमतीयम् ॥[५३]

५२. विक्र०; अं० ४; ३, ६, १२, १८।
५३. कुन्द०; अं० १; ७: अ० ३; ५।

[मरकत-मणि के समान हरित मनोहर जलवाली, और जिसके तटों को मदमस्त कल-हंस सुन्दर निनादित कर रहे हैं, ऐसी गोमती अपने विकसित कमलों के परिमल से समस्त दिशाओं को महकाती हुई आप के सामने दृष्टिगोचर हो रही है।] इस प्रकृति के रूप में भावशीलता प्रत्यक्ष है। मृच्छकटिक में उपवन, वर्षा, और मध्याह्न का विस्तृत वर्णन हैं। परन्तु इन वर्णनों में भावशीलता के स्थान पर उद्दीपन की भावना अधिक प्रधान है। वर्षा के वर्णन में उद्दीपन के साथ कहीं सहज भावशीलता की व्यंजना भी है। वसंतसेना प्रकृति के इस दृश्य की ओर संकेत करती है—

> एह्येहीति शिखण्डिनां पटुतरं केकाभिराक्रन्दितः
> प्रोड्डीयेव वलाकया सरभसं सोत्कण्ठमालिङ्गितः।
> हंसैरुज्झितपङ्कजैरतितरां सोद्वेगमुद्वीक्षितः।
> कुर्वन्नञ्जनमेचका इव दिशो मेघः समुत्तिष्ठते॥[५४]

[आओ, आओ कहकर मयूरों के केकास्वर से बुलाया जाता हुआ; हर्ष के साथ उत्सुकता से आकाश में उड़ती हुई बगुली से आलिंगन किया जाता हुआ मेघ कमल को छोड़ कर व्याकुल हंस द्वारा देखा जाता हुआ, दिशाओं को अंजन के समान श्याम करता हुआ उठ रहा है।] प्रकृति के इस चित्र में भावारोप है।

क—श्रीहर्ष के नाटकों में रत्नावली तथा प्रियदर्शिका में प्रकृति व्यापक वातावरण के लिए प्रस्तुत नहीं होती। प्रियदर्शिका के इस सन्ध्या चित्र में जो संक्षिप्त वातावरण की उद्भावना है उसमें भाव-व्यंजना भी अन्तर्निहित है। राजा सन्ध्या के साथ अपने हृदय का भावात्मक तादात्मय स्थापित करता है—

श्रीहर्ष और भवभूति

---

५४. मृच्छ०; अं० ५०; २२।

हृत्वा पद्मवनद्युतिं प्रियतमेवेयं दिनश्रीर्गता
रागोऽस्मिन्मम चेतसीव सवितुर्बिम्बेऽधिकं लक्ष्यते
चक्राह्वोऽहमिव स्थितः सहचरीं ध्यायन्नलिन्यास्तटे
संजाताः सहसा ममेव भुवनस्याप्यन्धकारा दिशः ॥[५५]

[कमल-वन की सुन्दरता का अपहरण करके प्रियतमा के समान यह दिन की श्री चली गई है। मेरे हृदय के समान इस समय सूर्य्य के बिम्ब में लालिमा (राग) अधिक दिखाई देती है। मेरे समान ही चक्रवाक सरोजनी के तट पर अपनी सहचरी का ध्यान कर रहा है। और मेरे समान ही सम्पूर्ण दिशाओं में सहसा अंधकार फैल गया है।] मानव जीवन के समानान्तर प्रकृति में भी भावों का व्यापार परिलक्षित हो रहा है। पर रत्नावली में उद्यान-वर्णन के प्रसंग में एक दृश्य मानवीय मधुक्रीड़ा का अनुकरण करता है—'उद्यान के वृक्ष वसंत के स्पर्श से मदमस्त जान पड़ते हैं। उनके किसलयों की आभा मूँगा के अंकुर के समान जान पड़ती है। भ्रमरों की मधुर गुंजार से जान पड़ता है मदसेवी की अस्पष्ट ध्वनि हो और मलय पवन के झोकों से उनकी शाखाएँ झूम रही हैं।' इस चित्र में भावारोप नहीं है, वरन् भाव-स्थिति के प्रभाव का वर्णन है। नागानन्द के वसंतबाग के वातावरण के साथ ऐसी ही मधुक्रीड़ा का भावशील आरोप है—

अमी गीतारम्भैर्मुखरितलतामण्डपभुवः
परागैः पुष्पाणां प्रकटपटवासव्यतिकराः।
पिबन्तः पर्याप्तं सह सहचरीभिर्मधुरसं
समन्तादापानोत्सवमनुभवन्तीव मधुपाः ॥[५७]

[गीत के आरम्भ होने से लतामण्डप को मुखरित कर तथा

५५. प्रिय०; अं० ३; १०।
५६. रत्ना०; अं० १; १८।
५७. नागा०; अं० ३; ८।

पुष्पों के पराग से नाना प्रकार के विचित्र वस्त्र धारण कर मधुकर, मानों अपनी सहचरियों के साथ पर्याप्त मधुरस पीकर चारों ओर आपानक का उत्सव मना रहे हैं।] भाव-व्यंजना के स्थान पर मधु-क्रीड़ाओं के वर्णन की प्रवृत्ति विकसित होती गई है, ऐसा कई बार उल्लेख किया जा चुका है। भवभूति के नाटकों में प्रकृति की सघन अवतारणा के साथ कुछ स्थलों पर भावात्मक व्यंजना की गई है। भवभूति की दृष्टि प्रकृति के प्रति अधिक सूक्ष्म है, इस कारण इन व्यंजनाओं में आरोप नहीं है और भावशीलता व्यापक रूप से व्यंजित हुई है। महावीरचरित में श्रवण द्वारा वर्णित पम्पासर के निकट की भूमि तथा उत्तररामचरित में शम्बूक द्वारा वर्णित जनस्थान के दृश्य में प्रकृति भाव मग्न है—यहाँ मत्त पक्षियों से आक्रान्त वानीर की लताओं से गिरे हुए पुष्पों से सुगंधित शीतल और निर्मल जलवाली तथा अत्यन्त फलों के भार से श्यामायमान जामुन के निकुंजों में गिरने से शब्दायमान करती हुई निर्झरिणियाँ प्रवाहित हो रही हैं।'[५८] इस दृश्य-चित्र में भाव के आरोप के स्थान पर व्यापक उल्लास की व्यंजना मात्र अन्तर्निहित है। ऐसी ही व्यंजना राम द्वारा वर्णित जनस्थान की प्रकृति में है—

एते त एव गिरयो विरुवन्मयूरा-
स्तान्येव मत्तहरिणानि वनस्थलानि।
आमञ्जुवञ्जुललतानि च तान्यमूनि
नीरन्ध्रनीलनिचुलानि सरित्तटानि ॥[५९]

[मयूर कूँजन करते हैं जहाँ यह वही गिरि है, और ये वन के वे ही भाग हैं जहाँ उन्मुक्त हरिण विचरते हैं और अशोक के कुंजों में सघनता से छाई हुई वानीर की लताओं वाले ये वे ही सरिता के तट हैं।] अपने आप में तन्मय प्रकृति के इस रूप के साथ राम के वनवास के

---

५८. महा०; अ० ५; ४०। उत्त०; अं० २; २०।
५९. उत्त०; अं० २; २३।

आनन्दोल्लास की स्मृति छिपी हुई है और इस स्मृति के विरोध में वर्तमान मानसिक वेदना की व्यंजना प्रत्यक्ष हो जाती है। इस प्रसंग में यत्र-तत्र यह भावना आ गई है। मालतीमाधव की विस्तृत प्रकृति योजना में भावशीलता को अधिक स्थान मिला है। इसमें प्रकृति उद्दीपन के रूप में प्रयुक्त हुई है, और भावात्मक भी है। नवें अंक में मकरन्द वन-भूमि के उल्लास को वर्णन करता है—'चारो ओर कदम्ब के वृक्षों ने अपने पुष्पों की विकास-श्री से सुशोभित किया। शैल के पास का भूमि उनए हुए घनघोर से श्यामल लगती है। केतकी और मोगरा के फूलों से आच्छादित तरित-तट पर जान पड़ता है चादर पड़ी है। और लोध्र तथा केनर के पुष्पों से मानों वन-भूमि मुसकाती हुई दिखाई पड़ती है।' प्रकृति के रंगों तथा क्रियाओं के संयोग से उत्फुल्ल उल्लास की भावना व्यंजति होती है। माधव के वियोगी मन के लिये प्रकृति का यह रूप उद्वेगकारी है—

तरुणतमालमालनीलबहुलोन्नमदम्बुधराः
शिशिरसमीरणावधुतनूतनवारिकणाः।
कथमवलोकयेयमधुना हरिहेतिमती-
मंदकलनीलकण्ठकलहैर्मुखराः ककुभः ॥[६०]

[जिसमें अत्यधिक नीले तथा तरुण तमाल के समान बादल झुक आते हैं, पवन के झकझोरने से शीतल जल के कण फैल रहे हैं ऐसी, मदमत्त मयूरों के समवेत स्वर से कूजित दिशाओं को इस समय इन्द्र-धनुष से व्याप्त किस प्रकार देखा जाय।] इस प्रकृति के चित्रण में सहज भावशीलता है जो अपने उल्लास में नायक के मन के विरोध में उपस्थित हुई है।

§१९—नाटकीय कथा-वस्तु में प्रकृति में आत्मीय सहानुभूति प्रदर्शित करने का अवसर साधारणतः नहीं रहता। क्योंकि प्रकृति के

---

६०. माल०; अं० ९; १६, १८।

प्रति आत्मीयता के लिए मानव जीवन तथा प्रकृति में सम्बंध उपस्थित होना चाहिए। रंग-मंच पर प्रकृति का प्रदर्शन उल्लेखों पर निर्भर है, ऐसी स्थिति में कथा-वस्तु के विकास में पात्र और प्रकृति में किसी सम्बंध की कल्पना सहज नहीं है। परन्तु इस कठिनाई की स्थिति में भी कालिदास और भवभूति ने प्रकृति और मानव-जीवन को जिस निकटता से चित्रित किया है और जिस आत्मीय सहानुभूति का वातावरण प्रस्तुत किया है वह महान कला का उदाहरण है। कालिदास की श्रेष्ठता का बहुत बड़ा श्रेय प्रकृति और जीवन के इस तादात्मय को मिलना चाहिए। इन दोनों कवियों के अतिरिक्त अन्य कवियों ने कहीं-कहीं इस प्रकार का प्रयोग किया है। प्रतिमा के सातवें अंक में राम सीता को जनस्थान दिखलाते हुए प्रकृति के साथ अपने पूर्व आत्मीय सम्बंध का उल्लेख करते हैं। सीता अपने 'पुत्र के समान पाले हुए वृक्षों को अब दृष्टि उठाकर देखने योग्य पाती हैं" राम 'सप्तपर्ण के नीचे भरत को देख कर भयभीत मृग-समूह का' स्मरण करते हैं।[६१] कुन्दमाला में सीता को छोड़ने की कल्पना से विह्वल होकर लक्ष्मण प्रकृति को सहानुभूति-जन्य शोक से अभिभूत पाते हैं—

आत्मीय सहानुभूति

एते रुदन्ति हरिणा हरितं विमुच्य
हंसाश्च शोकविधुराः करुणं रुदन्ति।
नृत्तं त्यजन्ति शिखिनोऽपि विलोक्य देवीं
तिर्यग्गता वरममी न परं मनुष्यः॥[६२]

[हरी घास को छोड़ कर ये हरिण करुण रूदन कर रहे हैं; शोक-विह्वल हंस करुण विलाप कर रहे हैं; देवी को देखकर मोरों ने नृत्य छोड़ छोड़ दिया है। इस प्रकार पक्षी तक शोक मग्न हो गए, परन्तु नरों का

६१. प्रति०; अं० ७; पूर्व ४।
६२. कुन्द०; अं० १; १८।

हृदय प्रभावित नहीं हुआ।] इसी प्रकार नागानन्द में आश्रम की प्रकृति स्वागत-सत्कार करती चित्रित की गई है, यह एक प्रकार से प्रकृति में मानवीय सम्बंध का संकेत है (१;११)।

§२०—जैसा कहा गया है कालिदास ने जीवन और प्रकृति में आत्मीय तादात्मय स्थापित करने में अपूर्व सफलता प्राप्त की है। शांकुतल के आश्रम-जीवन और विक्रमोर्वशीय के वियोग-अंक में प्रकृति मानव-जीवन को व्यापक सहानुभूति से घेरे हुए है। शंकुतला निसर्ग-पुत्री कही गई है। कालिदास ने शंकुतला का चरित्र प्रकृति से एकरस कर दिया है। कण्व के आश्रम में शंकुतला का विकास लता-वृक्षों, हरिण-हरिणियों के साथ हुआ है। आश्रम की प्रकृति से शकुंतला का कितना स्नेह है यह उसके इस उत्तर से प्रकट होता है—

i कालिदास

ण केअलं तादणिओओ एव्व; अत्थि मे सोदर सणेहो एदेसु,

[केवल पिता की आज्ञा से नहीं, मेरा इनसे सगे भाई जैसा प्यार भी है]। प्रकृति की गोद में विचरण करती हुई सखियाँ इसी आत्मीय स्नेह के साथ लता-वृक्षों का उल्लेख करती चलती हैं। शकुंतला झीमते केसर वृक्ष को देखकर कहती है—'यह पवन के झोंकों से हिलती हुई पत्तियों की उँगलियों से मुझे बुला रहा है।'[६३] आम के वृक्ष के साथ वनज्योत्स्ना का उल्लेख आत्मीयता का स्नेह-सम्बंध ही व्यक्त करता है। अभिज्ञानशाकुंतल के चौथे अंक में यह आत्मीय स्नेह अधिक प्रत्यक्ष होता है। शकुंतला को लता-वृक्ष फूल-पत्तों के स्थान पर आभूषण दान देते हैं। विदा के अवसर पर आश्रम-वासियों की भाँति प्रकृति में भी करुण अवसाद छा जाता है। प्रियंवदा कहती है कि 'ज्यों-ज्यों शकुंतला की विदाई की घड़ी पास आ रही है, त्यों-त्यों तपोवन भी उदास दिखाई पड़ता है, देखो—

६३. अभि०; प्रथम अंक से।

उग्गलिअदब्भकवला मिआ परिच्चत्तणच्चणा मोरा ।
ओसरिअपंडुपत्ता मुअंति अस्सू विअ लदाओ ॥

[मृगियाँ चबाई हुई कुश के कौर उगल रही हैं, मोरां ने नाचना छोड़ दिया है और लताओं से पीले पत्ते इस प्रकार झड़ रहे हैं मानों उनके आँसू गिर रहे हैं ।] आगे शकुंतला वन-ज्योत्स्ना को प्रेम-पूर्वक भेटती है । कण्व आगे रोक कर खड़े हुए हरिण की ओर ध्यान आकर्षित करते हैं, रोती हुई शकुंतला उसे वापस करती है—

वच्छ ! किं सहवासपरिच्चाइणिं मं अणुसरसि ? अचिरप्पसूदाए जणणीए विणा वड्ढिदो एव्व । दाणिं पि मएविरहिदं तुमं तादो चिंतइस्सदि । णिवत्तेहि दाव ।[६४]

[वत्स, मुझ साथ छोड़कर जानेवाली के पीछे-पीछे तू क्यों वापस आ रहा है । तेरी माँ जब तुझे जन्म देकर मर गई थी उस समय मैंने तुझे पाल-पोस कर बड़ा किया था । अब मेरे पीछे पिता जी तेरी देख-भाल करेंगे । जा लौट जा ।] प्रकृति के साथ ऐसी आत्मीय सहानुभूति का चित्र कहाँ मिलेगा । अपनी सहचरी प्रकृति को छोड़कर जाते शकुंतला को परिजनों को छोड़ने जैसा दुःख हो रहा है, और प्रकृति भी इस वेला में उदास तथा दुःखी है । विक्रमोर्वशीय के चतुर्थ अंक में जो वातावरण और घटना की नियोजना की गई है, उसके अन्दर आत्मीयता की भावना परिलक्षित होती है । पार्श्वभूमि में जिन प्रतीक-चित्रों का उल्लेख किया गया है, वे प्रकृति की सहानुभूति से रंजित हैं—'दुःख से भरा हुआ अपनी प्रियतमा को देखने के लिये अधीर और अपने शत्रु को पछाड़ देनेवाला यह बड़ा सा हाथी मन में घबराया हुआ-सा बड़े वेग से चला जा रहा है ।' इस हाथी के रूप में मानों प्रकृति राजा के दुःख से संवेदित हो उठी है । प्रत्यक्ष प्रकृति राजा के दुःख से अपरिचित अपने आप में मग्न है । नायक सामने बिखरी हुई प्रकृति से

---

६४. अभि०; अं० ४, ११, पूर्व १४ ।

अत्यंत स्नेह के साथ अपनी प्रिया का पता पूछता है—

नीलकण्ठ ममोत्कण्ठा वनेऽस्मिन्वनिता त्वया।
दीर्घापाङ्गा सितापाङ्गदृष्टा दृष्टिक्षमा भवेत् ॥

[हे उजले कोएवाली आँखोंवाले मयूर! क्या, तुमने मेरी उस प्रियतमा को इस वन में देखा है जिसकी बड़ी बड़ी आँखें हैं, जिसके लिए मैं व्याकुल हूँ और जो देखते ही बनती है।] परन्तु मोर अपने नृत्य में तन्मय है, वह उसकी बात पर ध्यान नहीं देता। इस उपेक्षा के कारण नायक प्रकृति के प्रति उपालम्भशील होता है—

महदपि परदुःखं शीतलं सम्यगाहुः
प्रणयमगणयित्वा यन्ममापद्गतस्य।
अधरमिव मदान्धा पातुमेषा प्रवृत्ता
फलमभिमुखपाकं राजजम्बूद्रुमस्य ॥[६५]

[दूसरे के दुःख को कितना ही अधिक होने पर लोग कम ही समझते हैं। इसलिए मुझ विपत्ति में पड़े को अनसुनी करके यह कोयल पकी जामुन का रस, मदान्ध द्वारा प्यारी के अधरों के समान पीने में लगा हुआ है।] इस उपालम्भ में प्रकृति के प्रति आत्मीय भावना ही सन्निहित है।

§२१—कालिदास के समान भवभूति ने अपने नाटकों में प्रकृति को मानवीय जीवन के अति समीप उपस्थित किया है। मालतीमाधव में

ii भवभूति

माधव अपनी वियोग वेदना में प्रकृति को सम्बोधित करता है। शैल शिखर पर छाये हुए मेघ 'जिसके अंग में बिजली लिपट रही है, अंग की शोभा इन्द्र धनुष से बढ़ रही है और जिससे चातक प्रेमपूर्वक जल की याचना करते हैं' से वह अपना संदेश भेजने की प्रार्थना करता है। लेकिन प्रकृति उसकी वेदना के प्रति निरपेक्ष है। वह अपने आप में मस्त है, और उसके विलास को नायक

---

६५. विक्र०; अं० ४; १९, २१, २७।

आत्मीयता के साथ देखकर उपालम्भशील भी नहीं हो पाता—

केकाभिर्नीलकण्ठस्तिरयति वचनं ताण्डवादुच्छिखण्डः
कान्तामन्तः प्रमोदादभिसरति मदभ्रान्ततारश्चकोरः।
गोलाङ्गूलः कपोलं छुरयति रजसा कौसुमेन प्रियायाः
कं याचे यत्र तत्र ध्रुवमनवसरग्रस्त एवार्थिभावः ॥[६६]

[आनन्द से पूँछ उठाकर नाचते हुए मोर केका ध्वनि करते हैं, मद से अपने नेत्र के तारों को नचाते हुए चकोर मोद से अपनी प्रिया के पास जाते हैं और लंगूर अपनी प्रिया के गाल पर पुष्पों की धूलि लगाते हैं। ऐसे समय किससे याचना की जाय, याचना के लिए अवसर ही नहीं मिलता।] इस समस्त वर्णन में नायक की मनःस्थिति प्रकृति को आत्मीय निकटता से उपस्थित करती है। शकुंतला के समान उत्तररामचरित में प्रकृति की आत्मीय महानुभूति का व्यापक प्रसार मिलता है। प्रथम अंक में राम-सीता भित्ति-चित्रों को देखकर अपने वन-जीवन की सहचरी प्रकृति का स्मरण करते हैं। दूसरे अंक में जनस्थान की वन देवी वासन्ती स्वयं पात्र के रूप में प्रकट होती है। आत्रेयी द्वारा सीता-परित्याग की कथा से देवी वासन्ती के रूप में मानों सारा जनस्थान दुःख में डूब जाता है। शम्बूक द्वारा निर्देशित जनस्थान की बिखरी हुई प्रकृति को देखकर राम को अपने वन-जीवन की स्मृति वेग से आ जाती है। सीता के साथ के उस जीवन के साथ यह प्रकृति भी उनकी सहचरी हो गई थी। पंचवटी का स्नेह बरबस राम को अपनी ओर खींच रहा है। तीसरे अंक की योजना में कवि ने प्रकृति के क्षेत्र में प्रकृति-पात्रों की अवतरणा द्वारा जिस प्रकृति और जीवन की सहानुभूति-पूर्ण आत्मीयता का परिचय दिया है वह अद्वितीय है। तमसा और मुरला नदियाँ पात्र के रूप में सीता को आश्वासन दे रही हैं और स्वयं वनदेवी वासन्ती राम के साथ दण्डक वन में विचर रही है। यह

---

६६. माल०; अं० ९; २५, ३०।

प्रसंग अपने आप में अनुपम है। इसमें एक ओर अदृश्य सीता प्रकृति के अपने विहार-स्थलों को घनी संवेदना के साथ देख रही हैं और दूसरी ओर राम वासन्ती के साथ अपनी पुरानी परिचित आत्मीय प्रकृति को देखते घूम रहे हैं। वासन्ती कदम की डाल पर कूजते मयूर की ओर राम का ध्यान आकर्षित करती है—

अतरुणमदताण्डवोत्सवान्ते
स्वयमचिरोद्गतमुग्धलोलबर्हः।
मणिमुकुट इवोच्छिखः कदम्बे
नर्दति स एष बधूसखः शिखण्डी॥

[यौवन प्राप्त होने से नवीन मनोहर चंचल पूँछवाला तथा जिसकी शिखा मणि मुकुट के समान उठी हुई है ऐसा यह मयूर हर्षोन्माद के नृत्य के बाद अपनी वधू के साथ कदम्ब पर कूजन कर रहा है।] और वास्तव में यह वही मयूर है जिसे राम-सीता ने पाला था। राम को 'अपनी आँखों में पुतलियों को नचाती हुई तथा अपनी भौंहों से मण्डल का संकेत देती हुई कमलवत हथेलियों की ताल पर मयूर को नचाती हुई' सीता की याद आ जाती है। सीता का यह वात्सल्य प्रगाढ़ सहानुभूति का परिचय देता है और इसी कारण राम के हृदय को यह स्मृति अत्यधिक संवेदित कर देती है। आगे वासन्ती प्रकृति के अन्य आत्मीय स्थल का संकेत करती है—

एतत्तदेव कदलीवनमध्यवर्त्ति
कान्तासखस्य शयनीयशिलातलं ते।
अत्र स्थिता तृणमदाद् बहुशो येभ्यः
सीता, ततो हरिणकैर्न विमुच्यते स्म॥[६७]

[यह देखो, प्रिया के साथ शयन करने की कदलीवन के मध्य-स्थित शिला तल है। और क्योंकि यहाँ सीता ने अनेक बार हरिणों को घास दी थी

---

६७. उत्त०; अं० ३; १८, १९, २१।

इस कारण आज भी वे इसे नहीं छोड़ते।] राम के लिए यह दृश्य असह्य हो जाता है। और अदृश्य सीता भी इस समस्त प्रकृति को देखकर अपने स्नेह सम्बंध की याद कर विह्वल हो जाती हैं। वास्तव में जन्मस्थान और पंचवटी के साथ जिस प्रेम-सम्बंध की स्थापना वनवास के दिनों में उन्होंने की थी, वही इस अंक में वियोग की स्थिति में उन्हें विकल कर रहा है।

सप्तम प्रकरण

उद्दीपन के रूप में प्रकृति

§१—आलम्बन-रूप की व्याख्या करते समय हम कह चुके हैं कि जब आश्रय की भाव-स्थिति का आलम्बन प्रत्यक्ष रूप से दूसरा व्यक्ति रहता है, उस समय प्रकृति उस भाव-स्थिति से उद्दीपन के रूप में ही सम्बंधित होती है। वस्तुतः प्रकृति की गति और चेतना के साथ मानव अपनी भाव-स्थिति में सम प्राप्त करता है। इस सम-स्थिति पर प्रकृतिवादी कवि के लिए प्रकृति आलम्बन होती है। इस रूप में वह प्रकृति पर अपनी भाव-स्थिति तथा संवेदनाओं का आरोप कर लेता है अथवा प्रकृति के माध्यम से उनकी व्यंजना करता है। पर यही सम जब किसी पूर्व-निश्चित (अन्य आलम्बन के सम्बंध में) भाव-स्थिति से समता या विरोध उपस्थित करता है, उस समय कभी प्रकृति से भावस्थिति प्रभावित होती है और कभी भाव-स्थिति से प्रकृति। प्रकृति की यह स्थिति प्रत्यक्ष उद्दीपन की सीमा है। प्रकृति के विभिन्न दृश्यों और उनकी परिवर्तित होती स्थितियों में जो संचलन तथा गति का भाव छिपा है, वही सम-विषम होकर भावों को उद्दीप्त करता है। और कभी

उद्दीपन की सीमा

भावों की सम-विषम स्थिति से प्रकृति प्रभावित जान पड़ती है।

क—यह प्रकृति और जीवन का सम-तल है। जीवन की भावशीलता और प्रकृति पर उसी का प्रतिबिम्बित अथवा प्रतिघटित रूप साथ-साथ उपस्थित होते हैं। इनमें साम्य तथा विरोध दोनों की सम्भावना है। जीवन की सुखमयी स्थिति में प्रकृति की कठोरता तथा उससे सम्बंधित कष्टों की भावना से सुरक्षा का विचार उसे अधिक बढ़ाता है। इसी प्रकार प्रकृति में व्यक्त होता हुआ उल्लास जीवन की वेदना को और भी तीव्र करता है। इस स्थिति में प्रकृति और जीवन लगभग समान तल पर होते हैं। इन्हीं में किंचित् भेद पड़ जाने से दो रूपों का विकास होता है। एक स्थिति में भाव आधार रूप में उपस्थित होता है। भाव की स्थिति संयोग-वियोग की दुःख-सुखमयी भावना होती है। और प्रकृति इन्हीं भावनाओं की व्यंजना करती हुई प्रकट होती है। प्रकृति का यह चित्र भावों के रंगों से रंजित होता है। जिस प्रकार अनेक व्यभिचारियों तथा अनुभावों से स्थायी भावों की स्थिति व्यक्त होती है, उसी प्रकार उनके आधार पर प्रकृति की भावशीलता व्यंजित होती है। आलम्बन-रूप में कवि प्रकृति के समक्ष अपनी स्थिति को, अपनी अनुभूतियों को उसी के माध्यम से समझता और व्यक्त करता है। इसी प्रकार उद्दीपन रूप में कवि आश्रय की पूर्व-आलम्बन से सम्बंधित भाव-स्थिति को प्रकृति के माध्यम से व्यंजित करता है। इसी की दूसरी स्थिति में प्रकृति केवल आधार रूप में रहती है और प्रमुखतः भावों की अभिव्यक्ति रहती है। प्रकृति के आधार में वर्तमान संयोग या वियोग की तीव्र व्यंजना छिपी रहती है और इसी के आधार पर भावों की अभिव्यक्ति होती है। आलम्बन की दृष्टि से इस स्थिति में कवि प्रकृति के समक्ष उससे प्रभाव ग्रहण करता हुआ भी अपनी भाव-स्थिति को अधिक सामने रखता है। पिछले प्रकरणों में वर्णना की व्यापक भावशीलता की दृष्टि से इन रूपों को आलम्बन के अन्तर्गत स्वीकार किया गया है।

भाव और प्रकृति का आधार

ख—संस्कृत महाकाव्यों की परम्परा में रूढ़िवाद के साथ भाव-व्यंजना के स्थान पर अनुभावों के वर्णन को महत्व मिलता गया है। इस कारण भाव-व्यजना का रूप अनुभावों के माध्यम से व्यक्त किया जाने लगा। प्रकृति से अनुभावों को व्यक्त करने की परम्परा चली। दूसरे पक्ष में प्रकृति की हल्की उल्लेखात्मक पृष्ठ-भूमि पर भावों को व्यक्त किया जाता है और इसमें अनुभावों का आश्रय ही अधिक लिया गया है। यह समस्त व्यंजना प्रत्यक्ष आरोप के माध्यम से भी की जा सकती है। प्रकृति पर यह आरोप उद्दीपन की सीमा में ऊपर के सिद्धान्त के अनुसार माना जा सकता है। आलम्बन के रूप में कवि आरोप के रूप में प्रकृति को व्यापक जीवन और भावों में संलग्न पाता है। प्रकृतिवादी का आरोप व्यापक रूप से अपनी मानसिक चेतना से सम्बंधित है, और बाद में प्रत्यक्ष सामाजिक आधार के अभाव में उसकी अभिव्यक्ति का रूप व्यक्तिगत सीमाओं से अलग हो जाता है। उद्दीपन-विभाव में आरोप सामाजिक स्थायी-भाव को दृष्टि से किया जाता है। मानवीय भावों की प्रधानता से प्रकृति का आरोप इसमें रूपात्मक तथा सकुचित होकर व्यक्तिगत सीमाओं में अधिक बँधा रहता है। इस कारण इनमें सामाजिक सम्बंध और भाव ही प्रत्यक्ष रहता है, प्रकृति गौण हो जाती है। इस आरोप में भावों, अनुभावों के साथ शारीरिक आरोप भी सम्मिलित हैं।

अनुभावों का माध्यम आरोपवाद

महाप्रबन्ध काव्य

§ २—महाभारत के कथा-विस्तार में जिस प्रकार प्रकृति वर्णन के कम अवसर आए है, उसी प्रकार उद्दीपन की भावना व्यापक रूप में ही पाई जाती है। अर्जुन के सम्मुख फैली प्रकृति के इस रूप में जो भावशीलता व्याप्त है उसमें उद्दीपन की स्थिति प्रतिबिम्बित है—'कमल के मधु को पीकर मस्त, कमल के

महाभारत

पराग से सन कर पीले हुए भौरे फूलों पर घूम-घूम कर गुनगुना रहे थे। इसी प्रकार आनन्द से मस्त धीमी चाल से चलने वाले मोर मोरनियों के साथ टहल रहे थे। वे मेघों की गरजना सुनकर मदन से व्याकुल हो अपनी विचित्र पूँछें फैलाकर मधुर शब्द करते हुए नाच उठते थे।' प्रकृति के क्रिया-कलाप में जो मानवीय मन-स्थिति प्रतिघटित हुई है, वह पात्र की भाव-स्थिति की पार्श्वभूमि पर प्रकृति को उद्दीपन की सीमा प्रदान करता है। कभी इस भावारोप के बिना प्रकृति मानव के लिए सहज उद्दीपन के रूप में उपस्थित होती है—

कर्णिकारान्विरचितान्कर्णपूरानिवोत्तमान्।
अथापश्यत्कुरबकान्वनराजिषु पुष्पितान्।
कामवश्योत्सुककरान्कामस्येव शरोत्करान्॥

[कहीं पर फूले हुए कनैर कर्ण फूलों के समान दिखाई पड़ते थे। कहीं पर फूले हुए कुरबक के वृक्ष कामदेव के बाणों के समान कामियों के हृदय में वेदना उत्पन्न कर रहे थे।] और 'कहीं पर तिलक के वृक्षों की कतारें देख कर जान पड़ता था कि महावन के मस्तक पर तिलक लगा है। भौरे जिन पर गुंज रहे हैं ऐसे मंजरी मंडित आम के पेड़ों की पंक्तियों भी कामदेव के बाण के समान जान पड़ती थीं।'[1] इस प्रकृति के रूप में अर्जुन के मन में स्वाभाविक रति-भावना को तीव्र करने की स्थिति लक्षित होती है। पर इस प्रकार का प्रकृति का उद्दीपन रूप महाभारत में एक दो स्थलों पर ही ढूँढा जा सकता है।

§ ३—महाभारत के समान रामायण की स्थिति भी है। इसके अन्तर्गत प्रकृति की वर्णना का व्यापाक विस्तार मिलता है, परन्तु उसमें उद्दीपन रूप नहीं के बराबर है। जैसा कहा गया है आदि कवि ने प्रकृति को बहुत मुक्त भाव से देखा है, और उसी रूप में अपने काव्य में भी स्थान दिया है। वियोग

रामायण

---

१. महा० ; आर० पर्व; अ० ६९।

को स्थिति में भी राम के सामने प्रकृति उद्दीपन-रूप में नहीं आई है। इस मानसिक स्थिति में राम प्रकृति को उसके स्वतंत्र रूप में देख सके हैं। ऐसे वर्णनों में विरोध के माध्यम से प्रकृति में सहज उद्दीपन को व्यंजना मात्र यत्र-तत्र मिल जाती है। प्रकृति अपने उल्लास में, अपनी उमंग में राम की वियोग-व्यथा के विरोध में उपस्थित हुई है। इस स्थिति में पूर्व-स्मृति को जगाकर वह पात्र को अधिक संवेदनशील कर देती है। राम पम्पा सरोवर के मार्ग के दृश्यों के सौंदर्य से आकर्षित होकर भी दुःखी होते हैं।[२] किष्किन्धा काण्ड में राम द्वारा वर्णित वर्षा और शरद् के वर्णनों में यत्र तत्र इस प्रकार की व्यंजना मिल जाती है। लेकिन कहीं प्रकृति ने स्पष्ट रूप से मनोभावों को उद्दीप्त नहीं किया है। वर्षा-ऋतु के उल्लासमय वर्णन में विरोध के कारण राम की व्यथा की तीव्र व्यंजना स्वतः आ जाती है। परन्तु कभी उसमें रति-भावना का उद्दीपन इस प्रकार स्पष्ट भी हुआ है—

सुरतामर्दविच्छिन्नाः स्वर्गस्त्रीहारमौक्तिकाः।
पतंति चातुला दिक्षु तोयधारा समंततः॥[३]

[सुरत के उपरान्त मर्दन से स्वर्ग की स्त्रियों के बिखरे हुए हार के समान चारों ओर जलधारा गिर रही है।] इसी प्रकार शरद् वर्णन में एक दो उल्लेख आरोप के अतिरिक्त स्पष्ट उद्दीपन के हैं—'बाण पादप के पुष्पित होने से तथा उस पर भ्रमरों की गुंजार से जान पड़ता है मानों कामदेव ने अपना प्रचंड चाप धारण कर लिया है।'[४] काम-धनुष के उल्लेख से

२. रामा०; अर०; स० ७५: १९, १८—

तत्र जग्मतुरव्यग्रौ राघवौ हि समाहितौ।
स तु शोकसमाविष्टो रामो दशरथात्मजः॥
स्वच्छस्फटिकसंकाशां तीरस्थद्रुमशोभिताम्।
सखीभिरिव संयुक्तां लताभिरनुवेष्टिताम्॥

३. वही; किष्कि०; स० २८; ५१।

४. वही; वही; स० ३०; ५६।

प्रकृति की उद्दीपन-शक्ति का उल्लेख किया गया है। हनुमान जब अशोक-वाटिका में पहुँचते हैं, उस समय वाटिका के वर्णन में सहज रूप से यह व्यंजना छिपी है—

वृतेर्नानाविधैर्वृक्षैः पुष्पोपगफलोपगैः।
कोकिलैर्भृङ्गराजैश्च मत्तैर्नित्यनिषेविताम्॥
प्रहृष्टमनुजां काले मृगपक्षिमदाकुलाम्।
मत्तबर्हिणसंघुष्टां नानाद्विजगणायुताम्॥[५]

[उस वाटिका में विविध प्रकार के फलों और फूलों से लदे हुए वृक्षों पर मतवाली कोयलें कूक रही हैं और मस्त भौंरे गुंजार कर रहे हैं। वहाँ मतवाले मृग और पक्षी भरे हुए हैं, और अनेक पक्षियों के साथ मतवाले मयूरों के झुंड नाच रहे हैं।] प्रकृति के इस उल्लास और उन्माद में शृंगार के उद्दीपन की भावना विद्यमान है।

आरोप

क—इसके अतिरिक्त कुछ स्थलों पर प्रकृति पर मानवीय आरोप से उद्दीपन-रूप को प्रस्तुत किया गया है। लेकिन यह प्रवृत्ति भी रामायण में यत्र-तत्र ही मिलती है। शरद् ऋतु के वर्णन में कतिपय आरोप मिलते हैं—'मीनों के रूप में जिनकी करधनी प्रत्यक्ष हैं ऐसी नदी रूपी वधुएँ मन्द-मन्द प्रवाहित हैं, जैसे कांतोपभुक्त कामिनी प्रातःकाल मन्द चाल से चलती है।'[६] इस चित्र की प्रकृति में शृंगार की भावना पात्र की मनःस्थिति के लिए उद्दीपक है। हनुमान पर्वत से प्रवाहित नदी को लंका में इसी भावना से देखते हैं—'उस पर्वत से निकल कर एक नदी बह रही थी, वह ऐसी जान पड़ी मानों कोई प्रियतमा कामिनी कुपित हो अपने प्रियतम की गोद को त्याग कर भूमि पर पड़ी हो।'[७] इस आरोप द्वारा प्रकृति जैसे रति-भाव

५. वही सुन्द०; स० १४; ७, ८।
६. वही; किष्कि०; स० ३०; ५४।
७. वही; सुन्द०; स० २; २७।

जगाती है। आगे चल कर हम देख सकेंगे कि इस प्रकार के प्रयोग महाकाव्यों में बढ़ते गये हैं।

गीत-काव्य

§४—विभिन्न काव्य रूपों की विवेचना के अन्तर्गत यह कहा गया है कि संस्कृत काव्य की परम्परा में गीतियों को स्थान नहीं मिल सका है। यद्यपि इस भावना का रूप कुछ काव्यों में मिलता है। गीति की गेय-शैली में तो केवल जयदेव के गीत-गोविन्द का नाम लिया जा सकता है। इसमें गीति-भावना का उन्मुक्त वातावरण तथा उसकी स्वच्छंद अभिव्यक्ति तो मिलती है, पर व्यक्तिगत स्पर्श का अभाव है। यह ठीक है कि इसमें राधा-कृष्ण के प्रेम को कवि ने अत्यधिक तन्मयता से व्यक्त किया है, लेकिन वर्णनात्मक होने के कारण मांसल स्थूलता अधिक प्रत्यक्ष हो उठती है। मनस-परक न होकर जब गीत कथा-सूत्र का आश्रय लेता है, उस समय ऐसा होना स्वाभाविक है। लेकिन लोक-गीति का उन्मुक्त वातावरण इसमें पूर्ण-रूप से रक्षित है। लोक का गायक सहज रूप में प्रकृति को अपनी भावाभिव्यक्ति में ग्रहण कर लेता है। प्रकृति से उसका युगों का सम्पर्क उसकी भाव-स्थिति से सामजस्य स्थापित कर लेता है, ऐसी स्थिति में प्रकृति उसको आत्मीय जान पड़ती है और कभी अपने समानान्तर उल्लास-विलास में उसकी पूर्व भाव-स्थिति को प्रभावित करती है। रति के स्थायी-भाव को लेकर संयोग-पक्ष में वह कामोद्दीपक है और इसी भाव-स्थिति के वियोग-पक्ष में अतृप्त रहने से प्रकृति वियोगी के दुःख को बढ़ाती है। जयदेव के गीतगोविन्द में आत्मीयता का सहज रूप नहीं मिलता है, परन्तु प्रकृति में उद्दीपन की उन्मुक्त भावना रक्षित है। लोक गीतियों के इसी पक्ष का काव्यात्मक रूप इसमें मिलता है।

उन्मुक्त भावना

§६—गीत गोविन्द में प्रेम की भावशील व्याकुलता के स्थान पर रति का वासनामय स्फुरण अधिक है। इसमें वियोग-जन्य वेदना के स्थान पर

काम की अतृप्ति की विकलता अधिक परिलक्षित होती है। यही कारण है कि इसमें वसंत की अवतारणा कामोद्दीपक वातावरण प्रस्तुत करती है। प्रकृति की सहज स्थिति की कल्पना में भी यह वातावरण इसी प्रकार का लगता है—

कामोद्दीपक वातावरण

नित्योत्सङ्गवसद्भुजङ्गकवलक्लेशादिवेशाचलं
प्रालेयप्लवनेच्छयानुसरति श्रीखण्डशैलानिलः।
किंच स्निग्धरसालमौलिमुकुलान्यालोक्य हर्षोदया-
दुन्मीलन्ति कुहूः कुहूरिति कलोत्तालाः पिकानां गिरः॥[8]

[नित्य गोद में रहनेवाले भुजंगों के दर्शन के क्लेशों से तुषार में स्नान करने की इच्छा से मलय पवन हिमालय की ओर प्रवाहित होता है। सुन्दर आम की मंजरियों को देखकर हर्ष से उल्लसित हो कोकिल के स्वरों ने कुहू कुहू प्रारम्भ कर दिया है।] इसमें उद्दीपन की सहज भावना व्यंजित है, पर समस्त प्रसंग में इसकी ध्वनि कामोद्दीपन के अनुरूप लगती है। अन्यत्र वातावरण कामोद्दीपक निर्माण किया गया है। जान पड़ता है प्रकृति में एक उत्तेजना व्यापक हो गई है—'भ्रमरों का समूह वकुल के पुष्पों में व्याप्त होकर पथिक-वधुओं के मन को मदन मनोरथ से व्याकुल कर रहा है। कस्तूरी की गन्धवाली तमाल के नवदलों की माला धारण किये हुए युवतियों के हृदय को पुष्पित पलास कामदेव के नख की शोभा के समान विह्वल कर रहा है। और इसी प्रकार—

मदनमहीपतिकनकदण्डरुचिकेशरकुसुमविकासे।
मिलितशिलीमुखपाटलपटलकृतस्मरतूणविलासे॥[9]

[राजा मदन के कनकदण्ड की शोभा के समान नागकेसर विकसित हो

८. गीत०; स० १; प्र० ४; ११।
९. भी वही; वही; प्र० ३; ३, ४, ५।

रहा है, और भ्रमरों से आकुलित पाटल कामदेव के तुणीर की शोभा धारण करता है।] प्रकृति का सारा वातावरण मानवीय काम-पीड़ा की पृष्ठि-भूमि बन गया है। इसी प्रभाव को उत्पन्न करने के लिए कुछ ही स्थलों पर आरोप का आश्रय लिया गया है, पर यह आरोप सात्विक अनुभावों का है। 'लज्जाहीन जगत् को देखकर नवकरुण वृक्ष भी अपने पुष्पों के मिस हँस रहा है।......स्फूरित होती हुई मुक्त लताओं के आलिंगन से आम्र-वृक्ष पुलकित हो गया है।'[१०]

§६—लोक गीतियों के समान ही गीतगोविन्द में प्रकृति प्रत्यक्ष रूप में मानवीय रति-भावना को उद्दीप्त करती हुई उपस्थित हुई है।

प्रत्यक्ष उद्दीपन

वातावरण के रूप में प्रकृति और मानवीय भाव-स्थिति में एक प्रकार का सामंजस्य था। प्रकृति मानव के समान उद्वेलित है और इसी कारण उद्दीपन की प्रेरणा उसमें सन्निहित है। लेकिन अन्यत्र प्रकृति प्रत्यक्ष रूप से उद्दीपन का कार्य करती है—'इस ऋतु में (इन दिनों) मधुगन्ध से व्याप्त पुष्पों से आकर्षित भ्रमरों से आम की मंजरियाँ आन्दोलित हैं, और क्रीड़ा करती हुई कोकिलाओं से कूजित हैं। ऐसे समय अपनी प्रियाओं का स्मरण करके पथिक कठिनता से समय व्यतीत करते हैं, क्योंकि उनका मन उद्वेलित हो गया है।' यहाँ प्रकृति मन को प्रभावित करती हुई स्वतः उपस्थित हुई है। इसी प्रकार पवन की प्रभावशीलता प्रकट होती है—

दरविदलितवल्लीमल्लिचञ्चत्पराग-
प्रकटितपटवासैर्वासयन्काननानि।
इह हि दहति चेतः केतकीगन्धबन्धुः
प्रसरदसमबाणप्राणवद्गन्धवाहः ॥[११]

---

१०. वही; वही; वही; ६, ७।

११. वही; वही; वही; ११, १०।

[कामदेव के बाण से प्रेरित, केतकी-गन्ध को धारण किए हुए, पुष्पित जाती की चंचल लताओं से किंचित विकीर्ण पराग रूपी सुगन्धित चूर्ण से कानन को वासित करता हुआ पवन वसन्त में विरहियों को जलाता है।] पवन की जलनशीलता प्रत्यक्ष उद्दीपक शक्ति है। प्रकृति-जगत् का उल्लास-विकास कामना को उत्तेजित कर व्यथित करता है, इस कारण नायिका प्रकृति के प्रति उपालम्भशील होती है। पर इस उपालम्भ में आत्मीयता के स्थान पर प्रकृति के व्यथा देने वाले रूप की शिकायत है—

दुरालोकस्तोकस्तबकनवकाशोकलतिका-
विकासः कासारोपवनपवनोऽपि व्यथयति।
अपि भ्राम्यद्भृङ्गीरणितरमणीया न मुकुल-
प्रसूतिश्चूतानां सखि शिखरिणीयं सुखयति॥[१२]

[हे सखि, दूर से दिखाई देने वाले अशोक लता के अल्प गुच्छे को विकसित करने वाला सरोवर के उपवन का शीतल पवन भी हृदय को व्यथित करता है। और भ्रमित भ्रमरों की गुंजार से सुन्दर शिखर वाले आम की मंजरियों का विकास भी सुख नहीं देता।] इस प्रकार की प्रत्यक्ष उद्दीपन की प्रवृत्ति ऋतु-काव्य की विशेषता है, आगे की विवेचना में हम देख सकेंगे। गीतगोविन्द की रचना इस प्रकार के काव्यों के प्रभाव में हुई है, यद्यपि हम कह चुके हैं कि इसके इस रूप में जन-गीतियों की प्रवृत्ति है।

दूत-काव्य

§ ७— दूत-काव्य का सम्बंध लोक-गीतियों के स्वच्छंद वातावरण से है। और हम देख चुके हैं कि इनमें आत्मीय सहानुभूति का वैसा ही वातावरण मिलता है। परन्तु इस काव्य-रूप की मूल प्रेरणा उद्दीपन से

---

१२. वही ; स० २ ; प्र० ६ ; ११।

प्रभावित है। वियोग की मनःस्थिति में नायक या नायिका प्रकृति के उपकरणों को अपना दूत बनाती है। इस प्रकार वियोग-शृंगार का स्थायी-भाव इस काव्य की प्रेरक शक्ति है। और भूमिका के रूप में प्रकृति का उल्लास वियोग की स्थिति में उद्दीपन का कारण बनता है, वह चाहे वर्षा की उमड़न हो अथवा वसंत का विकास। कालिदास के विरही यक्ष ने किसी प्रकार अपना समय बिताया है, परन्तु वर्षा के उमड़ते हुए मेघों ने उसके मन को मथित कर डाला है। आषाढ़ मास के घिरते हुए मेघों को देख कर यक्ष का मन अनायास उमड़ आता है—

मूल प्रेरणा

तस्य स्थित्वा कथमपि पुरः कौतुकाधानहेतो-
रन्तर्बाष्पश्चिरमनुचरो राजराजस्य दध्यौ।
मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथावृत्ति चेतः
कण्ठाश्लेषप्रणयिनि जने किं पुनर्दूरसंस्थे॥[13]

[मन में कौतुक उत्पन्न करने वाले उन मेघों को देख कर महाराज कुबेर का वह सेवक अपने आँसुओं को ज्यों-त्यों रोके बहुत देर तक खड़ा सोचता रह गया। बादलों की उमड़न की इस ऋतु में जब सुखी संयोगी जनों का मन भी डोल जाता है, तब उस अपनी प्यारी के गले लगने के लिए तड़पने वाले दूर देश में पड़े वियोगी का क्या कहना।] पवनदूत की वियोगिनी के मन पर वसन्त का प्रभाव इसी प्रकार संवेदक होता है। यक्ष को अपनी प्रिया की चिन्ता है, क्योंकि उस पर भी ऐसा ही प्रभाव होगा। यक्ष ने मेघ को जो अपना परिचय अपनी पत्नी से बताने को कहा है, उसमें भी मेघ के उद्दीपन रूप का उल्लेख है—'उससे कहना—हे सौभाग्यवती, मैं तुम्हें बता दूँ कि मैं तुम्हारे पति का प्रिय मित्र मेघ, तुम्हारे पास सन्देश लेकर आया हूँ। मैं अपनी गम्भीर और मधुर गरज से, अपनी वियोगिनियों की वेणी को खोलने के लिए उतावले, थके पथिकों

१३. मेघ० ; पूर्व० ; ३।

के मन में भी घर लौटने के लिए हड़बड़ी मचा देता हूँ।'[१४] मेघ द्वारा पथिकों के मन के उद्वेगशील होने की बात यहाँ सहज ढंग से व्यक्त की गई है। इस प्रकार की सहज उद्दीपन की भावना पवन-दूत में यत्र-तत्र मिल जाती है। नायिका पवन को आश्वासन देती है—'तुम्हारे प्रस्थान किए हुए के लिए मार्ग में स्थान-स्थान पर तालाबों से युक्त ग्राम मिलेंगे। जिनके प्रान्त भाग में अशोक तथा क्रमुक के उपवन हैं जिनमें ऊँचे पीले स्तनों से झुकी ग्राम स्त्रियों के प्रेम में वियोगी पथिक घूमते हैं।'[१५] इस चित्र में वसंत के व्यापक उद्दीपक प्रभाव का रूप है।

§८—कभी कवि ने वर्णना में वातावरण इस प्रकार का निर्मित किया है कि उसमें स्थायी रति की भावस्थिति को प्रेरणा मिलती है। पवनदूत में कवि इस प्रकार वातावरण निर्माण करता है—

उद्दीपन का वातावरण

हित्वा काञ्चीमविनयवतीमक्तरोधोनिकुञ्जां
तां कावेरीमनुसर खगश्रेणिवाचालकूलाम।
कान्ताश्लेषादपि खलु सुखस्पर्शमिन्दुत्विषोऽपि
स्वच्छं भिक्षाप्रवणमनसोऽप्यम्बु यस्या लघीयः॥

[काँची नगरी को छोड़ कर तुम चंचल प्रवाहवाली, निकुंजों से युक्त पुलिनवाली तथा पक्षियों के झुंड से कूजित कूलवाली कावेरी का अनुसरण करना, जिसका स्पर्श-सुख कांतालिंगन से अधिक सुखद है, चन्द्र से अधिक स्वच्छ है और जिसका जल-प्रवाह भिक्षा लेने में चतुर मन से भी अधिक दुर्बल है।] इसमें आलिंगन की भावना से वातावरण में प्रकृति उद्दीपन की व्यंजना प्रस्तुत करती है। अन्यत्र पवनदूत में प्रकृति के साथ मानवीय विलास को युक्त करके भी यही प्रभाव उत्पन्न किया गया है—'हे पवन तुम गोदावरी तट के शुकों से श्यामायमान वनों में जाना, जहाँ क्रीड़ालीन शबर-स्त्रियों ने प्रेमपूर्वक सिंचाई की

---

१४. वही ; उत्तर ; ४१।

१५. पवन० ; २१।

है। और जहाँ प्रौढ़ रमणियों का लीलामान भी प्रेम से अपरिचित युवकों द्वारा सच्चा माना जाता है।'[१६] मेघदूत की प्रकृति का यह रूप भी ऐसा ही है—'उस नगरी में मतवाले सारसों की मीठी बोली को दूर दूर तक फैलाता हुआ, प्रातः खिले हुए कमलों की गंध में बसा हुआ और सुखद शिप्रा का पवन स्त्रियों के संभोग की थकावट को उसी प्रकार दूर कर रहा है जैसे चतुर प्रेमी।' इस दृश्य में प्रकृति उद्दीपन का वातावरण व्यंजित करती है, क्योंकि इसमें शृंगार का प्रत्यक्ष उल्लेख किया गया है। अन्यत्र प्रकृति और मानवीय जीवन का उल्लेख एक दूसरे के समक्ष इसी भावना से किया गया है—

> **तस्मिन्काले नयनसलिलं योषितां खण्डितानां**
> **शान्तिं नेयं प्रणयिभिरतो वर्त्म भानोस्त्यजाशु।**
> **प्रालेयास्रं कमलवदनात्सोऽपि हर्तुं नलिन्याः**
> **प्रत्यावृत्तस्त्वयि कररुधि स्यादनल्पाभ्यसूयः॥**[१७]

[उस समय अनेक प्रेमी जन अपनी खण्डिता नायिकाओं के आँसू पोंछ रहे होंगे; इसलिये तुम सूर्य्य की कमलिनी के मुख-कमल पर पड़ी हुई ओस की बूँदें पोंछने के लिए आई हुई किरणों (करों) को न रोकना, नहीं वे बुरा मानेंगे।] यहाँ मानवीय विलास और प्रकृति के व्यापार को समानान्तर उपस्थित किया गया है, जिससे रति-भाव का दीपन होता है।

§६—प्रकृति पर मानवीय जीवन के उल्लेख के विषय में पिछले प्रकरणों में विचार किया गया है। परन्तु जब इस आरोप में किसी अन्य भाव-स्थिति को प्रभावित करने का उद्देश्य प्रमुख होता है, तब यह उद्दीपन के अन्तर्गत स्वीकार

आरोप द्वारा

---

१६. वही; १५, २५।

१७. मेघ०; पूर्व, ३३, ४३।

किया जायगा। दूतकाव्य में प्रकृति के उपकरणों के आत्मीय सम्बंध का उल्लेख किया गया है, पर जब यह सम्बंध रति-विलास में परिणत हो जाता है उस समय प्रकृति का व्यापार पात्र की भाव-स्थिति के प्रसरण के रूप में उसे प्रभावित ही करता है। यक्ष मार्ग में पड़नेवाली निर्विन्ध्या नदी को नायिका रूप में बताता है—'इस नदी की उछलती हुई लहरों पर पक्षियों की चहचहाती हुई पातें करधनी सी दिखाई देंगी, और सुन्दर ढंग से रुक रुक कर बहने के कारण उसमें पड़ी हुई भँवर नाभि जैसी दिखाई देगी; ऐसी उस नदी का रस तुम उतर कर ले लेना, क्योंकि स्त्रियाँ हाव-भाव से अपनी बातें प्रेमियों से कह देती हैं।' इस आरोप में प्रत्यक्ष ही रति-भाव की व्यंजना है जो यक्ष की भावना की प्रतिछाया है। इसके अतिरिक्त मेघ और सरिता के इस सम्बंध में और भी प्रत्यक्ष उद्दीपन की प्रेरणा आरोप के माध्यम से व्यक्त की गई है—

> तस्याः किंचित्करधृतमिव प्राप्तवानीरशाखं
> हृत्वा नीलं सलिलवसनं मुक्तरोधोनितम्बम्।
> प्रस्थानं ते कथमपि सखे लम्बमानस्य भावि
> ज्ञातास्वादो विवृतजघनां को विहातुं समर्थः॥ १८

[जब तुम गम्भीरा नदी का जल पी चुकोगे तो उसका जल कम हो जाने से उसके दोनों तट नीचे तक दिखाई देने लगेंगे। उस समय जल में झुकी हुई बेत की लताओं को देखने से ऐसा जान पड़ेगा मानो गम्भीरा नदी, अपने तट के नितम्बों पर से जल के वस्त्र खिसक जाने पर लज्जा से बेंत की लताओं के हाथों से अपने जल का वस्त्र थामे हुए है। उस पर झुके हुए तुम, वहाँ से जा न पाओगे क्योंकि रस जानने वाला ऐसा कौन प्रेमी होगा जो कामिनी की खुली हुई जाँघों को छोड़ सकने में

---

१८. वही; वही, ३०, ४५। पद्यनं० १६ में नदी की तरंगों को भ्रू विलास आदि कह कर इसी प्रकार का आरोप किया गया है।

समर्थ हो।] इस रति-विलास के आरोप में प्रकृति के सम्बंध से अधिक शृंगार की व्यंजना है।

§१०—प्रकृति के इस रूप में प्रस्तुत करने की अन्तिम परिणति प्रकृति-वर्णन को पार्श्वभूमि में डाल कर केवल मानवीय विलास की योजना में हुई है। ऋतु-वर्णनों के समान दूतकाव्यों में भी यह स्थिति मिलती है। प्रकृति उद्दीपन की सीमा में प्रत्यक्ष सुख-दुःख का कारण समझी जाती है, ऐसी स्थिति में—

विलास का रूप

'संयोग के दिनों में अमृत के समान ठंढी लगनेवाली जाली से छन कर आनेवाली चन्द्रमा की किरणें विरह के कारण उसे जलाने लगेंगी।' और फिर प्रकृति की भूमिका में उल्लास-विलास प्रमुख हो जाते हैं। यक्ष मेघ से अलका के विलास का उल्लेख करता है—

यत्र स्त्रीणां प्रियतमभुजालिङ्गनोच्छ्वासितानां-
मङ्गग्लानिं सुरतजनितां तन्तुजालावलम्बाः।
त्वसंरोधापगमविशदैश्चन्द्रपादैर्निशीथे
व्यालुम्पन्ति स्फुटजललवस्यन्दिनश्चन्द्रकान्ताः॥

[वहाँ आधी रात के समय, खुली चाँदनी में, झालरों में लटकती हुई चन्द्रकांत मणियों से टपकता हुआ जल, जिनका शरीर प्रियतम की भुजाओं में कसे रहने से ढीला पड़ गया है ऐसी स्त्रियों की थकावट दूर करता है।]' इस विलासके के साथ प्रकृति का किंचित संयोग मात्र रहता है, अन्यथा समस्त वर्णन उत्सवों तथा कामोद्दीपनों से सम्बंधित हैं—'वहाँ अथाह सम्पत्ति वाले कामी लोग, अप्सराओं के साथ बातें करते हुए और उच्चस्वर से कुबेर का यश गाते हुए किन्नरों के साथ बैठे हुए वैभ्राज नामक बाहरी उपवन में रात-दिन विहार किया करते हैं।'[१९] आगे चल कर प्रकृति को परोक्ष में रख कर इस प्रकार के

१९. वही; उत्त०, ३२, ९, १०। पवनदूत में १३ और १७ में जलकेलि का वर्णन है, पर ९ में रति-विलास का दृश्य है—

ऐश्वर्य-विलास के वर्णन प्रमुख हो गए हैं। यह प्रवृत्ति सभी काव्य-रूपों में मिलती है।

मुक्तक-काव्य

§११— मुक्तक-काव्य का वातावरण अधिक मुक्त तथा जनगीतियों के समान स्वच्छन्द है। जनगीतियों में लोक की भावना प्रकृति से इतनी तादात्म्य हो जाती है कि उनमें विभाजन की रेखा खींचना भी सरल नहीं रह जाता। लोक-गायक प्रकृति को अपनी निकटता में पाता है और अपनी स्वच्छन्द अभिव्यक्ति में उसे अपनी भाव-स्थिति को प्रभावित करते भी उपस्थित करता है। गाथा सप्तशती में जनगीतियों का रूप अधिक रक्षित है। इस कारण इसमें प्रकृति सहज उद्दीपक प्रेरणा के साथ उपस्थित हुई है। सखी 'वियोगिनी को आश्वास देती हुई कहती है कि यह नवीन प्रावृट् के बादल नहीं है वरन् दावाग्नि से मलिन हुए विन्ध्य शिखर है।' इसमें सम्भावित वर्षा-ऋतु में उद्दीपन शक्ति का संकेत अन्तर्निहित है। कभी यह रूप व्यंजना में सम्मिलित रहता है, परन्तु व्यापक रूप से इसमें भावात्मक वातावरण मात्र स्वीकार किया जा सकता है—'रात्रि व्यतीत होने पर सूर्य्य की किरणों के स्पर्श से खिले हुए कमलों की अपनी विश्वविजयिनी शोभा से चारों ओर महर महर होने लगा।' रति स्थायी-भाव को जाग्रत करने की व्यंजना कमल और सूर्य्य के सम्बंध पर निर्भर है। प्रकृति के इस दृश्य में ऐसी ही भावात्मक प्रेरणा है—

सहज उद्दीपन का संकेत

पप्फुल्लघणकलम्बा णिद्धोअसिलाअला मुइअमोरा।
पसरन्तोज्झरमुहला ओसाहन्ते गिरिग्गामा॥[२०]

सम्भोगान्ते श्लथभुजलतानिःसहानां वधूनां
व्याधुन्वन्तोऽनुचितकवरीभारमव्याजमुग्धम्।
अस्मिन् सद्यः श्रमजलनुदः सौधजालैरुपेत्य
प्रत्यासन्ना मलयमरुतस्तालवृन्तीभवन्ति॥

२०. गाथा ; श० १ ; ७० ; श० ७ ; ४, ३६। आर्या० ; ४ ; ३९।

[सघन फूले हुए कदम्बों से, स्वच्छ धुली हुई शिलाओं से, मस्त मयूरों के समूह से तथा मुखरित होते हुए निर्झरों से पर्वतीय गाँव उत्साहित हो उठे हैं।] इसी प्रकार आर्या में वर्षा की घटाओं से वियोगिनी का मन उद्वेलित होने लगता है।

§ १२—प्रकृति पर मानवीय विलास या मधु-क्रीड़ाओं का आरोप उद्दीपन के रूप में ही ग्रहण किया जा सकता है। इसमें जिस भाव-स्थिति की छाया रहती है उसी को यह प्रभावित भी करती है। 'शरद् ऋतु में नील कमलों के सुगन्धित सरोवरों के जल को पथिक अपनी पत्नियों के मुख के समान पीते हैं' इसमें 'दयिता के मुख' द्वारा प्रकृति का सम्बंध प्रभावात्मक हो गया है। कभी प्रकृति पर आरोप अधिक पूर्ण होता है—

आरोप का माध्यम

उव्वहइ णवतणङ्कुररोमञ्चपसाहिआइँ अङ्गाइं ।
पाउसलच्छीअ पओहरेहिँ परिपल्लिओ विञ्झो ॥[२१]

[वर्षा की लक्ष्मी के पयोधरों से, नव-तृणों के अंकुरों रूपी रोमावली से मंडित अंगवाला विन्ध्याचल उत्तेजित होकर शोभित है।] प्रकृति में जो उद्वेग है वह मानव के लिए उद्दीपन का कारण है।

क—अन्त में प्रकृति बिलकुल पृष्ठभूमि में चली जाती है और उसके स्थान पर केवल मानवीय ऐश्वर्य्य-विलास का उल्लेख रह जाता है। ऐसी परिस्थिति में प्रकृति की ऋतु या देश का नाम ले लेना पर्याप्त माना जाता है। ग्रीष्म-ऋतु की दोपहरी में 'स्नान की हुई स्त्री के रेशमी वस्त्र से प्रकट हुए अरुण वर्ण के उरोज और जंघाएँ कामीजन को बाण फल के समान घायल करती है।' यहाँ ऋतु-वर्णन तो प्रसंग मात्र है, कवि का उद्देश्य रति-स्थायी का उद्दीपन है। इसी प्रकार ग्रीष्म-ऋतु के इस चित्र में विलास का रूप प्रधान है—

ऐश्वर्य्य और विलास

२१. वही; श० ७; २२; ६; ७७। दे० आर्या; ४; ३९।

खिण्णस्स उरे पइणो ठवेइ गिम्हावरण्हरमिश्रस्स ।
ओलं गलन्तकुसुमं ण्हाणसुअन्धं चिउरभारम् ॥[२२]

[रमण करने से खिन्न हुए पति के हृदय पर पुष्पों के जल से स्नान करने से सुगन्धित तथा गीले बालों को रखती है ।] प्रकृति को भावों के प्रत्यक्ष उत्तेजक के रूप में प्रयुक्त करने के बाद उसका चिह्न भी ओझल हो जाता है, और यह विलास-क्रीड़ा मात्र उसके स्थान पर शेष रह जाती है ।

ऋतु-काव्य

§ १३—विभिन्न काव्य-रूपों के अन्तर्गत कहा गया है कि ऋतु-काव्य का विकास लोक-गीतियों से सम्भावित है । इस कारण इन काव्यों में उद्दीपन की स्वच्छंद स्थिति मिलती है । परन्तु ये अपनी काव्यात्मक प्रवृत्ति के कारण दूसरी ओर सामन्ती ऐश्वर्य-विलास से पूर्ण भी हैं । बारहमासों की परम्परा अधिक लौकिक तथा मुक्त रह सकी है । ऋतु सम्बंधी स्वतन्त्र काव्य प्रमुखतः कालिदास का ऋतुसंहार है, यद्यपि महाकाव्यों में ऋतु-वर्णन की परम्परा का रूप ऐसा ही रहा है । ऋतु के परिवर्तित रूप में एक सहज भावशीलता पाई जाती है जिसमें उद्दीपन की व्यंजना सन्निहित होती है—'कदम्ब, सर्ज, अर्जुन और केतकी से पूर्ण वनों को कंपाता हुआ और उन वृक्षों के फूलों की सुगन्ध में बसा हुआ और चन्द्रमा की किरणों से तथा बादलों से ठंढा बहनेवाला पवन किसे मस्त नहीं करता ।' प्रकृति का उल्लास मानव के मन को उल्लसित करता है, पर यह भाव-स्थिति अन्य स्थायी-भाव से सम्बंधित होने के कारण उद्दीपन के अन्तर्गत स्वीकार की जायगी । वर्षा-कालीन पवन भी पथिक के मन को उत्सुक कर रहा है—

सहज भावशीलता

नवजलकणसङ्गाच्छीततामादधानः
कुसुमभरनतानां लासकः पादपानाम् ॥

---

२२. वही ; श० ५ ; ७३ ; श० ३ ; ९९ ।

जनितरुचिरगन्धः केतकीनां रजोभिः
परिहरति नभस्वान्प्रोषितानां मनांसि ॥

[वर्षा के नवीन जल की फुहारों से शीतल हुआ पवन, फूलों के बोझ से झुके हुए वृक्षों को नचाता हुआ, केतकी के फूलों का पराग लेकर चारों ओर मन भावनी सुगन्ध फैलाता हुआ परदेस गये हुए प्रेमियों का मन चुराता है ।] यद्यपि ऋतुसंहार में रूढ़ि तथा परम्परा का रूप मिलता है, परन्तु फिर भी कलात्मक दृष्टि से पर्याप्त उन्मुक्त वातावरण इसमें है। महाकाव्यों के अन्तर्ग आनेवाले ऋतु-वर्णनों में प्रत्यक्ष उद्दीपन तथा विलास का वर्णन बढ़ता गया है। महाकाव्यों के प्रसंग में इसका उल्लेख किया जायगा। कालिदास के शरद् वर्णन में ऐसी ही भावशील-स्थिति मिलती है—'शेफालिका के फूलों की गन्ध जिन उपवनों में मन भावनी फैल रही है, जिनमें निश्चिन्त बैठी हुई चिड़ियों की चहचहाहट चारों ओर गूँज रही है, जिनमें कमल जैसी आँखो वाली हरिणियाँ स्थान-स्थान पर पगुरा रही है, उन्हें देख कर लोगों के मन उत्कण्ठित हो जाते हैं।' इसी प्रकार हेमन्त के सरोवरों का सौन्दर्य नागरिकों के मन को उल्लसित करता है—

प्रफुल्लनीलोत्पलशोभितानि
सोन्मादकादम्बविभूषितानि ।
प्रसन्नतोयानि सुशीतलानि
सरांसि चेतांसि हरन्ति पुंसाम् ॥[२३]

[ऐसे सरोवर जिनमें पुष्पित नील कमल शोभित हैं, मस्त कलहंस संतरण कर रहे हैं और निर्मल शीतल जल भरा हुआ है, लोगों के मन को हरते हैं।] इस प्रकृति में सहज सौन्दर्य्य का आकर्षण मात्र है, परन्तु जिस भूमिका में यह उपस्थित है उस पर आकर्षण में रति व्यंजना सम्मिलित हो गयी है।

§ १३— प्रकृति के इस रूप के आगे वह स्थिति आती है जिसमें

---

२३. ऋतु० ; स० २ ; १७, २६ ; स० ३ ; १४ ; स० ४ ; ९

प्रभावशीलता के संकेत और अधिक स्पष्ट हो जाते हैं। यह सारा उद्दीपन प्रसंग रति-भाव को लेकर है। इस कारण इस रूप में प्रकृति मानवीय मन को किंचित अधिक संवेदित कर देती है। पहले रूप में मानसिक स्थिति का उत्सुक होना भर पर्याप्त था, पर इसमें यह उत्सुकता स्पष्ट पूर्व भाव-स्थिति (रति) के प्रति लक्षित होती है। 'वर्षा में मेघ मृदंग जैसी ध्वनि करते हुए बिजली की डोरी वाला इन्द्र धनुष चढ़ाये हुए अपनी तीखी धारों के पैने बाण बरसा कर विदेश में रहने वाले लोगों के मन को व्यथित करता है।' इसमें मेघ-क्रीड़ा से वियोगियों के मन के कसकने का उल्लेख है, जो उद्दीप्त भाव-स्थिति की स्पष्ट व्यंजना है। शरत्काल की नवयुवकों की इस उत्कण्ठा में यही भाव परिलक्षित है—

प्रभावशील स्थिति

भिन्नाञ्जनप्रचयकान्ति नभो मनोज्ञं
बन्धूकपुष्परचिताऽरुणता च भूमिः।
वप्राश्च चारुकमलावृतभूमिभागाः
प्रोत्कण्ठयन्ति न मनो भुवि कस्य यूनः॥

[घुटे हुए काजल के समूह के समान सुन्दर नीला आकाश दुपहरिया के फूलों से लाल बनी हुई धरती और पके हुए धान से लदे हुए सुन्दर खेत इस संसार में किस युवक-मन में हलचल नहीं मचा देते।] वसन्त में सारा प्रकृति का उल्लास मानवीय मन को काम की भावना से अविभूत कर रहा है। कुछ दृश्यों में सहज भावशीलता मात्र है, कुछ में प्रभावित भाव-स्थिति मिलती है और अन्य रूप भी पाये जाते हैं। वसंत में आम का शृंगार मन को प्रभावित किये बिना कैसे रह सकता है—'लाल लाल कोंपलों के गुच्छों से झुके हुए और सुन्दर मंजरियों से लदी हुई शाखाओं वाले आम के पेड़ पवन के झोंकों से हिलकर कामिनियों के मन को रति भावना से उत्कंठित करते हैं।' और भी—

मत्तद्विरेफपरिचुम्बितचारुपुष्पा
मन्दानिलाकुलितनम्रमृदुप्रवालाः ।
कुर्वन्ति कामिमनसां सहसोत्सुकत्वं
बालातिमुक्तलतिकाः समवेक्ष्यमाणाः ॥[२४]

[मत्त भ्रमरों से चूमे गये हैं सुन्दर पुष्प जिसके और मन्द पवन से नये कोमल पत्ते जिसके हिल रहे हैं ऐसी कोमल मुक्त लताओं को देख कर कामियों के मन अचानक समुत्सुक हो उठे हैं।] इन दृश्यों में जो उत्सुक आकर्षण है वह काम-भावना के प्रति प्रत्यक्ष लक्षित होता है।

§१४—अन्य रूपों में प्रकृति प्रत्यक्ष रूप में मानवीय मन को कष्ट और पीड़ा (वियोग पक्ष में) आदि देती उपस्थित हुई है। मन में जो स्थायी भाव जाग गया है उसकी अनुभूति को प्रगाढ़ करने में यहाँ प्रकृति सहयोगिनी होती है। अभी तक प्रकृति ने मन की अप्रत्यक्ष भावना को उत्कंठित भर किया था, लेकिन इस सीमा पर वह जाग्रत भाव-स्थिति के सुख-दुःख को बढ़ाने में सहयोग देने लगती है। वर्षा का यह दृश्य वियोगिनी के लिए असह्य हो उठता है—'कमल-दल के समान साँवले, पानी के भार से झुक जाने के कारण थोड़ी ऊँचाई पर ही छाये हुए तथा मन्द-मन्द पवन के सहारे चलनेवाले जिन बादलों में इन्द्रधनुष निकल आया है उन्होंने परदेस में गए हुए लोगों की पत्नियों की सुध-बुध हर ली है।' शरत्कालीन वातावरण वियोगिनी के लिए और भी उद्दीपक है—'सब की आँखों को भला लगनेवाले जिस चन्द्रमा की किरणें मन को बरबस अपनी ओर खींच लेती हैं, वही फुहार बरसानेवाला चन्द्रमा, अपने पतिओं के बिछोह के विष बुझे बाणों से घायल हुई घरों में पड़ी स्त्रियों के अंगों को जला रहा है।' यह उद्दीपन विभाव में प्रयुक्त प्रकृति के रूप का चरम है।

प्रेरक उद्दीपन

२४. वही; स० २ ; ४ ; स० ३ ; ५ ; स० ६ ; १५, १७।

कालिदास जैसे कवि की रचना भी इस परम्परा से नहीं हो सकी, सम्भवतः इसका कारण उस युग का सामन्ती वातावरण है। वसन्त वर्णन के अन्तर्गत यह रूप अधिक व्यापक है। कुरबक अपने सौन्दर्य्य में उत्तापक है—

कान्तामुखद्युतिजुषामपि चोद्गतानां
शोभां परां कुरबकद्रुममञ्जरीणाम्।
दृष्ट्वा प्रिये सहृदयस्य भवेन्न कस्य
कंदर्पबाणपतनव्यथितं हि चेतः ॥[२५]

[हे प्रिये, तत्काल खिले हुए स्त्रियों के मुख के समान सुन्दर लगनेवाले कुरबक के फूलों की अनोखी शोभा देख कर किस रसिक का मन कामदेव के बाणों से आहत नहीं होता।] कालिदास के इस प्रयोग में काव्यात्मक सौन्दर्य्य के साथ प्रकृति का रूप भी रक्षित है, अगले कवियों के रूढ़िवाद से इनमें यही भिन्नता है।

§१५—कभी इस काव्य में प्रकृति और मानव-जीवन एक दूसरे से सामंजस्य स्थापित करते हैं। इस स्थिति में प्रकृति किसी निश्चित भाव-स्थिति के लिए अनुरूप वातावरण प्रस्तुत करती है। परन्तु साधारण कथा-वस्तु के अनुरूप वातावरण में और इस प्रकार के वातावरण में अन्तर है। इसका सम्बंध जिस परिस्थिति से होगा वह स्वयं उत्तेजनापूर्ण होनी चाहिए। इसमें प्रकृति का रूप सहायक हो जाता है। ऋतुसंहार के इस वर्षा-वर्णन में ऐसा ही उद्दीपक वातावरण है—'अभिसारिकाएँ अपने प्रेमी के लिए, बार-बार गरजन करते हुए बादलों से घिरी हुई घनी अँधेरी रात में भी बिजली की चमक से आगे का मार्ग देखती हुई चली जा रही हैं।' रति-विलास की उत्सुकता के साथ अँधेरी रात का यह घन-गरजन ऐसा ही है। शरद् का परदेसी प्रकृति के विस्तार से अपने वियोग का सम्बध स्थापित

वातावरण में

---

२५. वही ; स० २ ; २२ स० ३ ; ९ ; स० ६ ; १८।

करता है—

> **असितनयनलक्ष्मीं लक्षयित्वोत्पलेषु**
> **क्वणितकनककाञ्चीं मत्तहंसस्वनेषु ।**
> **अधररुचिरशोभां बन्धुजीवे प्रियाणां**
> **पथिकजन इदानीं रोदिति भ्रान्तचितः ॥**

[बेचारे परदेसी लोग नील-कमल में अपनी प्रियतमा की काली आँखों की शोभा, मस्त हंस की ध्वनि में उसकी सुनहली करधनी की रुनझुन तथा बन्धुजीव के फूलों में उसके निचले ओठों की सुन्दर शोभा देख कर भ्रान्ति में पड़ कर रोने लगते हैं ।] अगले श्लोक में इस सामंजस्य का दूसरा रूप है । इसमें एक प्रकार का आरोप है, पर यह भी वातावरण के साथ स्वीकार किया जा सकता है । प्रकृति में 'शरद् की शोभा, कहीं चन्द्रमा के सौन्दर्य को छोड़ कर स्त्रियों के मुँह में पहुँच गई है, कहीं हंसों की मीठी बोली छोड़ कर उनके मणि-मय बिछुओं में चली गई है और कहीं बन्धूक फूलों की लाली छोड़ कर उनके निचले ओठों में जा चढ़ी है ।'[२६] जिस नारी के माध्यम से इस चित्र में प्रकृति-रूप की स्थापना की गई है, उसी की कल्पना ने इसे उद्दीपन का वातावरण भी प्रदान किया है ।

§१६—प्रकृति पर मानव-जीवन तथा भावों के आरोप का उल्लेख पिछले प्रकरणों में किया गया है । यहाँ पर इस आरोप में किसी पूर्व भाव-स्थिति की स्वीकृति भी आवश्यक है । साधारणतः हाव-भाव तथा विलास-क्रीड़ा आदि के आरोप से प्रकृति में कामोद्दीपन रूप समन्वित हो जाता है । शरत्कालीन सरिताओं की कामिनियों से तुलना इसी प्रकार की है—'इस ऋतु में मदमाती प्रमदाओं के समान नदियाँ मन्द-मन्द प्रवाहित होती हैं । उछलती हुई सुन्दर मछलियाँ ही उन नदियों की करधनी हैं, तीर पर

आरोप का माध्यम

---

२६. वही ; स० २ : १० ; स० ३ ; २४, २५ ।

बैठी हुई उजली चिड़ियों की पाँत ही उनकी मालाएँ हैं और ऊँचे-ऊँचे रेतीले टीले ही उनके गोल नितम्ब हैं।' अन्यत्र इसी ऋतु में प्रकृति 'खिले हुए उजले कमल के मुखवाली, फूले हुए नीले कमल की आँखोंवाली, सुन्दर कुमुदिनी की कान्तिवाली और फूले हुए काँस की साड़ी पहननेवाली कामिनी के रूप में लोगों के मन को प्रीतिमान् करती है।' वसन्त के मोहक वातावरण में प्रकृति मानवीय क्रीड़ा-विलास में मग्न भी उपस्थित हुई है—

पुंस्कोकिलश्चूतरसासवेन
मत्तः प्रियां चुम्बति रागहृष्टः।
कूजद्द्विरेफोऽप्ययमम्बुजस्थः
प्रियं प्रियायाः प्रकरोति चाटु॥ २७

[देखो, यह नर कोयल आम की मंजरियों के रस में मद मस्त होकर अपनी प्यारी को प्रेम से चूम कर प्रसन्न हो रहा है। कमल पर बैठा हुआ भौंरा गुनगुना कर अपनी प्यारी की चाटुकारिता कर रहा है।] इस रूप में आरोप के साथ जीवन का जो प्रतिबिम्ब है वह मानवीय विलास को उद्दीप्त करने के लिए है।

ऐश्वर्य्य विलास

§ १७—ऋतु-वर्णन के अन्तर्गत ऐश्वर्य्य और विलास का रूप ऋतुसंहार से ही पूर्णतः प्रारम्भ हो गया है। इसका कारण इस काव्य का लोकगतियों की भावधारा से प्रभावित होने के साथ सामन्ती वातावरण में रचा जाना भी है। लोक का गायक अपने भावोल्लास और प्रकृति को ऐसा मिला जुला देता है कि एक से दूसरे को अलग कर सकना कठिन हो जाता है। कभी प्रकृति परोक्ष में रहती है और गायिका अपने ही उल्लास या विषाद का चित्र उपस्थित करती है। इसी प्रवृत्ति में जब सामन्ती वातावरण की छाप पड़ी, तब भावशीलता के वर्णन के स्थान पर केवल

---

२७. वही; स० ३; ३, २६ : स० ६; १४।

ऐश्वर्य्य-विलास का रूप रह गया। जैसा कहा गया है बारहमासा की परम्परा अधिक लौकिक रह सकी है, इस कारण उसमें भावशीलता अधिक तथा विलास कम है। ग्रीष्म-काल में कवि प्रारम्भ में बताता है कि 'विलासी लोग इस ऋतु में चाहते हैं कि रात्रि में चाँदनी छिटकी हो, विचित्र शोभावाले फ़व्वारों के तले हम लोग बैठे हों। इधर-उधर अनेक प्रकार के रत्न बिखरे पड़े हों और सुगन्धित चंदन चारों ओर छिड़का हुआ हो'। आगे कवि सामन्तों के ग्रीष्म से बचने के अन्य प्रसाधनों का वर्णन करता है—

कमलवनचिताम्बुः पाटलामोदरम्यः
सुखसलिलनिषेकः सेव्यचन्द्रांशुहारः।
व्रजतु तव निदाघः कामिनीभिः समेतो
निशि सुललितगीतैः हर्म्यपृष्ठे सुखेन ॥[२८]

[जिस गर्मी की ऋतु में कमलों से भरे हुए और खिले हुए पाटल की गध में बसे हुए जल में स्नान करना बहुत सुख देता है, जिन दिनों चाँदनी तथा मोती के हार सुखप्रद हैं, वह ऋतु आप की कामिनियों के साथ मनोहर संगीत के वातावरण में महल की छत पर बीते।] इस ऐश्वर्य्य के साथ विलास के वर्णन से भी ऋतुसंहार पूर्ण है। वर्षा ऋतु में—'स्त्रियाँ अपने भारी-भारी नितम्बों पर केश लटका कर, अपने कानों में सुगंधित फूलों के कनफूल पहन कर, छाती पर माला धारण कर और मदिरा पीकर अपने प्रेमियों के मन में काम उकसा रही हैं'। अन्यत्र इस विलास का और भी स्पष्ट वर्णन है—

प्रियङ्गुकालीयककुङ्कुमाक्तं
स्तनेषु गौरेषु विलासिनीभिः।
आलिप्यते चन्दनमङ्गनाभि-
र्मदालसाभिर्मृगनाभियुक्तम् ॥[२९]

---

२८. वही ; स० १ ; २, २८।

२९. वही , स० २ ; १८ ; स० ६ ; १२।

[मद से अलसित कामिनियाँ प्रियंगु, कालागुरु और केसर के घोल में कस्तूरी मिला कर अपने गोरे-गोरे स्तनों पर चन्दन का लेप कर रही हैं।] इस समस्त विलासिता में उस युग का सामन्ती वातावरण झाँक रहा है। कवि का वर्णन आगे रति-विलास में चरम पर पहुँच जाता है। आगे के महाकाव्यों के ऋतु-वर्णन तथा अन्य वर्णनों में यह परम्परा रूढ़ि के समान पाई जाती है।

महाकाव्य

§ १८—अश्वघोष के महाकाव्य प्रारम्भिक हैं और उनमें धार्मिक स्वर प्रधान है। इस कारण महाकाव्यों से कुछ भिन्न वातावरण है। परन्तु मूल रूप से सभी परम्पराओं का प्रत्यक्ष रूप इनमें ढूँढ़ा जा सकता है। प्रकृति को उपस्थित करने का जो क्रम बाद के महाकाव्यों में मिलता है, वह अश्वघोष के महाकाव्यों में नहीं है। परन्तु चौथे सर्ग में प्रकृति का जो उद्दीपक रूप है, उससे जान पड़ता है कि वे प्रकृति के इस प्रकार के उपयोग से पूर्ण परिचित थे। इस समस्त सर्ग में सांसारिक भोग-विलास का वातावरण प्रस्तुत किया गया है जिससे कुमार का मन विमोहित हो सके, इस प्रकार इसमें प्रकृति का उद्दीपक रूप कथा-प्रसंग के अनुरूप अवश्य है। यहाँ प्रकृति और मानव जीवन समान रूप से काम-प्रेरणा का वातावरण निर्मित करते हैं—'कोई कमलाक्षी कमल-वन से कमल के साथ आकर इस कमल-मुख के पास कमल श्री के समान खड़ी हुई।' आगे प्रकृति में सहज भावशीलता है जो रति-भाव को प्रभावित करती है—

अश्वघोष

फुल्लं कुरबकं पश्य निर्मुक्तालक्तकप्रभम्।
यो नखप्रभया स्त्रीणां निर्भर्त्सित इवानतः॥

[निचोड़े हुए अलक्तक (महावर) के समान प्रभावान् विकसित कुरबक को देखिए, जो स्त्रियों की नख-प्रभा से मानों भर्त्सित होकर झुक गया

है।] और कान्ता के हाथों की शोभा से लज्जित होता हुआ पल्लवों से भरा बाल अशोक[30] के चित्र में ऐसी ही प्रेरणा परिलक्षित है।

क—मानव जीवन तथा क्रीड़ाओं के आरोप द्वारा उद्दीपन का प्रभाव उत्पन्न करने वाले चित्र भी अश्वघोष में मिल जायँगे। आम और तिलक का आलिंगन रति-क्रीड़ा का प्रतीक है—

आरोप

'आम की शाखा से आलिंगित होते तिलक-वृक्ष को देखिए, जैसे श्वेत वस्त्रधारी पुरुष पीत अंगराग वाली स्त्री को आलिंगन कर रहा हो।' फिर प्रमदा के रूप में सरोवर की कल्पना में उद्दीपन की प्रेरणा है—

दीर्घिकां प्रावृतां पश्य तीरजैः सिन्दुवारकैः।
पाण्डुरांशुकसंवीतां शयानां प्रमदामिव ॥[31]

[तीर पर उत्पन्न होने वाले सिन्धुवारों से आच्छादित दीर्घिका (सरोवर) को देखिए, जो सफ़ेद वस्त्रों से ढकी सो रही प्रमदा के समान है।]

§ १९— पिछले प्रकरणों में कहा गया है कि कालिदास ने अपने महाकाव्यों में प्रकृति-वर्णना को रूढ़ि के रूप में स्थान नहीं दिया है। वर्णन-प्रियता भारतीय प्रवृत्ति है, परन्तु कालिदास के वर्णन प्रसंग से सम्बंध रखते हैं। इन विस्तृत वर्णनों में उद्दीपन की भावना केवल उन्हीं स्थलों पर है जिनका प्रयोग प्रसंग के अनुरूप है, और ये वर्णन ऋतु के हैं। परन्तु इन वर्णनों में अधिक विस्तार नहीं है, इस कारण इनका प्रयोग स्वाभाविक जान पड़ता है। रघुवंश में आठवें सर्ग का वसन्त-वर्णन राजा दशरथ के विलास की भूमिका में तथा सोलहवें सर्ग का ग्रीष्म-वर्णन अयोध्या नगरी के फिर लौट आने वाले ऐश्वर्य की भूमिका में उद्दीपन की भावना से प्रभावित हैं। इसी प्रकार कामदेव की सहायता करने वाले वसन्त के प्रसार में उद्दीपन

कालिदास

३०. बुद्ध० ; स० ४, ३६, ४७, ४८।
३१. वही ; स० ४ ; ४६, ४९।

की भावना कुमारसम्भव में मिलती है, जो प्रसंग के अनुरूप है। कालिदास के अन्य वर्णनों में जैसा विवेचित किया गया है वर्णन सौन्दर्य्य विशेष है।

सहज स्थिति

क— ऋतुसंहार जैसा विलास का वातावरण इन महाकाव्यों के ऋतु-वर्णनों में नहीं है। कथा-वस्तु के साथ ये चित्रण अधिक सहज हैं यद्यपि इनमें उद्दीपन की समस्त प्रेरणा का रूप मिल जाता है। राजा दशरथ के लिए वसन्त के प्रसार में सहज भावशील स्थिति का रूप इस प्रकार है—'पवन से उड़ाये हुए पराग के पीछे भौंरे भी उड़ चले। वह उड़ता हुआ पराग ऐसा जान पड़ता था मानों धनुषधारी कामदेव की पताका हो अथवा वसन्तश्री के मुख पर लगाने का शृंगार-चूर्ण।' इस चित्र में काम और शृंगार की कल्पना से रति-भाव को उद्भूत किया गया है। इसी प्रकार कुमारसम्भव के वसन्त-प्रसार में कहीं-कहीं केवल सहज प्रेरणा मात्र है। वसन्त के आते ही 'दूज के चाँद के समान टेढ़े, अत्यंत लाल-लाल अधखिले टेसू के फूल वन-भूमि में फैल हुए ऐसे जान पड़ते हैं मानों वसन्त ने वनस्थलियों के साथ विहार करके उन पर नख-चिह्न बना दिए हैं।' इस चित्र में रति-क्रीड़ा के संकेत से यह भाव-स्थिति उत्पन्न हुई है। आगे प्रकृति में समाहित उल्लास में यह भावना और सुन्दर रीति से व्यंजित हुई है—

ददौ रसात्पङ्कजरेणुगन्धि गजाय गण्डूषजलं करेणुः।
अर्धोपभुक्तेन बिसेन जायां संभावयामास रथाङ्गनामा ॥[32]

[हथिनी प्रेम-पूर्वक कमल के पराग में बसा हुआ जल अपनी सूँड़ से अपने हाथी को पिलाने लगी और चकवा आधी कुतरी हुई कमल-नाल को चकवी को देने लगा।] इस व्यापार में रति-भावना अन्तर्निहित है।

ख—कभी यह स्थिति वातावरण के निर्माण में परिलक्षित होती

३२. रघु० ; स० ९ ; ४५ : कुमा० ; स० ३ ; २९, ३७।

है। यह वातावरण प्रकृति और मानव जीवन के सामंजस्य से बनता है। ग्रीष्म-ऋतु में अयोध्या की 'बावलियों का जल सेवार जमी हुई सीढ़ियों को छोड़ता हुआ पीछे हटने लगा। उनमें कमल की डंडियाँ दिखाई देने लगीं और पानी हटकर स्त्रियों की कमर तक रह गया।' इसमें स्त्रियों की कमर के उल्लेख ने उद्दीपक वातावरण निर्मित किया है। अन्यत्र वर्णन में पौराणिक प्रसंग के संयोग से ऐसा प्रभाव उपस्थित किया गया है—'पाला दूर हो जाने से चन्द्रमा निर्मल हो गया और संभोग-श्रम के दूर करने-वाली उसकी ठंडी किरणों से कामदेव के फूलों के धनुष को मानों और भी अधिक बल मिला हो।' कविप्रसिद्ध की कल्पना में ऐसे ही वातावरण प्रस्तुत करने की भावना है—

वातावरण

असूत सद्यः कुसुमान्यशोकः स्कन्धात्प्रभृत्येव सपल्लवानि।
पादेन नापैक्षत सुन्दरीणां संपर्कमासिञ्जितनूपुरेण॥[33]

[अशोक वृक्ष भी तत्काल नीचे से ऊपर तक फूल-पत्तों से लद गया, उसने झनझनाते हुए बिछुओंवाले सुन्दरियों के चरण-प्रहार की बाट नहीं देखी।] कुमारसम्भव के वसन्त-प्रसार में उद्दीपन का वातावरण इस प्रकार निर्मित हुआ है।

ग—कभी प्रकृति का प्रत्यक्ष उद्दीपक रूप भी इन वर्णनों के अन्तर्गत मिल जाता है, परन्तु ऐसा बहुत कम हुआ है। साथ ही इस प्रत्यक्ष उद्दीपन में कालिदास ने स्वाभाविकता का निर्वाह किया है। नवें सर्ग के 'वसंत में फूले हुए अशोक के फूलों को देख कर ही कामोद्दीपन नहीं होता था, वरन् कामियों को मतवाला बनाने वाले जो कोमल कोंपलों के गुच्छे स्त्रियों ने अपने कानों पर रख लिए थे उन्हें देख कर भी मन हाथ से निकल जाता था।' इस वर्णन में उद्दीपन की प्रत्यक्ष भावना है। कुमारसम्भव

प्रत्यक्ष रूप में

---

३३. रघु० ; स० १६ ; ४६ ; स० ९ ; ३९ : कुमा० ; स० ३; २६ ।

क वसन्त प्रसार में ऐसा ही उद्दीपन का प्रभाव कोकिल के स्वर से प्रकट होता है—

चूताङ्कुरास्वादकषायकण्ठः पुंस्कोकिलो यन्मधुरं चुकूज।
मनस्विनीमानविघातदक्षं तदेव जातं वचनं स्मरस्य ॥[३४]

[आम की मंजरियों के खा लेने से जिसका स्वर मीठा हो गया है ऐसा कोकिल जब मीठे स्वर से कूक उठता था, तब उसे सुन कर रूठी हुई स्त्रियाँ अपना रूठना भूल जाती थीं।] इस प्रकार उद्दीपक चित्र कालिदास में कम हैं, पर अगले कवियों में क्रमशः यह प्रवृत्ति अधिक विकसित होती गई है।

घ—कालिदास ने प्रकृति को मानव जीवन तथा प्राणों से स्थान स्थान पर स्पन्दित कर दिया है। परन्तु कुछ आरोपों में रति-विलास और मधु-क्रीड़ाओं के संकेत से प्रकृति उद्दीपन का कार्य करती है। परन्तु इनमें कवि की काव्यात्मक प्रतिभा के कारण कृत्रिमता के स्थान पर सौन्दर्य्य ही अधिक है। वसन्त के उल्लास में प्रकृति पर कामिनी का आरोप स्वभावतः उद्दीपक है—

आरोप

'तिलक वृक्ष के फूलों पर मँडराते हुए काजल की बुँदियों के समान भौंरे ऐसे जान पड़ते थे मानों वनस्थलियों का मुख चीत दिया गया हो। इस प्रकार शृंगार की हुई युवती के रूप में, तिलक वृक्ष ने वनस्थली की कम शोभा नहीं बढ़ाई।' कुमारसम्भव में वसन्त-श्री स्वयं इस प्रकार नायिका के समान शृंगार करती है—

लग्नद्विरेफाञ्जनभक्तिचित्रं मुखे मधुश्रीस्तिलकं प्रकाश्य।
रागेण बालारुणकोमलेन चूतप्रवालोष्ठमलंचकार ॥[३५]

[उड़ते हुए भौंरे रूपी आँजन से अपना मुँह चीत कर, अपने माथे पर तिलक के फूल का तिलक लगा कर और प्रातःकाल निकलते हुए सूर्य्य

---

३४. रघु० ; स० ९ ; २८: कुमा० ; स० ३ ; ३२।
३५. रघु० ; स० ९ ; ४१। कुमा०; स० ३ ; ३०।

की कोमल लाली से चमकनेवाले आम की कोंपलों से मानो वसन्त की शोभा रूपी स्त्री ने अपने ओंठ रंग लिए हों।] इन चित्रों में शृंगार की भावना परिलक्षित होती है।

ङ—कालिदास के ऋतुसंहार में ऐश्वर्य-विलास का पूर्ण सामन्ती वातावरण मिलता है, परन्तु महाकाव्यों में विलास का वैसा रूप नहीं है। और विलास का जो रूप मिलता है वह प्रसंग में खप जाता है। दशरथ के ऐश्वर्य के अनुरूप यह स्त्रियों की क्रीड़ा का वर्णन है—'जो स्त्रियाँ वसन्तोत्सव में नये झूलों पर सावधान होकर झूल रही थीं, वे भी अपने हाथ की रस्सियाँ इसलिए ढीली कर देती थीं, जिससे हाथ छूटने पर प्रियतम हमें थाम ही लेंगे और इस प्रकार उनके गले से भी लग जायँगी।' सोलहवें सर्ग में गर्मी के ऐश्वर्य का वर्णन इस प्रकार है—'धनी लोग गर्मी में ठंडी रहनेवाली उन विशेष प्रकार की शिलाओं पर सोकर दुपहरी बिताते थे जो चन्दन से धुली होती थीं और जिनके चारों ओर जल-धाराएँ छूटती थीं।' इस प्रकार के वर्णन ऋतु-काव्य की परम्परा में बढ़ते गये हैं। कुमारसम्भव में वसन्त के प्रभाव में किन्नरों की यह क्रीड़ा स्वाभाविक लगती है।

विलास

गीतान्तरेषु श्रमवारिलेशैः किंचित्समुच्छ्वासितपत्रलेखम्।
पुष्पासवाघूर्णितनेत्रशोभि प्रियामुखं किंपुरुषश्चुचुम्बे॥[३६]

[किन्नर लोग गीतों के बीच में ही अपनी प्रियाओं के उन मुखों को चूमने लगे जिन पर थकावट के कारण पसीना छा गया था, जिन पर चीती हुई चित्रकारी लिप गई थी और जिनके नेत्र पुष्पों के आसव से मतवाले होने के कारण बड़े सुन्दर लग रहे थे।]

§ २०—काल-क्रम से बुद्धघोष कालिदास के बाद के हैं, इस कारण उद्दीपन सम्बंधी समस्त प्रवृत्तियाँ इनके महाकाव्य में पाई जाती हैं। परन्तु बुद्धघोष में अन्य क्षेत्रों के समान यहाँ भी रूढ़ि के स्थान पर सौन्दर्य का रूप प्रधान है। कहीं उद्दीपन

पद्यचूडामणि

३६. रघु० ; स० ९ ; ४६ : स० १६ ; ४९ । कुमा० ; स० ३ ; ३८ ।

का सहज रूप इस प्रकार उपस्थित किया गया है—'अशोक-लता ने तरुणियों के पद-कमल के ताड़न के प्रति असहनशील हो नूतन पल्लवों के मिस मानो अपना कोपानल (विरहिणियों के लिए) प्रकट किया है।' कभी प्रकृति के वातावरण के साथ उद्दीपन की भावना व्यक्त हुई है—'हंसों को निकालने में बेंत की छड़ी के समान बिजली विरहिणियों की भर्त्सना करनेवाली मेघ की अंगुली के रूप में सुशोभित है।' इस वर्षा के चित्र में वियोगिनी की व्यथा के साथ दृश्य उद्दीपक हो गया है। कुछ स्थलों पर प्रत्यक्ष रूप में प्रकृति पूर्व-निश्चित रति-भावना को उद्दीप्त करती उपस्थित होती है—'आधा उगा हुआ चन्द्रबिम्ब, जिसमें किंचित कलंक प्रकट है, स्त्रियों के लिए विषाक्त कामदेव के बाण के समान उदित हो गया है।' यहाँ चन्द्रमा का उदित होना स्वतः कामिनियों के मन को कसकने वाला कहा गया है। अनेक प्रकार के शारीरिक तथा मधु-क्रीड़ाओं के आरोप से यह प्रभाव उत्पन्न किया गया है। इन आरोप-चित्रों में मधु-क्रीड़ाओं के दृश्य अधिक हैं। 'आकाश की शोभा नक्षत्रों से इस प्रकार है मानों पति के कर-स्पर्श से शिथिल होकर अन्धकार-रूपी रात्रि-कामिनी के केशों से नव-प्रसून गिर कर फैल गये हों।' इस वर्णन में आलिंगन की व्यंजना अन्तर्निहित है। अन्यत्र भी प्रकृति में इस प्रकार क्रीड़ा-विलास लक्षित होता है—'मकरन्द के सिन्धु के सुन्दर प्रसून की धूलि बने हुए पुलिन पर भ्रमर अपनी भ्रमरियों के साथ मण्डल बना कर मधु-रस पी रहे हैं।' इसी प्रकार—

> **अशोकयष्ट्याः स्तबकोपनीत-**
> **मादाय पुष्पासवमाननेन।**
> **संभोगखिन्नां तरुणद्विरेफः**
> **सचाटुकं पाययति स्म कान्ताम्॥**[३७]

तरुण भ्रमर प्रिय वचनों के साथ अपनी संभोग से श्रान्त कान्ता

३७. बुद्ध०; स० ७; ९: स० ५; १८: स० ८; २८, ३७; स० ६: १७.

को अशोकलता के फूलों के गुच्छे से पुष्प-रस लेकर पिला रहा है।] वास्तव में यह समस्त आरोप हमारे समान मानवीय विलास का रूप प्रत्यक्ष कर देता है।

§ २१—प्रवरसेन के महाकाव्य का प्रधान रस शृंगार नहीं है और साथ ही उसमें विस्तृत वर्णनाएँ हैं। इन कारणों से सेतुबन्ध में प्रकृति उद्दीपन-विभाव के रूप में बहुत कम प्रयुक्त हुई है। इस महाकाव्य में प्रकृति के ऋतु आदि रूपों को केवल परम्परा-पालन की दृष्टि से नहीं रखा गया है। इसका समस्त वातावरण घटना के अनुरूप है। प्रातःकाल के इस वर्णन में उद्दीपन का सहज आभास है—'दिन डूब जाने पर किंचित विकसित होकर पुनः गाढ़ी सी प्रतीत होने के कारण हाथ से हटाई जाने योग्य प्रतीत होने वाली ज्योत्स्ना के भार से अपने विकसित दलों वाला मुकलित कुमुद काँप सा रहा है।' शरद् के इस वर्णन में वातावरण इसी प्रकार का है—

सेतुबन्ध

खण्डितोत्पाटितमृणालां दृष्ट्वा प्रियामिव शिथिलवलयां नलिनीम्।
मधुकरीमधुरोल्लापं मधुमयाताम्रं मुखमिव गृह्यते कमलम्॥[३८]

[जिसके हाथों से कंकण खिसक गया है अपनी उस प्रियतमा के समान, तोड़ लिये गये हैं कमल जिसका ऐसी नलिनी को देख कर मधुकर मधुमय और थोड़ी-थोड़ी लाली लिए हुए कमल को उसका मुख समझ कर उसकी ओर अनुरक्त हो रहे हैं।] इस वातावरण में आरोप का माध्यम प्रधान है। परन्तु कभी आरोप उद्दीपन के लिए प्रधान भी हो जाता है। समुद्र की वेला का यह चित्र संभोगोपरान्त नायिका के समान उपस्थित किया गया है—'नत-उन्नत रूप में स्थित फेनराशि जिसका अंगराग है, जिसका नदी-प्रवेश रूपी मुख विद्रुम-जाल रूपी दन्त-व्रण से विशेष कान्तिमान है तथा मृदित वन-रूपी कुसुम ग्रथित केशपाश है जिसका ऐसी, समुद्र-रूपी नायक के संभोग-चिह्नों को वेला नायिका धारण

---

३८. सेतु० : स० १० ; ५० : स० १ ; ३०।

करती है।' बारहवें आश्वास में प्रातःकाल के साथ विलास का वर्णन है। कवि प्रभात-काल के सुख का उल्लेख करता हुआ मदिरा पात्र का वर्णन भी करता है—

संक्रान्ताधररागं स्तोकसुरासंस्थितोत्पलार्धस्थगितम्।
चषकं कामिनीमुक्तं क्राम्यद्बकुलतनुको न मुञ्चति गन्धः॥[३९]

[जिसमें पान के समय की ओठों की लाली लगी हुई है, थोड़ी मदिरा के शेष रह जाने के कारण अर्द्ध कमल-दल से आच्छादित सा कामिनियों द्वारा त्यक्त चषक मुर्झाते बकुल पुष्प की भाँति मदिरा की गन्ध को नहीं छोड़ रहा है।] इस उल्लेख में ऐश्वर्य्य-विलास वर्णन की परम्परा का रूप रक्षित है।

§२२—कुमारदास के महाकाव्य में, जैसा कहा गया है प्रकृति-वर्णन कथा-वस्तु से अधिक दूर नहीं पड़ गया है। प्रकृति और कथा-वस्तु का सम्बंध इसमें रक्षित है। और साथ ही उद्दीपन-रूप की रूढ़िवादिता का प्रवेश इस महाकाव्य तक नहीं हुआ था। वर्णन अलंकृत हैं, पर उनमें उद्दीपक भाव-स्थिति के संकेत का समावेश नहीं किया गया है। रात्रि-वर्णन के इस दृश्य की सहज भावशील व्यंजना में उद्दीपन का संकेत है—'चन्द्रमा ने निश्चय ही अँधेरे पक्ष में खोये हुए अपने मण्डल को वियोगिनी स्त्रियों के कमल-मुखों के प्रकाश से पुनः पूरा कर लिया है।' इसमें चन्द्रमा वियोगिनियों के लिए उत्तेजक है, इस बात की व्यंजना निहित है। अन्यत्र वसन्त के विकास के साथ अशोक के वर्णन में कवि-प्रसिद्धि उद्दीपन का वातावरण प्रस्तुत करती है—

जानकीहरण

वन्ध्योऽपि सालक्तकपादघातं
लब्ध्वा रणन्नूपुरमङ्गनानाम्।

---

३९. वही; स० १; ६४: स० १२; १४।

ऊद्भूतरोमांच इवातिहर्षात्
पुष्पांकुरैरास नवैरशोकः ॥[४०]

[वन्ध्या होने पर भी अशोक, युवतियों के महावर से रंजित तथा बजते हुए नूपरों वाले पैरों के आघात से ऐसा फूल उठा है मानों हर्षातिरेक से उसका शरीर रोमांचित है ।] कहीं-कहीं प्रकृति प्रत्यक्ष उद्दीपक के रूप में उपस्थित हुई है । वसन्त में करवीर इस प्रकार पुष्पित हो रहा है—'आभा से चमकती हुई करवीर की नवीन लाल-लाल कलियाँ परदेशी पथिकों के लिए मदन के तीक्ष्ण बाण के फल के समान प्रकट हुईं ।' इसी प्रकार अस्त होते हुए सूर्य के दृश्य में यही भावना है—'कुंकुम से लाल स्त्री के कुचमण्डल के समान सूर्य्य प्रवासियों के मन को आतुर करता हुआ पश्चिम सागर की तरंगों में डूब रहा है ।'[४१] आरोप का माध्यम कम ही स्थलों पर लिया गया है । इस चित्र में सूर्य तथा सरोजनी के प्रेम प्रसंग को उपस्थित किया गया है—

विरामः शर्वर्या हिमरुचिरवाप्तोऽस्तशिखरं
किमद्यापि स्वापस्तव मुकुलिताम्भोरुहदृशः ।
इतीवायं भानुः प्रमदवनपर्यन्तसरसीं
करेणाताम्रेण प्रहरति विबोधाय तरुणः ॥

[रात्रि के समाप्त होने पर 'मुकुलित कमल-नेत्रोंवाली अभी तक तुम सो रही हो' इन शब्दों के साथ तरुण अरुण अपने रक्त-करों से जगाने के लिए प्रमद वन के निकट स्थित सरसी को थपथपाता है ।] प्रेमी-प्रेमिका की व्यंजना से इस आरोप में रति-भावना का उद्दीपन है । इसी सर्ग में रात्रि-वर्णन प्रसंग के साथ राजा दशरथ के विलास का वर्णन भी प्रस्तुत हुआ है । आसव-पान के प्रसंग को कवि इस प्रकार प्रकृति-वर्णन के साथ मिला देता है—'चषक की मदिरा में प्रतिबिम्बित

---

४०. जान० ; स० ८ ; ७७ : स० ३ ; ७ ।
४१. वही ; स० ३ ; ६, ६४ ।

चन्द्रमा युवती के कमल-गन्ध वाले मुख में जाने के लिए इच्छुक, प्रेम पीड़ित के समान काँप रहा है।'[४२] यह विलास-वर्णन जानकी-हरण में अधिक विस्तृत नहीं है और प्रकृति से सम्बंधित रह कर अधिक स्वाभाविक है।

§ २३—भारवि तक कथा-वस्तु में प्रकृति-वर्णन को शास्त्र-निर्दिष्ट रीति से उपस्थित करने की परम्परा अधिक विकसित हो चुकी थी।

किरातार्जुनीय

लेकिन किरातार्जुनीय में प्रकृति तथा वस्तु में कुछ दूर तक सम्बंध का निर्वाह हो सका है। आगे के कवियों में प्रकृति-वर्णना के स्थल नितान्त निर्पेक्ष रूप से रखे गये हैं। माघ तथा श्रीहर्ष दोनों में यह बात देखी जा सकती है। साथ ही किरातार्जुनीय में उद्दीपन की प्रवृत्ति माघ जैसी परिलक्षित नहीं होती। भारवि ने प्रकृति को मानवीय भावों के माध्यम से ही नहीं देखा है। वैसे विलास-क्रीड़ा का वर्णन भारवि में भी अधिक है। अर्जुन की तपस्या-भंग करने के लिए आई हुई अप्सराओं के माध्यम से यह वर्णन कथा-वस्तु के अनुकूल बना लिया गया है। अप्सराओं के प्रति प्रकृति कभी सहज भावशील स्थिति में उपस्थित हुई है—'कमलों का स्पर्श कर, जलकणों से युक्त पवन ने जल-तरंगों का आश्रय लेकर विलासिनी स्त्रियों का आतप दूर कर अपने हाथ का सहारा दिया।' इसी प्रकार की उद्दीपन की सहज भाव-स्थिति वसन्त के इस प्रसार में है—'मधु के लिए उत्सुक भ्रमर पास के पराग-युक्त केतकी पुष्पों को छोड़कर कदम्ब पर मड़रा रहे हैं।' अन्यत्र अर्जुन के सम्मुख प्रकृति उद्दीपक वातावरण में फैली हुई है—

> प्रतिबोधजृम्भणविभिन्नमुखी पुलिने सरोरुहदृशा ददृशे।
> पतदच्छमौक्तिकमणिप्रकरा गलदश्रुबिन्दुरिव शुक्तिवधूः॥[४३]

---

४२. वही ; स० ३ ; ७८, ७३।

४३. किरा० ; स० ८ ; २८ : स० १० ; २६; स० ६ ; १२।

[कमल-नेत्र अर्जुन ने देखा—तट पर हाल की स्फुटित होने से जिसके मोती बिखर गये हैं और जल-बिन्दु चू रहे हैं ऐसी मौक्तिक-सीपी उस सुन्दरी के समान है जो सोकर उठने के कारण जँभाई ले रही हो, जिसके बिस्तर पर आभूषण फैले हों और प्रसन्नता से जिसके आँसू बह रहे हों।] प्रकृति और मानव-जीवन को सामने रख कर कवि ने इस वातावरण का निर्माण किया है।

क—ऋतुओं के वर्णन में प्रकृति प्रत्यक्ष उद्दीपन के अन्तर्गत अधिक उपस्थित हुई है। 'वर्षा में आकाश को आच्छादित करते हुए मेघ, बिजली का चंचल नृत्य, गम्भीर बादलों का गर्जन सभी प्रेमियों के रति-विग्रह (मान) को दूर करते हैं।' इसी प्रकार अन्य दृश्य भी हैं। 'प्रत्येक दिशा में प्रवाहित होने वाले पुष्पों की सुगन्धि से वासित पवन के स्पर्श से लोगों के मन काम से आकुल हो जाते हैं।' इन रूपों में प्रकृति स्वतः वासना को दीपित करती है। भारवि ने प्रकृति पर आरोप द्वारा यह प्रभाव उत्पन्न किया है, पर इनके आरोप कुछ जटिलता लिए हुए हैं। इन आरोपों में नारी-भावना है, पर माघ जैसी मधु-क्रीड़ाओं का रूप अधिक नहीं है। जहाँ विलास का यह रूप है वहाँ भी प्रकृति बिलकुल अप्रमुख नहीं हो जाती है—

प्रत्यक्ष आरोप और विलास

अवधूतपङ्कजपरागकणास्तनुजाह्नवीसलिलवीचिभिदः।
परिरेभिरेऽभिमुखमेत्य सुखाः सुहृदः सखायमिव तं मरुतः॥

[कमल के पराग से लिप्त हुआ तथा गंगा के सलिल तरंगों से शीतल पवन ने सम्मुख से आकर उसे सखा के समान आलिंगित किया।] यहाँ पवन विलासी पुरुष की व्यंजना दे रहा है। अन्य आरोपों का पिछले प्रकरणों में उल्लेख किया गया है (४; ३४ : ५; ३२७)। विलास और मधु-क्रीड़ाओं के अनेक दृश्य नवें सर्ग तथा दसवें सर्ग में मिलते हैं; यह सारा प्रसंग अप्सराओं के क्रीड़ा-विलास का है—'विरह की स्थिति में उनको मालाएँ, चन्दन, मदिरा कुछ भी नहीं रुचा, उनकी कामना

केवल प्रिय समागम की थी।'[४४] यह प्रसंग इसी प्रकार चलता है।

§२४—माघ के शिशुपालवध में प्रकृति का स्थान कथा-वस्तु से निरपेक्ष परम्परा के रूप में है, और साथ ही इसमें प्रकृति उद्दीपन-विभाव के अन्तर्गत अधिक प्रयुक्त हुई है। प्रकृति-वर्णन के साथ क्रीड़ा-विलास प्रत्येक स्थान पर प्रमुख हो उठता है। इस महाकाव्य में सामन्ती ऐश्वर्य्य, प्रियता का रूढ़िवादी रूप है। इस कारण प्रकृति के वर्णनों में भी मधु-क्रीड़ाओं का विलास किसी न किसी रूप में अधिक व्यंजित तथा प्रत्यक्ष हो जाता है। प्रत्यक्ष-रूप में प्रकृति शृंगार-भावना को उद्दीप्त करती भी अधिक पाई जाती है। सहज भावशील उद्दीपन के चित्र बहुत कम हैं। वसन्त के 'आगमन से माधवी-लता विकसित हो गई और उसके फूलों का मधुपान करके भ्रमरियों की प्रतिभा बढ़ गई, और वे निरन्तर मन को उन्मत्त करने वाली गुंजार करने लगीं।' इस चित्र में भावों का प्रकम्पन है, वह मन को कामोत्सुक कर देता है। इसी प्रकार—

शिशुपाल-वध

नवकदम्बरजोरुणिताम्बरैरधिपुरन्घ्रि शिलान्ध्रसुगन्धिभिः।
मनसि रागवतामनुरागिता नवनवा वनवायुभिरादधे ॥[४५]

[वन की प्रवाहित पवन कदम्ब के पुष्पों की रेणु द्वारा आकाश को लाल रंग की करके तथा भूमि कन्दली के फूलों के स्पर्श से सुगन्धित होकर, कामिनियों के प्रति अभिलाषी पुरुषों के चित्त में नवीन-नवीन अनुराग उत्पन्न करने लगी।] इस दृश्य में वही भाव-स्थिति व्यंजित है। अन्यत्र प्रकृति में इसी भाव को अभिव्यक्त करता हुआ वातावरण निर्मित हुआ है—'विरहिणी रमणियों के मन को उद्वेलित करनेवाली कदम्ब वन की श्रेणी वस्त्रों के समान मेघमाला को धारण किये हुए दिशाओं के लिए अपने पराग को वस्त्रों की तरह बिखेरने लगी।

---

४४. वही ; स० १० ; १९, २१ : स० ६ ; ३ : स० ९ ; ३५।
४५. शिशु० ; स० ६ ; २०, ३२।

इस चित्र में वातावरण के लिए प्रत्यक्ष उद्दीपन तथा आरोप का आश्रय ग्रहण किया गया है। पर आगे के इस दृश्य में केवल वातावरण में रति-भाव की व्यंजना सन्निहित की गई है—

विगतरागगुणोऽपि जनो न कश्चलति वाति पयोदनभस्वति ।
अभिहितेऽलिभिरेवमिवोच्चकैरननृते ननृते नवपल्लवैः ॥[४६]

['पावस ऋतु के पवन चलने पर विरक्त होने पर भी कौन व्यक्ति चंचल नहीं हो जाता ?' भ्रमरों के उच्च-स्वर से इस प्रकार का सत्य वचन कहने पर मानों नवीन कोमल पत्ते नृत्य करने लगे।]

क—जैसा कहा गया है इस महाकाव्य में प्रकृति प्रत्यक्ष रूप से भावोद्दीपक अधिक चित्रित की गई है। वसन्त में 'आम्र-वन का पराग काम-रूपी तुषानल के चूर्ण के समान पथिकों के ऊपर उड़ कर उनके मन को अत्यधिक सन्तप्त करता है।' आगे 'प्रिय सखी के समान कोयल के हितकारी रहस्यमय वचनों को सुन कर स्त्रियों ने मान छोड़ दिया और अपने प्रियतमों को बिना प्रार्थना के ही अपने अंग समर्पित कर दिये' इस चित्र में उद्दीपन का अत्यधिक रूढ़िवादी रूप है। 'भौंरों की मधुर गुंजार से आकर्षित मधुर होकर विरहीजन उसी प्रकार काम के वश होने लगे जैसे वीणा के स्वर से मृग व्याध के वश में हो जाता है, इस प्रकृति के रूप में सहज उद्दीपन की प्रत्यक्ष भावना है। अन्यत्र पलास-पुष्पों का प्रस्ताव भी ऐसा ही है—

प्रत्यक्ष उद्दीपक

अरुणिताखिलशैलवना मुहुर्विदधती पथिकान् परितापिनः
विकचकिंशुकसंहतिरुच्चकैरुदवहद्वहव्यंवहश्रियम् ॥[४७]

[ऊँचाई पर स्थित विकसित पलास के पुष्प-समूह समस्त पर्वत और सारे वन को ही लाल रंग का करके और बार-बार पथिकों को सन्तप्त करते हुए

४६. शिशु० ; स० ६ ; ३७, ३९।
४७. वही ; स० ६ ; ६, ८, ९, २१।

दावानल की शोभा को धारण कर रहे थे।] इस प्रकार के चित्र इस महाकाव्य में बहुत हैं।

ख—माघ आरोप की दृष्टि से प्रमुख कवि हैं। जहाँ तक मानवीय जीवन की मधु-क्रीड़ाओं तथा रति-विलास के प्रकृति पर आरोप का प्रश्न है माघ से अधिक स्थितियां का प्रस्तुत करनेवाला कवि अन्य नहीं है। माघ के लिए जैसे प्रकृति इन क्रीड़ाओं के वर्णन का माध्यम भर हो। इन विविध स्थितियों के आरोप से माघ ने प्रकृति की वर्णना को उद्दीपक प्रस्तुत किया है। सूक्ष्म हाव-भाव तक का आरोप ये प्रकृति पर करते हैं—'उदयमान अरुण ने पूर्व दिशा-रूपी युवती के मुख पर स्त्री की लाली पैदा कर दी। इससे जान पड़ता था कि मानों वह मुख चिरस्थायी लज्जा का परित्याग कर रहा है और उस मुख के अवगुण्ठन वस्त्र के समान चन्द्र की ये किरणें अब गिर रही हैं।' इस दृश्य में प्रेमियों के प्रथम-मिलन का चित्र है, और इस प्रकार यह प्रकृति पर मानव-जीवन का आरोप रति-भाव का उद्दीपक है। प्रेमियों की विदा का दृश्य प्रकृति में इस प्रकार वर्णित है—'अस्त होते हुए सूर्य को दीर्घ समय तक बिना पलक बन्द किये देखने के कारण कमलिनियाँ थक गईं, और वियोग-दुःख के कारण कमल-नेत्रों से भौंरों के समूह-रूपी आँसू निकलने लगे। कमलिनी ने नयन बन्द कर लिये, जैसे अनुरक्त कान्ता पति को अनिमेष भाव से देख रही हो और उसके चले जाने पर उसने आँखें बन्द कर ली हों।' इसमें वियोग की भावना व्यंजित होती है। कभी प्रकृति कामिनी के हास-विलास से कामोद्दीपक सिद्ध होती है—'नवीन कमलों के केसरों की पराग को बिखेरती हुई वायु से ऐसा जान पड़ता था मानों शरद् कामिनी परिहास करने की इच्छा से श्रीकृष्ण की प्रेयसियों पर धूल फेंक रही थी।' और वर्षा के मेघों के साथ कवि रति-क्रीड़ा की कल्पना समक्ष रख देता है—

आरोप

स्फुरदधीरतडिन्नयना मुहुः प्रियमिवागलितोरुपयोधरा ।
जलधरावलिरप्रतिपालितस्वसमया समयाज्जगतीधरम् ॥[४८]

[चंचल बिजली रूपी नेत्रों को नचाती हुई, अपने निर्दिष्ट समय की बिना प्रतीक्षा किये ही विशाल उन्नत पयोधरों वाली मेघमाला प्रियतम के समान रैवतक पर्वत के निकट आई ।] इन समस्त आरोपों का उद्देश्य रसिक के मन में रति-भाव को जाग्रत करना है, इस कारण यह प्रकृति का रूप उद्दीपन-विभाव के अन्तर्गत स्वीकार किया गया है ।

ग—प्रकृति वर्णन के साथ मानवीय रति-विलास तथा ऐश्वर्य्य आदि के वर्णन की परम्परा बहुत प्राचीन है । इसका सम्बंध जैसा

विलास

कहा गया है सामन्तीयुग के शृंगार-प्रधान वातावरण से है । माघ में यह रूप अपनी रूढ़िवादिता के साथ अपनाया गया है । माघ का समय सामन्ती परम्परा के अन्त का है । ऋतुवर्णन के साथ प्रेमियों का यह व्यापार भी चल रहा है—'प्रियतम की बात सुन कर वह रमणी उससे तुरंत लपट गई, जैसे वह सचमुच भौंरे से भयभीत हो । आलिंगन करने के लिए दोनों भुजाओं के ऊपर उठ जाने से उस रमणी के कुच अधिक ऊँचे उठ गये और उसका मध्य-भाग वलियों से शोभित हुआ ।' यह विलास ऋतु-वर्णन के अतिरिक्त अन्य वर्णनों में भी माघ ने सम्मिलित किया है । प्रातःकाल की प्रकृति के साथ यह दृश्य भी है—

चिररतिपरिखेदप्राप्तनिद्रासुखानां
चरममपि शयित्वा पूर्वमेव प्रबुद्धाः ।
अपरिचलितगात्राः कुर्वते न प्रियाणा-
मशिथिलभुजचक्राश्लेषभेदं तरुण्यः ॥[४९]

[देर तक रमण-श्रान्ति के सुख से सोनेवाले नायक से गाढ़ालिंगन में

---

४८. वही ; स० ११ ; १६ ; स० ९ ; ११; स० ६ ; २५,
४९. वही ; स० ६ ; १३ : स० ११ ; १३ ।

लिपटी हुई बाद में सो कर पहले जागने वाली नायिकाएँ अपने बन्धन को ढीला न कर सकीं।] वास्तव में माघ के महाकाव्य में आधिकारिक कथावस्तु से अधिक यह विलास-क्रीड़ा है।

§ २५—श्रीहर्ष के महाकाव्य में परम्परागत रूढ़िवादिता का चरम दृष्टिगत हो जाता है। नैषधीय में प्रातः सायं सन्ध्याओं तथा ऋतु का वर्णन कथावस्तु से अलग थलग स्वतंत्र सर्गों में रखा गया है। परंतु इसमे एक बात विशेष ध्यान देने योग्य है। अपनी शैली में पूर्ण उहात्मक तथा अलंकृत होकर भी श्रीहर्ष की प्रकृति में मानवीय हाव-भाव तथा मधु-क्रीड़ाओं का आरोप पूर्व के कवियो से कम है। साथ ही प्रकृति-वर्णन के साथ मानवीय विलास-क्रीड़ा का वर्णन एक रूप नहीं हो गया है, जैसा अन्य काव्यों में हम कह चुके हैं। प्रथम सर्ग में क्रीड़ा-वन तथा सरोवर वर्णन के प्रसंग में प्रकृति का उद्दीपन-रूप अधिक प्रत्यक्ष हुआ है, पर यह प्रसंग के अनुकूल भी है। विरहावस्था में नल मंजरित आम के पेड़ को सहज भावशील स्थिति में पाता है—

नैपधीय

रसालसालः समदृश्यतामुना
स्फुरिद्द्विरेफारवरोषहुंकृतिः।
समीरलोलैर्मुकुलैर्वियोगिने
जनाय दित्सन्निव तर्जनीभियम्॥

[राजा ने गुंजार करते हुए भ्रमरों के रव से क्रुद्ध हुंकार करते हुए आम के पेड़ को देखा, मानों वह अपनी पवन से हिलती हुई कलियों से वियोगी-जनों को भय से आतंकित करता है।] इसी प्रकार दुःखी नल के लिए कोकिल का स्वर उद्दीपक वातावरण निर्माण करता है—'राजा ने लोहित-वर्ण की आँखवाली कोकिल को देखा, जो मानों कूक कर पथिकों को इस प्रकार शाप देती है कि तुम दिन-दिन अधिकाधिक ताप सहो और मूर्च्छित हो।' यह कोकिल का मादक स्वर वातावरण का ही रूप है। आगे प्रकृति का यह रूप प्रत्यक्ष व्यथा का प्रेरक और भाव का

उद्दीपक बन जाता है—'उसने उद्विग्न मन से भ्रमरों से आच्छादित चम्पक कली देखी, और वह डरा कहीं यह प्रेमियों पर विपदा लाने वाला पुच्छल-तारा तो नहीं उगा है।' प्रकृति पर मानवीय आरोप से यह प्रभाव उत्पन्न किया गया है। सर पर उठती हुई तरंगों को कवि, अपनी वल्लभा को वक्ष पर धारण करनेवाले नायक के रूप में देखता है।[४९] यह प्रसंग वियोग का है, इस कारण यहाँ विलास-क्रीड़ा का, उल्लेख नहीं है। परन्तु वैसे भी श्रीहर्ष ने प्रकृति के साथ मधु-क्रीड़ाओं को मिलाया नहीं है। इसका अर्थ यह नहीं है कि नैषधीय में क्रीड़ा-विलास का विस्तार नहीं है। चौथे सर्ग में वियोग की स्थिति में नायिका का उद्दीपक प्रकृति के प्रति उपालम्भ है, जो एक सीमा तक इस काव्य की अपनी विशेषता है। नायिका 'चन्द्रमा से पूछने को कहती है कि सखी उससे पूछो कि तुम्हें यह जलनशील उदारता किसने सिखाई है, शंकर के कंठस्थ विष ने या बड़वाग्नि ने।' यहाँ उपालम्भ के व्याज से प्रकृति की प्रत्यक्ष उद्दीपक शक्ति का उल्लेख किया गया है। आगे यह चन्द्रमा की जलनशीलता और भी प्रत्यक्ष हुई है—

श्रवणपूरतमालदलाङ्कुरं
शशिकुरङ्गमुखे सखि निक्षिप।
किमपि तुन्दिलितः स्थगयत्यमुं
सपदि तेन तदुच्छ्वसिमि क्षणम्॥[५०]

[हे सखि, कान के पहने हुए तमाल के अंकुर को चन्द्र के मृगा के मुख में दे दो, जिससे चन्द्रमा को वह कुछ तो ढक ले जिससे एक क्षण के

---

४९. नैष० ; स० १ ; ८९, ९०, ९१, ११२।

तरङ्गिणीरङ्कजुषः स्ववल्लभा
स्तरङ्गरेखा बिभरांबभूव यः।
दरोद्गतैः कोकनदौघकोरकै-
र्धृतप्रवालाङ्कुरसंचयश्च यः।

५०. वही ; स० ४ ; ४८, ५६।

लिए मैं साँस ले लूँ।] यह प्रकृति का रूढ़िवादी उद्दीपक रूप है।

गद्य-काव्य

§२६—गद्य-काव्यों में कथा-वस्तु और वर्णना-विस्तार में सदा एक सम्बंध रक्षित रहा है। इस कारण जैसा कहा गया है प्रकृति कथा की स्थिति को प्रत्यक्ष करने के लिए तथा वातावरण निर्माण के लिए प्रस्तुत की गई है। ऐसी परिस्थिति में उद्दीपन के अन्तर्गत प्रकृति एक प्रकार से वातावरण निर्माण करती है। वर्णना के विस्तार में जैसे अलंकृत प्रयोग वस्तु-स्थिति के स्वाभाविक अंग बन जाते हैं, वैसे ही उद्दीपन के प्रत्येक संकेत दृश्य में भाव-शीलता की व्यंजना करके खो जाते हैं। दृश्यों का चित्रण ऐसे विस्तृत तथा संश्लिष्ट हैं कि उनका रूप हमारे सामने अधिक प्रत्यक्ष होता है। कभी वर्णना के अन्तर्गत सहज उद्दीपक भावशीलता व्यंजित हो जाती है—'अशोक वृक्षों को लात मारने में युवतियों के मणि-नूपुर हजारों भाँति झनझना रहे थे; खिलती कलियों की सुगन्ध से एकत्र भ्रमरों की मधुर गुंजार से आम के वृक्ष मनोहर लग रहे थे; अविरल कुसुम-धूलि रूपी सैकत-पुलिन से धरातल धवल दिखाई देता था; मधुमद से मत्त हुए मधुकर लता-रूपी झूलों पर झूल रहे थे; पल्लवों से छाई हुई लवली लताओं में घुसे मत्त कोकिल मधुकण उड़ा कर उत्कट दुर्दिन कर रहे थे।' अन्यत्र यह वातावरण अधिक उद्दीपक जान पड़ता है—

कादम्बरी

समुपोढमोहनिद्रे च द्राघीयोवीचिविचलितवपुषि विरुवति विरहिणि चक्रवाकचक्रवाले, निवृत्ते च चन्द्रोदये, विद्रुते हर्षनयनजलकणनिहारिणि वियद्विहारिणि मनोहारिणि विद्याधराभिसारिकाजने,...।[५१]

[मोह-निद्रा में आई हुई बड़ी-बड़ी तरंगों की छलक से काँपते विरही

५१. काद० ; पूर्व, महाश्वेतास्नानागमनवृत्तान्त, पृ० २९७—अशोक...... दुर्दिनेषु। केयूरकेण सह तरलिकाया आगमनम्, पृ० ३७३।

चक्रवाक के झुंड जब चीखें मारने लगे, चन्द्रोदय जब पूर्ण हो गया और नयनों म से आनन्दाश्रु-बिन्दु-रूपी ओस बरसाती, आकाश में विहार करने वालीं मनोहर विद्याधरों की अभिसारिकाएँ जब दौड़ लगाने लगीं...] कभी प्रत्यक्ष उद्दीप्त करती हुई प्रकृति का चित्र भी आ गया है—'प्रोषित-पतिकाओं के प्राण लेने से हर्षित हुए कामदेव के चढ़ाए हुए धनुष की टंकार के भय से फटे हुए प्रवासियों के हृदयों से बहते रुधिर से सब मार्ग तर हो रहे हैं; लगातार गिरते कामदेव के शरों के पंखों की सनसनाहट से सब दिशा बधिर हो रही थी; दिन में भी हृदय में कामदेव का संचार होने से अभिसारिकाएँ अंधी हो रही थीं; और उमड़ते हुए रति-रस-रूपी सागर के प्रवाह में सब डूब रहे थे।' इसी प्रकार फैलते हुए अंधकार में प्रेरक प्रकृति का रूप निहित है—'तत्काल उत्पन्न हुए कादम्बरी हृदय-राग-रस-सागर के समान सन्ध्या-राग से जब सकल भुवन पूर्ण हो गया, कामाग्नि से जलते हुए हजारों चक्रवालों के हृदयों में से निकलते धूम के समान—मानिनी के नयनों में से अश्रुधारा टपकता तरुण तमाल के समान अंधकार जब सब जगह फैल गया—...।' परन्तु यह समस्त भावात्मक व्यंजना वातावरण से मिल जाती है। अन्यत्र प्रकृति वियोग के प्रभाव में चित्रित की गई है, इस अध्यन्तरण में उद्दीपन की भावना ही सन्निहित है—

आसन्नविरहविधुरस्य च कामिनीजनस्य निःश्वसितैरिवोष्णैर्म्लानिमनीयत चन्द्रिका। चन्द्रापीडविलोकनारूढमदनेव कुमुदद्लोपनीतनिशा पङ्कजेषु निपपात लक्ष्मीः। क्षणदापगमे च स्मृत्वा कामिनीकर्णोत्पल-प्रहारानुत्कम्पितेष्विव क्षामतां व्रजत्सु पाण्डुतनुषु गृह प्रदीपेषु,...।[५२]

[वियोग-समय निकट जान शोकातुर कामिनियों के मानों निश्वास से ही चन्द्रिका फीकी पड़ गई। चन्द्रापीड़ को देखने से मानों कामातुर

५२. वही ; वही ; महाश्वेता०, पृ० २९७—प्रोषित......प्लावितेषु। पृ० ४२२। पृ० ४२५।

हुई लक्ष्मी सारी रात कुमुद-दल के भीतर बिता कर कमलों में जाकर पड़ी। रात बीत जाने पर जब मंद हुए शयन-गृह के दीपक कामिनियों के कर्णोत्पल-प्रहार की याद कर मानों उत्कण्ठित हो दुर्बल हो गये।] इस गद्य-कथा-काव्य में आरोप द्वारा जब काम-विलास आदि का संकेत दिया गया है, तब भी दृश्य की चित्रात्मकता प्रधान रहती है। चन्द्रमा के उदित होते दृश्य में नायक-नायिकाओं के प्रेम-व्यवहार की जो व्यंजना है वह उद्दीपन की प्रेरक है—'श्याम-मुख होने से कुपित सी दीखती दिशाओं को जो मानों प्रसन्न करता था, सोती हुई कमलिनियों को जान न पड़े इस डर से छोड़ता जाता था, लांछन के बहाने जो मानों साक्षात् रात्रि को अपने हृदय में धारण करता था, रोहिणी के चरण-प्रहार से लगी हुई महावर के समान उदय राग से संयुक्त, अभिसारिका के समान तिमिर श्याम अम्बर युक्त आकाश के पास जाता था और उसके अतिशय प्रेम के कारण जो मानों सौभाग्य को बिखेरता था, वह नेत्रों को आनन्द देने वाला भगवान चन्द्रमा उदय हुआ।'[५३] इस वर्णन में नायक के रूप में चन्द्रमा की कल्पना प्रकृति को रति-भाव के उद्दीपन-विभाव में प्रस्तुत करती है। कथा-वस्तु में संभोग-शृंगार को स्थान नहीं दिया गया है, साथ ही प्रकृति के वर्णन के साथ विलास-क्रीड़ा का उल्लेख नहीं के बराबर हुआ है। यद्यपि इसमें राजप्रासादों के वर्णन प्रसंग में ऐश्वर्य्य का विस्तृत और अलंकृत वर्णन है। यत्र-तत्र कहीं ऐसे उल्लेख समग्र दृश्य-चित्रण के बीच में आ गए हैं—

समारोपितकार्मुके ग्रहीतसायके यामिक इवान्तःपुरप्रविष्टे मकरकेतौ, अवतसपल्लवेष्विव सरागेषु कर्णे क्रियमाणेषु सुरतदूतीवचनेषु, सूर्यकान्तमणिभ्य इव संक्रान्तानलेषु प्रज्वलत्सु मानिनीनां शोकविधुरेषु हृदयेषु,...।[५४]

---

५३. वही; वही काद० चन्द्रा० प्रीतिवर्धक उपचार; पृ० ४२२—ततो...... सुधासूतिः।

५४. वही ; वही ; चन्द्रापीडस्य मृगया, पृ० २१३–१४।

[धनुष चढ़ा कर बाण लेकर चौकीदार के समान कामदेव ने प्रवेश किया; कर्ण-पल्लव के समान सराग सुरत-दूती के वचन सुनाई देने लगे; सूर्य्यकान्त-मणियां से अग्नि लग जाने के कारण मानिनियों के शोकार्त हृदय मानों जलने लगे।] इस वर्णन में कुछ संकेतों से विलास-क्रीड़ा का उल्लेख मात्र किया गया है।

नाट्य-काव्य

§ २७—नाटकों में प्रकृति के उद्दीपक रूप के लिए अधिक अवसर नहीं रहता, क्योंकि उनमें अधिकतर स्थान-काल की सूचनाओं के लिए प्रकृति का उल्लेख किया जाता है या कभी वातावरण के रूप में भी वह प्रस्तुत की गई है। कभी ऐसे ही स्थलों में उद्दीपन की व्यंजना निहित की गई है। मृच्छकटिक तथा मालतीमाधव में अवश्य ऋतु तथा स्थान वर्णन में परम्परागत उद्दीपन विभाव के रूप में प्रकृति दिखाई देती है और वह प्रत्यक्ष रूप से मानवीय भावों को उत्तेजित करती है। विक्रमोर्वशीय के चौथे अंक के भावशील तथा आत्मीय वातावरण में कभी प्रकृति राजा को वियोग-पीड़ा में उद्दीपन का कार्य भी करती है। राजा कोयल के कूजन से व्यथित होकर कहता है—'देखो, कामी लोग तुम्हें मदन की दूती मानते हैं और मानिनी स्त्रियों का रूठना दूर करने के लिए तुम अचूक हथियार कही जाती हो। इसलिए हे मधुर स्वरवाली, या तो तुम मेरी प्यारी को मेरे पास पहुँचा दो या मुझे मेरी प्यारी के पास।' जिस मानसिक स्थिति में राजा प्रकृति के प्रति आकर्षित होता है उसको प्रकृति प्रभावित कर रही है। अपनी प्रेयसी की स्मृति के आधार पर भी उसे प्रकृति उद्वेलित कर रही है—

कालिदास

मेघश्यामा दिशो दृष्ट्वा मानसोत्सुकचेतसाम्।
कूजितं राजहंसानां नेदं नूपुरशिञ्जितम्॥[५५]

---

५५. विक्र० ; अं ४ ; २५, ३०।

[यह उठे हुए मेघों की श्यामता को देखकर मानसरोवर जाने को उत्सु राजहंसों की कूजन है, मेरी प्यारी के बिछुओं की झनकार नहीं है।] इस भ्रम के साथ राजा की मनोवेदना का रूप भी व्यंजित है। मालविकाग्निमित्र के वसन्त में भावोद्दीपक वातावरण है—'मतवाले कोकिलों की कान को सुनाने वाली कूकों में मानों वसन्त ऋतु मुझ पर दया दिखलाते हुए पूछ रहा हो—प्रेम की पीड़ा सही जा रही है? इधर खिली हुई आम की मंजरियों की गन्ध में बसा हुआ दक्षिण पवन मेरे शरीर से लग कर ऐसा जान पड़ता है मानों वसन्त ने अपना सुखद हाथ रख दिया हो।' प्रकृति का यह रूप संवेदक है। इसके आगे कामिनी के शारीरिक आरोपों से प्रकृति उद्दीपक चित्रित की गई है—

रक्ताशोकरुचा विशेषितगुणो बिम्बाधरालक्तकः
प्रत्याख्यातविशेषकं कुरबकं श्यामावदातारुणम्।
आक्रान्ता तिलकक्रिया च तिलकैर्लग्नद्विरेफाञ्जनैः
सावज्ञेव मुखप्रसाधनविधौ श्रीर्माधवी योषिताम्॥[५६]

[इस लाल अशोक की ललाई ने स्त्रियों के बिम्बाधरों की ललाई को लजा दिया है; काले, उजले और लाल रंग के कुरबक के फूलों ने स्त्रियों के मुखों पर चीती हुई चित्रकारी फीकी कर दी है; काले भौरों से लिपट कर तिलक के फूलों ने स्त्रियों के माथे पर के तिलक को नीचा दिखा दिया है; इस प्रकार मानों वसन्त की शोभा आज स्त्रियों के मुख के साज शृंगार का निरादर करने पर तुली है।] नायिका के रूप में प्रकृति की कल्पना कामोद्दीपन के अनुरूप है।

§ २८—शूद्रक के इस नाटक में प्रकृति के उद्दीपन रूप का विस्तृत प्रयोग है। अंक पाँच में वर्षा का वर्णन भावशील स्थिति को व्यंजित करता है—'मेघ से आच्छादित होती दिशाओं को देखकर पालतू मोरों ने उत्साह से नृत्य करने के

मृच्छकटिक

---

५६. मालवि० ; अ ३ ; ४, ५।

लिए अपनी पूँछ फुला ली है, उद्विग्न होकर हंस मानसरोवर चलने को उद्यत हो गये और उत्कंठित विरहियों के मन व्यथित हो गये।' अन्यत्र वसन्तसेना आतंकित करती प्रकृति को सम्बोधित करती है—

मूढे ! निरन्तर-पयोधरया मयैव
कान्तः सहाभिरमते यदि किन्तवात्र
मां गर्जितैरिति मुहुर्विनिवारयन्ती
मार्गं रुणद्धि कुपितेन निशा सपत्नी ॥[५७]

[हे मूढ, इसमें तुम्हारा क्या बिगड़ता है यदि मैं अपने प्रियतम के साथ हूँ। चारों ओर से घिरे हुए बादलों वाली रात्रि तू सौत के समान गरज गरज कर मेर माग को बार बार क्यों रोकती है।] इस मेघाच्छादित रात्रि के चित्रण में विरोध के माध्यम से उद्दीपन की व्यंजना है। इस स्थल के वातावरण में ऐसा ही संवेदक प्रभाव है। अन्यत्र इस पीड़क प्रकृति के प्रति वसन्तसेना उपालम्भशील भी होती है—'हे इन्द्र, तू चाहे बिजली गिराये चाहे गरजना कर, पर स्त्रियों को अपने प्रिय से मिलने से कौन रोक सका है। यदि मेघ तू गरजना—बरसना चाहता है तो मुक्त होकर ऐसा कर ले। पर हे बिजली, तू भी अबला की वेदना को क्यों नहीं समझती, पुरुष तो बेपीर होते ही हैं।' इस सम्बोधन में प्रकृति का प्रत्यक्ष उत्तेजक रूप प्रकट होता है। प्रकृति के आन्दोलित रूप के साथ वसन्तसेना का यह आगमन स्वयं प्रकृति के साथ रति-विलास को आयोजन का रूप है, पर इस श्लोक में नायिका-वर्णन की परम्परा का स्वरूप निहित है—

एषा फुल्ल-कदम्ब-नीप-सुरभौ काले घनोद्भासिते,
कान्तस्यालयमागता समदना हृष्टा जलार्द्रालका।
विद्युद्वारिद-गर्जितैः सचकिता त्वद्दर्शनाकाङ्क्षिणी
पादौ , नूपुरलग्नकर्दमधरौ प्रक्षालयन्ती स्थिता ॥[५८]

---

५७. मृच्छ० ; अं० ५ ; १, १४।
५८. वही ; अं० ५ ; ३०, ३२।

[इस समय जब पुष्पित कदम्ब और नीप की सुरभि पवन के साथ बह रही है और काले घने बादल छाये हैं, यह कामनी जिसके बाल गीले हो गये हैं, अपने प्रिय के घर पर आई है। बादल में बिजली की गरज से चकित होती हुई तुम्हारे दर्श की आकांक्षा से अपने नूपर में लगे हुए कीचड़ को धोती हुई द्वार पर खड़ी है।] नाटकीय कथावस्तु में यह घटना के साथ स्वाभाविक चित्र है, पर अभिसारिका के रूप की कल्पना इससे की जा सकती है।

§ २६—कुन्दमाला में राम को संयोग-वियोग की स्थिति के अनुसार प्रकृति उत्तेजक जान पड़ती है—

अन्य नाटक

मुक्ताहारा मलयमरुतश्चन्दनं चन्द्रपादाः
सीतात्यागात्प्रभृति नितरां तापमेवावहन्ति।
अद्याकस्माद्रमयति मनो गोमतीतीरवायु-
र्नूनं तस्यां दिशि निवसति प्रोषिता सा वराकी।[५९]

[मुक्ता के हार, मलय-पवन, चन्दन, चन्द्र-किरणें प्रिया के विरह में मेरे लिए तापकारी ही हो गये हैं। आज एकाएक गोमती-तट की वायु मुझे सुख दे रही है, इससे निश्चय ही वह मन्दभागिनी त्यक्त सीता इधर ही रहती है।] नागानन्द के वसन्त बाग के प्रसंग में वातावरण में जो भावशीलता है, वह उद्दीपन के अन्तर्गत आ सकती है (३; ८)। और उसमें इस प्रसंग में विद्याधरों की मधुक्रीड़ाओं का उल्लेख है—'हरिचन्दन को अंग में पोते हुए, संतानक की माला पहिने हुए तथा भूषणों की ज्योति से जिनके कपड़ों पर भिन्न रंगों की छाया पड रही है ऐसे सिद्ध लोग विद्याधरों में मिल कर चन्दनलता की छाया में प्रियाओं का जूठा मद पी रहे हैं।'[६०] रत्नावली नाटक में प्रथम अंक सम्पूर्ण मदनोत्सव प्रसंग से सम्बंधित है। इस प्रसंग में वसंत-ऋतु में उपवन

---

५९. कुन्द०; अं० ३; ६।

६०. नागा०; अं० ३; ९।

का वर्णन उत्सव के अनुरूप उल्लास क्रीड़ा से स्पन्दित है। कहीं प्रकृति उद्दीपक वातावरण प्रस्तुत करती है और कहीं स्वतः उद्दीप्त करती जान पड़ती है—'दक्षिण मलय-पवन प्रवाहित है जो कामदेव का सच्चा दूत है, जिससे आम में बौर आ जाता है और जो लोक का मान दूर कर देता है। यह वसन्त मधुमास लोगों के मन को उद्वेलित कर देता है, फिर काम अपने विकसित पुष्प-बाणों से उनके हृदय को वेध देता है।' अन्यत्र मानवीय क्रीड़ा के साथ प्रकृति जैसे साथ देती है—

मूलं गण्डूषसेकासव इव बकुलैर्वास्यते पुष्पवृष्ट्या
मध्वाताम्रे तरुण्या मुखशशिनि चिराच्चम्पकान्यद्य भान्ति।
आकर्ण्याशोकपादाहतिषु च रणतां निर्भरं नूपुराणां
झङ्कारस्यानुगीतैरनुकरणमिवारभ्यते भृङ्गसार्थैः॥[६१]

[आसव के कुल्ले से छिड़की हुई के समान मूल को बकुल ने अपनी पुष्पवृष्टि से सुगन्धित कर दिया है; चम्पक पुष्प इस प्रकार शोभित हैं मानो मदिरा पीने से ताम्रवर्ण के मुखवाली तरुणियों के चन्द्रमुख हों; और अशोक ने जो ताड़ित होने पर नूपुरों का स्वर सुना था, भ्रमरों की गुंजार के मिस मानों उसी का वह अनुकरण कर रहा है।] इस प्रकृति तथा मानव-जीवन के उल्लास-विलास से पूर्ण सामंजस्य में प्रकृति का रूप उद्दीपक है।

§ ३०—भवभूति ने कालिदास के समान प्रकृति को अपने नाटकों में स्थान दिया है। उत्तररामचरित की आत्मीय प्रकृति का रूप देखा गया है, पर मालतीमाधव में प्रकृति उद्दीपन रूप में अधिक विस्तार से उपस्थित हुई है।

मालतीमाधव

इस दृष्टि से इसका नाटकों में प्रमुख स्थान है। और प्रत्यक्ष रूप से भावों को उद्दीप्त करती हुई प्रकृति का रूप प्रमुखतः इस नाटक में अधिक है। परन्तु सहज रूप से भावशील स्थिति को जगाने वाले दृश्यों की

६१. रत्ना० अं० १; १४, १६, १९।

अवतारणा स्थल स्थल पर हुई है। तीसरे अंक के उपवन के वर्णन में लवंगिका ऐसे चित्र को उपस्थित करती है—'यहाँ कैसी मादक वायु प्रवाहित है; आम के रसयुक्त बौर खाने के लिए कोयलों का समूह कैसा घबराया सा कूजन करता हुआ फिर रहा है; फूलों के चारों ओर कैसे भौंरे गूँज रहे हैं; चम्पे की कलियों की कैसी गन्ध आ रही है।' इस समस्त दृश्य में रतिभाव की उल्लासपूर्ण व्यंजना अन्तर्निहित है। ऐसा ही वातावरण आठवें अंक के दृश्य में माधव द्वारा उल्लिखित है—

दलयति परिशुष्यत्प्रौढतालीविपाण्डु-
स्तिमिरनिकरमुद्यन्नैन्दवः प्राक्प्रकाशः।
वियति पवनवेगादुन्मुखः केतकीनां
प्रचलित इव सान्द्रः स्फारस्फारं परागः॥[६२]

[सूखे हुए प्रौढ़ ताड़पत्र के समान पीले रंग का चन्द्र-प्रकाश प्राची से घने अन्धकार को नष्ट करता हुआ फैल रहा है; पवन मानों ज्योत्स्ना का स्पर्श कर केतकी के फूलों को खिला रही है और चारों ओर अत्यधिक पराग फैला रही है।] इस प्रकृति के विकास में मानवीय उल्लास की भावना अन्तर्निहित है और जिसके द्वारा काम की संवेदना को उद्बोधित किया गया है। प्रत्यक्ष उत्तेजक प्रकृति का रूप इस नाटक में स्थल-स्थल पर है। तीसरे अंक में कामन्दकी माधव को संतप्त करनेवाली प्रकृति का वर्णन करती है—'आम के वृक्ष पर कूजते हुए कोकिल को वह एकटक देखता रह जाता है, मौलश्री की सुगन्ध से वासित पवन के मार्ग में वह अपने को डालता है (मूर्च्छित होता है)।' इसी प्रकार अन्यत्र माधव स्वयं प्रकृति से पीड़ित अपनी दशा का उल्लेख करता है—'मेरा शरीर मलयसमीर से झुलस गया है, चाँदनी से जल गया है, और मस्त कोकिल के स्वर को सुन कर मेरे कान दुःखी हो गये हैं।' इस चित्र में प्रकृति सीधे अर्थ में उत्तापक है। यह उद्दीपन की

---

६२. माल० ; अं० ३ ; पू० ४ ; अं० ८ ; १ ।

भावना क्रमशः रूढ़िवादी दृष्टिकोण से अधिकाधिक काव्यों में आती गई है, जिसका प्रभाव हमको हिन्दी राति-काव्य पर मिलता है। इसके नवें सर्ग पर विक्रमोर्वशीय के चौथे अंक का प्रभाव है। इसमें नायक अपनी मानसिक स्थिति का प्रकृति पर आरोप करता है। इस कारण प्रकृति में आत्मीय सहानुभूति का वातावरण है और साथ ही उद्दीपन की प्रवृत्ति भी। करि तथा करिनी की प्रेमलीला के आरोप में नायक की ऐसी ही मनःस्थिति का संकेत मिलता है—

कण्डूकुड्मलितेक्षणां सहचरीं दन्तस्य कोट्या लिख-
न्पर्यायव्यतिकीर्णकर्णपवनैराह्लादिभिर्वीजयन् ।
जग्धार्धैर्नवसल्लकीकिसलयैरस्याः स्थितिं कल्पय-
न्नन्यो वन्यमतङ्गजः परिचयप्रागल्भ्यमभ्यस्यति ॥[६४]

[खुजाने से बन्द कर लिये हैं नेत्र जिसने ऐसी प्रिया को अपने दाँत की नोक से यह वन-गज खुजा रहा है; अपने कानों को फैला कर हवा करता हुआ उसे आनन्दित करता है; उसके सामने सल्लकी के नवीन पल्लवों को तोड़ कर रखता है और इस प्रकार यह तुमको प्रसन्न कर रहा है।] यहाँ इस क्रीड़ा के आरोप से प्रकृति उद्दीपन के अन्तर्गत उपस्थित हुई है।

---

६३. वही ; अं० ३ ; १२ ; अं० ८ ; ४।
६४. वही ; अ० ९ ; ३२।

द्वितीय भाग

कवि और प्रकृति

प्रथम प्रकरण

वाल्मीकि

§ १—संस्कृत साहित्य में वाल्मीकि आदि कवि माने जाते हैं। रामायण तथा महाभारत दोनों महाप्रबन्ध काव्यों की परम्परा उनके वर्तमान रूप से बहुत अधिक प्राचीन मानी जाती हैं। इनमें किसकी परम्परा अधिक प्राचीन है, यहाँ यह प्रश्न न भी उठाया जाय, पर काव्य-शैली की दृष्टि से महाभारत अधिक प्राचीन माना जाता है। लेकिन महाभारत की रचना स्पष्ट ही एक व्यक्ति द्वारा नहीं हुई और न एक समय में। इस कारण रामायण ही कवि वाल्मीकि कृत प्रथम काव्य-ग्रंथ माना जाता है। महाभारत की कथाओं के विस्तार तथा समस्त वस्तु-योजना से भी स्पष्ट हो जाता है कि इसमें कथाओं के संकलन तथा चरित्रों के विकास पर अधिक ध्यान दिया गया है। काव्य में पाई जाने वाले वर्णनों में रमने की भावना रामायण में पूर्ण रूप से मिलती। रामायण की कथा-वस्तु तथा वर्णन-प्रियता दोनों ही यह सिद्ध करती हैं कि यह एक काव्य-ग्रंथ है और इसकी रचना एक कवि ने की है। आदि कवि की वाणी में सहज प्रसाद गुण है और

आदि कवि

उनके वर्णनों में सरल स्वाभाविकता है। प्रकृति-वर्णन के क्षेत्र में हम यही देख चुके हैं। आदि कवि ने प्रकृति के नाना क्षेत्रों में बिखरे हुए सौन्दर्य्य को अपने सामने प्रत्यक्ष देखा है। और उन्होंने इस रूप को स्वतंत्र तथा मुक्त देखा है। इन दृश्यों के वर्णन में कवि ने मानवीय दृष्टिकोण को प्रधानता नहीं दी है; इनमें प्रकृति अपने आप में मुक्त है, स्वतंत्र है। मानव प्रकृति को अपने जीवन के साथ और समानान्तर पाता है, वह उससे निकटता का अनुभव करता है। मानव प्रकृति के सम्पर्क से उसके बीच में सौन्दार्यानुभूति से आनन्दित होता है और उससे सामीप्य स्थापित कर अपना अकेलापन भूल जाता है। अधिकतर स्थलों पर प्रकृति जीवन के निकट होकर निर्पेक्ष है, इसका कारण है कि कवि ने प्रकृति को मानवीय दृष्टिबिन्दु पर आधारित नहीं किया है। प्रकृति का अपना अलग अस्तित्व है, उसका अपना मुक्त कार्य-कलाप है, उसमें अपना स्वतंत्र रंग-रूप है और उसमें अपना ही गति-प्रसार है। मानवीय जीवन उसके समानान्तर है। इस कारण वह उसके सौन्दर्य्य से उल्लासित हो सकता है, उसको अपने जीवन के समीप आत्मीय रूप में ग्रहण कर सकता है। परन्तु प्रकृति मानवीय स्थायी-भावों से प्रभावित नहीं होती, वह अपने सौन्दर्य्य में चिर है, अपनी गति में मग्न है। इस महाकाव्य के इस वर्तमान रूप में अनेक प्रक्षेप मिल गये हैं, इस कारण मूल रूप में अध्ययन प्रस्तुत करना सरल नहीं है। लेकिन व्यापक रूप से इस वर्तमान रूप में भी सुमंत्र द्वारा वर्णित प्रकृति के अतिरिक्त कहीं उसका रूप मानवीय जीवन से प्रभावित नहीं हैं। उद्दीपन का इस काव्य में संकेत भर मिलता है, और वर्णन शैली की दृष्टि से इसमें संश्लिष्ट वर्णना का आदर्श सर्वत्र पाया जाता है। प्रकृति का रूप मैनाक तथा लंका वर्णन के अतिरिक्त सहज स्वाभाविक है, सम्भवतः ये वर्णन बाद के हों या कथा के अनुरूप इनमें वैचित्र्य का आग्रह रहा है।

उपवन तथा वन

§ २—पिछले भाग में कहा गया है कि वाल्मीकि रामायण की

कथा-वस्तु का विस्तार राम के वनवास के बाद वन-पर्वत आदि के विस्तृत प्रदेश में है। अयोध्याकाण्ड से कथावस्तु वन की भूमिका पर उपस्थित हुई है। इसके अनन्तर अरण्यकाण्ड, किष्किन्धाकाण्ड तथा सुन्दरकाण्ड का विस्तार वन-भूमि में हुआ है। इस कारण रामायण के कवि को वन्य-प्रकृति उपस्थित करने का अवसर मिला है और सम्भवतः प्रकृति के इस रूप में आदि कवि का मन रमता भी खूब है। उपवनों का वर्णन अधिक स्थलों पर नहीं है। अयोध्या में किसी उपवन का उल्लेख नहीं है। उपवन के नाम से रावण की अशोक वाटिका का वर्णन उल्लेखनीय है, किष्किन्धा के मधुवन का उल्लेख, केवल वानरों की सीता-खोज के उपरान्त की क्रीड़ा के साथ हुआ है। सम्भवतः उपवनों का प्रचार आर्यों की संस्कृति में अनार्य संस्कृति की देन हो।

उल्लेख

क—लंका में प्रवेश करते ही हनुमान की दृष्टि उस के इन सुन्दर उपवनों पर जाती है—'वह लंका नाना उपवनों से पूर्ण है जिनमें सरल कर्णिकार और खजूर के वृक्ष पुष्पित हैं। प्रियाल, मुचिलिंद, कुटज, केतकी, प्रियंगु, नीप, सप्तपर्ण आदि लगे हुए हैं। असन, कोविदार, करवरि पुष्पित होकर फूलों के भार से झुके हुए थे। उनमें सुन्दर क्रीड़ा-सरोवर स्थान स्थान पर बने हुए थे। उनमें कमल खिल रहे थे और हंस तथा कारंडव जल-क्रीड़ा कर रहे थे। वृक्षों की फुनगियाँ पवन के चलने से हिल जाती थी तथा उन पर झुंड के झुंड पक्षी बैठे कूज रहे थे'।[1] अनन्तर हनुमान अशोक-वाटिका पहुँचते हैं—'वह साल, अशोक, चम्पक, उद्दालक, नाग तथा आम के वृक्षों से भरा हुआ तथा नाना लताओं से आच्छादित था। उसमें स्वर्णिम तथा रजत जैसे वृक्षों पर विचित्र पक्षी कलरव कर रहे थे। विचित्र पशु-पक्षियों से शोभित वह वन उदित होते सूर्य

उपवन

[1] वाल० ; सुन्द० ; स० २ ; ९—१३।

के समान था। वहाँ विविध प्रकार के फलों तथा फूलों के वृक्ष भरे थे, उनपर मतवाले कोकिल कूक रहे थे और भ्रमर गुंजार कर रहे थे। पशु-पक्षियों से भरे उस उपवन को देख कर लोगों का मन प्रसन्न होता था। मदमाती मोरनियों के झुंड नाच रहे थे। जब समस्त पक्षी चौंके और परों को फैला कर उड़े, तब उनके पंखों की हवा से विविध वृक्षों ने रंग-विरंगे पुष्पों की वर्षा की। उन फूलों से ढक कर हनुमान जी अशोक वाटिका में फूलों के पहाड़ लगने लगे।' आगे हनुमान द्वारा उपवन के विध्वंस का उल्लेख है—'जिस प्रकार वर्षा ऋतु में तेज़ हवा मेघों को छिन्न-भिन्न कर देती है, उसी प्रकार हनुमान ने वहाँ को बड़ी बड़ी लताओं को छिन्न-भिन्न कर डाला'। आगे—'वहाँ हनुमान ने देखा रजतमयी, मणिमयी और सुवर्णमयी विविध प्रकार की मनोहर भूमियाँ थीं। वहाँ सुस्वादु मीठे जल से भरी हुई अनेक आकार-प्रकार वाली बावलियाँ थीं जिनकी सीढ़ियों में मूल्यवान मणियाँ जड़ी थीं, जिनमें मोती और मूँगे बालू के स्थान पर दिखाई पड़ते थे और जिनका तल स्फटिक का था। उनके तीर पर रंग-विरंगे सुनहले वृक्ष शोभित थे और उनमें खिले हुए कमलों के वन में चक्रवाक पक्षी गूँज रहे थे। नत्यूह, हंस तथा सारस पक्षी बोल रहे थे। इन वापियों के चारों ओर बड़े बड़े वृक्ष लगे हुए थे और छोटी छोटी नदियाँ बह रही थीं। इनका अमृत के समान जल भीतरी सोतों से उन नदियों में पहुँच जाता था। ऊपर लता के मंडप बने हुए थे और वे फूलों से आच्छादित थे'। 'नाना प्रकार के पशुओं से, चित्र-विचित्र वनों से युक्त तथा अनेक बड़े बड़े भवनों से शोभित उस वाटिका को विश्वकर्मा ने बनाया था। कृत्रिम वनों से वह चारों ओर से सजाई गई थी। वहाँ जितने फूलने-फलने वाले वृक्ष लगे थे सब सोने की सीढ़ियों वाले चबूतरों पर छाये हुए थे। इन पर अनेक लताओं का जाल फैला था जिनकी पत्तियों से छाया बनी रहती थी'।[२] प्रतीक्षा करते हुए हनुमान का ध्यान फिर अशोक

२. वही; वही; स० १४; ४–११, २८–२६, ६४–३६।

वाटिका के विस्तार की ओर जाता है—'वह वन कल्पवृक्ष तथा लताओं और अनेक वृक्षों से शोभित, दिव्य गन्धों और दिव्य रसों से पूर्ण तथा चारों ओर से सजा हुआ था। वह वन नन्दनवन के तुल्य मृग-पक्षियों से पूर्ण, अटारियों वाले भवनों से सघन और कोकिल के स्वर से कूजित था। उसमें सुवर्ण कमलों वाली वापी थीं जिनके किनारे सुन्दर विधानों से युक्त स्थान बने हुए थे और पृथ्वी के नीचे तहाखने भी थे। उसमें सब ऋतुओं में फलने-फूलने वाले वृक्ष लगे थे। पुष्पित अशोक की आभा लगती मानों सूर्योदय की प्रभा फैल रही थी। वृक्षों की डालियों पर अनेक पक्षी अपने दोनों पंखों को फैलाए और पत्तों को ढके बैठे थे जिससे जान पड़ता था मानों वृक्षों की डालियों में पत्ते हैं ही नहीं। सैकड़ों रंग-बिरंगे पक्षी अपनी चोंच में फूलों को दबाये हुए आभूषणों से सजे हुए जान पड़ते थे। जड़ से लेकर फुनगी तक फूले, मन को हर्षित करने वाले अशोक वृक्ष फूलों के बोझ से झुक कर मानों पृथ्वी को छू रहे थे। फूले हुए कनैर और टेसू के फूलों की प्रभा से वह स्थान प्रदीप्त सा जान पड़ता था। पुन्नाग (नागकेसर), सप्तपर्ण, चंपक, उद्दालक (लसोड़ा) आदि विस्तृत मूल वाले फूले हुए वृक्ष वहाँ की शोभा बढ़ा रहे थे। इन वृक्षों में कोई सोने के रंग का कोई अग्नि के रंग का और कोई नीलांजन के रंग का था। अनेक प्रकार के अशोक वृक्ष वहाँ थे। यह अशोक वाटिका इन्द्र के नन्दन कानन और कुबेर के चैत्ररथ नामक उद्यान से अधिक रमणीय तथा सुन्दर थी। इसके सौन्दर्य्य की कल्पना सरल नहीं है, और वह जैसे पुष्प रूपी तारागण से युक्त दूसरे आकाश के समान थी'।[3]

३. वही ; वही ; स० १५ ; ८—१२। इस कांड के अठारहवें सर्ग में रावण के प्रवेश के साथ इस वाटिका का संक्षिप्त उल्लेख हुआ है। सर्ग सोलह में चन्द्र-किरणों से उद्भासित फूलों के भार से झुके हुए अशोक को सीता के शोक को उद्दीप्त करने वाला कहा गया है—

§ ३—वन के वर्णन के लिए इस महाप्रबन्ध काव्य में सबसे अधिक अवसर मिला है। इनमें अनेक वर्णन पात्रों द्वारा उल्लेख हैं जिनमें वन के भयावह रूप आदि को प्रकट करने का प्रयास है। कौशिल्या अपने आशीर्वाद में वन्य-प्रकृति से रक्षा करने की प्रार्थना करती हैं—'हे नरोत्तम, समिध-कुश की बनी पवित्री, वेदियाँ, देव-मन्दिर, पर्वत, छोटे-बड़े वृक्ष, जलाशय, पक्षी, सर्प और सिह तुम्हारी रक्षा करें। विश्वदेव, पवन, महर्षि तुम्हारा कल्याण करें। ऋतुएँ, पक्ष, मास, संवत्सर, रात-दिन तथा मुहूर्त्त तुम्हारी रक्षा करें। सब पर्वत, सब समुद्र, वरुण, आकाश, अन्तरिक्ष, पृथ्वी, सब नदी, सब नक्षत्र, देवताओं सहित सब ग्रह, दिन-रात तथा दोनों संध्याएँ तुम्हारी रक्षा करें।......राक्षस, पिशाच तथा अन्य भयंकर एवं क्रूर माँस भक्षी जावों से तुम्हें वन में भय न लगे। वानर, बीछी, डाँस, मच्छर, पहाड़ी सर्प, कीड़े ये भी तुम्हें वन में दुःखदायी न हों। मतवाले हाथी, सिंह, बाघ, रीछ आदि तुमसे द्रोह न करें'।[४] इस प्रकार यहाँ वन्य-प्रकृति की भयानकता का आभास मिलता है। अन्यत्र राम सीता को वन की भयंकरता कर आभास कराते हैं—'पर्वतों से निकली हुई नदियों को पार करना महाकष्टदायी है। फिर पहाड़ों की गुफाओं में रहने वाले सिंह की दहाड़ को सुनने में बड़ा कष्ट होता है। वन में अनेक निडर जाव-जन्तु मनुष्य को देखते ही मारने के लिए आक्रमण करते हैं। वनों के मार्ग लिपट जाने वाली लताओं और पैर में चुभ जाने वाले काँटों से ढके रहते हैं। वहाँ वनकुक्कुट बोला करता है। थके मादे पथिक को सूख कर गिरी हुई पत्तियाँ बिछा कर सोना होता है। सायं प्रातः वृक्षों से गिरे हुए फलों पर ही सन्तोष करना होता है। वन में

वन उल्लेख

अस्या हि पुष्पावनताग्रशाखाः शोकं दृढं मे जनयत्यशोकाः।
हिमव्यपायेन च शीतरश्मिरभ्युत्थितो नैकसहस्त्ररश्मिः॥३१॥

४. वही; अयो०; स० २५; ७–२०।

आँधी चलती है, अँधेरा छा जाता है। वन में बड़े मोटे अजगर घूमा करते हैं। वहाँ टेढ़ी चाल वाले सर्प मार्ग रोकेंगे। वन काँटों, कुशा घास, तरह तरह के पत्तों से भरा हुआ, तथा सहस्रों वृक्षों से भरा होता है'।[५] इस समस्त वर्णन में वन की भयंकरता को व्यापक रूप से प्रत्यक्ष किया गया है।

§४—राम जब विश्वामित्र के साथ जा रहे थे, उस समय मार्ग में वन का वर्णन इस प्रकार है—'यह तो बड़ा भयानक दीख पड़ता है।

विश्वामित्र के साथ

झींगुर झंकार रहे हैं और बड़े बड़े भयंकर जीवों के नाद से यह परिपूर्ण है। बाज पक्षी दारुण शब्द बोल रहे हैं। इन वनों में सिंह, व्याघ्र, वराह और हाथी भी बहुत देख पड़ते हैं। धवा, असगंध (अश्वकर्ण), अर्जुन, बेल, तेंदुआ, पाड़री तथा बेरियों के वृक्षों से यह वन कैसा सघन और भयंकर हो गया है'।[६]

क—नील-वन के मार्ग से चित्रकूट का रास्ता है, 'इस वन में साल जामुन और बेर के अनेक वृक्ष हैं'। 'जैसे हाथियों के बीच हथिनी चले,

चित्रकूट का मार्ग

इस प्रकार मार्ग में जाती हुई सीता, प्रत्येक गुल्म और पुष्पित लताओं के विषय में पूछती जाती थीं जिन्हें उन्होंने पहले नहीं देखा था। वहाँ अनेक प्रकार के रमणीय वृक्षों में फूल लगे थे, उनमें से सीता जिसे पसन्द करती, लक्ष्मण उसे ला देते थे। उस वन मे वालुकामय तट वाली तथा निर्मल जल वाली नदी को देख कर सीता को प्रसन्नता हुई, उसके तट पर हंस-सारस मधुर स्वर कर रहे थे। इस प्रकार दोनों भाईयों ने सीता सहित उस मनोहर वन में जहाँ मोरों के झुंड के बोल रहे थे तथा हाथी और बन्दर घूम रहे थे, विहार कर नदी के तट पर एक सुन्दर समथल स्थल पर वास किया'।[७]

---

५. वही ; वही ; स० २८ ; ९–२२।

६. वही ; बाल ; स० २४; १३-१६।

७. वही ; अयो० ; स० ५५ ; ९, ३०-३२, ३४।

इसी के आगे सर्ग ५६ में चित्रकूट समीपवर्ती वन का वर्णन है (प्रथम भाग में)। अनन्तर भरत सेना से आक्रान्त उस वन का वर्णन है—उस महासेना के वन में प्रस्थान करने से वहाँ के मतवाले यूथपति ाथी पीड़ित हो अपने अपने यूथों को साथ ले चारों ओर भागने लगे। ेछ, चित्तल आदि वनैले जन्तु पर्वतों के शिखरों पर तथा नदियों के टों पर विकल होकर इधर-उधर भागते हुए देख पड़े, भरत शत्रुघ्न ा कहते हैं—'देखो, यह भयानक वन पहले कैसा साँय साँय कर रहा ा, किन्तु इस समय मेरी सेना की भीड़-भाड़ से यह अयोध्या जैसा ेख पड़ता है'।[८]

ख—सुतीक्ष्ण राम को दण्डकारण्य जाने के लिए कहता है। इस ्संग में वन का उल्लेख किया गया है—'आप उन वनों को देखिए, जिनमें विविध प्रकार के कन्द मूल फलों वाले फूले हुए वृक्ष भरे हुए हैं। इनमें श्रेष्ठ वन्य पशु तथा ्ान्त पक्षी रहते हैं और जहाँ स्वच्छ जल कमलों से युक्त ताल हैं और जेनमें कारण्डवादि पक्षी कुलेलें किया करते हैं। इसके अतिरिक्त वहाँ ेखने में सुन्दर पहाड़ी झरने तथा मोरों से कूजित वन हैं'।[९] मार्ग ा उल्लेख प्रथम भाग में किया गया है। अन्यत्र मार्ग में वन का रूप ्स प्रकार बिखरा हुआ है—'जैसा सुना गया था, वैसे ही मार्ग से इस ्न में आते आते फल-फूलों के बोझ से झुके हुए हजारों वृक्ष देख ड़ते थे। यहाँ पकी हुई पीपलों की कड़वी बू वन के पवन से उड़ी हुई ा रही है। जगह जगह इकट्ठे हुए लकड़ी के ढेर दिखाई देते हैं। हरी ्णि अर्थात् पन्ने की तरह कटे हुए ये हरे हरे रंग के कुश रास्ते में ेखाई पड़ते हैं। वन में काले मेघ के शृंग की तरह आश्रम की अग्नि ा धुआँ दिखाई देता है'। दूसरे दिन 'राम बताये हुए मार्ग पर चलते हुए

दण्डकारण्य

८. वही ; वही ; स० ९३ ; १, २, १४।
९. वही ; अर० ; स० ८ ; १३, १४,, १५

उस वन की शोभा निहारते जाते थे। उस वन में नीवार, पनस, साल, वंजुल, तिनिश, तथा प्राचीन बिल्व, मधूक तथा तिंदुक के वृक्ष स्वयं झुके हुए थे और जिनमें फूली हुई लताएँ लिपटी हुई थीं। इस प्रकार सहस्त्रों वृक्षों से भरा वह जंगल था। इन वृक्षों में कितने ही हाथियों की सूड़ों से टूटे हुए थे और कितनों ही पर बंदर बैठे हुए शोभा बढ़ा रहा थे। इन पर सैकड़ों पक्षी मतवाले हो बोल रहे थे'।[१०]

पंचवटी

ग—पंचवटी नामक वन का प्रथम उल्लेख राम से अगस्त्य करते हैं—'वह प्रदेश निकट ही है और गोदावरी के तट पर है। वहाँ कन्द-मूलों की अधिकता है, तरह तरह के पक्षियों से भरा हुआ है। हे महाबाहो, वह स्थान एकान्त पवित्र तथा रम्य है। यहाँ से मधुक-वन जो दिखाई देता है, उसी के उत्तर में वट वृक्ष है। उसी के आगे पर्वत के समीप समतल भूमि में पहुँचने पर पुष्पों से लदा सुशोभित पंचवटी नाम का विस्तृत वन मिलेगा'।[११] पंचवटी में राम लक्ष्मण से उसका वर्णन करते हैं—'(प्रथम भाग) पास ही गोदवरी नदी हंस कारडंव तथा चक्रवाक पक्षियों से शोभित है। जानवरों के झुंड भी न तो बहुत दूर और न अति पास फैले हुए हैं। पास ही कन्दराओं में मयूरों का सुन्दर नाद प्रतिध्वनित हो रहा है। पुष्पित वृक्षों से आच्छादित पर्वत सुन्दर लगते हैं। सारा वन साल, तमाल, ताल, खर्जूर, पनस, नीवार, तिनिश, पुन्नाग वृक्षों से शोभित है। आम, अशोक, तिलक, केतकी, चंपा आदि पुष्प-वृक्ष लताओं से आवृत गुल्म के रूप में लगते हैं। और भी स्पद, चंदन, नीप, पनस, लकुच, धवा, अश्वकर्ण, शमी, किंशुक तथा पाटल आदि वृक्षों से यह वन शोभित है और अनेक पशुओं से भरा हुआ

१०. वही ; वही ; स० ११; ५०-५४, ७५-७८।

११. वही ; वही ; स० १३ ; १८-२२।

है ।'[१२] पंचवटी का वर्णन हेमन्त ऋतु के प्रभाव में भी किया गया है । आगे सीता-हरण के बाद राम पंचवटी के अनेक वृक्षों को सम्बोधित करते हैं—'यह ककुभ का पेड़, ककुभ के समान जाघों वाली सीता को निश्चय ही जानता होगा, क्योंकि यह वनस्पति लता-पत्ते और पुष्पों से कैसा लदा हुआ है । यह तिलक वृक्ष प्रिय सीता का पता अवश्य जानता होगा, देखो इस श्रेष्ठ वृक्ष पर भौंरे कैसे गुंज रहे हैं ।······हे कर्णिकार, आज तो तुम पुष्पों से पुष्पित हो अत्यत शोभित हो रहे हो । यदि तुमने मेरी पतिव्रता सीता को देखा हो तो मुझे बतला दो' ।[१३]

ङ—पंचवटी से चल कर राम लक्ष्मण के मार्ग में क्रौंच-वन पड़ता है—'यह वन मेघों की घटा की तरह गम्भीर था । इसमें जिधर देखो उधर फूले हुए पुष्पों के कारण तथा भाँति भाँति के पक्षियों से भरा-पुरा और तरह तरह के अजगरों और अन्य वन-जन्तुओं से परिपूर्ण होने के कारण वह हँसता सा जान पड़ता था ।' इस वन के पूर्व तीन कोस पर मतंगाश्रम का घोर वन पड़ा—'नाना प्रकार के विशाल वृक्षों से घनघोर उस वन में अनेक प्रकार के भीषण पशु थे । पताल के समान गम्भीर तमसा जहाँ नित्य प्रवाहित होती है, उन गिरि कन्दराओं को उन्होंने देखा' ।[१४] कबन्ध राम को पम्पा का मार्ग बताता हुआ वन का उल्लेख करता है—'जंबू प्रियाल, पनस, न्यग्रोध, प्लक्ष, तिंदुका, अश्वत्थ, कर्णिकार, चूत आदि अनेक पादप तथा धन्वा, नाग, तिलक, नक्तमाल, नील अशोक कदम्ब, करवीर आदि पुष्पों से फूला हुआ वन मार्ग में पड़ेगा । इसमें अग्निमुख (अरूसा), लाल चन्दन (सुरक्ता) तथा पारिभद्रका (मदार नामक वृक्ष हैं । हे काकुत्स्थ, उन पुष्पित वृक्षों से युक्त वन के नाँघने प

पम्पा का मार्ग

१२. वही : वही ; स० १५; १३-१९ ।

१३. वही ; वही; स० ६० ; १५, १६, २० ।

१४. वही , वही ; स० ६८ ; ६-१० ।

तुम को रक्त-वन मिलेगा। इस वन के वृक्षों में सदा फल-फूल रहते हैं, जो मीठे और सरस होते हैं। उस वन में चैत्ररथ वन की तरह वृक्षों में सब ऋतुओं में फल-फूल लगे रहते हैं। अपनी बड़ी शाखाओं के कारण वे पर्वतकार मेघों की भाँति शोभित रहते हैं। इस प्रकार कितने ही सुन्दर देशों, पर्वतों और वनों में घूमते फिरते तुम दोनों पम्पा नामक सरोवर पहुँचोगे।' अगले सर्ग में शबरी मतंग वन का उल्लेख करती है—'रघुनन्दन, मृगों और पक्षियों से भरा-पूरा और काले बादल की तरह श्याम रंग का यह वन देखिये। यह मतंग वन के नाम से प्रसिद्ध है'।[१५]

च—किष्किन्धा के मार्गस्थ प्रकृति का वर्णन कवि इसी प्रकार करता है—'अनेक सरिताएँ सागर की ओर प्रवाहित हो रहीं थीं। पर्वतो में भीषण कन्दराएँ थीं। शिखर तथा घाटियाँ दिखाई दे रहीं थीं। मार्ग में वैदूर्य के समान स्वच्छ जलवाले सरोवर थे जिनमें कमल खिले हुए थे। और उनके किनारे कारडंव, सारस, हंस, वंजुल, जलकुक्कट, चक्रवाक आदि अनेक पक्षी कूज रहे थे। वनस्थलियों में हरिण मृदुल अंकुर चरते हुए दिखाई दे रहे थे। अनेक श्वेत दाँत वाले मत्त हाथी विचर रहे थे। अन्य विशालकाय अनेक पशुओं से वह वन भरा हुआ था'।[१६] अन्यत्र वन के अनेक उल्लेख सीता की खोज प्रसंग में आये हैं, परन्तु वे संक्षिप्त हैं तथा उनमें कोई विशेषता भी नहीं है।

किष्किन्धा

आश्रम का जीवन

§ ५—प्राचीन काल में प्रकृति प्रदेश के साथ आश्रम का जीवन महत्त्वपूर्ण था। और वन की प्रकृति के साथ आश्रम का उल्लेख करना

१५. वही ; वही ; स० ७३ ; २-११। स० ७५ ; २२।
१६. वही ; किष्कि० ; स० १३ ; ५-११।

आवश्यक हो जाता है। वसिष्ठ का आश्रम इस प्रकार है—'वह आश्रम भाँति भाँति के पक्षियों और तालाबों से भरा पुरा और नाना जीवों से शोभायमान हो रहा था और उसमें सिद्ध चारण निवास करते थे। देव, दानव, गन्धर्व तथा किन्नर भी उसकी शोभा बढ़ाते थे। वह हरिणों से भरा हुआ था। उसमें ब्रह्मर्षि और देवर्षि निवास करते थे जो तपश्चर्या से अग्नि के समान देदीप्यमान थे'।[१७]

वसिष्ठ का

क—चित्रकूट पर राम ने आश्रम बनाया है, और राम का यह जीवन प्रकृतिमय है—'भरत जी ने देखा उस पर्णशाला के सामने ही टूटी हुई लकड़ियाँ और पूजन के लिए फूल चुन-चुन कर रखे हुए हैं। आश्रम की पहिचान के लिए आश्रमवासी राम-लक्ष्मण ने कहीं-कहीं वृक्षों में कुश तथा चीर बाँधकर चिह्न कर दिये हैं। भरत ने देखा शीत से बचने के लिए मृगों और भैसों के गोबर के सूखे कंडे के ढर लगे हैं। वह पर्णकुटी साखू, ताल और अश्वकर्ण नाम के वृक्षों के पत्तों से छायी गयी सुन्दर लम्बी-चौड़ी ऐसी जान पड़ती थी मानों यज्ञ-वेदी कुशों से ढकी हुई है। इसमें जहाँ-तहाँ इन्द्र के वज्र के समान युद्ध में बड़े-बड़े काम करने वाले धनुष टँगे हुए शोभायमान हो रहे थे'।[१८]

राम की कुटी

ख—तपस्वियों के आश्रम दण्डकारण्य में इस प्रकार फैले हुए हैं—'उनमें स्थान-स्थान पर कुशों के ढेर लगे हुए हैं। आश्रम वासियों के चीर जगह-जगह सूखने के लिए फैलाये हुए थे। वेदाध्ययन और वैदिक कर्मानुष्ठान के कारण इन आश्रमों में एक प्रकार का ऐसा तेज व्याप्त था जिसे राक्षसादि किसी प्रकार सहन नहीं कर पाते थे, जिस प्रकार आकाशस्थ

दण्डक वन का आश्रम

१७. वही; बाल०; स० ५१; २२-२५।
१८. वही; अयो०; स० ९९; ५-७, १९, २०।

तेज सहन नहीं किया जा सकता। ये आश्रम प्राणि-मात्र के
श्रय-स्थल और स्वच्छ स्थानों से सुशोभित थे। इन आश्रमों में
हरिन निर्भय घूमा करते थे और पक्षियों के झुंड आश्रम के
रहा करते थे। इन आश्रमों में सम्मान-पूर्वक अप्सराएँ नृत्य
ती थीं। यहाँ बड़ी लम्बी-चौड़ी यज्ञ-शालाएँ बनी थीं, जिनमें
के समीप स्रुवा, यज्ञ-पात्र, मृग-चर्म और कुश रखे हुए थे।
मों में समिधाएँ, जल से भरे हुए घड़े और कन्द-मूल फल रखे
। बड़े-बड़े वृक्षों में स्वादिष्ट और खाने योग्य पवित्र फल लगे
इन सब आश्रमों में नित्य ही बलि-वैश्वदेव होता और पवित्र
हुआ करती थी। वहाँ देवताओं पर चढ़े हुए बनैले फूल
थे और खिले फूलों से परिपूर्ण तलैयों से ये सब आश्रम
थे। इन सब आश्रमों में कन्द-मूल-फल खाने वाले, चार और
धारण करने वाले जितेन्द्रिय सूर्य और अग्नि के समान तेजस्वी
मुनिगण वास करते थे'।[१९]

'वहाँ बहुत से पुष्पों और फूलों के वृक्ष हैं, तरह-तरह के पक्षी
। स्वच्छ और पवित्र जल से भरे अनेक जलाशय हैं जिनमें
अनेक प्रकार के कमलों के फूल फूले हैं'। राम

आश्रम

लक्ष्मण से आश्रम का उल्लेख करते हैं—'पथिकों
दूर करने वाला आश्रम दिखाई पड़ता है। देखो, अग्निहोत्र
वन में छाया हुआ है। जहाँ-तहाँ वृक्षों की डालियों पर चीर-
ों को फैलाए हुए हैं। पुष्प मालाएँ लटका कर आश्रम की
ो गई है। देखो, स्वाभाविक वैर-विरोध छोड़कर वन-जन्तु कैसे
हुए हैं। तरह-तरह के पक्षी शब्द कर रहे हैं। आश्रम में
ाव हरिन चारों ओर बैठे हैं'।[२०]

वही; अर० ; १ ; १-७।
वही; वही; स० ११ : ४०, ८८-८२।

घ—सीता-हरण के पश्चात् राम-लक्ष्मण अपनी कुटी को सूना पाते हैं—'पर्णशाला सीता जी के बिना उसी प्रकार शोभाहीन थी जैसे हेमन्त ऋतु में कमलनी ध्वस्त होने के कारण शोभाहीन हो जाती है। उस समय आश्रम के वृक्ष मानों रो रहे थे, फूल कुम्हलाए हुए थे, मृग तथा पक्षी उदास हो रहे थे। वन देवता उस आश्रम को ध्वस्त और श्री विहीन देख उसे त्याग कर चल दिए थे। उस आश्रम में मृग-चर्म और कुश इधर-उधर पड़े हुए थे, आसन और चटाई इधर-उधर फेंकी हुई पड़ी हुई थी। अपने आश्रम को सूना देख राम बार-बार विलाप कर रहे थे'।[२१] यहाँ प्रकृति मानवीय संवेदना से अविभूत चित्रित हुई है।

सीता विहीन आश्रम

पर्वतीय प्रदेश

§ ६—राम के वनवास के जीवन में वन के साथ पर्वतों का भी स्थान रहा है। इस कारण रामायण में मध्य देश के पर्वतों के वर्णन भी हैं। भारद्वाज राम को चित्रकूट जाने के लिए कहते हैं—'हे वत्स, यहाँ से दस कोस पर तुम्हारे रहने योग्य एक पर्वत है, जो महर्षियों के रहने के कारण पवित्र है और उसके चारों ओर नयनाभिराम दृश्य हैं। उस पर्वत पर लंगूर बन्दर तथा रीछ घूमा करते हैं। उसका नाम चित्रकूट है तथा उसकी शोभा गन्धमादन की तरह है'। उस पर्वत पर टिटिहरी (कायष्टिभ) तथा कोयलें प्रसन्न होकर बोला करती हैं। अनेक मृग तथा बहुत से मत्त गज उस पर घूमा करते हैं। इस प्रकार के उस बड़े तथा रमणीय पर्वत पर आप जाकर वास करें'।[२२] भरद्वाज-ऋषि भरत को चित्रकूट का पता इसी प्रकार बताते हैं—'उस पर्वत के उत्तर की तरफ मन्दाकिनी नदी बहती है। इस नदी के उभय तटों पर पुष्पित वृक्ष लगे हुए हैं और वह नदी रमणीय

चित्रकूट

२१. वही, वही; स० ६०; ५-७।

२२. वही; अयो०; स० ५४; २८, २९, ३९, ४३।

पुष्पित वन में होकर बहती है। हे तात, उसी से मिला हुआ चित्रकूट पर्वत है'। भरत चित्रकूट की शोभा का वर्णन करते हैं—'पर्वत के रमणीय शिखर मेरे पर्वत के समान हाथियों से मर्दित हो रहे हैं। जिस प्रकार वर्षा-काल में सजल श्यामल मेघ मण्डल जल बरसाता है वैसे ही चित्रकूट के वृक्ष हाथियों की सूड़ों से हिलकर पर्वत के शिखरों पर फूलों की वर्षा करते हैं। हे शत्रुघ्न, किन्नरों से सेवित स्थान की तरह इस चित्रकूट को देखो! जिस प्रकार समुद्र में मगर घूमा करते हैं वैसे ही इस पर जिधर देखो मृग-समूह शोभायमान हो रहा है'।[२३]

क—कबन्ध राम-लक्ष्मण को ऋष्यमूक पर्वत का पता बताता है—'पंपा सरोवर के सामने नाना पक्षियों से भरा हुआ तथा पुष्पित वृक्षों से युक्त यह पर्वत है। इस दुरारोह पर्वत की रखवाली छोटे-छोटे हाथी के बच्चे किया करते हैं।

ऋष्यमूक

इसको उदार-मना ब्रह्मा जी ने स्वयं बनाया था।'.....'वहाँ छोटे-छोटे हाथियों का चिंघाड़ना बहुत सुनाई पड़ता है। पम्पा के जल में अपनी प्यास बुझा कर व वन में प्रवेश कर बिचरा करते हैं। हे राम, रीछ, बाघ और नीलम जैसी प्रभा वाले रुरु मृगों को देखने से तुम्हारा दुःख दूर हो जायगा। वहाँ एक पहाड़ी गुफा है जिसका द्वार एक शिला से बन्द रहता है, उसके भीतर जाना बड़ा कष्टदायक है। उस गुफा के द्वार के सामने ही शीतल जल का एक सरोवर है, वहाँ अनेक फल और मूल हैं। भाँति-भाँति के बनैले पशु चारों ओर घूमा करते हैं। उसी में सुग्रीव अपने साथी चार बानरों के साथ रहता है'।[२४] इसका अन्यत्र उल्लेख ऋतु-वर्णनों में है।

ख—हनुमान महेन्द्र पर्वत की तलहटी में पहुँचते हैं—'नीली, लाल, मजीठी, कमल के रंग की, सफेद तथा काली रंग-बिरंगी स्वभाव

---

२३. वही : वही ; स० ९२ : ११, १२ ; स० ९३ ; ९-११।
२४. वही ; अर० ; स० ७३ ; ३३-३५ ; ३८-४१।

सिद्ध धातुओं से भूषित विविध भाँति के आभूषणों तथा वस्त्रों को पहने हुए अपने-अपने परिवारों सहित देवताओं की तरह काम रूपी, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर और सर्पों से सेवित तथा उत्तम जाति के हाथियों से व्याप्त उस पर्वत की तलहटी में वह सरोवर स्थित हाथी की भाँति शोभायमान हुआ। वृक्षों से झड़े हुए सुगन्ध युक्त फूलों के ढेर से वह पर्वत ढक गया और ऐसा जान पड़ने लगा मानों समस्त पहाड़ फूलों का ही हो। जब वीर्यमान् कपिवर हनुमान ने उसे दबाया तब उससे अनेक जल की धाराएँ निकल पड़ीं। वे धाराएँ ऐसी जान पड़ती थीं मानों किसी मतवाले हाथी के शरीर से मद बहता हो। बलवान् हनुमान के दबाने से उस महेन्द्राचल पर्वत के चारों ओर धातुओं के वह निकलने से ऐसा जान पड़ता था मानों पिघलाए हुए सोने चाँदी को रेखाएँ खिंची हों अथवा काली, पीली और सफ़ेद रेखाएँ खिंच रही हों। वह पर्वत बड़ी बड़ी शिलाएँ गिराने लगा, और इस प्रकार वह ऐसा जान पड़ता था मानों नीचे आग लगी हो और चारों ओर से धुआँ निकल रहा हो। स्वस्तिक लक्षणों से चिह्नित मणिधारी उस पर्वत में रहने वाले विशाल सर्प क्रुद्ध हुए और मुख से भयंकर आग उगलते हुए शिलाओं को अपने दाँतों से काटने लगे। क्रुद्ध हुए विषधरों द्वारा काटी हुई वे बड़ी बड़ी शिलाएँ जलने लगीं और उनके हज़ारों टुकड़े हो गये'।[२५] यह वर्णन आदर्श कल्पनाओं से पूर्ण है।

महेन्द्र

ग—सागर के बीच हनुमान के मार्ग में मैनाक पर्वत की स्थिति भी है—'वह बड़े बड़े वृक्षों और लताओं से युक्त जल के ऊपर तुरन्त निकल आया। उस समय वह सागर के जल को चीर कर वैसे ही ऊपर को उठा जैसे मेघों को चीर कर चमकता हुआ सूर्य्य निकल आता है। इस प्रकार महात्मा मैनाक ने

मैनाक

२५. वही ; सुन्द० ; स० ११, ५-७;

सागर का कहा मान कर सागर से निकली हुई अपनी चोटियों को दिखाने लगा। (प्र० भा०)। बिना विलम्ब किये समुद्र से निकल कर खड़े हुए तथा खारी समुद्र के बीच स्थित मैनाक पर्वत को देख हनुमान जी ने अपने मन में यह निश्चय किया कि यह एक विघ्न आ उपस्थित हुआ है, तब उस अत्यन्त ऊँचे उठे हुए मैनाक को हनुमान जी ने बड़े जोर से अपनी छाती की ठोकर से हटा दिया जैसे पवनदेव बादलों को हटा देते हैं'।[२६] यहाँ प्रकृति को सप्राण पात्रों के रूप मे उपस्थित किया गया है। सुन्दरकांड के दूसरे सर्ग में लंका-पर्वत का उल्लेख भी है, पर उसमें वन, सरिता आदि का वर्णन प्रमुख है।

अरिष्ट

घ—हनुमान लौटते समय अरिष्ट नामक पर्वत पर चढ़ कर सागर लाँघते हैं। 'यह पर्वत ऊँचा वृक्षराजि से हरिताभ था और उस पर पद्मक (भोजपत्र) के वृक्ष शोभित थे। उसके शिखर पर लटकते हुए मेघ उत्तरीय की तरह जान पड़ते थे। उस पर सूर्य की किरणें गिर कर मानों प्रेम-पूर्वक उसको नींद से जगा रहीं थीं। विविध भाँति की धातुओं से मंडित मानों वह पर्वत अपने नेत्र खोले देख रहा था। झरनों की जलधार गिरने से ऐसा शब्द होता था, मानों पर्वत अध्ययन कर रहा हो। उसके ऊपर जो देवदारु के पेड़ थे वे ऐसे जान पड़ते थे मानों पर्वत ऊपर के भुजा उठा कर खड़ा हो। सर्वत्र जलप्रपात का शब्द होने से ऐसा जान पड़ता था मानों पर्वत पुकार रहा है। वायु से डोलते हुए शरत्कालीन हरे हरे वृक्षों द्वारा वह पर्वत काँपता हुआ सा जान पड़ता था। पोले बाँसों में जब वायु भरता था, तब उससे ऐसा शब्द निकलता था मानों पर्वत बाँसुरी बजा रहा हो। क्रोध में फुफकारते हुए हुए बड़े बड़े जहरीले साँप ऐसे जान पड़ते थे, मानों पर्वत साँस ले रहा हो। अत्यन्त घने अन्धकारमय कोहरे से गहरी हुई गुफाओं से जान पड़ता था मानों पर्वत ध्यानावस्थित

---

२६. वही; वही; स० १; ९४-९६, १००, १०१।

है। मेघ-खंड की तरह खंड-पर्वत रूपी अपने पैरों से ऐसा जान पड़ता था मानों पर्वत चलना चाहता हो। अपने आकाश-स्पर्शी टेढ़े-मेढ़े शिखरों से जैसे वह पर्वत अपने शरीर को जमा रहा हो। बड़ी बड़ी कन्दराएँ और बड़े बड़े शिखर थे। साल, ताल, कर्ण तथा वंश से तथा फूली हुई लताओं से वह पर्वत विभूषित था। अनेक प्रकार के पशु उस पर वास करते थे तथा धातुमय झरने थे। झरनों के पास शिलाओं की चट्टानें पड़ी थीं। वह पर्वत लता वृक्षों से परिपूर्ण था तथा उसकी कन्दराओं में सिंह रहते थे। व्याघ्रों के झुंड के झुंड वहाँ भरे पड़े थे, तथा उस पर के फल-फूल और जल बहुत स्वादिष्ट थे'।[२७] इस पर्वत का रूप मानवीय जीवन से अनुप्राणित उपस्थित किया गया है जो प्रकृति-वर्णन की विकसित शैली है। इसके आधार पर इस वर्णन को बाद का माना जा सकता है।

सरिता, सर और सागर

सरिता

§ ७—बालकांड में विश्वामित्र राम को गंगावतरण का प्रसंग सुनाते हैं—'निर्मल मेघशून्य आकाश ऐसा सुशोभित जान पड़ता था मानो आकाश में सहस्रों सूर्य्य निकल रहे हों। बीच बीच में सूमों और चंचल मछलियों के झुंड जो जल के वेग से उछाले जाते थे, ऐसे जान पड़ते थे मानों आकाश में बिजली चमकती हो। जल में उठे हुए सफ़ेद सफ़ेद फेन जो इधर उधर छितरा गया था, ऐसी शोभा दे रहा था मानों हंसों के झुंडों से युक्त इधर उधर बिखरे हुए शरत्कालीन मेघ आकाश को सुशोभित कर रहे हों। गंगा की धार का जल कहीं ऊँचा, कहीं टेढ़ा, कहीं फैला हुआ और कहीं ठोकर खा कर उछलता हुआ धीरे धीरे बह रहा था। कहीं जल जल से ही टकरा कर बार बार ऊपर उछलता और फिर ज़मीन पर

---

२७. वही ; वही ; स० ५६ ; २६-३६

गिरता हुआ शोभित हो रहा था'।[२८]

क—चित्रकूट में राम सीता से मन्दाकिनी का वर्णन सहज सुख के क्षणों में करते हैं—'हे वैदेही, फल-फूल वाले अनेक वृक्षों से परिपूर्ण तटों वाली इस नदी को देखो। इस नदी की शोभा कुबेर की सौगन्धिका नामक नदी के समान है।

मन्दाकिनी

इस नदी के सब घाट बड़े रमणीय हैं और मेरे मन में स्नान की इच्छा पैदा करते हैं। अभी मृगों के झुंड इन घाटों का जल पी कर आये हैं अतः वहाँ का जल गँदला हो रहा है। हे प्रिये देखो, जटा और मृग चर्म और वृक्षों की छाल पहने हुए ऋषि लोग इस नदी में यथा समय स्नान करते हैं। प्र० भा०। हे भद्रे देखो, मन्दाकिनी का जल मणि की तरह उज्ज्वल है, कहीं रेत शोभा दे रहा है और कहीं सिद्ध लोगों की भीड़ लगी है। प्र० भा०। हे शोभने, तुम जैसे अपनी सखियों के साथ निशंक जलक्रीड़ा करती थीं, वैसे ही मेरे साथ मन्दाकिनी में लाल सफ़ेद कमल के फूलों को डुबाती हुई जलक्रीड़ा करो। जो गजों के यूथों से युक्त है और जिसका जल हाथी, सिंह और बन्दर पिया करते हैं, उस रमणीय एवं सुन्दर पुष्पों से युक्त वृक्षों द्वारा शोभित मन्दाकिनी का सेवन कर कौन सुखी नहीं होता'।[२९]

ख—वन मार्ग में नदियाँ पड़ती हैं—'उनमें मगर और घड़ियाल रहते हैं और उनमें दलदल रहने से उनको पार करना भी कठिन है। फँस जाने पर इन दलदलों से हाथी का निकलना असम्भव है।' यमुना का वर्णन उल्लेख में

अन्य

आता है—'आप शीघ्र बहने वाली गंगा में मिलने वाली यमुना के किनारे किनारे चल कर एक घाट देखोगे जो पुराने होने से टूटा-फूटा है। वहाँ घननई बना कर यमुना पार करना। तदन्तर पार करने पर

२८. वही ; अयो० ; स० ४३ ; २१-२५।

२९. वही ; अयो० ; स० ९५ ; २, ४-७, ९, ११, १४, १८।

तुमको उस पार एक बड़ा बरगद का वृक्ष मिलेगा जिसके हरे हरे पत्ते हैं'। पंचवटी में गोदावरी का वर्णन-प्रसंग है, पर यह हेमंत ऋतु के साथ अधिक सम्मिलित है। राम कहते हैं—'अगस्त्य ने जैसा बतलाया था वैसा ही यहाँ गोदावरी का दृश्य है। देखो, गोदावरी नदी फूले हुए वृक्षों से घिरी हुई है। प्र० भा०। हंस, कारंडव तथा चक्रवाकों से शोभित यह नदी न यहाँ से अधिक दूर है न अति निकट। यहाँ पर वन्यपशु जल पीने आते हैं'।[30] लंका में हनुमान एक नदी को इस प्रकार देखते हैं—'इस पर्वत से निकल कर एक नदी बह रही थी मानों कोई प्रियतमा कामिनी कुपित होकर अपने प्रियतम को त्याग भूमि पर गिर पड़ी हो। नदी का जल कुछ दूर जाकर पुनः पीछे आ रहा है, मानों वह रूठी हुई प्रिया प्रसन्न होकर प्रियतम के पास वापस आ रही है'। इसी प्रकार उत्तर-कांड में नर्मदा का वर्णन है—'मन मोहने वाली नर्मदा ने मानों सुन्दरी की तरह कान्ति धारण कर ली थी। पुष्पित वृक्ष उसके आभूषण, चक्रवाक उसके कुच, विशाल तट उसके नितम्ब और हंस-पंक्ति मानों उसकी करधनी थी। पुष्पपराग उसका अंगराग, जल-फेन उसका सफ़ेद पट, स्नान सुख उसका स्पर्श-सुख तथा पुष्पित कमल उसके नेत्र थे। मगर-मच्छ और पक्षियों से युक्त यह मनोहारिणी नर्मदा तरंगों से व्याप्त होने पर भी डरी हुई ललना के समान जान पड़ती है'।[31] इन आरोपों के शारीरिक तथा मधु-क्रीड़ा सम्बंधी संकेतों से जान पड़ता है ये वर्णन अपेक्षाकृत बाद के हैं।

§८—आरण्य-कांड के ग्यारहवें सर्ग में पंचाप्सर नामक सरोवर का उल्लेख है—'प्र० भा०। उस निर्मल और रमणीय जलवाली झील में गाने-बजाने का शब्द सुनाई पड़ता था, परन्तु वहाँ गाने-बजाने वाला

---

३०. वही; वही; स० २८; ९१ स० ५५; ५, ६। अर०; स० १५; ९, २३।

३१. वही; सुन्द०; स० १४; २९–३१। उत्त०; स० ३१; २२, २३, ३०

कोई न था'। यह मांडकर्णि नामक ऋषि द्वारा बनाया हुआ सर राम के मार्ग में पड़ता है। भावारोप के रूप में सीता-हरण के अवसर पर सरोवर का इस प्रकार वर्णन किया गया है—'सरों में विकसित कमल ध्वस्त हो गये थे और मछली आदि जीव-जन्तु भयभीत हो गये थे, मानों वे सीता के वियोग से उस प्रकार दुःख कर रहे हों जैसे कोई स्त्री अपनी सहेली के लिए दुःख करती है'।[३२]

सर या झील

आगे कबन्ध राम-लक्ष्मण को मार्ग बतलाता हुआ पम्पा का वर्णन करता है—'अनन्तर तुम दोनों पम्पा सरोवर पर पहुँचोगे। इस सरोवर के भीतर न तो सिवार है और न कंकड़ियाँ हैं। इसके तट की भूमि पर बिछलाहट भी नहीं है। इसके सब घाट एक से बने हैं। उसके तल में अच्छी रेती है और कमलों से वह सुशोभित है। हे राघव, वहाँ हंस, राजहंस, क्रौंच और कुरर रहते हैं और संतरण करते हुए सुन्दर बोलियाँ बोला करते हैं। आदमियों को देख कर वे डरते नहीं, क्योंकि वध क्या होता है वे जानते नहीं। पम्पा सरोवर का सुशीतल स्वच्छ स्फटिक तथा रजत जैसा जल लक्ष्मण कमल के पत्तों में लाकर तुम्हें पिलावेंगे। पर्वत की गुफाओं में सोने वाले तथा वन में विचरण करने वाले पीवर शरीर वाले पशु सरोवर के तट पर बैल की भाँति बोलते हुए जल पीने आये हुए दिखाई देंगे। हे राम, सन्ध्या समय जब तुम वहाँ घूमा करोगे, तब बड़ी-बड़ी शाखाओं वाले और फूले हुए वृक्षों तथा पम्पा सरोवर के शीतल जल को देख कर तुम्हारा शोक दूर हो जायगा'।[३३] फिर जब राम-लक्ष्मण पम्पासर पहुँचते हैं, उस समय पम्पा का वर्णन है—'प्र० भा०। किन्नर, उरग, गंधर्व, यक्ष, राक्षस आदि से सेवित वह सर अनेक वृक्ष तथा लताओं से घिरा हुआ था। अरविन्द, उत्पल के पद्म, सौगंधिक, ताम्र-शुक्ल कुमुद समूह तथा नील कुवलय आदि अनेक

---

३२. वही ; अर० ; स० ११ ; ७ : स० ५२ ; ३५।

३३. वही ; वही ; स० ७३ ; ११–१३, १७–२१।

प्रकार के कमल उसमें लगे थे। वह सरोवर फूले हुए करवीर, पुन्नाग, तिलक, बीजपुर वट, मालती तथा कुन्द के गुल्मों और मंडार-निचुल से पूर्ण उपवनों से घिरा हुआ है'। हनुमान को लंका में जलाशय दृष्टिगत हुए—'इनमें हंस और कारंडव क्रीड़ा कर रहे थे, कमल तथा कमुद खिले हुए थे। वह राजाओं के विहार के लिए अनेक प्रकार की वाटिकाएँ थीं जिनके भीतर विविध आकार के जल-कुण्ड बने हुए थे'।[34]

§६—हनुमान के समुद्र-लंघन प्रसंग में सागर का वर्णन है—'हनुमान समुद्र के जिस भाग में पहुँचते थे, वह भाग खलबलाता सा जान पड़ता था। वह पर्वत के समान अपने वक्ष-स्थल से समुद्र की लहरों को ढकेलते हुए चले जाते थे। उसके वेग के घर्षण से जल पर उड़ते हुए मेघों से जान पड़ा मानो शरत्कालीन आकाश में बादल शोभित हो। उसमें तिमि, नक्र, झष (मछली) आदि जन्तु दिखाई दिये, जैसे वस्त्र के खींचने से आदमी का शरीर दिखाई देने लगता है'। राम की सेना जब समुद्र-तट पर आ जाती है, उस समय समुद्र का चित्र सामने आता है—'समस्त सेना ने पवन से आन्दोलित महासागर को देखा। समुद्री विशाल जन्तुओं के कारण वह भयानक लगता था। सन्ध्या के समय जब उसमें फेन आता था, तब ऐसा जान पड़ता था मानो वह हँस रहा हो। और अपनी तरंगों में नृत्य करता जान पड़ता था। समुद्र चन्द्रमा के उदय होने पर बढ़ता और उसके प्रतिबिम्बों से भरा जान पड़ता था। उसकी लहरें घड़ियाल तथा सर्पों के चलने-फिरने से तथा वायु के वेग से ऊपर की ओर उछलतीं और बड़े ज़ोर से शब्द करती हुई नीचे गिरती थीं। रत्नों से और विविध प्रकार के जल-जन्तुओं से पूर्ण समुद्र का जल वायु के झोंके से ऐसा उछल रहा था मानों क्रोध में ऊपर उछल रहा हो'।[35]

सागर

---

३४. वही ; वही ; स० ७५ ; १९—२४। लंका० ; स० २ ; १२, १३ ;

३५. वही ; सुन्द, स० १ ; ६९—७२। लंका० ; स० ४ ; ११४; ११८, १२४।

काल और ऋतु

§ १०—विश्वामित्र राम से सन्ध्या के साथ घिरती हुई रात्रि का वर्णन करते हैं—'हे रघुनन्दन, अन्धकार समस्त दिशाओं में व्याप्त हो रहा है। वृक्षों का पत्ता तक नहीं हिलता और पशु-पक्षी सभी चुपचाप उसमें लीन हो गये हैं। धीरे-धीरे सन्ध्या का समय बीत गया। अब आकाश तारों से देदीप्यमान हो शोभित हो रहा है, जान पड़ता है मानों आकाश सहस्रों नेत्रों से देख रहा हो। समस्त संसार के अन्धकार को नष्ट करने वाला और शीतल किरणों वाला चन्द्रमा प्राणियों के मन को हर्षित करता हुआ ऊपर को उठा चला आता है'।[३६] अनुसूया सीता को उपदेश देने के बाद सन्ध्या की ओर उनका ध्यान आकर्षित करती हैं—'प्र० भा०। चारों ओर निशाचर विचरण करने लगे हैं। वेदी और तीर्थों में आश्रम के मृग सो गये हैं। चारों ओर से रात्रि तारों से अलंकृत हो गई है। चाँदनी फैलाता हुआ दूसरी ओर से चाँद उदित हो रहा है'।[३७]

सायंकाल और रात्रि

क—लंका में हनुमान के सामने चन्द्रोदय का चित्र इस प्रकार है—'उस समय मानों वायु पुत्र की सहायता करने के लिये अनेक किरणों वाला चन्द्रमा ताराओं के साथ चाँदनी छिटकाता हुआ आकाश में आ विराजा। सरोवर में जिस प्रकार कमल संतरण करता है, उसी प्रकार दूध अथवा मृणालवर्ण या शंख की भाँति चन्द्रमा भी आकाश में उदित होकर ऊपर उठ रहा है'।[३८] आगे पाँचवें सर्ग में हनुमान के सम्मुख चन्द्रोदय का दृश्य फिर आता है—'आकाश के मध्य में प्रकाशमान तेजधारी चन्द्रमा चाँदनी फैला रहा था मानों अत्यन्त दीपित मत्त वर्षभ मण्डल में घूमता हुआ

चन्द्रोदय

---

३६. वही ; बाल० ; स० ३४ ; १५–१७।

३७. वही ; अयो ; स० ११९ ; ८, ९।

३८. वही ; सुन्द० ; स० २ ; ५४, ५५।

शोभित हुआ है। लोगों के पाप फल का नाश करनेवाला, समुद्र को बढ़ाने वाला सब जीवों को प्रकाशित करने वाला चन्द्रमा आकाश-मध्य आता हुआ दिखाई दिया। जो शोभा सूर्योदय के समय पृथ्वी की होती है अथवा जो छवि सायंकाल सागर धारण करता है और जो शोभा कमलों के फूलने से सरोवर की होती है, वही शोभा रात्रि की चन्द्रमा से हुई। जिस प्रकार राजा के पिंजरे में हंस मन्दराचल की कन्दरा में सिंह तथा वीर हाथी पर शोभित होता है, उसी प्रकार चन्द्र आकाश में शोभायमान है'।[39] हनुमान ने जब सीता को देखा, उस समय भी 'कुमुद पुष्पों की भाँति निर्मल चन्द्र निर्मल आकाश में कुछ चढ़ कर वैसे ही शोभित हुआ जैसे नील जलवाली झील में हंस शोभित होता है'।[40]

§ २१—पम्पासर के निकट राम-लक्ष्मण चारों ओर वसंत की शोभा विकसित पाते हैं। पपा सरोवर के साथ वसंत का वन में उल्लास इस प्रकार वर्णित है—'नीले और पीले घास के मैदान की शोभा बढ़ गई है। वृक्ष नाना प्रकार के पुष्प बिखेर रहे हैं। चारों ओर पुष्पों के भार से समृद्ध हुए वृक्ष शिखर दिखाई देते हैं। फूली हुई लताओं से चुतुर्दिक घिरा हुआ है। हे सौमित्र, सुख देने वाले पवन वाला यह कामदेव का समय (वसंत) है। फूल और फूलों से वृक्ष सुगन्धित हो उठे हैं। देखो, यह वृक्ष मेघ की तरह फूलों की वर्षा कर रहा है। शिखरों पर अनेक प्रकार के वन-खंड हैं जिनमें पवन से कम्पित वृक्षों से फूल गिर रहे हैं। सौम्य, कुछ फल नीचे पड़े हैं, कुछ गिरने को हैं और कुछ वृक्ष ही में लगे हैं। उनके द्वारा जैसे वसन्त वायु-क्रीड़ा कर रहा है। पुष्पों से लदी हुई वृक्षों की शाखाओं को यह पवन हिला कर भौंरों के गुंजार के रूप में गीत सुना

वसंत ऋतु

---

३९. वही ; वही ; स० ५ ; १—५।
४०. वही ; वही ; स० १७ ; १।

रहा है। पर्वत की कन्दराओं से निकल कर वायु वृक्षों को नचाता हुआ, कोयलों के मधुर स्वर द्वारा मानों गान करता है। चारों ओर हिलने से शाखाएँ परस्पर सट जातीं हैं, इससे ये वृक्ष गुँथे से जान पड़ते हैं। यह पवन सुख-स्पर्श, चन्दन के तुल्य शीतल और पवित्र गंध से भरा हुआ है और श्रम को दूर कर रहा है। इन मधुगन्ध युक्त वनों में हवा के झोंकों से हिलते हुए वृक्ष भ्रमरों की झनकार द्वारा मानों नाद कर रहे हैं। इन पर्वत-शिखरों पर जो पुष्पित महावृक्ष लगे हैं, उनसे जान पड़ता है उन्होंने पगड़ी धारण की है। फूले हुए कर्णिकार ऐसे जान पड़ते हैं मानों बाजार के लिए पीताम्बर पहने हुए लोग हों'। इस प्रकृति के रूप में मानवीय जीवन का विस्तृत आरोप है। आगे सीता-विरह में प्रकृति दुःख को बढ़ाती है—'वसन्त नाना पक्षियों के शब्दों से नादित होकर सीता-वियोग के शोक को उद्दीप्त कर रहा है। हर्ष से उन्मत्त कोयल का आवाहन करता हुआ स्वर मुझ शोक में पड़े हुए के संताप को बढ़ाता है। यह प्रसन्न हुआ दात्यूहक (जलकुक्कुट) वन के रमणीय झरने पर बैठा अपने शब्द से मुझे और भी अधिक शोकाकुल करता है। विचित्र पक्षी विभिन्न प्रकार के शब्द करते हैं और वृक्षों पर चारों ओर से आकर बैठते हैं। कीर या भ्रमर तथा अनेक प्रकार के पक्षियों के जोड़े बड़ी प्रसन्नता से झुंड के झुंड बिचरते हैं। दात्यूह पक्षी के रति-शब्द तथा नर कोयल के स्वरों में पक्षियों के झुंड कैसा विहार करते हैं। पक्षियों के शब्द से गूंजता हुआ वृक्ष और भ्रमर की गुंजन वाला अशोक के फूलों का गुच्छा मुझे जलाता है'। 'इधर-उधर मयूर नाचते दिखाई देते हैं। मयूर अपनी मयूरी के साथ है। वन पुष्पों से समृद्ध है। यह पुष्प गन्ध वाला वायु सुखस्पर्श होकर मुझे जलाता है। कामियों को दुःख देने वाला यह अशोक के फूलों का गुच्छा पवन से हिलता हुआ जैसे मुझे वर्जित करता है। आम के बौराए हुए पेड़ अंगराग लगाये हुए प्रेमी नागरिकों के समान हैं। पत्र-विहीन किंशुक जैसे चारों ओर प्रदीप्त हो उठा है। वसन्त में, मालती, मल्लिका, पद्म, करवीर, केतकी,

सिंदुवार, मातुलिंग, कुंद (गुल्म में), चिरबिल्व, मधूक, बंजुला, बकुल, चंपक, तिलक और नाग सभी फूल गये। और अनेक नीप, वरणा, खजूर, पद्मका, कुरंटा, चूर्णका, पारिभद्रक, चूत, पाटल, कोविदार, मुचुकुंद, अर्जुन के वृक्ष फूले हुए पहाड़ी चोटियों पर दिखाई देते हैं। केतक, उद्दालक, शिरीष, शिंशपा, धवा, शाल्मली, किंशुक, रक्त कुरबक, तिनिशा, नक्तमाल, चंदन, हिताल, तिलक सभी चारों ओर फूल उठे हैं। और इनके साथ लताएँ भी वृक्षों पर वन वन और चोटी-चोटी पर फैली हैं, जैसे मत्त स्त्रियाँ पुरुषों का अनुसरण करती हैं। कुछ वृक्ष पर्याप्त फूलों से मधु और गंध से युक्त हैं। और कुछ कलियों से युक्त श्याम-वर्ण के (हरे) हैं। मधुकर उनपर लग्न हैं। वे एक से दूसरे पुष्प पर रस लेकर जाते हैं। भ्रमरों से गुंजारित पर्वत एक दूसरे से बातचीत से करते हैं। जल में कारंडव पक्षी विहार करता है। पम्पा सर चक्रवाक, कारंडव से सेवित है और उसमें क्रौंच पक्षी भी भरे हुए हैं। इनसे कूजत हुआ सरोवर सुशोभित है'।[४१]

§ १२—दशरथ अपनी मृगया प्रसंग का उल्लेख करते समय वर्षा का वर्णन इस प्रकार करते हैं—'गरमी एकदम दूर हो गई, शीतल बादल दिखाई देने लगे। उनको देखकर मेढक चातक और मयूर हर्षित हो गये। बरसाती हवा से हिलते हुए वृक्षों पर उन पक्षियों ने जिनके पर भीग जाने से स्नान किये हुए से जान पड़ते थे, कष्ट से बसेरा लिया। बरसे हुए और बरसते हुए जल से आच्छादित मत्त हाथी उस समय उसी प्रकार जान पड़े जिस प्रकार महासागर में पर्वत खड़ा हो'।[४२] ऋष्यमूक पर्वत पर राम लक्ष्मण से वर्षा का वर्णन करते हैं—'यह आज वर्षा का समय आ गया है। हे लक्ष्मण! देखो, पर्वत के समान मेघ आकाश में छा रहे हैं। सूर्य

वर्षा ऋतु

४१. वही ; किष्किं० ; १ स० से यत्र-तत्र छोड़ कर लिया गया है।
४२. वही ; अयो० ; स० ६२ ; १६–१८।

की किरणों से समुद्र का रस पीकर नव मास तक गर्भ धारण कर आकाश रसायन (जल-वर्षा) उत्पन्न करता है। मेघ की सोपान-पंक्ति से आकाश में चढ़कर सूर्य्य को कुटज तथा अर्जुन के फूलों से अलंकृत किया जा सकता है। सन्ध्या के राग से लाल आकाश धुँधला होता हुआ जान पड़ता है मानों घाव पर रेशमी कपड़े की पट्टी बँधी हो। मंद पवन रूपी निःश्वास तथा सन्ध्या की लाली रूपी चन्दन से युक्त मेघ कामातुर के समान जान पड़ता है। प्र० भा०। मेघों के जल से कपूर की भाँति शीतल तथा केवड़े की गन्ध से सुगन्धित वायु अंजलियों से पिया जा सकता है। यह पर्वत जिस पर अर्जुन के वृक्ष फूल रहे हैं और जो केतकी की गन्ध से वासित है, सुग्रीव की नाईं शत्रुहीन होकर जलधाराओं से अभिसिक्त हो रहा है। वायु से पूर्ण हो रही हैं कन्दराएँ जिनकी ऐसे पर्वत मेघ रूपी कृष्ण-चर्म धारण कर तथा जल-धाराओं रूपी यज्ञोपवीत धारण कर विद्यार्थी के समान जान पड़ते हैं। प्र० भा०। सभी दिशाएं पवन के चारों ओर के प्रतारण से बादलों से घिरती जाती हैं जिससे ग्रह-नक्षत्र-चन्द्रमा सभी लुप्त ही गये हैं। पर्वत शिखरों पर खिले हुए कुटज (करैया) के वृक्ष पृथ्वी की वाष्प से अवरुद्ध होकर वर्षा के प्रति उत्सुक हो गये हैं। धूल शांत हो गई, गर्म पवन शीतल हो गई है। राजाओं ने यात्रा स्थगित कर दी और प्रवासी घर लौट पड़े। चक्रवाक अपनी चक्रवाकियों के साथ मानसरोवर चल पड़े। अब वर्षा के जल के कारण यान नहीं चलते। आकाश में फैले हुए मेघों में कहीं प्रकाश और कहीं अन्धकार है और कहीं कहीं जान पड़ता है मानों सागर में पर्वत दिखाई देते हों। प्र० भा०। मध्याह्न के अनन्तर वन की शोभा देखते ही बनती है, एक ओर वर्षा से हरी-हरी घास की हरियाली देख पड़ती है और दूसरी ओर मोरों ने नृत्योत्सव प्रारम्भ किया है। बगलों की पंक्तियों से शोभित और जल के भार से बोझिल मेघ पर्वतों के ऊँचे शिखरों पर विश्राम कर आगे बढ़ते हैं। गर्भ-धारण की इच्छा से मेघों के मध्य में गमन करती हुई हर्षित बलाकाओं की पंक्ति, वायु द्वारा

बनाई हुई आकाश की श्वेत-कमल की माला के समान शोभित हुई। बीच बीच में छोटी छोटी बीरबहूटियों से भरी हुई हरी घास से पृथ्वी की शोभा ऐसी जान पड़ती है, जैसे किसी स्त्री ने बूटेदार दुपटा ओढ़ लिया हो। केशव को शनैः शनैः नींद आने लगी, नदी सागर की ओर जाने लगी, प्रसन्न हुई बलाका बादलों की ओर जाती है और कांता काम से प्रिय के पास जाती है। वन के भागों में मयूर नृत्य कर रहे हैं और कदम्ब की शाखाओं पर फूल लद गये हैं। गाय तथा बैल समान मत्त हो गये हैं और वन की पृथ्वी हरी-भरी मनोहर हो गई है। नदी प्रवाहित है, बादल बरसते हैं, मत्त हाथी गरजते हैं, वन-भाग शोभित हैं, वियोगी सोच करते हैं, मयूर नाचते हैं और वानर मन को समझा रहा है। केतकी पुष्प की गन्ध सूँघ कर मत्त हुआ हर्षित गजेन्द्र वन के निर्झर के गिरने के शब्द को सुन कर मयूरों के साथ मद के साथ नाद करते है'।[४३] 'वर्षा की जल-धारा से भीगे हुए तथा कदम्ब की शाखा पर गूँजने वाले भ्रमर फूलों के रस का गाढ़ा मद छोड़ रहे हैं। जामुन वृक्ष पर बुझे हुए अंगार के समान रस से भरे हुए फल इस प्रकार लगे हैं मानों शाखाओं पर भ्रमर छाये हुए हैं। बिजली पताका है, और बादलों की गर्जन रण का नाद है, लगता है बलाहकों के रूप में युद्ध के लिए उत्सुक वानर हों। कहीं भ्रमर गाते हैं, कहीं मोर नाचते हैं। कहीं वन के किसी भाग में मत्त हाथी शोभित है। कदम्ब, सर्ज, अर्जुन तथा कंदली आदि से वनान्त की भूमि मधु से आपूरित है। इस सबसे वह पान-भूमि लगती है। पत्तों पर पड़ा हुआ जल मुक्ता के समान आभा वाला जान पड़ता है। नाना प्रकार के प्यासे पक्षी प्रसन्न होकर वर्षा का जल पीते हैं। भ्रमरों की मधुर तंत्री, वानरों के कंठस्वर की ताल तथा मेघ के मृदंगनाद से वन संगीत में लीन है। इस संगीत में मयूर कूजता तथा नाचता हुआ भाग ले रहा है। बादल की गर्जन से निद्रा

४३. वही ; किष्कि० ; स० २८ ; ७–२८ ;

छोड़कर सजग हो गये हैं; अनेक रूपवाले मेघ नाद करते हैं। चक्रवाकों से पूरित तटों वाली नदी वर्षा के नवीन जल से भरी हुई अपने प्रियतम के पास जा रही है। वारिपूर्ण नील मेघ आपस में मिले हुए शोभित हैं। दावाग्नि से जले हुए पर्वत पास-पास चले गये हैं। कमलों का केसर पानी की धार से धुल रहा है, कदम्ब के केसर युक्त नवीन फूलों पर प्रसन्न भ्रमर रस ले रहे हैं। सिंह ने वन को आतंकित किया है और इन्द्र मेघों से क्रीड़ा करता है। बादलों से ऐसी गर्जन हो रही है मानों आकाश में ठहरे हुए किसी महासमुद्र का नाद हो। नदी, सरोवर, वापी और समस्त पृथ्वी जलमग्न हो गई है। तेज वर्षा होती है, पवन वेग से बहता है। जिसके तट नष्ट हो गये हैं ऐसी नदी रास्तों को जल-मग्न करती हुई तेज बह रही है। पर्वतों का राजाओं के समान इन्द्र तथा पवन द्वारा लाये हुए बादल रूपी घड़ों से सुन्दर अभिषेक हो रहा है। सघन आकाश में न सूर्य, न चन्द्र और तारे ही दिखाई देते हैं। जल से पृथ्वी और अन्धकार से दिशाएँ छाई हुई हैं। ऊँचे ऊँचे शिखर जल-धाराओं के गिरने से अधिक शोभित हैं, उनपर बड़े बड़े प्रपात जान पड़ता है मुक्ता की माला पड़ी हो। पर्वत के ये विपुल प्रपात अपने वेग से पत्थर के टुकड़ों को बहाते और साथ ही गुफाओं में मोरों के नाद से जान पड़ता है कि हार टूट कर फैल गया है। प्र० भा०। पक्षियों के छिप जाने, कमलों के जलमग्न हो जाने तथा मालती पुष्पित होने से जान पड़ता है सूर्यास्त हो गया है'।[४४]

§ १३—ऋष्यमूक पर्वत पर राम शरद् की शोभा से उद्वेलित होते हैं—'गगन पांडुर हो गया था, चन्द्रमंडल विमल था। शारदी रजनी में ज्योत्स्ना बिखर रही थी। आकाश में अब बिजली और बलाहक नहीं दिखाई देते थे। सारस का करुण

शरद् ऋतु

४४. वही; वही; वही; २९—५२।

स्वर मुखर हो गया था'।[४५] ऐसे समय लक्ष्मण के वचनों से स्वस्थ होकर राम शरत्काल का वर्णन, उन का ध्यान आकर्षित करते हुए करते हैं—'इन्द्र ने जल से पृथ्वी को तृप्त कर शस्य (धान्य) की व्यवस्था कर दी है। अब धीर गम्भीर निर्घोष करने वाले बादल जल बरसा कर शान्त हो गये हैं। नील कमलों से सभी दिशाएँ श्याममयी हो गई हैं। हाथियों का मद शांत हो गया है और बादलों का वेग भी शांत हो गया है। वर्षा का कुटज-अर्जुन की गन्ध से युक्त पवन मेघों को छिन्न-भिन्न कर शांत हो गये हैं। प्रस्रवण के मेघ, हाथी तथा मयूरों का नाद सहसा शांत हो गया है। महामेघों की वर्षा से विचित्र चोटियाँ स्पष्ट हो गई हैं और ये पर्वत चन्द्र-किरणों से अनुलिप्त से शोभित हैं। शरत्काल ने अपनी शोभा को मानों सप्तच्छद की शाखाओं में, सूर्य-चन्द्र तथा तारागणों की प्रभा में और उत्तम गजों की लीला में विभाजित कर दिया है। इस काल अनेक गुणों से सम्पन्न शरत्काल की लक्ष्मी अनेक आश्रयों से शोभित होती हुई भी सूर्य किरणों से जगाये हुए कमलों से अधिक सौन्दर्य प्राप्त करती है। विशाल पक्ष वाले, कमल की रज से धूसरित, कामदेव के प्रिय, नदियों के तट पर आये हुए चक्रवाकों के साथ हंस क्रीड़ा कर रहे हैं। मद से प्रगल्भ हाथियों से, दर्पित गायों के समूह से तथा स्वच्छ जल वाली नदियों से शरद् लक्ष्मी की शोभा बँट गयी है। आकाश से मेघ विलीन हो गये हैं, मयूर के पंखों से वन विमुक्त हो गये हैं और उनका नृत्योत्सव भी समाप्त हो गया है। सुन्दर सुगन्धित पुष्पों से आच्छादित वृक्षों से वन के प्रान्त-भाग सुनहले और नयनों को अभिराम लगते हुए शोभित हैं। आकाश स्वच्छ नील है, नदी का प्रवाह पतला है। कह्लार से शीतल पवन बहता है, दिशाएँ प्रकाशित हैं। सूर्य के ताप से कीचड़ सूख गया है, भूमि पर पर्वतीय मिट्टी बिछ गई है।...अपने सुन्दर आभूषण को

४५. वही; वही; स० ३० ; २, ५।

छोड़कर नदी के तीर पर आया हुआ मोर सारस के समूह से भर्त्सना किया हुआ सा उदास होकर जाता है। हाथी कारंडव तथा चक्रवाकों को अपने घोर नाद से संतस्त्र करके, कमल रूपी आभूषण धारण करने वाली नदी को विक्षुब्ध कर करके जल पी रहे हैं। पंकहीन, बालुका के पुलिन वाली, स्वच्छ जल वाली, जिसके तट पर पशु-समूह है और जो सारस समूह से निनादित है ऐसी नदी पर हर्षित हंस उतर रहे हैं। प्रस्रवण से बहने वाली नदियां, पवन से उत्तेजित मयूरों और वानरों का नाद अब दूर हो गया है। बादलों के नष्ट हो जाने से अनेक वर्षों के घोर विष वाले क्षुधित सर्प अपनी बिलों से निकल रहे हैं। चंचल चंद्र-किरणों के स्पर्श के हर्ष से निकल आये हैं तारे जिसमें ऐसी रागवती सन्ध्या स्वयं आकाश में हँस रही है। उदित होता हुआ चन्द्रमा जिसका मुख है, निकलते हुए तारा समूह जिसके नेत्र हैं और चंद्रिका जिसका बारीक कपड़े का घूँघट है ऐसी यह रात्रि श्वेत घूँघट वाली नारी के समान है। पके हुए धान को खाकर प्रसन्न हुई सारसों की सुन्दर पंक्ति वेग से आकाश को पार करती हुई पवन से हिलती हुई माला लगती है। सरोवर के जल में कुमदों से घिरा हुआ हंस सो रहा है; निर्मल आकाश वाली रात्रि में तारा-गणों के साथ पूर्ण चन्द्र शोभित है। हंसों के समूह की मेखला वाली, खिले हुए कमलों की माला धारण किये हुए उत्तम वापी की शोभा विभूषित स्त्री के समान है। सरिता के तट नये कुसुमों के खिलने से तथा पवन से हिलते हुए श्वेत फूले हुए काँस से उज्ज्वल वस्त्र के समान शोभित हैं। मधुपान से मत्त भ्रमरियों के साथ उल्लसित भ्रमर वन में पवन को कमल के रेणु से गौर कर रहे हैं। जल निर्मल है, कुसुम फैले हुए हैं, क्रौंच का स्वर सुनाई देता है, धान पक गया है। पवन मन्द है, चन्द्र विमल है। प्र० भा० । लोक में भली भाँति वर्षा करके, नदियों को जल-पूरित करके तथा पृथ्वी को धान से भर कर मेघ आकाश से नष्ट हो गया है। नदियों के पुलिन धीरे धीरे दिखाई देने लगे हैं, जैसे समागम के समय

स्त्री जाँघों को खोलती है। कुररी से नादित स्वच्छ नीर वाली नदियाँ हैं और सरोवर चक्रवाकों से शोभित हैं'।[४६]

§ १४—इस ऋतु का वर्णन राम सीता से गोदावरी के तट पर करते हैं—'हे प्रियभाषी, यह सुन्दर ऋतु आ गई, जिससे यह संवत्सर सुशोभित सा जान पड़ता है। नीहार से लोक सिकुड़ गया है और पृथ्वी शस्य से भरी देख पड़ती है। प्रकृति में ठंढक बढ़ गई है और सूर्य दूर चला गया है। हिमवान् का नाम हिमाच्छादित यथार्थ हो गया। मध्याह्न में घूमना-फिरना अच्छा लगता है, धूप अच्छी लगती है। इसमें सूर्य सुखदायी है, छाया और जल अच्छे नहीं लगते। सूर्य में पहले सा तेज नहीं है, कुहरा पड़ने तथा पवन चलने से शीत अधिक बढ़ जाती है। हिम से ध्वस्त वन सूने दिखाई पड़ते हैं। सूर्य आकाश में ऊँचा चढ़ कर भी प्रकाशित नहीं होता और वह चन्द्रमा की तरह जान पड़ता है। तुषार में मंडल छिपा रहता है इस कारण सूर्य प्रकाशित नहीं होता। और चन्द्रमा का प्रकाश श्वास से अन्धे दर्पण के समान रह गया है। ज्योत्स्ना पूर्णिमा के दिन भी शोभित नहीं होती। पश्चिम से वायु चलने से शीत दूनी हो जाती है और उसका स्पर्श बेध सा देता हैं'। आगे नदियों का चित्र है—'जल में विहार करनेवाले पक्षी पानी पर तैरते नहीं हैं। वनराजि पुष्पहीन होकर नीहार से ढकी हुई सो रही है। कुहरे में सारस केवल बोली से पहचाने जाते हैं। नदियों के तट की बालू ओस से भीग गई है'। सरोवरों की भी यही स्थिति है—'जिनके कमलों के पत्ते जीर्ण होकर झड़ गये हैं, फूलों की कर्णिका और केसर भी गिर गयी हैं और मारे पाले के जिनमें डंडी भर रह गई है, ऐसे कमल सरोवर शोभाहीन हो गये हैं'।[४७]

हेमन्त ऋतु

४६. वही; वही; वही; २२–५९।

४७. वही; अर० स० १६; ४, ५, ९–११, १२–१५, २२–२४, २६।

द्वितीय प्रकरण

कालिदास

§ १—कालिदास संस्कृत साहित्य के महाकवि हैं। इनके महाकाव्यों और नाटकों में सौन्दर्य्य का चरम है। हम पिछले भाग की विवेचनाओं में यह देख चुके हैं कि क्या शैली की दृष्टि से और क्या प्रयोगों की दृष्टि से कालिदास प्रकृति के क्षेत्र में अद्वितीय हैं। आदि कवि में प्रकृति के वर्णनों में यथार्थ का रूप रक्षित है, यद्यपि विस्तृत वर्णनों में (जो सम्भवतः बाद के हैं) सौन्दर्य्य-व्यंजना भी सन्निहित है। कालिदास की प्रकृति-वर्णना में सौन्दर्य्य-विधान अधिक है, इस कारण आदर्श कल्पनाओं को अधिक अवसर मिला है। परन्तु प्रकृति की इस आदर्श उद्भावना में प्रकृति का सहज रूप रक्षित है, साथ ही सौन्दर्य्य की कलात्मकता भी बनी रहती है। यद्यपि संस्कृत साहित्य की व्यापक प्रवृत्ति के रूप में प्रकृति-वर्णनों को महाकाव्यों में जुटाने का प्रयास कालिदास में भी दृष्टिगत होता है, परन्तु कथा और इन वर्णनों में एक सामंजस्य बना हुआ है।

महाकवि

देश के संकेत

§ २—कालिदास ने प्रदेश गत प्रकृति के उल्लेख द्वारा देश का

चित्र सामने उपस्थित किया है। रघु की दिग्विजय के प्रसंग में इस प्रकार का प्रयोग किया है—'विजयी राजा रघु पूर्वी राज्यों को जीतते हुए उस समुद्र के किनारे पहुँचे, जो तट पर खड़े हुए ताड़ के वृक्षों की छाया से काला जान पड़ता था। जैसे बेंत की शाखाएँ धारा में झुक कर खड़ी रह जाती हैं, वैसे ही सुह्म देश के राजाओं ने अभिमानियों को उखाड़ फेंकनेवाले रघु की आधीनता स्वीकार की। पूर्व दिशा को जीत कर विजयी रघु समुद्र के उस तट पर होते हुए पकी सुपारियों के वृक्षोंवाली दक्षिण दिशा को गये। वहाँ से चलते-चलते वे बहुत दूर निकल गये और रघु के सैनिक मलयाचल की तराई में उतरे जहाँ काली मिर्च की झाड़ियों में हरे-हरे सुग्गे इधर-उधर उड़ रहे थे। मलय और दुर्दर नाम की पहाड़ियों पर चन्दन के पेड़ छाये हुए ऐसे जान पड़ते थे मानों दक्षिण दिशा के दो स्तन हों। मुरला नदी की ओर से आनेवाले पवन से केवड़े के फूल की रज उड़ रही थी। बड़े-बड़े ताड़ के पेड़ों से वायु के चलने से स्वर निकल रहा था। नागकेसर के फूलों पर बैठे हुए भौंरे खजूर के पेड़ में बँधे हुए हाथियों के कपोलों से टपकते हुए मद की गन्ध पर टूट पड़े। त्रिकूट पर्वत पर रघु के हाथियों ने दाँतों की चोटें कीं। पच्छिम में सैनिकों ने अंगूर की लताओं से घिरी भूमि में मदिरा पी। सिन्धु के तट पर घोड़ों ने रेती में लोट कर थकावट दूर की। कंबोज में हाथियों के बाँधने से अखरोट की डालियाँ झुक गईं। हिमालय पर घोड़ों की टापों से गेरू आदि धातुओं की लाल-लाल धूल ऊँची होकर उड़ी। गुफाओं में लेटे हुए सिंह कोलाहल से शंकित नहीं हुए। प्र० भा०। वहाँ देवदारु के पेड़ों में बँधे हुए हाथियों के गले में जो साँकलें पड़ी थीं वे रात को चमकनेवाली बूटियों के प्रकाश से चमचमा उठती थीं और इस प्रकार उन बूटियों ने रघु के लिए बिना तेल के ही दीपक जला दिये। लौहित्य नदी को पार कर रघु प्राग्ज्योतिष पहुँचे, वहाँ हाथियों के बाँधने से

रघु का दिग्विजय

कालागुरू के पेड़ काँपते थे'।[1] इस प्रकार वर्णनों के बीच में देशगत विशेषता को सन्निविष्ट करने में कवि ने विशेष प्रतिभा का परिचय दिया है। परन्तु ये वर्णन आदर्श रूप में हैं।

सुनन्दा द्वारा

§३—इन्दुमती के स्वयंवर में सुनन्दा राजाओं का परिचय इसी प्रकार देशगत विशेषता के साथ बताती है। 'अवन्ती के उद्यानों में शिप्रा नदी का शीतल पवन बहता रहता है। अनूप देश में नगाड़े की ध्वनि के समान समुद्र गरजता है और तटों पर विहार करते समय ताड़ के जंगलों की तड़तड़ाहट सुनाई पड़ती है। वहाँ लौंग के फूलों से बसा हुआ शीतल पवन द्वीपों से आकर पसीना सुखाता है (महेन्द्र देश)। पांड्य देश में मलय पर्वत की घाटियाँ हैं जिनमें पान की बेलों से ढके हुए सुपारी के पेड़ हैं, इलायची की बेलों से आच्छादित चन्दन के वृक्ष हैं और स्थान-स्थान पर ताड़ के पत्ते बिखरे हैं। मथुरा में वृन्दावन में कोमल पत्तों तथा फूलों की शैया बिछी रहती हैं और वर्षा के दिनों में गोवर्धन पर्वत की सुहावनी गुफाओं में पानी के फुहारों से भीगी हुई शिलाजीत की गन्धवाली पत्थर की घाटियों पर बैठकर मोर का नृत्य देखा जाता है'।

मेघदूत में

§४—समस्त मेघदूत प्रसंग में अनेक देशों का उल्लेख किया गया है। 'रामगिरि पर अनेक कुण्ड, तालाब तथा बावलियाँ थीं जहाँ घनी छायावाले वृक्ष लहलहा रहे थे।' इस पर विरही यक्ष मेघ को मार्ग बताते हुए अनेक देशों का वर्णन करता है—'दशार्ण देश में फूले हुए उपवनों के बाड़े, फूले हुए केवड़ों के कारण उजले दिखाई देंगे; गाँव के मन्दिर, कौओं आदि पक्षियों के घोसलों से भरे मिलेंगे और कुछ दिनों के लिए वहाँ हंस भी आ जाते हैं। वहाँ 'नीच' नाम की पहाड़ी पर कदंब के वृक्ष लगे होंगे मानो उसके

१. रघु०; सं० ४; ३४, ३५, ४४, ४६ ; ५१, ५५, ५६, ५७, ५९, ६५, ६७, ६९–७२ ; ७५, ८१।

रोम-रोम फरफरा उठे हों। उसके आगे नदियों के तट पर जुही से खिले हुए उपवन हैं। उज्जयिनी के मार्ग में निर्विन्धा नदी पड़ती है (प्र० भा०)। फिर अवन्ती शिप्रा के तट पर है (प्र० भा०)। इसमें ताड़ के पेड़ों का सुनहरा उपवन होगा और जिसमें नलगिरि नामक हाथी मदमत्त होकर घूमता फिरता है। आगे देवगिरि पर्वत पर फूल बरसाने वाले मेघ के रूप में आकाश-गंगा के जल से भीगे फूलों को स्कन्द पर बरसाने का आग्रह है। मेघ की गर्जन से गुफाएँ भर जायगीं और उसे सुनकर स्वामी कार्तिकेय का मोर नाच उठेगा। चर्मणवती नदी की धारा के मध्य में मेघ हार के बीच में इन्द्रनील मणि के समान लगेगा।······कनखल में हिमालय की घाटियों से उतरती हुई गंगा फेन की हँसी से पार्वती का मानों निरादर कर रही होंगी'। अन्त में मेघ हिमालय को पार कर—'कैलास पर्वत की गोद में प्यारे की गोद में प्रेमिका के समान अलका को देखेगा। ऊँचे-ऊँचे भवनों वाली अलका को वर्षा के दिनों में कामिनियों के सिर पर गुँथे जूड़े के समान बादलों से आच्छादित देखकर पहचानना कठिन न होगा।' आगे यक्ष अपनी अलकापुरी के प्राकृतिक रूप का उल्लेख भी करता है—'वहाँ सदा फूलनेवाले ऐसे वृक्ष मिलेंगे जिन पर मतवाले भौंरे गुनगुनाते होंगे। सदा विकसित रहनेवाले कमल-कमलिनियों को हंसों की पाँतें घेरे रहती हैं। वहाँ सदा चमकीले पंखोंवाले पालतू मोर ऊँचा सिर किये रात-दिन बोलते हैं और रातें चाँदनी से सदा उजली और मनभावनी होती हैं। वहाँ वैभ्राज नामक उपवन में लोग विहार करते होंगे'। आगे यक्ष अपने भवन के 'सामने फूलों के गुच्छों के भार से झुके हुए कल्पवृक्ष' का उल्लेख करता है, 'जिसके नीचे खड़े होकर गुच्छा तोड़ा जा सकता है'।[3]

---

२. वही; स० ६; ३५, ५७, ६४, ५०, ५१।

३. मेघ; पूर्व; १, २६, २७, २८, ३५, ४७, ४८, ५०, ५४, ६७: उत्त०; ३, १०,

उपवन और वन

६५—रघुवंश में अयोध्या के ध्वस्त उपवन का उल्लेख है—'पहले उद्यान की जिन लताओं को धीरे से झुकाकर सुन्दरी स्त्रियाँ फूल उतारा करती थीं, उन प्यारी लताओं को जंगली शबरों के समान उत्पाती बन्दर झकझोर डालते हैं'।[४] इसी प्रकार के विध्वस्त नन्दनवन का संकेत कुमारसम्भव में भी है—'स्वामी कार्तिकेय ने इन्द्र के विलास के इस वन को ध्वस्त देखा जिसके साल के वृक्ष या तो तोड़ डाले गये थे, या जड़ से ही उखाड़ दिए गये थे'।[५]

उपवन

क—यक्ष अपने घर के उद्यान का वर्णन इस प्रकार करता है—'घर के भीतर प्रवेश करने पर नीलम की सीढ़ियों वाली बावली मिलेगी जिसमें चिकने वैदूर्य मणि की डंठल वाले बहुत से सुनहले कमल खिले होंगे, उसके जल में हंस इतने सुखी हैं कि पास ही मानसरोवर में नहीं जाना चाहते। इसके तीर पर क्रीड़ाशैल है, जिसकी नीलमणि की चोटी सोने के केलों से घिरी है। उस पर कुरबक के वृक्षों से घिरे माधवी-मंडप के पास ही एक तो चंचल पत्तों वाला अशोक का वृक्ष है और मौलश्री का पेड़ है। मेरे समान अशोक फूलने के मिस मेरी पत्नी के बाएँ पैर की ठोकर खाने के लिये तरस रहा है और दूसरा मौलश्री का पेड़ उसके मुँह से निकले हुए मदिरा के छींटे पाना चाहता है'।[६]

यक्ष का उपवन

ख—शाकुन्तल का छठा अंक प्रमदवन में अभिनीत है। इस समय वसन्त का समय होने से आम में मंजरी आ चुकी है। 'लताओं से घिरा हुआ एक ओर माधवी-मंडप है। फूलों से सजी हुई मणिशिला की सुन्दर चौकी माधवी कुंज

प्रमदवन

---

४. रघु० ; सं० १६ ; १९।
५. कुमा० ; सं० १३ ; ३३।
६. मेघ ; उत्त० ; १६–१८।

में पड़ी है। और उसी में मेघ-प्रतिच्छन्द भवन है'।[७] इससे अधिक यहाँ उपवन का कोई रूप सामने नहीं आया है। विक्रमोर्वशीय के इस दूसरे अंक में प्रमदवन का रूप अधिक व्यक्त है—'उद्यान की ओर से आता हुआ दक्षिण पवन जैसे राजा का स्वागत करता है। माधवी-लता को खींचता हुआ और कुन्दलता को नचाता हुआ, यह पवन मुझे ऐसा जान पड़ता है, मानों सब से प्रेम करनेवाला और सबके साथ प्रसन्न रहनेवाला कोई कामी हो। उद्यान के आम के पेड़ों के पीले पत्ते मलय-पवन ने झाड़ कर गिरा दिये हैं और कोंपलें फूट आई हैं। स्त्री के नख के समान लाल और साँवले रंग के छोर वाला कुरबक का यह फूल है। अपनी ललाई से सुन्दर लगनेवाला यह लाल अशोक का फूल है, ऐसा जान पड़ता है कि बस अब खिलने वाला ही है। कुछ-कुछ प्रकट पराग के कारण पीला सा लगने वाला आम का बौर फूट रहा है। यह वसन्त की शोभा बचपन और जवानी के बीच की है। यहाँ अतिमुक्त लता-मंडप के नीचे रतन जड़ी चौकी पर भौंरों के उड़ने से बिखरे हुए फूल लगते हैं मानों मंडप स्वागत कर रहे हों'।[८] मालविकाग्निमित्र के तीसरे अंक में प्रमदवन की भूमिका है, जिसमें मालविका अशोक को पुष्पित करने आती है। वसन्त के प्रभाव में यह उपवन भी है 'कुरबक के पराग में बसा हुआ और खिली हुई कोंपलों से जल की बूँदें उड़ा ले जानेवाला मलय का पवन मन को चाह से भर रहा है। मालविका ने कानों पर सजाने के लिये जो अशोक से पत्ते लिये तो उसके बदले में इसने अपने पत्तों जैसा चरण उसे भेंट में दे दिया। और अब कमल-कोमल बिछुओं से अलंकृत चरण से आदर पाकर भी यदि अशोक की कलियाँ न फूटी तो उसे सुन्दरी की लात से फूल

---

७. अभि० ; अं० ६।

८. विक्र० ; अं० २; ४—७।

उठने की चाह ही व्यर्थ उत्पन्न हुई'।[९]

सर, सरिता और सागर

६५—विक्रमोर्वशीय का समस्त चौथा अंक प्रकृति का विस्तार है। राजा पुरुरवा अपनी प्रेयसी उर्वशी के वियोग में कुमारवन में घूम रहा है, और प्रकृति वैसी ही बिखरी हुई है—'अपनी प्यारी सखी

सर

के बिछोह से अनमनी और घबराई हुई हंसी सरोवर के जल में अपनी सखी के लिये रो रही है जिसमें के कमल सूर्य्य की किरणों के छूने से खिल उठे हैं। चिन्ता से अनमनी और अपनी सखी से मिलने को अधीर हंसी खिले हुए कमलों से लुभावने लगनेवाले तालाब में बिहार कर रही है।'[१०] रघुवंश में कालिदास ने लंका से लौटते समय राम द्वारा विमान पर से पम्पा तथा पंचाप सरोवरों का वर्णन करवाया है। वाल्मीकि ने इनका विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किया है, यह हम देख चुके हैं। राम सीता का ध्यान आकर्षित करते हुए कहते हैं—'देखो, बहुत ऊँचे से देखने के कारण और बेंत के वनों से आच्छादित होने से पम्पा सरोवर का जल ठीक-ठीक दिखाई नहीं पड़ता, पर जल पर तैरते हुए सारस धुँधले से दिखाई पड़ जाते हैं। हे भामिनि, आगे यह शातकर्णी ऋषि का पंचापसर नाम का क्रीड़ा-सर चारों ओर श्यामल वनों से घिरा हुआ दूर से ऐसा दिखाई पड़ रहा है मानों बादलों के बीच में कुछ-कुछ दिखाई देने वाला चन्द्रमा हो'।[११] रघुवंश में अयोध्या की ध्वस्त बावली का संक्षिप्त रूप इस प्रकार है—'नगर की जिन बावलियों का जल पहले जल-क्रीड़ा करनेवाली सुन्दरियों के हाथ के थपेड़ों से मृदंग के समान गम्भीर शब्द करता था, वह आजकल जंगली भैंसों के सींगों की चोट से कान फोड़ता है'। उन्नीसवें सर्ग में राजा अग्निवर्ण की बावली में जल-क्रीड़ा

९. माल० ; अं० ३ ;९, १६, १७।
१०. विक्र० ; अं० ४ ; १, ४।
११. रघु० ; स० १३ ; ३०, ३८।

का उल्लेख मात्र है। कुमारसम्भव में नन्दन वन की बावली का रूप वैसा ही ध्वस्त है—'स्कन्ध आदि ने देखा देवताओं के विलास-घरों में बनी हुई बावलियों में से सोने के कमल उखाड़ डाले गये हैं। दिग्गजों के मद से उनका जल गँदला ही था, पन्नों की बड़ी-बड़ी पाटियाँ भी टूट-फूट गई हैं और चारों ओर घास छाई हुई है'।[१२]

§६—राजा रघु की दिग्विजय के प्रसंग में कावेरी, मुरला सिन्धु तथा लौहित्य नदियों का उल्लेख है। 'कावेरी के तट पर पहुँच कर सैनिक जी भर कर नदी में नहाये और जल को मथ डाला। हाथियों के नहाने से मद की कसैली गंध जल में आने लगी। इस प्रकार मथी हुई कावेरी के प्रति सरिता-पति सन्देहशील किया गया। मुरला नदी की ओर से आने वाले पवन के कारण उड़ी हुई केवड़े की रज ने सैनिकों के कवचों पर पड़ कर सुगन्धित चूर्ण का काम किया। सिन्धु नदी के तट पर पहुँच कर, थकावट उतारने के लिये उसकी रेती में लोट कर रघु के घोड़ों ने उठ-उठ कर अपने शरीर में लगी हुई केसर को हिला कर झाड़ दिया'।[१३] अज की विदर्भ-यात्रा में नर्मदा नदी का वर्णन है। (प्र० भा०)। विमान से राम सीता को सरयू दिखाते हैं—'आदरणीय महाराज दशरथ से वियुक्त मेरी माँ के समान यह सरयू अपने ठंढे पवन वाले तरंग रूपी हाथ उठा कर मानों इतने ऊँचे से ही मुझे गले लगाना चाहती हो'। कुश की जल-क्रीड़ा के प्रसंग में भी सरयू नदी का उल्लेख है, इसमें विलास-लीला अधिक है, दृश्य नहीं के बराबर—'स्नान करने से रानियों के अंगराग के शरीर से घुल कर पानी में मिल जाने से सरयू की धारा बादलों से भरी सन्ध्या जैसी रंग-बिरंगी जान पड़ती है। पानी में उतरती हुई रानियों के कपड़ों की रगड़ की ध्वनि से और बिछुओं के स्वर से सरयू के हंस

सरिता

---

१२. वही; स० १६; १३; कुमा०; स० १३; ३९, ४०।
१३. रघु०; स० ४; ४५, ५५, ६७।

मचलने लगे'।[१४] कुमारसम्भव में स्कन्ध की युद्ध-यात्रा के प्रसंग में आकाश-गंगा का वर्णन है—' नगाड़ों की ध्वनि सुन आकाश-गंगा में बाढ़ आ गई। दैत्यराज की सेना के हल्ला से आकाश-गंगा गूँज उठी और उसमें से उछली हुई सुन्दर कमलों वाली सहस्रों लहरों ने वहाँ के भवन धो डाले'। शत्रुघ्न अपनी विजय यात्रा में मथुरा में यमुना को देखते हैं—'जिसके जल प्रवाह में अनेक चकवे चहचहा रहे थे ऐसी यमुना पृथ्वी की सुनहरी वेणी के समान सुन्दर जान पड़ती थी'।[१५]

गंगा और संगम

क—लक्ष्मण सीता को वन में छोड़ने जा रहे हैं, उस समय मार्ग में गंगा पड़ती हैं—'गंगा में उठती हुई लहरें, बड़े भाई की आज्ञा से पतिव्रता सीता को वन में छोड़ने लिये जाते हुए लक्ष्मण से हाथ हिला हिला कर ऐसा न करो, ऐसा न करो कह रही थीं'। कुमारसम्भव में शंकर-वीर्य विसर्जन के प्रसंग में गंगा का पुनः प्रसंग आया है। जिस समय अग्नि गंगा के पास पहुंचे—'उस समय उठती हुई तरंगों से ऐसा जान पड़ा मानों दूर से आते हुए अग्नि को देख कर उनका काम साधने के लिये गंगा उन्हें दूर से ही बुला रही हों। वहाँ बहुत से राजहंस एक साथ मिलकर मतवाले बने हुए जो कल-कूजन कर रहे थे, उससे जान पड़ता था मानों गंगा कह रही है कि मैं सबका भला करती हूँ, सबका दुःख हर लेती हूँ। ऊँची उठती हुई तथा बढ़ती हुई दनवे तट पर आगे तरंगों से ऐसा जान पड़ता है मानों गंगा कुछ आगे बढ़ कर स्वागत करने चली आ रही हों'।[१६] कालिदास का प्रसिद्ध संगम-वर्णन राम द्वारा सीता से किया गया है। विमान से राम सीता को दिखाते हैं—'देखो, यमुना की साँवली लहरों से मिली हुई उजली लहरों वाली गंगा जी कैसी सुन्दर लग रही हैं।

---

१४. वही; स० १३; ६७: स० १६; ५८।

१५. कुमा०; स० १६; ११; १२: रघु०; स० १५; ३०।

१६. रघु०; स० १४; ५१। कुमा०; स० १०; ३२–३४।

कहीं तो ये चमकने वाली इन्द्रनील मणियों से गुँथी हुई माला जैसी लगती हैं और कहीं नील-श्वेत कमलों की मिली हुई माला जैसी। कहीं श्याम रंगों के हंसों से मिले हुए श्वेत राज-हंसों की पाँति के समान और कहीं श्वेत चंदन से चीती हुई पृथ्वी पर कालागुरु के चित्रण के समान लग रही हैं। कहीं-कहीं ये वृक्ष के नीचे की बीच-बीच में पत्तों की छाया पड़ने वाली चाँदनी के समान और कहीं नीलाकाश झाँकने वाले शरद् के उजले बादलों के समान जान पड़ती हैं। फिर कहीं काले सर्प लिपटे हुए भस्म रंजित शिव के शरीर के समान जान पड़ती हैं'।[१७]

ख—कालिदास ने मेघदूत में वेत्रवती निर्विन्ध्या, शिप्रा, गम्भीरा तथा गंगा इन पाँच नदियों का उल्लेख किया है। यक्ष मेघ से कहता है कि 'दशार्णव देश की विदिशा नाम की राजधानी में सुहावनी, मनभावनी, नृत्यशील लहरोंवाली वेत्रवती के तट पर, कटीली भौंहो वाली कामिनी के ओठों के रस के समान तुम उसके जल को पीना'। आगे निर्विन्ध्या नदी का वर्णन है (प्र० भा०)। अवन्ति की राजधानी के प्रसंग में शिप्रा का उल्लेख है (प्र० भा०)—'वहाँ जल-विहार करने वाली युवतियों के स्नान करने से महकती हुई गंधवती नदी की ओर से आने वाला पवन, शिव मन्दिर के उपवन को बार-बार झुला रहा होगा'। गम्भीरा नदी का उल्लेख पिछले भाग हो गया है। कनखल में मेघ को गंगा मिलेंगी—'वहाँ तुम्हें हिमालय की घाटियों से उतरती हुई गंगा जी का सफ़ेद फेन ऐसा जान पड़ेगा मानों वे फेन की हँसी के मिस पार्वती की खिल्ली उड़ाती हैं। (प्र० भा०)।[१८]

मेघदूत

§ ७—कालिदास को सागर वर्णन का एक ही अवसर मिला है। लंका से लौटते समय राम सीता को सागर दिखलाते हैं—'समुद्र नदियों

---

१७. रघु ; स० १३ ; ५४–५७।

१८. मेघ० ; पूर्व० ; २६, ३७, ५४।

का अधर पान करता है और अपने तरंग रूपी अधर उन्हें पिलाता भी है। यह देखो, ये बड़े-बड़े मगर मच्छ अपना मुँह खोल कर मछलियों के साथ समुद्र का जल पी जाते हैं और फिर मुँह बन्द करके अपने सिर के छेदों से पानी की जल-धाराओं को छोड़ते हैं। इन मगरमच्छों के सहसा उठने से फटा हुआ समुद्र का फेन तो देखो, इनके गालों पर क्षण भर लगा हुआ फेन ऐसा जान पड़ता है मानों इनके कानों पर चवर टँगे हों। वे जो तट पर बड़ी-बड़ी लहरों जैसे दिखाई दे रहे हैं ये साँप हैं जो पानी के बाहर निकल आये हैं, पर जब सूर्य की किरणें उनकी मणि पर पड़ती हैं तब उनकी चमक से वे जाने जाते हैं। देखो, लहरों की झोंक में तुम्हारे अधरों के समान लाल लाल मूँगे की चट्टान से टकरा जाने से जीवित शंखों के मुँह छिद गये हैं और उस पीड़ा से वे कठिनाई से इधर उधर चल पा रहे हैं। काले घन समुद्र का पानी लेने आए हैं और समुद्र की भँवर के साथ-साथ अति तीव्र गति से चक्कर काट रहे हैं और लगता है समुद्र को मन्दराचल फिर मथ रहा है। और देखो, दूर पहिए की हाल के समान बहुत पतला और ताड़-तमाल आदि वृक्षों के कारण नीला दिखाई देनेवाला समुद्र-तट ऐसा जान पड़ता है जैसे चक्र की धार पर मुर्चा जम गया हो'। 'हम विमान की तीव्र गति से क्षण भर में समुद्र के उस तट पर पहुँच गये हैं जहाँ बालू पर सीपों के फैल जाने से मोती बिखरे पड़े हैं और फलों के भार से सुपारी के पेड़ झुके खड़े हैं। अब किंचित पीछे तो देखो, पास के जंगलों से भरी भूमि जान पड़ती है अभी समुद्र से अचानक निकल पड़ी है'।[१९]

सागर

पर्वत प्रदेश

§ ८—यक्ष ने 'रामगिरि पर घिरते हुए बादलों को गिरि की चोटी पर लिपटे हुए देखा। उनसे वह ऐसा जान पड़ रहा था मानों कोई

---

१९. रघु० ; स० १३ ; ९–१५, १७, १८।

हाथी अपने माथे की टक्कर से मिट्टी के टीले को ढहाने का खेल कर रहा हो'। वह मेघ से आगे कह रहा है—'हे मेघ, जिस शिखर पर तुम लिपटे हुए हो, इसकी ढाल पर भगवान् राम की जगत् पूज्य पैरों की छाप पड़ी है; और जब-जब तुम इससे मिलने आते हो, तब-तब यह भी बहुत दिनों पर मिलने के कारण तुम्हारे साथ अपने गरम आंसू बहा कर अपना प्रेम व्यक्त करता है। इसलिये अपने इस मित्र शिखर से तुम विदा ले लो'। अनन्तर 'हे मेघ, तुम पके हुए फलों से लदे आम के वृक्षों से घिरे हुए पीले से आम्रकूट पर्वत पहुँचोगे। थके हुए तुमको वह प्रशंसनीय पर्वत अपनी चोटी पर ठहरावेगा और तुम भी जल बरसा कर उसके जंगलों में लगी हुई गर्मी की आग बुझा देना। आम्रकूट के वन के स्त्रियों के विचरने के कुंजों में कुछ समय ठहरकर फिर आगे चल देना। आगे रेवा की अनेक धाराओं से भभूत से चीते हुए हाथी के समान विन्ध्याचल का ऊँचा-नीचा पठार मिलेगा'।[२१] दशार्णव देश की राजधानी विदिशा में पहुँचने पर 'हे मेघ, तुम नीच नामक पहाड़ी पर थकावट मिटाने के लिये उतर जाना। वहाँ फूले हुए कदम्ब के वृक्षों को देख कर ऐसा जान पड़ेगा मानों तुमसे भेंट करने के कारण उसके रोम-रोम फरफरा उठे हों'।[२२] देवगिरि का उल्लेख प्रथम भाग में हो चुका है। हिमालय तथा कैलास के अतिरिक्त जिनका वर्णन बाद में किया जायगा मेघदूत में यक्ष की वाटिका के क्रीड़ा-शैल का उल्लेख है—'उस बावली के तीर पर एक बनावटी क्रीड़ा-शैल है जिसकी चोटी नीलमणि की बनी है और जो सोने के केलों से घिरा है। उस पर कुरबक के वृक्षों से घिरे हुए माधवी-मंडप के पास एक चंचल पत्तों वाला अशोक का वृक्ष है और दूसरी ओर मौलश्री का पेड़ है'।[२३]

मेघ के मार्ग में

---

२०. मेघ० ; पूर्व० ; २, १२।
२१. वही ; वही ; १८–२०।
२२. वही ; वही ; २७।
२३. वही ; उत्त० ; १७, १८।

क—हिमालय-वर्णन में कवि ने अपनी पूर्ण सौन्दर्य्य-सृष्टि का परिचय दिया है। इसमें यथार्थ और कल्पना का विचित्र सौन्दर्य्य-लोक कवि ने उत्पन्न किया है। मेघदूत में यक्ष हिमालय का विस्तार से वर्णन करता है—'आगे चल कर तुम हिमालय की उस हिम से ढकी हुई चोटी पर बैठ कर थकावट मिटाना जहाँ से गंगा निकलती है और जिसकी शिलाएँ कस्तूरी हरिणों के निरन्तर बैठने से सुगन्धित हो गई हैं। उस समय चोटी पर बैठे हुए मेघ, तुम ऐसे जान पड़ोगे जैसे महादेव के धवल साँड़ के सींगों पर मिट्टी के ढीलों पर टक्कर मारने से कीचड़ जम गया हो। वहाँ यदि अंधड़ चलने पर देवदार के वृक्षों के आपस में रगड़ने से आग लग जाय और उसके उड़ते हुए अंगारे सुरागायों के लम्बे लम्बे रोएँ जलाने लगें तो तुम मूसलाधार पानी बरसा कर उसे बुझा देना। देखो, हिमवान् पर जब शरभ नाम के हरिण तुम्हारे दूर होने पर भी, बिगड़ कर हाथ पैर तुड़वाने के लिये तुम पर सींग चलाने के लिये मचलें और झपटें, तब तुम उनके ऊपर धुआँधार ओले बरसाकर उन्हें तितर बितर कर देना। हिमालय पर्वत की एक शिला पर सिद्धों द्वारा सदा पूजित शिव के चरणों की छाप है। हे मेघ, वहाँ पोले बाँसों के वायु से भरने से निकलते हुए मीठे स्वरों के साथ स्वर मिलाकर जब किन्नरों की स्त्रियाँ त्रिपुर-विजय का गीत गाती हों, तब उस समय तुम अपनी गरज से पहाड़ों की खोहों को गुंजाकर मृदंग का काम कर शिव के संगीत के अंगों की पूर्ति करना'। 'वहाँ से क्रौंचरंध्र होकर तुम कैलास पर्वत पर पहुँच जाओगे जिसकी कुमुद जैसी उजली चोटियाँ आकाश में इस प्रकार फैली हैं मानों शिवजी का अट्टहास एकत्र है! मेघ, तुम घुटे आँजन जैसे श्याम हो और कैलास हाथीदाँत जैसा गोरा, इसलिये तुम कैलास पर बलराम के कंधों पर पड़े हुए वस्त्र के समान मनोहर लगोगे'।[२४]

हिमालय और कैलास

---

२४. वही; पूर्व०; ५६–६३।

कुमारसम्भव के प्रारम्भ में हिमालय का वर्णन पीठिका के रूप में कवि ने किया है—'पूर्व से पश्चिम के समुद्र तक फैला हुआ पृथ्वी की माप-दंड के समान विशाल यह पर्वत है। असंख्य रत्नों को उत्पन्न करनेवाले हिमालय की शोभा हिम भी से कम नहीं हुई। (प्र० भा०)। हाथियों को मारकर जाते हुए सिंहों के रक्त से लाल पंजों की छाप हिम से धुल जाती है, पर उनके नखों से गिरी हुई गज मुक्ताओं को देखकर किरात उनका अनुसरण करते हैं। इस पर उत्पन्न होनेवाले भोज-पत्रों पर लिखे हुए अक्षर हाथी के सूँड़ पर बनी हुई लाल बुँदकियों जैसे दिखाई पड़ते हैं। प्र० भा०। जब यहाँ के हाथी अपनी कनपटी खुजलाने के लिये देवदार के पेड़ों से रगड़ते हैं तब उनसे निकलते हुए सुगन्धित दूध से पर्वत की सभी चोटियाँ गमक जाती हैं। यहाँ की गुफाओं में रात में चमकने वाली जड़ी-बूटियाँ गुफाओं में किरातों की काम-क्रीड़ा में बिना तेल के दीपक का काम करती हैं। वहाँ के हिम-मार्गों पर किन्नरियों की उँगलियाँ और एड़ियाँ ऐंठ जाती हैं। हिमालय की लम्बी गुफाओं में दिन में भी अँधेरा छाया रहता है। ऐसा लगता है मानों अँधेरा भी दिन में डरकर उल्लू के समान गहरी गुफाओं में जाकर छिप जाता है। जिन हरिणियों की पूँछों के चँवर बनते हैं वे चमरी हरिणियाँ चन्द्रमा के समान धौली अपनी पूँछों से पर्वत-राज पर चँवर डुलाती जान पड़ती हैं! गंगाजी की फुहारों से लदा हुआ बार-बार देवदारु के वृक्ष को कँपाने वाला यहाँ का शीतल मन्द-सुगन्ध पवन किरातों की थकावट, उनकी कमर में बँधे हुए मोर पंखों को फरफराता हुआ मिटाता है, जो हिमालय पर मृगों की खोज करते घूमते हैं। उसकी ऊँची चोटियों के सरोवरों में खिलने वाले कमलों को स्वयं सप्तर्षिगण पूजा के लिये आकर तोड़ ले जाते हैं। बचे हुए कमलों को नीचे उदय होनेवाला सूर्य अपनी किरणों को ऊँची करके खिलाता है'।[२५] रघुवंश में रघु

---

२५. कुमा० ; १ ; १, ३, ६, ७, ९–१३, १५, १६।

की विजय यात्रा के प्रसंग में हिमालय का वर्णन है। प्रारम्भ में भी हिमालय की उपत्यका का वर्णन नन्दनी के चराने के प्रसंग में हुआ है (प्र० भा०)। कुमारसम्भव में कैलास का वर्णन शंकर-पार्वती के लीला-प्रसंग में हुआ है। चलते-चलते भगवान् शंकर कैलास पर पहुँचते हैं—'और यह कैलास शोभा में शंकर के समान ही है। वह आकाश में चारों ओर व्याप्त है, उसमें चन्द्रमा से शोभित शंकर का निवास है। इस पर्वत पर विभूति (रत्नादि) पाई जाती है। जब इस स्फटिक के बने हुए कैलास पर चन्द्रमा की परछाईं पड़ती है, तब चन्द्रमा के कलंक की छाया तो दिखाई देती है पर चन्द्र की छाया उसी में मिल जाती है। वह कलंक की छाया ऐसी जान पड़ती है मानों पार्वती ने कस्तूरी पीस कर उसको पिंडी बनाकर वहाँ छोप दी हो। पर्वत की भीतों पर अपने अंगों की परछाईं देखकर मतवाले हाथी उसे दूसरा मस्त हाथी मानकर क्रोध से भर अपने दाँतों से उनपर करारी टक्करें लेने लगते हैं। यहाँ के स्फटिक के भवनों पर जब तारों की परछाईं पड़ती है तो सिद्धों की स्त्रियों को संभोग के समय छूट कर गिरे हुए मोतियों के दाने का धोखा होता है। अप्सराओं के दर्पण के समान सुन्दर लगनेवाला चन्द्रमा जब इस कैलास की चोटी पर आ पहुँचता है तब यह उस हिमालय का अनमोल चूड़ामणि सा लगने लगता है जिसपर शंकर निवास करते हैं'।[२६]

§ १०—शंकर-पार्वती लीला-प्रसंग में मलय पर्वत का उल्लेख आया है (प्र० भा०)। रघुवंश में सुनन्दा द्वारा भी मलय पर्वत की घाटियों का संकेत किया गया है। कुमारसम्भव के आठवें सर्ग में गन्धमादन पर्वत का चित्रण है, पर वह सन्ध्या के अन्तर्गत आता है। इसी के चौदहवें सर्ग में स्कन्द की सेना की यात्रा के वर्णन-प्रसंग में सुमेरु पर्वत का विस्तृत वर्णन इस प्रकार है—'रथ खींचने वाले बढ़िया घोड़ों के खुरों से पिस कर सुमेरु की

अन्य पर्वत

२६. कुमा० ; सं० ९ ; ३९; ४१–४४।

तलहटी से उठी हुई सुनहली धूल हरहराते पवन के सहारे सभी दिशाओं में फैलकर चमक उठी। पवन की सहायता से सेना के ऊपर-नीचे, आगे-पीछे और चारों ओर फैली हुई वह सुनहली धूल सूर्य की सुनहली धूप से भी अधिक शोभित जान पड़ती थी। सेना के चलने से उड़ी हुई वह धूल सभी दिशाओं और आकाश में भरकर ऐसी सुन्दर दिखाई पड़ने लगी मानो सन्ध्या हुए बिना ही सुनहले बादलों के झुंड आकाश में घिर आये हैं। सेना के हाथियों को वहाँ की सुनहली धरती में अपनी प्रतिछाया देखकर यह भ्रम हुआ कि ये पाताल से निकले हुए बड़े-बड़े हाथी हैं और वे उन परछाहियों पर अपने-अपने बड़े-बड़े दाँतों से टक्कर लेने लगे। सुन्दर सिन्दूर से रंजित हाथियों को सुमेरु गिरि की चमकदार सोने की धरती पर परछाईं ठीक-ठीक नहीं पड़ती थी क्योंकि दोनों का रंग समान था। इस प्रकार देवराज की सेना अपने शोर से सुमेरु की गुफाओं को गुँजाती हुई वेग से नीचे उतरी। पर इस समस्त शोर और हल्ला से सुमेरु पर्वत की लंबी-लंबी गुफाओं में सोने वाले सिंहों ने अपनी नींद के सपनों का सुख नहीं त्यागा। गुफाओं में गूँजते हुए नगाड़ों की गंभीर और भयंकर ध्वनि और बड़े-बड़े रथों के पहियों की घड़घड़ाहट गुफाओं से टकरा कर दूनी होकर गूँज रही थी, फिर भी वहाँ सिंह निश्चल रहे और उन्होंने सिद्ध कर दिया कि हम मृगों के सचमुच राजा हैं। वहाँ जितने हरिण थे वे सब तो इस डर से चौकड़ी भरकर दूर भाग गये थे कहीं सेना हमें मार न डाले, पर सिंह गुफाओं के बाहर निकल-निकल कर खड़े हो गये'।[२७] इस वर्णन में पर्वत का रूप प्रत्यक्ष नहीं होता, वरन् केवल एक स्थिति का चित्र भर है।

क—विमान द्वारा लंका से वापस आते समय राम सीता को माल्यवान तथा चित्रकूट पर्वत भी दिखाते हैं। राम संकेत करते हुए कहते हैं—'यह जो आगे माल्यवान पर्वत की ऊँची चोटी दिखाई देती है,

---

२७. कुमा ; स० २४ ; २०—२९।

यहाँ जब बादलों ने नया जल बरसाना आरम्भ किया, उस समय तुम्हारे वियोग में मेरी आँखें भी बरसने लगी थीं। इस पर उस समय वर्षा के कारण पोखरों में से उठी हुई सोंधी गन्ध, अधखिली मंजरियों वाले कदम्ब के फूल और मोरों के मनोहर स्वर तुम्हारे बिना मुझे बहुत अखरे। जब वहाँ बादल गरजते थे और गुफाओं में उसकी प्रतिध्वनि होती थी, तब तुम्हारे स्मरण से दिन बहुत कष्ट में बीतते थे'।[२८] इसके वर्णन में स्मृति का विषाद छिपा हुआ है। इसी सर्ग के श्लो० ४७ में चित्रकूट का उल्लेख राम ने किया है (प्र० भा०)।

माल्यवान तथा चित्रकूट

आश्रम-जीवन

§ ११—रघुवंश के प्रथम सर्ग में वशिष्ठ के आश्रम का वर्णन है—'वहाँ पहुँच कर वे (राजा-रानी) देखते हैं कि सन्ध्या के अग्निहोत्र के लिये बहुत से तपस्वी हाथ में समिधा, कुशा और फल लेकर वनों से आश्रम लौट रहे हैं। प्र० भा०। धूप में सुखाने के लिये जो तिन्नी का अन्न फैलाया हुआ था, वह दिन छिपते ही समेट कर कुटिया के आँगन में ढेर लगाया गया था और वहीं बहुत से हरिण सुख से बैठ कर जुगाली कर रहे थे। हवन-सामग्री की गंध से भरे हुए अग्निहोत्र का धुआँ पवन से चारों ओर फैल गया था और उस धुएँ ने आश्रम की ओर आते हुए इन अतिथियों को भी पवित्र कर दिया'।[२९] आश्रम जीवन में कालिदास ने प्रकृति को बहुत ही कोमल आत्मीय सम्बंध में उपस्थित किया है। शाकुंतल के प्रारम्भिक अंकों का सारा वातावरण आश्रमजीवन की इसी भावना से ओत-प्रोत है। शकुंतला पादपों को सींचती हुई सामने आती है, और वह प्रकृति से अपनी आत्मीयता स्थापित करती हुई उपस्थित हुई है—

शाकुन्तल में

२८. रघु० ; स० १३ ; २६—२८।
२९. रघु० ; स० १ ; ४९, ५२, ५३।

'सखी, यह केसर का पेड़ पवन के झोंकों से हिलती हुई पत्तियों की उँगलियों से मुझे बुला रहा है। जाऊँ इसका जी रख लूँ'। केसर के के नीचे शकुंतला 'जान पड़ती है जैसे कोई लता लपटी हो'। उसी समय अनसूया शकुंतला का ध्यान 'उस नई चमेली की ओर आकर्षित करती है जिसका नाम उसने वनज्योत्स्ना रख छोड़ा था'। पर शकुंतला अपने को भूल सकती है, अपनी इन प्रकृति सहचरियों को नहीं। वह लता के प्रति अपना स्नेह इस प्रकार व्यक्त करती है—'सखी, सचमुच इस लता और वृक्ष का मेल बड़े अच्छे दिनों में हुआ है। इधर यह वनज्योत्स्ना खिले हुए फूल लेकर नवयौवना हुई है, उधर फल से लदी हुई शाखाओं वाला आम का वृक्ष भी उभार पर आया हुआ है'।[३०] इसके बाद चतुर्थ अंक में आश्रम में प्रकृति और जीवन की आत्मीयता का चित्र फिर प्रगाढ़ रंगों में उपस्थित हुआ है। इस अवसर पर 'फूल-पत्ते माँगने पर वृक्षों ने शुभ मांगलिक वस्त्र दिये, किसी ने पैरों में लगाने की महावर दी, और वनदेवियों ने कोंपलों से होड़ करके वृक्षों से कलाई तक अपने हाथ निकाल-निकाल कर अनेक आभूषण प्रदान किये'। कण्व के इन वचनों से प्रकृति के समीप इसी निकट सहानुभूति की स्थापना है—'हे वनदेवताओं से भरे हुए तपोवन के वृक्षो! जो पहले तुम्हें पिलाए बिना पानी नहीं पीती थी, जो आभूषणों के लिये तुम्हारे कोमल पत्तों में स्नेह के कारण हाथ नहीं लगाती थी, जो तुम्हारी नई कलियों को देखकर फूली नहीं समाती थी, वही शकुंतला आज अपने पति के घर जा रही है। तुम सब प्रेम से उसे विदा दो। (कूकती हुई कोकिल की ओर संकेत करके) शकुंतला के वन के साथी वृक्षों ने कोयल के शब्दों में उसे जाने की आज्ञा दे दी है'। विदा के समय प्रकृति दुखित भी है (प्रा० भा०)। शकुंतला अपनी सखियों के समान प्रकृति-सहचरी से भेंटती-मिलती है। शकुंतला की

---

३०. अभि० ; प्रथम अंक।

इस उक्ति में सघन स्नेह झंकृत है—'तात, आश्रम में चारों ओर गर्भ के भार से अलसाती हुई चलनेवाली इस हरिणी के जब सुख से बच्चा हो जाय, तब किसी के हाथ यह प्यारा समाचार मेरे पास भेजवा दीजिएगा'। कैसी आत्मीय चाहना है। आगे एक सहज मर्मग्राही चित्र है—'वत्से! कुशा के काँटे से छिदे हुए जिसके मुँह को अच्छा करने के लिये तू उस पर हिंगोर का तेल लगाया करती थी, वही तेरी मुट्ठी के साँवे के दानों पर पला हुआ तेरा पुत्र के समान प्यारा मृग छौना रोके खड़ा है।' शंकुतला की इस सान्त्वना में और भी मार्मिकता है—'वत्स, मुझ साथ छोड़कर जानेवाली के पीछे-पीछे तू कहाँ जा रहा है? तेरी माँ जब तुझे जन्म देकर मर गई थी उस समय मैंने तुझे पाल-पोस कर बड़ा किया था। अब पिताजी तेरी देख-भाल रखेंगे, जा लौट जा।'[३१] इस प्रकार यह प्रसंग मानवीय भावशीलता की दृष्टि से ही नहीं वरन् प्रकृति और जीवन के तादात्म्य की दृष्टि से भी अद्वितीय है।

आखेट-प्रसंग

§ १२—आखेट-प्रसंग में वास्तव में वन का वर्णन होता है। वन की घटना-स्थिति का यह एक रूप है, इस कारण इसको प्रकृति-वर्णन के अन्तर्गत स्वीकार किया गया है। दशरथ की मृगया का चित्र रघुवंश में उपस्थित हुआ है—'तब राजा उस वन में पहुँचे जहाँ पहले से ही जालों को और शिकारी कुत्तों को लेकर उनके सेवक पहुँच चुके थे। वहाँ अग्नि और चोरों का भय नहीं था, तथा घोड़ों के लिये पृथ्वी पक्की थी। वहाँ अनेक सरोवर थे जिनके चारों ओर बहुत से हरिण, पक्षी और बनैली गायें घूमा करती थीं। राजा ने अपना धनुष उठाया जिसकी टंकार से सिंह गरज उठे। उस समय सोने के रंग की पीली बिजली की डोरी वाला इन्द्रधनुष धारण किये हुए भादों-मास के समान राजा विदित हुए। उन्होंने देखा कि आगे एक

दशरथ की मृगया

---

३१. अभि० ; अं० ४ ; ४, ८, ९, १३।

हरिणों का झुंड जा रहा है जिनमें बहुत सी हरिणियाँ भी हैं जो कुशा चबाते चबाते अपनी मां के स्तनों से दूध पीने के लिये बीच में खड़े होने वाले छौनों के कारण रुक-रुक जाती हैं। इस झुंड के आगे एक गर्वीला काला हरिण भी चला जा रहा था। राजा ने ज्यों ही अपने वेगगामी घोड़े पर चढ़कर और अपने तूणीर से बाण निकाल कर उनका पीछा किया कि वह झुंड तितर-बितर हो गया और उनकी घबराई हुई आँखों से भरा हुआ सारा वन ऐसा लगा मानों पवन ने नीले कमलों की पंखुड़ियाँ लाकर वहाँ बिखेर दी हों। प्र० भा०। वे हरिणों पर बाण चलाना चाहते थे और उन्होंने बाण की चुटकी कान तक खींच भी ली थी, पर जब उन्होंने उन हरिणों की डरी हुई आँखों को देखा तो उन्हें अपनी युवती प्रियतमा के चंचल नेत्रों का स्मरण हो आया और उनके हाथ ढीले पड़ गये। प्र० भा०। ज्यों ही उन्होंने घोड़े पर चढ़े हुए अपने शरीर को आगे झुकाकर सुअरों पर बाण चलाए त्यों ही वे भी अपने बाल खड़े कर राजा पर झपटे। किन्तु उन्होंने तत्काल ऐसे कस कर बाण मारे कि सुअरों को पता भी नहीं चला कि कब वे उन वृक्षों में बाण के साथ चिपक गये जिनके सहारे वे खड़े थे। इतने ही में उन्होंने देखा कि एक जंगली भैंसा उनकी ओर झपटा आ रहा है। उन्होंने उसकी आँख में एक बाण मारा कि वह भैंसे के शरीर में से इतनी फुर्ती से पार हो गया कि बाण के पंख में तनिक सा भी रक्त नहीं लगा और विशेषता यह थी कि बाण तो देर से गिरा किन्तु भैंसा पहले ही पृथ्वी पर गिर पड़ा। इतने में उन्हें बारह-सिगों का झुंड दिखाई दिया। राजा ने अर्द्धचन्द्र बाणों से उनके सींग काट कर उनके सिर का बोझ हलका कर दिया। जब सिंह अपनी माँदों में से निकल कर उनकी ओर झपटे तब निर्भय राजा दशरथ ने इतनी शीघ्रता से उन पर बाण चलाए कि उन सिंहों के खुले हुए मुँह उनके बाणों के तूणीर बन गये और वे ऐसे जान पड़ने लगे जैसे आँधी से उखड़े हुए फूले आसन के पेड़ की आगे की टहनियाँ हों। झाड़ियों में

लेटे हुए सिंहों को मारने के लिये पहले उन्होंने आँधी के समान भयंकर धनुष की टंकार का शब्द किया। उसे सुन कर सिंह भड़क उठे। सिंह जीवों के राजा कहलाते हैं, इस बात से राजा को चिढ़ थी। उन्होंने हाथियों से बैर रखने वाले उन सिंहों को मार डाला जिनके नोकीले पंजों में अब तक गज-मुक्ताएँ उलझी थीं। इस प्रकार ककुत्स्थ-वंशी राजा दशरथ ने मानों अपने बाणों से उन हाथियों का ऋण चुका लिया जो युद्ध में उनकी सेना में काम आ रहे थे। पामर मृगों के चारों ओर अपना घोड़ा दौड़ाते हुए भाले की नोक वाले बाण बरसा कर उन्होंने उन मृगों की चँवर वाली पूँछें काट डालीं। इससे उन्हें ऐसा सन्तोष हुआ मानों चँवरधारी राजाओं के चँवर ही उन्होंने छीन लिये हों। कभी-कभी उनके पास से सुन्दर चमकीली पूँछों वाले मोर उड़ जाते थे, पर वे उन पर बाण नहीं चलाते थे। उन्हें देखकर राजा को रंग-बिरंगी मालाओं से गुँथे हुए और संभोग के कारण खुले हुए अपनी प्रिया के केशों का स्मरण हो आता था। कठिन परिश्रम से उनके मुँह पर जो पसीना छा गया था उसे वन के उस वायु ने सुखा दिया जो जल के कणों से शीतल होकर पत्तों और कलियों को गिराता चल रहा था'।[३२] कालिदास का यह वर्णन सजीव और गतिशील है।

काल-स्थिति

§ १३—अज को जगाते समय सूत-पुत्रों द्वारा प्रातःकाल का उल्लेख किया गया है—'हे परम बुद्धिमान जागो! देखो, तुम्हारी सौन्दर्य-लक्ष्मी ने जब यह देखा कि तुम निद्रा-रूपी दूसरी स्त्री के वश में हो तब वह तुम्हें चाहते रहने पर भी रुष्ट होकर तुम्हारे मुख के समान चन्द्रमा के पास चली गई थी, पर अब चन्द्रमा भी मलीन हो गया जान वह बेचारी निराधार हो गई है। अब तुम जाग कर उसे सँभालो। इस समय तुम्हारी बन्द आँखों में पुतलियाँ

प्रातःकाल

३२. रघु० ; सं० ९ ; ५३–५६, ५८, ६०–३८।

घूम रही हैं और तालों में कमलों के भीतर भौरे गूँज रहे हैं। इस समय उठो तो सूर्य्य के निकलने पर तुम्हारे नेत्र और कमल एक साथ खिल कर समान सुन्दर लगने लगें। प्र० भा०। तुम्हारे सेना के हाथी, दोनों ओर करवटें बदल कर खनखनाती हुई साँकलों को खींचते हुए उठ खड़े हुए हैं। लाल सूर्य्य-किरणों से उनके दाँत ऐसे जान पड़ते हैं मानो वे अभी गेरू के पहाड़ को खोद कर चले आ रहे हों। हे कमलनेत्र, पट-मंडपों में बँधे हुए तुम्हारे घोड़े नींद छोड़ कर सेंधा नमक के उन टुकड़ों को अपने मुंह की भाप से मैला कर रहे हैं जो उनके चाटने के लिये उनके आगे रखे हुए हैं। रात की सजावट के फूल मुरझा कर टूक टूक हो गये हैं। प्रकाश हो जाने से दीपक का प्रकाश भी अपनी लौ से अब बाहर नहीं जाता और पींजरे में बैठा हुआ मीठी बोली बोलने वाला तुम्हारा तोता भी हमारी बातों को ही दुहरा रहा है'।[33] इस वर्णन में प्रकृति का दृश्य सामने नहीं आता है वरन् काल की व्यापार-योजना को उपस्थित किया गया है। मध्याह्न का एक संक्षिप्त चित्र मालविकाग्नि मित्र में आया है (प्र० भा०)।

सन्ध्याकाल

§१४—कुमारसम्भव के आठवें सर्ग में—'शंकर पार्वती के साथ गन्धमादन पर्वत पर पहुँच कर सोने की चट्टान पर बैठते हैं। उस समय सूर्य्य का तेज इतना कम हो गया था कि उसकी ओर भली भाँति देखा जा सकता था'। उस काल को देख कर शंकर पार्वती से उसका वर्णन करते हैं—'देखो प्रिय, इस समय सूर्य्य ऐसा जान पड़ता है मानों यह तुम्हारी तिहाई लाल आँखों के समान सुन्दर कमलों की शोभा को लजा कर उसी प्रकार दिन को समेट रहा है जैसे प्रलय के समय ब्रह्मा सारे संसार को समेट लेते हैं। प्र० भा०। पुष्पित कमलों की केसर चोंच में उठा कर ये चकवी-चकवे एक दूसरे के कंठ से अलग होकर चिल्लाने लगे हैं और

---

३३. वही; स० ५; ६६–६८, ७२–७४

सरोवर का छोटा पाट भी इनके लिये बहुत विस्तृत हो गया है। सल्लकी के वृक्षों के टूटने से जहाँ गंध फैल गई है और जहाँ हाथी दिन में रहा करते थे उन स्थानों को अगले दिन तक के लिये छोड़ कर ये हाथी उस ताल की ओर बढ़े चले जा रहे हैं, जहाँ कमलों में भौंरे बन्द पड़े हैं। प्र० भा०। सरोवरों को मथ कर उनके गाढ़े कीचड़ में लोट कर दिन भर की गर्मी बिताने वाले ये बड़े-बड़े दाँत वाले लंबे-चौड़े जंगली सुअर निकले चले आ रहे हैं, इनके दाँत ऐसे दिखाई देते हैं मानों इनके जबड़ों में खाए हुए कमलों के डंठल अटके हुए हैं। प्र० भा०। हे प्रिये, बहुत दूर पर सूर्य्य की हल्की सी झलक गोचर होने से पश्चिम दिशा उस कन्या के समान जान पड़ती है जिसने अपने माथे पर केसर से भरे बन्धुजीव के फूल का तिलक लगाया हो। किरणों की गर्मी पी जानेवाले और सहस्रों के झुंड में रहनेवाले बालखिल्य आदि ऋषि इस समय सूर्य्य के रथ के घोड़ों को भला लगने वाला सामवेद गाकर उस सूर्य्य की स्तुति कर रहे हैं जिन्होंने अपना तेज अग्नि को सौंप दिया है। दिन को समुद्र में डुबो कर सूर्य्य अस्ताचल की ओर अपने उन घोड़ों को लिये चले जा रहे हैं जिनके नीचे की ओर उतरने के कारण सिर झुके हुए हैं, जिनके कानों की चौरियाँ रह रह कर आँखों पर झूल पड़ती हैं और जिनके केसर कंधे पर रखे हुए जुए से लग-लग कर छितरा गये हैं। सूर्य्य के छिपते ही सारा आकाश सोया सा जान पड़ता है। तेजस्वियों की बात ऐसी ही होती है कि वे जहाँ निकलते हैं वहाँ प्रकाश हो जाता है और जहाँ वे छिपते हैं वहाँ अँधेरा छा जाता है। प्र० भ०'।[३४] सन्ध्या करने के बाद फिर शंकर अन्धकार का वर्णन करते हैं—। 'प्र० भ०। अँधेरा फैल जाने से न तो इस समय ऊपर दिखाई दे रहा है न नीचे, न आस पास, न आगे पीछे। इस रात के समय सारा संसार इस प्रकार अँधेरे में घिर गया है जैसे गर्भ झिल्ली में

---

३४. कुमा० : स० ८; २९, ३०, ३२, ३३, ३५, ४०–४३।

लिपटा हुआ बालक पड़ा हो। इस समय अँधेरे में, उजले और मैले, खड़े और चलते, सीधे और टेढ़े सब एक समान हो गये हैं। ऐसे दुष्टों के शासन को धिक्कार है'।[३५]

§ १५—इसी प्रसंग में चन्द्रोदय तथा ज्योत्स्ना का वर्णन भी शंकर पार्वती से करते हैं—प्र० भा०। 'देखो, यह उदय होता हुआ चन्द्रमा इस समय पके हुए प्रियंगु के फल के समान लाल दिखाई पड़ रहा है। इस समय आकाश का चन्द्रमा तथा सर में पड़ी हुई उसकी छाया दोनों ऐसे जान पड़ते हैं मानो रात होने से चकवी-चकवे का जोड़ा बिछुड़ गया हो।। प्र० भा०। इस समय कमल रूपी नेत्र मूँद कर बैठी हुई रात रूपी नायिका के मुँह पर फैले हुए अँधेरे रूपी बालों को अपनी किरण रूपी अँगुलियों से हटा कर मानों चन्द्रमा उसका मुँह चूम रहा है। हे पार्वती, उठे हुए चन्द्र की किरणों से घना अँधेरा मिट जाने पर आकाश ऐसा जान पड़ रहा है मानो हाथियों की जल-क्रीड़ा से गँदला मानसरोवर निर्मल हो चला है। अब चन्द्रमा का मण्डल लालिमा छोड़ कर धीरे-धीरे उज्ज्वल होने लगा है। जो निर्मल स्वभाव वाले होते हैं उनमें समय के फेर से आया हुआ दोष अधिक दिनों तक टिक नहीं पाता। पर्वत की चोटियों पर चाँदनी फैली है, पर घाटियों और खड्डों में अभी अँधेरा बना हुआ है। ब्रह्मा ने गुण-दोष की चाल ही ऐसी बनाई है कि गुण तो ऊँचे पर रहता है और दोष नीचे को चला जाता है। चन्द्रमा की किरण पड़ने से इस पर्वत की चन्द्रकान्त-मणि की चट्टानों से जल की बूँदें टपक रही हैं। और पर्वत के ढाल पर वृक्षों की छाया में सोए हुए मोर, उन बूँदों को वर्षा की बूँदें समझ कर बिना वर्षा आये जाग पड़े हैं। हे सुन्दरी! देखो, इस समय कल्पवृक्ष की फुनगियों पर चमकती हुई किरणों को देख कर जान पड़ता है मानों चन्द्रमा अपनी किरणों से कल्पवृक्ष में चन्द्रहार बनाने आ गया है।

चन्द्रोदय

---

३५. वही; वही; ५५, ५६, ५७।

प्र० भा० । हे चण्डिके, कल्पवृक्ष में लटके हुए कपड़ों और चन्द्रमा की निर्मल किरणों के एक समान होने से उनमें धोखा हो जाता है, पर पवन के चलने पर जब कपड़े हिलने लगते हैं तब पता चलता है कि यह कपड़ा ही है। पत्तों के बीच से छन कर धरती पर पड़नेवाली चाँदनी ऐसी सुन्दर और सुहावनी जान पड़ती है जैसे वृक्षों से झड़े हुए फूल हों। यदि तुमको रुचिकर हो तो फूलों के समान दिखाई देने वाले इन चाँदनी के फूलों से ही तुम्हारे केश गूँथ दिए जाँय। प्र० भा०। हे सुन्दरी! तुम जो चन्द्रमा की ओर एकटक लगा कर देख रही हो तो पके हुए सरकंडे के समान गोरे और अपनी स्वाभाविक प्रसन्नता से खिले हुए तुम्हारे गाल ऐसे लग रहे हैं मानों उन पर चाँदनी चढ़ती आ रही हो'।[३६] इस चन्द्रिका के वर्णन में कवि ने सौन्दर्य की कल्पना का सर्जन किया है।

ऋतु-वर्णन

§ १६—कालिदास के ऋतुसंहार में सभी ऋतुओं का वर्णन क्रम से है, परन्तु उसमें विलास—ऐश्वर्य का प्रसार भी अधिक है। यहाँ केवल प्रकृति-वर्णन के अंश प्रस्तुत किये जायेंगे तथा अन्य काव्यों के ऋतु-वर्णनों को भी साथ ही उपस्थित किया जायगा।

ग्रीष्म

'रात के समय उजले भवन में सुख से सोई हुई युवती के मुख को देखने को उतावला रहनेवाला चन्द्रमा जब बहुत देर तक उसका मुख देख चुकता है तो लाज के मारे रात के पिछले पहर उदास हो जाता है। अपनी प्रेमिकाओं के बिछोह की तपन से झुलसे हुए हृदय वाले परदेसी प्रेमियों से आँधी के झोंकों से उठी हुई धूल के बवंडरों वाली और कड़ी धूप से तपी हुई धरती की ओर देखे देखा नहीं जाता। जलते हुए सूर्य की किरणों से झुलसे हुए तथा प्यास से सूखी जीभ वाले जंगली पशु आँजन के समान नीले आकाश को पानी समझ कर जंगलों की ओर

३६. वही; वही ६१, ६३–६८, ७१, ७२, ७४।

दौड़ रहे हैं। देखो, धूप से एकदम तपा हुआ और मार्ग की गर्म धूल से झुलसा हुआ यह सर्प अपना मुँह नीचे छिपा कर बार-बार फुफकारता हुआ मोर की छाया में कुंडल मारे बैठा है और गर्मी के मारे मोर भी कुछ नहीं बोलता। प्र० भा०। प्यास से बेचैन अपने सूखे मुँह से झाग फेंकते हुए पानी की खोज में इधर उधर घूमते हुए हाथी इस समय सिंह से भी नहीं डर रहे हैं। हवन की अग्नि के समान जलते हुए सूर्य्य की किरणों से शरीर तथा मन दोनों से अलसित मोर कुंडल मारकर अपने पास बैठे हुए साँपों को नहीं मारते, वरन् उलटे धूप से अपना मुँह बचाने के लिये अपना गला उनकी पूँछ की कुंडल में डाले बैठे हैं। प्र० भा०। धूप से तपे हुए मेंढ़क, गँदले जल वाले पोखर से बाहर निकल-निकल कर प्यासे साँपों की फन की छतरी के नीचे आ आकर बैठ रहे हैं। यहाँ इस सरोवर के सब कमल हाथियों ने इकट्ठे होकर आपस में लड़-भिड़कर उखाड़ डाले, मछलियों को रौंद डाला और सब सारसों को डराकर भगा दिया। प्र० भा०। आजकल वन और भी भयानक लगने लगे हैं, क्योंकि आग की लपटों से सब वृक्षों की टहनियाँ झुलस गई हैं, अंधड़ में पड़कर सूखे पत्ते ऊपर उड़े जा रहे हैं और सूर्य्य के ताप से चारों ओर का जल सूख गया है। जिन वृक्षों के पत्ते झड़ गये हैं उनपर बैठी हुई सभी चिड़ियाँ हाँफ रही हैं, उदास बन्दरों के झुंड पहाड़ की गुफाओं में जा घुसे हैं, पशु-समूह चारों ओर पानी की खोज में घूम रहे हैं और शरभों के झुंड एक कुएँ से गटागट पानी पी रहे हैं। नवविकसित कुसुम्भी फूल के समान और स्वच्छ सिन्दूर के समान लाल-लाल चमकनेवाली, आँधी से और भी धधक उठनेवाली और तीर पर खड़े हुए, वृक्षों और लताओं की फुनगियों को चूमने वाली जंगल की आग से जहाँ-तहाँ धरती जल गई है। वन में उठती हुई और पवन से प्रज्वलित आग की लपट पहाड़ की घाटियों में फैलती हुई सभी पशुओं को जलाए डाल रही है, सूखे बाँस की झाड़ियों में चटचटा रही है और क्षण मात्र में आगे फैल कर

घास को पकड़े ले रही है। पवन से प्रज्वलित और सेमर के कुंजों में फैलती हुई आग वृक्ष के कोटरों में अपना सुनहला पीला प्रकाश फैलाती हुई, जिनकी डालियों के पत्ते अधिक गर्मी के कारण पक-पक कर झड़ते जा रहे हैं उन ऊँचे वृक्षों पर उछलती हुई वन में चारों ओर घूम रही है। आग से घबराए और झुलसे हुए हाथी, सिंह, बैल मित्र बनकर साथ-साथ घास के वन से झटपट निकल आये हैं और नदी के चौड़े बलुए तीर पर विश्राम कर रहे हैं'।[३७] ग्रीष्म के इस वर्णन में कालिदास ने यथार्थ तथा कल्पना का सुन्दर कलात्मक प्रयोग किया है। इस चित्रण में सजीवता और भावशीलता प्रत्यक्ष हो उठती है।

क—रघुवंश के सोलहवें सर्ग में कुश की क्रीड़ा की पृष्ठभूमि के रूप में ग्रीष्म का वर्णन किया गया है—'गर्मी में गलता हुआ हिम ऐसा लगा मानों दक्षिण दिशा से सूर्य्य के लौट आने की प्रसन्नता में उत्तर दिशा ने आनन्द के ठंडे अश्रु के समान पानी की ठंडी धारा हिमालय से बहाई हो। प्र० भा०। वनों में चमेली खिल गई है और उसकी सुगन्ध चारों ओर फैलने लगी है। सन्ध्या को गुनगुनाते हुए भौंरे उसके एक एक फूल पर बैठ कर मानो फूलों की गिनती कर रहे हों। प्र० भा०। मनोहर गन्ध वाला आम का बौर, पुरानी मदिरा और नये पाटल के फूल लाकर ग्रीष्म ऋतु ने कामी पुरुषों को प्रसन्न कर दिया। उस कठिन ग्रीष्म के समय उदित होकर दो ही प्रजा के बहुत प्यारे हुए। एक तो सेवा से प्रसन्न होकर निर्धनता आदि सन्तापों को दूर करने वाले राजा और दूसरे शीतल किरणों से गर्मी का ताप दूर करने वाले चन्द्रमा'।[३८]

रघुवंश

§१७—ऋतुसंहार कर दूसरा सर्ग वर्षा-वर्णन प्रस्तुत करता है। इसमें

३७. ऋतु० ; स० १ ; १, ३—१३, १५, १६, १८, १९, २२—२७।

३८. रघु० ; स० १६ ; ४६, ४७, ५२, ५३।

भी जैसे कोई अपनी प्रेमिका से वर्णन कर रहा हो—'देखो प्रिये, जल की धाराओं से भरे हुए बादलों के मतवाले हाथी पर

वर्षा

चढ़ कर बिजलियों की पताकाओं को फहराता हुआ, गर्जन के नगाड़े बजाता हुआ यह पावसराज आ पहुँचा है। कहीं नीले कमल की पंखुड़ी जैसे नीले, कहीं गर्भिणी स्त्री के स्तन के समान पीले और कहीं घुटे हुए आंजन की ढेरी के समान काले-काले मेघ आकाश में घिरते जा रहे हैं। और देखो, जिन बादलों से पपीहा पिउ-पिउ कह कर पानी की याचना करता है, वे पानी के भार से झुके हुए, अनेक धाराओं में बरसने वाले मेघ मन्द-मन्द गर्जना करते घिरते आ रहे हैं। प्र० भा०। ये नदियाँ कुलटा स्त्रियों की भाँति मटमैले पानी की बाढ़ से किनारे के वृक्षों को उखाड़ती हुई वेग से समुद्र की ओर जा रही हैं। फिर यह हरिणियों से कुतरी हुई हरी घास वाले और नवीन पल्लवों से आच्छादित वृक्षों वाले विन्ध्याचल के जंगल किसका मन आकर्षित नहीं कर लेते। कमल के समान सुन्दर आँखों वाले भयभीत हरिणों से भरा हुआ वन बरबस अपनी ओर आकर्षित करता है। प्र० भा०। बादलों की घोर कड़क सुन कर और बिजली की तड़प से चौंकती हुई स्त्रियाँ सोते समय अपने दोषी प्रेमियों से भी लिपटी जाती हैं। छोटे छोटे कीड़ों, धूल और घास को बहाता हुआ, साँप के समान टेढ़ा मेढ़ा घूमता हुआ मटमैला बरसाती पानी ढाल पर बहा जा रहा है और बेचारे मेढक उसे साँप समझ कर भयभीत हो रहे हैं। कानों को मधुर लगने वाली तानें लेकर गूँजते हुए भौंरे, उस कमल को छोड़ कर चले जा रहे हैं जिसके पत्ते और फूल झड़ गये हैं, और वे हड़बड़ी में भूल से नाचते हुए मोरों के खुले पंखों को नये कमल समझ कर उन्हीं पर टूटे पड़ रहे हैं। नवीन बादलों की गर्जन से जब जंगली हाथी मस्त हो जाते हैं और उनके माथे से बहते हुए मद पर भौंरे आकर लिपट जाते हैं, उस समय उन के माथे स्वच्छ नीले कमल जैसे दिखाई देने लगते हैं। श्वेत कमल जैसे उजले बादल जिन पहाड़ी चट्टानों को चूमते जाते हैं और जिन पर

मोर नाच रहे हैं उन चट्टानों पर बहने वाले झरनों को देख कर प्रेमीजन विह्वल हो जाते हैं। प्र० भा०। वर्षा ऋतु में नदियाँ प्रवाहित होती हैं, बादल बरसते हैं, मस्त हाथी घोर रव करते हैं, वन हरे हो जाते हैं, वियोगिनी स्त्रियाँ विकल हो जाती हैं, मोर नाचते और वियोगिनी स्त्रियाँ चुप हो जाती हैं। एक ओर इन्द्रधनुष और बिजली के चमकते हुए पतले धागों से सजी हुई और पानी के भार से झुकी हुई काली काली घटाएँ और दूसरी ओर करधनी और रत्न-जटित कुंडलों से सज्जित योषित, ये दोनों ही परदेसी लोगों के मन को एक साथ हर लेती हैं। प्र० भा०। वर्षा-काल मानों प्रेमी के समान जुही की कलियों तथा मालती और मौलश्री के फूलों की माला गूँथ रहा है और कदम्ब के फूलों का कर्णफूल बना रहा है। प्र० भा०।'[३९] कालिदास के इस वर्णन में सहज चित्रमयता है, साथ ही ऋतु सम्बंधी उल्लास तथा उद्दीपन की भावना भी स्पष्ट है।

§१८—ऋतुसंहार का तीसरा सर्ग शरत्काल के वर्णन से सम्बंधित है। उद्दीपन और आरोप की प्रवृत्ति इसमें कुछ अधिक है। 'फूले हुए काँस के वस्त्र धारण किये हुए, मस्त हंसों की बोली के मधुर नूपुर पहने, पके धान के मनोहर शरीर वाली और खिले कमल के समान सुन्दर मुख वाली शरद् ऋतु नववधू के समान आ गई है। काँस ने पृथ्वी को, चन्द्रमा ने रात को, हंसों ने नदियों के जल को, कमलों ने तालाबों को, फूलों के बोझ से झुके हुए छितवन के वृक्षों ने जंगलों को और मालती के फूलों ने फुलवारियों को प्रकाशित कर दिया है। रजत, शंख तथा कमल के समान श्वेत सहस्रों बादल पानी बरसने से हलके होकर पवन के सहारे इधर-उधर घूम रहे हैं, उनसे भरा हुआ आकाश कभी ऐसा लगने लगता है मानों किसी राजा पर सैकड़ों चमर डुलाए जा रहे हैं। प्र० भा०। जिसकी शाखाओं

शरद्

---

३९. ऋतु ; स० २ ; १–३, ७–९, ११, १३–१६, १९, २०, २४,

की सुन्दर फुनगियों को पवन मन्द-मन्द झुला रहा है, जिस पर बहुत
फूल खिले हुए हैं, जिसकी पत्तियाँ बहुत कोमल हैं और जिसमें से
हुए मधु की धार को मस्त भ्रमर धीरे-धीरे चूस रहे हैं, ऐसा कवि
किसके हृदय को विदीर्ण नहीं करता। बादल हटे हुए चन्द्रमा के
वाली आज-कल की रात, तारों के सुहावने गहने पहने हुए और चां
की उजली साड़ी पहने हुए प्रमदा युवती के समान दिन-दिन बढ़ती
जा रही है। प्र० भा०। अन्न से पूर्ण बालियों से झुके धान के पौधों
कँपाता हुआ, पुष्पों से लदे हुए सुन्दर वृक्षों को नचाता हुआ
खिले हुए कमलों से भरे सरोवरों की कमलिनियों को हिलाता हुआ शी
पवन, युवकों के मन को चंचल करता है। प्र० भा०। आजकल न
बादलों में इन्द्रधनुष हैं, न बगुले ही अपने पंख हिला कर आकाश
पंखा कर रहे हैं और न मोरों के झुंड मुख उठा कर आकाश की
देख रहे हैं। नृत्य रहित मोरों को छोड़ कर कामदेव मधुर बोली
हंसों के पास पहुँच गया है; और फूलों की सुन्दरता भी कदम्ब, कु
अर्जुन, सर्ज और अशोक के वृक्षों को छोड़ कर सप्तछद पर जा बसी
प्र० भा०। जहाँ प्रातःकाल पत्रों पर पड़ी हुई ओस की बूँदें गि
हुआ और कोकाबेल (कह्लार), कमल तथा कुमुद को स्पर्श कर
हुआ मन्द मन्द बहता हुआ पवन किसे उत्कंठित नहीं करता। प्र० भा
इन दिनों हंसों ने सुन्दरियों की मनभावनी चाल को, कमलिनियं
उनके चन्द्रमुख की चमक को, नीले कमलों ने उनकी मदभरी आँखों
और छोटी लहरियों ने उनकी भौंहों की सुन्दर मटक को हरा दिया
फूलों के बोझ से झुकी हुई हरी बेलों की टहनियों ने स्त्रियों की गहने
सजी हुई बाहों की सुन्दरता छीन ली है तथा कंकेलि और नवमालती
सुन्दर फूलों ने दाँतों की चमक से खिल उठने वाली स्त्रियों की मुस्कर
की आभा को लज्जित कर दिया है। प्र० भा०।'[४०]

४०. वही; स० ३; १, २, ४, ६ ७, १०, १२, १३, १५, १७, १८।

क—रघु के पथ-वर्णन के साथ रघुवंश में शरद् का वर्णन है।—'जब रघु ने अपने राज्य में शान्ति स्थापित कर ली और उनका मन निश्चित हुआ, उस समय शरद् ऋतु आ गई और चारों ओर सुन्दर कमल खिल गये। प्र० भा०। इन्द्र ने अपना इन्द्र-धनुष हटाया तब रघु ने अपना विजयी धनुष धारण किया, क्योंकि ये दोनों क्रम से प्रजा की भलाई करते हैं। प्र० भा०। शरद् ऋतु में रघु के खिले हुए मुख और प्रकाशित चन्द्रमा दोनों को देख कर दर्शकों को एक सा आनन्द मिलता था। प्र० भा०। धान के खेतों की रखवाली करनेवाली किसानों की स्त्रियाँ ईख की छाया में बैठ कर रघु के बचपन से लेकर तब तक की कथाओं के गीत गाती थीं, वे प्रजा को ऐसे ही प्रिय थे। इधर उज्ज्वल अगस्त्य तारे के निकलने से जल निर्मल हो गया, उधर शत्रुओं के मन में रघु की चढ़ाई के भय से खलबली मच गई। ऊँचे ऊँचे कंधे वाले मस्त साँड़ नदियों के कगार ढाते हुए ऐसे लगते थे मानों वे रघु के लड़कपन के खेलवाड़ों का अनुकरण कर रहे हों। शरद् ऋतु में चारों ओर छितवन फूला हुआ था। उनकी मतवाली गन्ध से रघु के हाथियों ने समझा कि ये उनसे होड़ करने वाले हाथी हैं और इस कारण क्रोध के मारे उनके नथनों से, दोनों कपोलों से, कमर से और कोनों आँखों से मद बहने लगा। नदियों का पानी भी उतर गया, मार्ग का कीचड़ सूख गया, मानों शरद् ने रघु के सोचने के पहले ही उन्हें दिग्विजय करने को उकसा दिया'।[४१] इस वर्णन में उल्लेख मात्र हैं, पूर्व जैसी चित्रमयता नहीं है।

(हाशिये में: रघुवंश)

§१६—हेमन्त-ऋतु का वर्णन ऋतुसंहार के चौथे सर्ग में है—'जिसमें गेहूँ, जौ आदि के नये अंकुर निकल आने से चारो ओर सुहावना लगता है, लोध के वृक्ष फूलों से लद गये हैं, धान पक चले

४१. रघु० ; स० ४ ; १४, १६, १८, २०–२४।

हैं और कमल दिखाई नहीं देते ऐसी पाला गिराती हुई हेमन्त ऋतु आ गई है'। इसमें संभोग आदि का वर्णन तथा आरोप

हेमन्त

अधिक है—'प्रातःकाल घास पर पड़ी हुई ओस की बूँदों को देख कर ऐसा लगता है मानों पीन स्तनों को देख कर सुखी होने वाला हेमन्त उनको प्रेमियों द्वारा मले जाते देख कर अश्रुपात कर रहा है। गाँव के बाहर जिन खेतों में भरपूर धान लहलहा रहा है, हरिणियों के झुंड के झुंड चौकड़ियाँ भर रहे हैं और सारस बोल रहे हैं, उनको देख कर मन उत्सुक हो जाता है। प्र० भा०। पाले से शीतल पवन से हिलती हुई प्रियंगु लता पीली हो गई जैसे पति से अलग होकर युवती पीली पड़ जाती है'। इस ऋतु की कवि चित्रमय योजना नहीं कर सका, इसमें संभोग श्रृंगार की अधिकता है। इस काव्य का प्रयोजन भी जान पड़ता है सामन्त-वर्ग के विलास के अनुरूप प्रकृति को उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत प्रस्तुत करना है। कवि कहता है—'यह अपने गुणों से मन को मुग्ध करने वाली, स्त्रियों के चित्त को लुभाने वाली तथा जिसमें गाँव के आस-पास पके हुए धानों के खेत लहलहाते हैं, पाला गिरता है और सारस बोलते हैं, ऐसी यह ऋतु आपको सुख दे'।[४२] इस अन्तिम उल्लेख से यह बात स्पष्ट हो जाती है।

§ २०—ऋतुसंहार का पाँचवाँ सर्ग शिशिर-वर्णन से सम्बंधित है।—'हे सुन्दर जाँघों वाली! सुनो, धान और ईख के खेतों से भरी हुई, कभी-कभी सारस की बोली से गूँजती हुई और

शिशिर

जिसमें काम बढ़ जाता है ऐसी स्त्रियों की प्यारी शिशिर ऋतु आ पहुँची है। इन दिनों घने पाले से कड़कड़ाती शीत वाली, चन्द्रमा की किरणों से और भी ठंडी बनी हुई और पीले-पीले तारों वाली रातों में कोई भी बाहर नहीं निकलता।'[४३] इसके अतिरिक्त समस्त सर्ग

---

४२. ऋतु० ; स० ४ ; २, ७, ८, १०, १९।

४३. ऋतु० ; स० ५ ; १, ४।

में संभोग-विलास का वर्णन है। वास्तव में इस ऋतु में प्रकृति में विशेष सौंदर्य नहीं रहता है, इस कारण भी इस ऋतु का वर्णन साहित्य में बहुत कम मिलता है।

§ २१—अन्तिम सर्ग वसन्त के वर्णन में समाप्त होता है। इसमें अधिक विस्तार है—'प्रिये, पुष्पित आम की मंजरियों के पैने बाण लेकर तथा धनुष पर भौंरों की पातों की डोरी चढ़ा कर वीर वसन्त संभोग करने वाले रसिकों को वेधने आ पहुँचा है। और प्रिये, वसन्त के आते ही सब वृक्ष फूलों से ढक गये हैं, सरोवरों में कमल खिल गये हैं, स्त्रियाँ कामयुक्त हो गई हैं, पवन सुगंधित हो गया है, सन्ध्यायें रम्य हो गई हैं और दिन मनोहर हो गये हैं। सुन्दर वसन्त में सभी सुहावना जान पड़ता है। वसन्त के आने से बावलियों के जल, मणियों से जड़ी करधनियाँ, चाँदनी, मंजरी से लदी डालें सब और भी सुहावना लगने लगा है। स्त्रियों के कानों में लटके हुए सजीले कनेर के फूल बड़े सुहावने जान पड़ते हैं और उनकी चंचल, काली, घुँघराली लटों में अशोक के फूल और नवमल्लिका की खिली कलियाँ बड़ी सुहावनी लगती हैं'। रति-विलास का वर्णन इसमें भी अधिक है, बीच में प्रकृति का रूप सामने आ जाता है—'प्र० भा०। अशोक के जिन वृक्षों में कोपलें फूट निकली हैं और जिनमें मूँगे जैसे लाल लाल फूल नीचे से ऊपर तक खिल गये हैं उनको देख कर नवयुवतियों के हृदय में शोक होने लगता है। प्र० भा०। वसन्त काल में पवन के झोंकों से हिलती हुई पलाश की फूली हुई शाखाएँ जलती हुई आग की लपटों के समान दिखाई देती हैं, ऐसे वृक्षों से ढकी हुई पृथ्वी जान पड़ती है मानों लाल साड़ी पहने कोई नववधू हो। और अपनी प्रेमिका के मुख पर मुग्ध प्रेमियों के हृदय को सुग्गों की चोंच के समान लाल टेसू के फूलों ने क्या कुछ कम बेधा था, या कनैर के फूलों ने कुछ कम जला रखा था जो कि कोयल अपनी मधुर कूक से उनको मारने पर उतारू हो गई है। प्र० भा०। आजकल मंजरियों से लदी हुई आम

वसन्त

की डालियों को हिलाता हुआ, कोयल के सन्देश को चारों ओर फैलाने वाले पाले के पड़ने से सुखद वसन्ती पवन लोगों के मन को हरता हुआ बह रहा है। युवतियों की मस्त हँसी के समान उजले कुन्द के फूलों से चमकते हुए मनोहर उपवन जब माया-मोह से विरक्त मुनियों के मन को हरता है, तब नवयुवकों के प्रेमी मन की बात ही क्या ? जब मधुमास में कोयल कूकने लगता है और भौंरे गूँजने लगते हैं, उस समय कमर में सोने की करधनी बाँधे, स्तनों पर मोती के हार लटकाए और काम की उत्तेजना से शिथिल अंगवाली स्त्रियाँ बरबस लोगों का मन आकर्षित करती हैं। सुन्दर फूल वाले वृक्ष के आच्छादित शिखर वाले, कोकिल की कूक और भौंरों की गुंजार से निनादित तथा बिखरी गुई चट्टानों वाले पथरीले पहाड़ों को देख कर सब आनन्दित होते हैं। अपनी स्त्रियों से बिछुड़े हुए पथिक मंजरियों से लदे हुए आम को देखकर आँख बन्द कर रोते हैं, पछताते हैं और नाक बन्द कर लेते हैं कि कहीं उनकी भीनी महक नाक में पहुँच कर पत्नी की याद न दिला दे। कोकिल और मदमाते भौंरों के स्वरों से गूँजते हुए बौरे हुए आम के वृक्षों से भरा और मनोहर कनैर फूलों के पैने बाणों से यह वसन्त प्रेम जगाने के लिए मानिनी स्त्रियों के मन बेधता है। आम के बौर जिसके बाण हैं, टेसू ही धनुष है, भौंरों की पाँत ही डोर है, मलयाचल से आया हुआ पवन मतवाला हाथी है, कोयल गायक है और जिसने बिना शरीर के संसार जीत लिया है, वह कामदेव वसन्त के साथ आपका मंगल करे'।[४४]

क—रघुवंश में दशरथ की विजय के बाद उनके विलास के साथ वसन्त ऋतु का वर्णन किया गया है—'प्र० भा०। वसन्त में फूले हुए

रघुवंश

अशोक के फूलों से ही कामोद्दीपन नहीं होता था वरन् जो कोमल कोंपल के गुच्छे स्त्रियों ने अपने कानों पर रख लिये थे कामियों का मन उन्हें देखकर भी हाथ से निकल

४४. वही; स० ६ ; १–३, ५, १६, १९, २०; २२, २३–२८।

जाता था। वन में कुरबक के वृक्ष ऐसे जान पड़ते हैं मानों वसन्त ने वन-श्री के शरीर पर बेलबूटे चीत कर उसका शृंगार किया हो। उन वृक्षों के बहते हुए मधु पर भौंरे मस्त होकर गुंजार कर रहे थे। स्त्रियों के समान ही गुण वाले सुन्दरियों के मदिरा के कुल्ले से फूले हुए वकुल के वृक्षों को मधु के लोभी भ्रमरों ने झुंड बना कर उड़ते हुए आन्दोलित कर डाला। वसन्त के आगमन से पलाश की कलियाँ फूट उठीं मानों काम के आवेश में लाज छोड़ कर किसी कामिनी ने अपने प्रियतम के शरीर पर नखक्षत कर दिये हों। नवमंजरित आम के वृक्षों की डालियाँ मलय पवन से झूम उठीं मानों उन्होंने अभिनय सीखना आरम्भ किया है, जिन्हें देखकर योगियों का मन भी विचलित हो जाता है। घरों के भीतर की बावलियों में जो कमल खिले हुए थे और मधुर शब्द करते हुए जो जल-पक्षी तैर रहे थे उनमें ये बावलियाँ, मुस्कराती हुई सुन्दर मुख वाली और बजती हुई ढीली तगड़ी वाली विहार करती हुई स्त्रियाँ जान पड़ती थीं। प्रियतम से समागम होने से खंडिता नायिका सूखती जाती है, वैसी रात्रि रूपी नायिका वसन्त के आने से छोटी होती जाती है और उसका चन्द्र-मुख भी पीला पड़ता जाता है। प्र० भा०। हवन की अग्नि के समान दीप्त कनैर के फूल वनलक्ष्मी के कानों में कर्ण-फूल जैसे जान पड़ते थे। प्रातःकाल लालिमा से अधिक लाल-वस्त्रों ने, कान पर रखे हुए जौ के अंकुरों ने और कोयल की कूकों की सेना लेकर कामदेव ने विलासियों को युवती स्त्रियों के प्रेम के वश में कर दिया। उजले पराग से पूरित तिलक के फूलों के गुच्छों पर मंडराते हुए भौंरों के झुंड ऐसे सुन्दर लगते थे जैसे किसी स्त्री ने अपने सिर पर मोतियों की माला पहन ली हो। प्र० भा०। उन दिनों कोयल की कूक मानों मनमथ का आदेश सुना रही थी कि स्त्रियाँ रूठना छोड़ दो, विग्रह त्याग दो, बीता हुआ यौवन फिर लौटता नहीं'।[४५]

४५. रघु० ; स० ९ ; २८–३१, ३३, ३७, ३८, ४०, ४३, ४४, ४७।

§ ख—शंकर की समाधि भंग करने लिये वसन्त कामदेव की सहायता के लिये अपना प्रसार करता है—'यह कामदेव की सहायता का अभिमान करने वाला वसन्त अपना पूरा रूप खोल कर चारों ओर फैल गया। उसके छाते ही असमय में ही सूर्य दाक्षिणायन से उत्तरायण चला गया। उस समय दक्षिण से बहने वाला मलय पवन जान पड़ता था मानों अपने पति सूर्य के चले जाने पर दक्षिण दिशा लम्बी उसाँसे ले रही है। प्र० भा०। वहाँ फूले हुए कर्णिकार देखने में सुन्दर थे पर गन्ध न होने कारण मन को भाते न थे। प्र० भा०। प्रियाल के फूल के पराग के उड़-उड़ कर आँखों में पड़ने से मतवाले हरिण भली भाँति न देख सकने के कारण सूखे पत्तों की मर्मर करती हुई वनभूमि पर इधर-उधर भाग रहे थे। प्र० भा०'।[४६] यह वसन्त-वर्णन अलौकिक पीठिका में उपस्थित हुआ है।

कुमारसम्भव

ग—मालविकाग्निमित्र में कालिदास ने वसन्तोत्सव का अवसर अपनी कथावस्तु के लिये चुना है। वास्तव में यह मदनोत्सव के रूप में मनाया जाता है। इसमें महारानी इरावती सुन्दर लाल कुरबक के फूलों को राजा के पास भेजकर वसन्त आने का उल्लेख करती है। प्रमदवन में राजा अपने मित्र विदूषक के साथ जाता है और वहाँ देखता है वसन्त उल्लसित हो उठा है। (प्र० भा०)। उधर मालविका देवी धारणी के पैर में चोट आ जाने से उसके द्वारा सुनहले अशोक को पुष्पित करने भेजी गई है। मालविका अशोक वृक्ष को अपने समान ही फूलों रूपी मन की साध से वंचित पाती है। राजा उसकी बातें सुनकर कहता है कि कुरबक के पराग में बसा हुआ और खिली हुई कोंपलों से जल की बूँदें उठा ले जाने वाला मलय का पवन बिना कारण ही मेरे मन में चाह भर रहा

उत्सव

---

४६. कुमा० ; स० ३ ; २४, २५, २८, ३१।

है। मालविका की सखी बकुलवलिका उसके पैर में महावर लगा कर बिछुआ पहनाती है। दूसरी ओर से मद में झूमती इरावती भी प्रमदवन में प्रवेश करती है। इस प्रकार इस अंक में प्रेम का अदृश्य व्यापार चलता है और साथ ही मदनोत्सव का दृश्य भी प्रस्तुत होता है। मालविका ने कानों को अशोक के पत्तों के गुच्छे से सजाया है और फिर अशोक पर लात भी जमाती है। राजा अशोक वृक्ष से ईर्ष्या करता है। इस तीसरे अंक में अशोक को पुष्पित होते नहीं दिखाया गया है पर पाँचवें अंक में पुष्पित अशोक को देखकर जब विदूषक कहता है—'फूलों के गुच्छों से लदा हुआ यह सुनहरा अशोक ऐसा जान पड़ता है मानों किसी ने इसका शृंगार किया हो' तब राजा उत्तर देता है—'इसका देर से फूलना अच्छा ही हुआ क्योंकि इसके आगे सब वृक्षों की शोभा फीकी पड़ गई। ऐसा जान पड़ता है कि जिन अशोक के वृक्षों ने पहले फूल कर वसन्त के आने की सूचना दी थी, उन सब ने अपने अपने फूल जिसके फूलने का थोड़े दिन हुए उपाय किया गया था इस अशोक को दे दिया है'। इस प्रकार कवि ने कविप्रसिद्धि और स्वाभाविकता का सुन्दर निर्वाह किया है।[४७]

---

४७. माल० ; तीसरा अंक तथा पाँचवाँ अंक ; ५।

तृतीय प्रकरण

प्रवरसेन

§ १—प्रवरसेन का सेतुबन्ध प्राकृत का महाकाव्य है। परन्तु अपनी प्रवृत्ति में वह संस्कृत महाकाव्यों के समान है। इसके अतिरिक्त शैली तथा वर्णना की दृष्टि से इस काव्य का अपना अलग महत्त्व है। इसलिये इस काव्य को प्रस्तुत अध्ययन के अन्तर्गत स्वीकार किया गया है। प्रवरसेन अपनी शैली में पूर्ण कलाकार है, और वर्णन की दृष्टि से पूर्ण आदर्शवादी। प्रकृति के अनन्त विस्तार को कवि अपनी कल्पना की नवीन-नवीन स्थितियों में देखता है और उनका वर्णन कलात्मक शैली में करता है। स्थितियों की नव-नव योजनाएँ सेतुबन्ध से अधिक कहीं नहीं मिल सकतीं, फिर भी चमत्कार की भावना सौन्दर्य्य बोध को विकृत नहीं करता। इसका कारण है। प्रवरसेन ने प्रकृति के रूप-रंग और स्थितियों की कल्पित योजनाएँ की हैं, पर उनको उपस्थित करने में अस्वाभाविक ऊहात्मकता से काम नहीं लिया है। कवि-कल्पना के आधार पर उन चित्रों का सौन्दर्य्य बोध पाठक प्राप्त कर सकता है। परन्तु यह सौन्दर्य्य सर्जन कालिदास की कल्पना के समान सहज नहीं है।

कलाकार

क—प्रवरसेन के महाकाव्य में प्रकृति का प्रयोग विशेष रूप में हुआ

है। इस रूप में सेतुबन्ध में प्रकृति का स्थान संस्कृत के अन्य महाकाव्यों से भिन्न है। अन्य महाकाव्यों में प्रकृति गौण है, वह केवल आधार और पृष्ठभूमि के लिये प्रयुक्त हुई है। पर इस महाकाव्य में प्रकृति घटना के रूप में उपस्थित हुई है। सेतुबन्ध की प्रधान घटना प्रकृति की एक योजना मात्र है, और कवि ने इस घटना को उपस्थित करने में अपनी समस्त प्रतिभा का प्रयोग किया है। इस कारण इस प्रकरण में हम प्रकृति के भिन्न-भिन्न रूपों को उस प्रकार अलग-अलग नहीं रख सकेंगे जैसे पिछले प्रकरणों में किया गया है। यहाँ कथा-क्रम के साथ प्रकृति का चित्रण रखा जायगा।

प्रकृति का प्रयोग

प्रस्थान

§ २—वर्षाकाल में राम का विरह अधिक तीव्र हो गया। इसके उपरान्त शरत्काल आ जाता है। यह सभी प्रकार से शुभ है।—'शरद् ऋतु का आकाश भगवान् विष्णु की नाभि से निकले हुए उस अपार विस्तृत कमल के समान लग रहा था जिससे ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई है, सूर्य्य की किरणें ही जिसमें केसर हैं और सफेद बादलों के सहस्रों खण्ड जिसके दल हैं। भास्कर की किरणों से चमकने वाला मेघ-श्री का रत्नजटित कांचीदाम (तगड़ी), वर्षा रूपी कामदेव के अर्धचन्द्राकार बाण-पात्र (तुणीर) तथा आकाश रूपी पारिजात वृक्ष के फूल के केसर जैसा इन्द्र-धनुष अब लुप्त हो गया है। शरद् ऋतु में, जिनके बादल रूपी भौंरे उड़ गये हैं, और जो आकाश वृक्ष की डालियों के समान वर्षा में झुक गई थी और अब मुक्त हो गई हैं ऐसी दिशाएँ पूर्ववत् हो गई हैं। सूर्य्य के आलोक से स्निग्ध, किसी भाग में वृष्टि हो जाने से आर्द्र तथा स्नान किये हुए से शरत्काल के दिन किंचित बूँदों से युक्त धुले हुए शंखों जैसे शोभित हैं। सुख मात्र के लिये निद्रा करनेवाले, विरह से आकुल समुद्र को उत्कण्ठित करने वाले, नींद त्याग कर प्रथम ही उठी हुई लक्ष्मी से सेवित भगवान् विष्णु ने न सोये हुये भी निद्रा का त्याग किया। प्र० भा०। अब सप्तच्छद्

शरद्-वर्णन

(छितौन) का गन्ध सुखावह लगता है, कदम्बों के गन्ध से जी भर सा गया है। कलहंसों का मधुर निनाद कर्ण-प्रिय लगता है और मोरों की बोली अच्छी नहीं लगती। प्र० भा०। छितौन के फल के श्वेत पराग से चित्रित, चक्कर लगा कर गिरनेवाले चँवर जैसे भासित होनेवाले भौंरे हाथी की कनपटी पर चूनेवाले मद को पोंछ से रहे हैं'।[1]

मार्ग

§ ३—मार्ग में प्रस्थान करने पर 'चन्दन-भूमि को कँपाने वाले वानर मेघाच्छादित होने के कारण ग्रीष्म के प्रभाव से मुक्त, सघन वृक्षों की छाया में निद्रा लाने वाले तथा निरन्तर बादलों से छाये होने के कारण श्यामता को प्राप्त मलय पर्वत के समीप पहुँचे। जिनसे लताएँ अलग कर ली गई हैं और आवेष्टन चिह्न शेष है जिनमें ऐसे चन्दन के वृक्षों में उन्होंने विशाल सर्पों के लपटने के चिह्नों को केंचुल से युक्त देखा। भार से जल-तल पर लटकी चन्दन वृक्षों की डालों के स्पर्श से सुगन्धित, हरी घास के बीच में होने के कारण दूर से ही प्रतीत होने वाले और बनैले हाथियों की मदधार से कसैले पहाड़ी नदियों के प्रवाह का सेवन वे करते हैं'।[2]

तट पर आगमन

क—समस्त मार्ग पार करने के बाद वानर-सेना समुद्र तट पर पहुँचती है।—'वे फूटी सीपियों में जहाँ जल-स्थित मुक्त स्तबक है, सघन पत्तों वाले बकुल वृक्षों से शोभित तथा हाथियों के मद के समान सुगन्धित एला की लताओं से युक्त दक्षिण समुद्र के तट पर पहुँचे। यह भूमि विकसित तमाल वृक्षों से नीली नीली, समुद्र के चंचल कल्लोल रूपी हाथों से स्पृष्ट हाथियों के मद की समता करने वाले एला वन से सुगन्धित थी। प्र० भा०। वह भूमि लता-कुंजों में परिवर्धित थी, सीपी के रूप में उसके मुकलित नेत्र थे और वह अनुराग पूर्वक किन्नरों के गान को सुन रही थी'।[3]

---

१. सेतु० ; आ० १ ; १७–२१, २३, ३३।

२. वही ; वही ; ५९—६१।

३. वही ; वही ; ६२, ६३, ३५।

सागर-दर्शन

§ ४—समुद्र-तट पर वानर-सेना के साथ राम सागर को देखते हैं।—'वह सागर में भँवर के रूप में परिवर्तित होने वाली विराट तरंगों तथा ऐरावत की सूँड़ की तरह विस्तीर्ण किरण समूह से चारों ओर बिखरने वाली जलराशि है जो चन्द्रमा से क्षुब्ध हो उठती है। प्रवालों से आच्छादित, इधर-उधर चलित फिर भी स्थिर से और जिनमें गाढ़ा रक्त लगा है ऐसे मन्दराचल के आघातों के समान जल-तरंगों को सागर धारण किये हुए हैं। प्र० भा०। प्रलय काल में संसार के समूचे जल का शोषण करने वाले, गत और प्रत्यागत पवन के वेग से युक्त अपने शरीर में चुभे हुए बाण की तरह सागर वड़वानल की ज्वाला को धारण कर रहा है। स्थान होने पर भी मर्यादा वश सीमित, प्रलय काल में समूची पृथ्वी को समा न सकने वाले, बलि से याचना कर अपने तीन डगों में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को व्याप्त करने वाले विष्णु के समान यह सागर है। यह लोकोत्तर गुणों वाला भी है। प्र० भा०। सागर में सुखद आलोक से युक्त, निर्मल जल में स्थित, कुछ खिंचे हुए से और जिसकी किरणें सूर्य-किरणों पर आधारित हैं ऐसे रत्न-समूह हैं। मथन के आयास से त्यक्त, उछले हुए अमृत-कणों से छिटका हुआ अनल समूह, वासुकी के मुख से निकलने वाले जाज्वल्यमान विषमय द्रव के समान वड़वामुख के कुहर में पुंजीभूत अग्निशिखा को वह धारण कर रहा है। उसमें धैर्य के समान असीम जलराशि है, पंख वाले पर्वतों के समान तिमि समूह है। नदियों की धाराओं के समान तरंगें हैं। वह पाताल तक गहरा है, शून्य के समान विस्तीर्ण, आकाश के शून्य में विष्णु के समान व्याप्त है। प्र० भा०। जिनके भीतर अपार रत्न भरे पड़े हैं, जिनपर आकाश रूपी की कोंपलों जैसी चन्द्र की किरणें बिखरती हैं ऐसे उदरवर्ती पर्वतों को सागर इन्द्र के डर से निधियों के समान सँजोये हैं। यह सागर प्रिय का समागम जिसमें सुलभ है ऐसे यौवन में कामदेव के समान चन्द्रमा के उदित होने पर बढ़ता है और अस्त होने

पर शान्त होता है। प्र० भा०। मनियारे साँपों (या यत्न) के गृह तीरवर्ती लता-मंडपों में राजभवनों की शोभा तुच्छ करने वाले हैं। ऐसी जल लेने के लिये मँडराते हुए मेघों से आकुल वेला के आलिंगन से चपल सागर पृथ्वी द्वारा अपने आलिंगन को रोकता है। इसकी जल-राशि चन्द्र-किरणों से प्रक्षुब्ध होती है, यह चलायमान पर्वतों से आन्दोलित है। गर्जते बादल इसका जल सदा पाते हैं। तरगों में यह चंचल है, वड़वानल से प्रतापित है और साक्षात् धैर्य्य रूप है। प्र० भा० नदियों से अभिगत, लक्ष्मी के समान ऐश्वर्य्य युक्त वंश वाला, पृथ्वी से लालित नदियों के मुहानों से प्रस्थापित और तरंगों द्वारा फिर निवर्तित वेला का जल उसके साथ स्त्री के समान व्यवहार करता है। सहस्रों नदियों के जल के स्वाद से जो क्षार की अपेक्षा अन्य रस से भी परिचित है ऐसा प्रलय-पयादों की तरह भीषण ध्वनि करने वाला सागर मन्द पवन से मद-सेवी की तरह लहरा रहा है। तरंग युक्त सागर में सूर्य्य के अरुणिम किरण जाल से रंजित पृथ्वी तल के समान प्रवाल-जाल से चारो ओर निरन्तर लाली छायी रहती है। और मन्दराचल से मथित होते समय जिसका जल-समूह सशब्द दूर तक उछला था, जो मोतियों का आकर है, देवताओं के सुखप्रद अमृत का जन्म-स्थान है ऐसा उद्भट और विस्तीर्ण सागर प्रलय-काल में वेला को आक्रान्त कर बढ़े हुए जल के प्लावन से मृदित पृथ्वी से पंकिल पकिल सा हो गया था। बहुत दिनों से सेवार जिन पर उगा है ऐसी शिलाओं से हरितायमान, पवन के क्षोभ से उत्पन्न भीषण कड़क से युक्त, मधुमथ को निद्रा के समय विश्राम देने वाला सागर प्रलय में दग्ध होने के बाद शान्त पृथ्वी के क्रोड़ में श्याम-श्याम सा भासित होता है। हिरण्याक्ष आदि असुरों के झपट्टे से दो भागों में विभाजित जल-समूह के बीच के विवर-मार्ग से निकलने वाली रसातल की गर्मी जिसमें विद्यमान है ऐसे सागर में मथन के समय आवर्त्त में चक्कर खाकर मन्दराचल के टूटे शिला-खण्ड द्वीपों के समान द्वीपान्तरों में जा लगे हैं। अमृत का उत्पत्ति स्थान है, इस

विचार से, नीलिमा और विस्तार के कारण आकाश से लग गया है और अन्धकार के समान भूमण्डल में व्याप्त हो गया है ऐसा सागर अनन्त रत्नों से पूर्ण पृथ्वी की रक्षा के लिये उसी प्रकार तत्पर है जैसे राजा सगर ने अपने यश रूपी धन के लिये कोश बनाया हो। जिसके तटवर्ती वन पवन से उच्छलित जलसमूह से आहत होकर शब्दायमान हैं और जिसके पुलिन-प्रदेश, चन्द्रमा रूपी पर्वत के किरण समूह रूपी निर्झर के प्रवाहों से परिवर्धित जल-राशि से मुदित हैं। सागर के जल में मन्दराचल रूपी मेघ के दर्शन से चन्द्रमा रूपी हंस ने निवास करना छोड़ दिया है और जिसके निम्नतल में मरकत रूपी शैवाल पर चुपचाप मीनयुगल रूपी चक्रवाक बैठे हैं'।[४]

§ ५—अन्त में राम ने बाण से सागर को विक्षुब्ध कर दिया। सागर के इस रूप का वर्णन कवि करता है—'राम के बाण से आहत होकर बड़वानल रूपी केशर सटा को फुलाकर, जैसे विश्वस्त होकर सोया हुआ सिंह बाण की चोट से अपना केशर सटा को फुला कर तड़पता है वैसे ही चीत्कार करता हुआ समुद्र उछलने लगा। दूर तक उछल कर फिर लौटे हुए बाण के तीव्र आघात से उत्खण्डित समुद्र कुल्हाड़ी से बिंधे काठ की तरह आकाश को दो भागों में बाँट सा रहा था। प्र० भा०। बाणों के आघात से उत्पन्न अग्नि-ताप से फूट कर खोल से बाहर निकला हुआ, भूसी से युक्त लावा के समान किंचित पीताभ मध्यभाग वाला और किंचित् अरुणिम बाल-सूर्य की किरणों के स्पर्श से ईषद् विकसित कमल की आभा वाला शंख-समूह इधर-उधर भ्रमित हो रहा है। जिनके आवर्त में पड़कर मत्स्य चक्कर खा रहे हैं, बाणों के आघात से उत्खण्डित मकरों के दाढ़ों से उछाले जाने पर धवल से जल-समूह कम्पित हो रहे हैं, जिनमें

बाण से विक्षुब्ध

---

४. वही; आ० २; ३, ४, ७, ९,—१५, १९, २०, २३, २४, २, २७, २९—३५।

मणियों के भार से तिरछे बाणों से कटे साँपों के फन भ्रमित हैं। प्र० भा०। समुद्र के आवर्त, बाण के आघात से उत्पन्न उच्छलन से प्लावित और उसके हटने पर मुक्त; फिर प्लावित होने से लुप्त और अप्लावित दशा में अपरिमेय विस्तार युक्त, अक्षुब्ध—क्षुब्ध, कन्दराकार गर्तों में इतर जल भरने के कारण मूक और फिर वायु प्रवेश से मुखर हो रहे हैं। बाण के आघात से संक्षुब्ध होकर समुद्र का जलस्तर ऊपर नीचे हो गया है, ऐसा लगता है जैसे चिरकाल से पीड़ित एक पार्श्व को सुखी बनाने के लिये समुद्र दूसरे पार्श्व से पाताल में शयन का उपक्रम कर रहा है'।[५]

'बाण के वेग से गलहस्त हुआ, सुवेल-तट से अवरुद्ध, आधे सागर में ठहरा हुआ तथा दक्षिण दिशा को अपने प्लावन से अपसारित कर देने वाला, समुद्र के एक भाग का जल, काटकर पृथ्वी पर ढाहे आकाश के पार्श्व की तरह प्रतीत हो रहा है। पाताल पर्यन्त गहरे समुद्र के भयानक प्रदेश, जिन्हें आदि वराह ने नहीं देखा और जिन्हें मन्दराचल ने स्पर्श नहीं किया, बाणों से क्षुब्ध हो उठे। बाण से पृथ्वी तल के एक एक विवर में वक्र होकर चीत्कार के साथ प्रवेश करता हुआ समुद्र, आकाश की भाँति आधारहीन होकर लगता है जैसे प्रलयकाल की अग्नि से भीत होकर रसातल में घुस रहा है। सागर-मन्थन को निर्भीक होकर देखने वाले तथा अमृत पीने से अमर हुए जिन तिमि मछलियों की सुदृढ़ पीठों पर मन्दराचल रगड़ा गया है, बाणों के आघात से मूर्च्छित हो रहे हैं। पाताल से उठनेवाले, बड़े-बड़े आवर्तों को उठाने वाले, विष की भीषण ज्वाला से किंचित जले तथा झुलसे हुए प्रवालों की रज से धूसरित बड़े-बड़े अजगरों के श्वासों के रास्ते दिखाई दे रहे हैं। स्नेह की बेड़ी से आबद्ध, एक ही बाण से विद्ध होने के कारण चिर अभिलषित आलिंगन से सुखी, प्राण-पण से एक-दूसरे की रक्षा में प्रयत्नशील एक

५. वही; आ० ५; ३४, ६५, ३८, ३९।

दूसरे को आवेष्ठित करते हुए काँप रहे हैं। प्रवाल-जाल को छिन्न कर मणिशिलाओं से टकराने से तीव्र हुए, सीपियों के वेधने से मोती के गुच्छों से युक्त बाण समुद्र पर दौड़ रहे हैं। विष-वेग से फैलता हुआ, समुद्र के रुधिर सा, बाणों के आघात की ज्वाला से उठा हुआ जल-राशि का अपार धुआँ जिस-जिस प्रवाल-मण्डल में लगता है उसको काला बना देता है। क्षुब्द समुद्र से उड़कर, बाण से एक पार्श्व के पंख के कट जाने से, भार की अधिकता से टेढ़े और झुके पर्वत आकाश के आधे मार्ग से ही फिर गिर रहे हैं। बाणों से शरीर के कट कर बिखर जाने पर केवल फण मात्र में प्राणों को धारण करने वाले सर्प अपनी अपनी आँखों की ज्वाला से बाण समूह को जलाते हुए प्राण छोड़ रहे हैं। चोट खाये हुए समुद्र से उठी हुई आग की ज्वाला, बाणों के अगले भाग से उखाड़े हुए पहाड़ों की, चीत्कार करते कटे सर्पों से छोड़ी कन्दराओं को जलराशी के अपेक्षा पहले ही भर रही है। अपनी नोकों में विद्ध जल-जन्तुओं सहित ऊपर को उछाले हुए तथा उससे उठी हुई बड़ी तरंगों से पहाड़ी तटों को टकरानेवाले, बाण से कटकर गिरे जल-हस्तियों के दाँत ऊपर ही फूट रहे हैं। समुद्र से आई हुई ज्वाला से विमुग्ध जल-तरंगों से दूसरे स्थानों को फेंके गये मत्स्य, जिनकी आँखें धुँआ लगने से लाल हो गई हैं, प्रवाल-पुंज को ज्वाला का समूह समझ कर उससे बच रहे हैं'।[६]

'उदर ऊपर होने से धवल, दग्ध होने के कारण कुछ-कुछ जीभ निकाले हुए समुद्र के ऊपरी भागों में तैरते हुए साँप ऊँची-ऊँची तरंगों के अन्तराल को अपने शरीर से भर रहे हैं। समुद्र की उठी हुई आग के ताप से जिनके मद सूख गये हैं, भीतरी स्तर से कुछ बाहर निकले हुए जल-हस्ती जल-सिंहों के अंकुश जैसे नाखों से आक्रान्त मस्तकों वाले दिखाई देते हैं। ज्वाला से पानी के सूख जाने पर तेज़ जलन से विह्वल

---

६. वही ; वही ; ४३—५५

होकर तट की ओर आने के लिये उत्सुक शंख-समूह ऊँची-नीची मणि-शिलाओं पर ढुलकता हुआ इधर-उधर भटक रहा है। ज्वाला से व्याकुल समुद्र-तल को छोड़ कर आकाश में उड़े हुए पर्वत अपने पाँखों के चालन से उठी हुई पवन से अपने ऊपर लगी हुई आग को और भी ज्वालित कर रहे हैं। बाणों से विदीर्ण पाताल की विवरों से विह्वल होकर निकले हुए सर्प हैं जिनमें, विष्णु द्वारा काटे हुए असुरों के सिरों से भयानक लगने वाले जल-समूह, मूल-भाग से रत्नों को उछालते हुए भीषण शब्द करते हुए बाहर निकल रहे हैं। बाण के आघात से उछले हुए फेनवाले जल कल्लोल वायु द्वारा बिखर कर कणों में बदल कर आकाश में ही सूख जाते हैं। बाण से उठाई हुई ऊँची-ऊँची तरगों से टकरा कर तट पर आये हुए, क्रोध के कारण विष को उगल कर टेढ़े और उत्तम सर्प पेट के बल चलने में उत्साह हीन होकर वक्र चलने का प्रयास कर रहे हैं। मुक्त-कंठ से रोती सी नदियों का शंख रूपी कटे हुए वलय वाला हाथों जैसा तरंग समूह समुद्र के रक्षा में फैला हुआ काँप रहा है। जिनके निचले भाग ज्वाला-समूह से आक्रान्त हैं और जिनके पंखों में आग से बचने के लिए जलचरों ने आश्रय लिया है ऐसे पर्वत बहुत दिनों से उड़ने का अभ्यास शिथिल होने से बहुत कष्ट से आकाश में उड़ रहे हैं। समुद्र का जल जलते हुए जलचरों के रूप में जल रहा है, भ्रमित होने वाली विद्रुमलता जालों के रूप में भ्रमत हो रहा है, शब्दायमान आवर्तों के रूप में शब्द कर रहा है और फूटते हुए पर्वतों के रूप में फूट रहा है। आवर्तों पर घूमता हुआ, मलय पर्वत के मणिशिला युक्त तटों से टकरा कर रुक रुक जाने वाला, तरंगों के उत्थान-पतन के साथ ऊपर-नीचे होता हुआ ज्वाला समूह समुद्र की तरह ही लहरा रहा है'।[७]

'ज्वलित होकर उछला हुआ सागर जिन तटवर्ती वनों को जलाता

---

७. वही ; वही ; ५६–६६।

हैं, बुझकर लौटने के समय उन्हें पुनः अपने जल से बुझा देता है। समुद्र को उछालने वाली, मकरों के मांस और चर्बी से दीप्त शिखाओं वाली तथा पर्वत समूह को ध्वस्त करने वाली अग्नि पर्वत शिखरों की तरह बढ़ रही है। ज्वाला से उठाये गए मूल वाले, बाण से उछाले जाकर चक्कर काटते हुए नीचे गिरने वाले जल-समूह घूमने से भंवर के रूप में आकाश से गिरते हैं। रत्नाकर धुधुँआता है, जलता है, छिन्न-भिन्न होता है, आधार छोड़ कर उछलता है और मलय पर्वत के तटों से टकराता है। फिर भी विस्तार रूपी धैर्य्य नहीं छोड़ता। राम के बाण की अग्नि से आहत होकर सागर के सर्पों तथा तिमिओं की आँखों के फूटने से जो शब्द हो रहा है, वह प्रलय पयोदों की गर्जन की तरह तीनों लोकों को प्रतिध्वनित कर रहा है। शीर्ष में जिनके वर्तुलीभूत आग है, धूम शिखा की तरह दण्डायमान तथा जिनका जल-समूह खींचा गया है ऐसा उछलता हुआ नदियों का प्रवाह प्रलय के उल्कादण्ड की तरह आकाश से गिर रहा है। जिसका पानी सूख रहा है और जिसने थोड़ा थोड़ा तट छोड़ दिया है ऐसा समुद्र पैर पैर (भयभीत सा) पीछे खिसक रहा है। आग की ज्वाला में जल विला रहा है, आग से व्याप्त जल-समूह में आकाश समाया जा रहा है और जल-समूह से व्याप्त आकाश में दिशाएँ लीन हो रही हैं। जल में स्थित अग्नि द्वारा चक्कर खाते हुए और विस्तृत होने पर ग्रीष्म काल से विलम्बित गति, सूर्य्य के रथ के चक्करों की भाँति समुद्र के भँवर अब शिथिल हो रहे हैं'।[८]

'धूम समूह से हीन फैलता हुआ, मरकत मणियों की आभा से मिलित शिखाओं वाला अग्नि समूह विस्तीर्ण समुद्र में शैवाल की तरह फैल रहा है। बाण से आहत समुद्र वड़वानल की तरह जलता है, पहाड़ों की तरह फट रहा है, मेघ की भाँति गरज रहा है और क्षुब्ध पवन की तरह आकाशतल को आक्रान्त कर रहा है। अग्निपुंज जल-राशि के स्तब्ध

८. वही ; वही ; ६७–७५।

होने पर स्तब्ध, आवार्ताकार होने पर आवार्ताकार, खण्ड-खण्ड होन पर खण्ड-खण्ड, क्षीण होने पर स्वतः भी क्षीण हो रहा है। राम-बाण से तप्त होकर समुद्र के क्षीण हो जाने पर जिनके तट-विभाग स्पष्ट दिखाई देने लगे हैं ऐसे कतार में स्थित द्वीपसमूह वहीं और वैसे होने पर भी ऊँचे-ऊँचे दिखाई दे रहे हैं। जिसमें पाताल दिखाई दे रहा है, जिसका जल-समूह आग की लपटों से जल रहा है, जिसमें पर्वत ध्वस्त हो गये हैं और सर्प नष्ट हो गये हैं ऐसे समुद्र को राम नष्ट कर रहे हैं। सागर में जल पर लुढ़कते हुए शंखों ने विह्वल होकर क्रन्दन छोड़ दिया है, वड़वानल से प्रदीप्त तथा पहले से ही कुछ जले हुए सर्पसमूह ठंडे स्थानों की खोज में घूम रहे हैं। इसमें क्षीण होते जल में किरणों के आलोक से रत्न-पर्वतों के शिखर व्यक्त हो रहे हैं और जिसमें दिशा रूपी लता से बादल रूपी पत्ते गिरा दिये गये हैं। अनल बाण से आहत होकर मकरसिंह का कन्धा जल रहा है और जल-हस्तियों के धवल दाँत रूपी परिघों पर आग से डरे साँप लिपटे हुए हैं। सागर में विद्रुम वन पर्वत की चोटियों से फिसली मणिशिलाओं से भग्न हैं और जल के हाथी किंचित जले हुए सर्पों के उगले हुए विष-पंक में मग्न होकर विह्वल हो रहे हैं। बड़े-बड़े भँवरों में चक्कर खा-खा कर तट पर लगे हुए पर्वत एक दूसरे से टकरा कर ध्वस्त हो रहे है, तथा आकाश रूपी वृक्ष को धुआँ रूपी चंचल लता आच्छादित कर दिशाओं को व्याप्त कर रही है। सागर में अग्नि से अपने पंखों की रक्षा के लिए आकाश में उड़ने वाले पर्वतों के टुकड़े-टुकड़े हो गये हैं और जिनमें भयानक विवर, बाण से उखाड़े पर्वतों के रन्ध्रयुक्त जल-समूह के मध्य भाग से उठी हुई रत्नों की ज्योति से पूर्ण हैं। जिसमें जलती अग्नि की गर्मी से नेत्र मूँद कर बड़े-बड़े घड़ियाल घूम रहे हैं और जिसमें बाणाघात से विच्छिन्न हुए पंखों का परस्पर अनुराग बढ़ रहा है, ऐसे सागर को राम नष्ट कर रहे हैं'।[१]

---

१. वही ; वही ; ७६–८७।

§ ६—इसके बाद समुद्र मानव रूप में राम सम्मुख आता है—'प्र० भा० । सागर, मंथन के समय मन्दराचल से घिसे हुए तथा प्रलय काल में पृथ्वी के उद्धार के लिये नत-उन्नत होने वाली आदि वराह की दाढ़ों से खरोंचे, बाण से पीड़ित हृदय को धारण किये हुआ था । अत्यन्त लम्बे, गहरे घावों के विस्तार युक्त देह के समान विस्तीर्ण नवचन्दन की गन्ध से युक्त, निर्दोष तथा पीड़ा के कारण मलय से निकली हुई दो नदियों के रूप में दो बाहों को धारण कर रहा था । कौस्तुभ के विरह को हलका करने वाला, जो मन्दर से मथे जाने पर नहीं मिला था, ऐसा चन्द्रमा, मदिरा तथा अमृत के सहोदर जैसा एकावली रत्न वह धारण किये था । रुधिर श्राव के कारण अरुण रोमावली वाले व्रण के कारण भारी-भारी तथा दाहिने हाथ के स्पर्श से घाव के विष की विकलता दूर की है जिसकी ऐसे बायें हाथ को सागर ने काँपती हुई गङ्गा पर स्थापित कर रखा था । अपनी नीलिम कान्ति से मलय पर्वत की मणिमय शिलाओं में व्याप्त से, आश्रित जनों से सेव्य तथा जानकी रूपी लता से विहित वृक्ष के समान राम से सागर इस रूप में मिला । प्र० भा० । अनन्तर काँपते हृदय से, दूसरी ओर देखती हुई जिन चरणों से आविर्भूत हुई हैं उन्हीं राम के कमल जैसे अरुण तलवों वाले चरणों में गंगा भी जा गिरीं' ।[१०]

मानवीकरण

पर्वतोत्पाटन

§ ७—वानर सेतु-निर्माण के लिए पर्वत लाने के लिये जब प्रस्थान करते हैं, उस समय चारों ओर हलचल मच जाती है—'प्र० भा० । महेन्द्र पर्वत काँपता है, पृथ्वी-मंडल दलित होता है, केवल सदैव मेघाच्छादित होने के कारण मलय पर्वत की तटी के फूलों की गीली धूल नहीं उड़ती । इसके बाद पर्वतों को

संक्षोभ

---

१०. वही ; आ० ६ ; २–६, ८ ।

हिलाने वाली, देवयोग से एक ही साथ स्पन्दित होने वाली, नखों में लगी है मिट्टी जिसके ऐसे वानरों की सेना सुदूर आकाश में उड़ी। उनके उछलने से बोझिल पृथ्वी के झुक जाने के कारण, उलट कर बहने वाली नदियों के धारा-पथ से प्लावित हुआ समुद्र अपनी जलराशि से पर्वतों के मूल भाग को ढीला करके वानरों के उखाड़ने योग्य बना रहा है। प्रज्वलित आग के समान कपिश वानरों की सेना द्वारा उठाया जाता हुआ सा आकाश जिधर देखो उधर ही धूमपुंज सा जान पड़ता है। सुदूर आकाश में मुख को नीचा किए हुए उड़ती हुई सेना की समुद्र-तल पर चलती हुई सी छाया ऐसी जान पड़ती है मानों सेना ने पातालवर्ती पहाड़ों को उखाड़ने के लिये प्रस्थान किया हो। वानर सेना से आलोक रुद्ध हो जाने के कारण दिशाओं का ज्ञान नहीं हो रहा है और सूर्योदय के समय भी धूप के अभाव के कारण श्याम-श्याम सा भासित होने वाला आकाश सूक्ष्म अस्तकालीन सा जान पड़ता है। जिनकी पीठ पर तिरछी होकर सूर्य की किरणें पड़ रही हैं ऐसे वानर बड़े वेग से अपनी कल-कल ध्वनि से गुंजित गुफाओं वाले पर्वतों पर उतरे। शेषनाग द्वारा किसी-किसी प्रकार धारण किया हुआ पर्वत-समूह, भाराक्रान्त पृथ्वीतल के सन्धि-बन्धन से मुक्त होकर वेग से गिरे वानरों के लिये उखाड़े जाने योग्य हो गया'।[११]

उत्पाटन कार्य

§ ८—'वक्ष-स्थल के बल गिरने से जिनकी चट्टाने चूर हो गईं हैं और जिनसे कुपित सिंहों द्वारा पीड़ित होकर संक्षोभ से अपनी रक्षा के लिये वन गज बाहर निकल गये हैं ऐसे पर्वतों को वानरों ने उखाड़ना शुरू किया। वानर सैनिकों के वक्ष से उठाये गये मध्य-भाग वाले पर्वत तथा पर्वतों के मध्य भाग पर धारण किये गये पहाड़ से वानर, दोनों एक दूसरे से तुलित हो रहे थे। वानरों की भुजाओं से उखाड़ कर उठाये हुए पर्वतों के नत और उन्नत होने के

११ वही ; वही ; २२—२९।

कारण पर्वत के अधोभाग का जो असम तल है उसको प्लावित कर समुद्र भर-भर देता है। वज्र के प्रहारों से आहत, प्रलयकालीन पवनों से टक्कर लेने वाले, कल्प कल्प में अनेक आदि वराहों ने जिनमें अपनी खुजलाहट दूर की है और प्रलय की प्लावित अपार जलराशि को जो रोकने में समर्थ हैं, ऐसे पर्वत वानरों से उखाड़े जा रहे हैं। प्र० भा०। ये चलित होकर पृथ्वी को चलित, टेढ़े किये जा कर टेढ़ी, नमित होकर नमित और और उत्क्षिप्त होकर उत्क्षिप्त करते हैं। प्र० भा०। वानरों द्वारा उखाड़े जाकर नवीन पल्लवों के कारण सुन्दर छाया वाले तथा बादलों के बीच के शीतल पवन से वीजित चन्दन के वृक्ष उसी क्षण सूख रहे हैं। प्र० भा०। और पाताल में भीत हुए निश्चेष्ट जलचर स्थित हैं, अपने ही भार से टूटे पंखों वाले पर्वत गिर रहे हैं, जलराशि आघात से फट गई है और क्रुद्ध होकर सर्प दौड़ रहे हैं। जंगली हाथी, पहाड़ों के गिरने से विचलित, समुद्र की ओर मुख किये हुए तिरछे पर्वतों से हट कर समुद्र में फिसलते हुए, जल-हस्तियों पर आक्रमण कर उनसे प्रत्याक्रान्त होते हुए समुद्र में गिर रहे हैं। उखाड़े हुए पर्वतों के भीतर घूमता हुआ और ऊपर की ओर उछलता हुआ नदी का पानी वानरों के विशाल वक्षस्थलों से अवरुद्ध होकर ज़ोर का नाद कर रहा है। अर्धभाग के उखाड़ लेने पर भूमितल से जिनका सम्बन्ध विच्छिन्न हो गया है ऐसे पर्वतों को जिनके शेष भाग को अधःस्थित सर्प खींच रहे हैं, वानर उखाड़ रहे हैं। वानरों से पर्वतों के पार्श्व की ओर ले जाने पर शिखरों से मुक्त आकाश प्रत्यक्ष हो जाता है और उनके उठाये जाने पर ढक जाता है। कन्धों पर रख कर उठाने के लिये पकड़े हुए पर्वतों के गिरने के भय से टेढ़े किये मुखों वाले वानर पर्वतों को उखाड़ रहे हैं। वानरों के हाथों से खींची जाने पर खुली हुई साँपों की कुंडली में अवलम्बित चन्दन वृक्ष की डालें टूटी होने पर भी आकाश में लटक रही हैं, पृथ्वी पर गिरने नहीं पातीं। जल-भरित मेघ की ध्वनि की तरह गम्भीर, वानरों के बाहुबल की सूचक सी उखाड़े जाते पर्वतों के अनपेक्षित भाग तोड़ने की भीषण ध्वनि आकाश

में उठकर बहुत देर में शान्त होती है'।[१२]

'वानरों की भुजाओं से उठाये गये पर्वत जिधर को टेढ़े होते हैं, धुलते हुए गैरिकों के कारण कुछ ताम्रवर्ण सी पर्वतस्थ नदियों की धारें भी उधर झुक जाती हैं। वानरों द्वारा उखाड़ने के लिए घुमाये गये पर्वत अपनी नदियों के प्रवाहित जल रूपी वलयों के बीच में समुद्र के भँवरों में गिरते हुए दिखाई दे रहे हैं। मकरन्द के कारण भारी पाँखों वाले भ्रमरों के जोड़े, वानरों के उखाड़ने से टेढ़े हुए पर्वतों की वनलताओं के वृन्तों से मुक्त और रसहीन कुसुम स्तवकों को भी नहीं छोड़ रहे हैं। सूर्य्य-किरणों के स्पर्श से पर्याप्त विकसित, सुगन्ध फैलाने वाले मकरन्द से रंगे से, संक्षोभ के कारण बैठी हुई चंचल लीयमान भ्रमरों की अंजन रेखा युक्त कमल समूह, पहाड़ी सरोवरों के जल के उछलने पर स्वयं भी आकाश में उछल रहे हैं। रोष के कारण उद्विग्न सर्पों को विकट और ऊपर उठे हुए फनों से प्रेरित पर्वत, जिनकी दृढ़ता के साथ पृथ्वी तल में घुसी हुई जड़ों को उखाड़ने के अभिप्राय से वानरों ने शिखर पकड़ रखे हैं, टेढ़े होकर गिर रहे हैं। एक दूसरे के प्रवाह में तिरछी होकर गिरती, चलित प्रवाहों वाली क्षुब्ध होने के कारण मटमैली, पर्वतों के तिरछे होने से टेढ़ी हुई नदियाँ क्षण भर लिए के बढ़ जाती हैं। जिनके शरीर के नीचे के भाग हिल डुल रहे हैं ऐसे पहाड़ों की पेंदी में लगे तिरछे, बिलकुल सफ़ेद और काले-काले साँप वानरों द्वारा ऊपर खींचे जा रहे हैं। पर्वतों के आवेग से उखाड़े जाने के भय से वन देवियाँ जिनसे भाग गई हैं ऐसी लताओं के सरस फूल भी गिर रहे हैं और पवन से बिना छुए भी वृन्तों से पल्लव झड़ रहे हैं। जिधर पर्वत उखाड़े जाते हैं, उस ओर की पृथ्वी उस क्षण ध्वस्त दिखाई देती है और जिधर आकाश तल में वानरों द्वारा पर्वत उठाये जाते हैं, उधर दिशा रूपी लता के मेघ रूपी शिखर बढ़ते से दिखाई देते हैं। दोनों हाथों से उखाड़ कर पर्वत को

---

१२. वही ; वही ; ३०–३३, ३५; ३७–४४।

हाथ में लिये वानर ने आधे आकाश को ढक दिया है और आधे पृथ्वीतल को उघाड़ सा दिया है'।[13]

"पर्वतों के अधस्तल में लगे हुए, तल के प्रवाह से अलग होने से क्षीण नदी प्रवाहों के कारण जिनके तट स्पष्ट दिखाई देते हैं ऐसे सर्पराज के फनों से धारण किये हुए पृथ्वी के भाग आकाश में चले जा रहे हैं। कन्दराओं सहित पर्वत चलायमान हो रहे हैं; भय के कारण बिना जल पिये ही हाथी झुंड छोड़ कर तितर बितर हो रहे हैं; गीले और हरितालों से पंकिल तथा वानर समूह से आक्रान्त पर्वत के शिखर कभी टेढ़े और कभी सीधे हो रहे हैं। मलय पर्वत से उठे हुए पवन के वेग से विस्तृत, सूर्य की किरणों को आच्छादित करनेवाली, पहाड़ों के संचलन के कारण वृक्षों की चोटियों से उठी हुई फूलों की धूल सन्ध्या की लाली की तरह आकाश में फैल रही है। पर्वतों की जड़े खींचने के कारण उनके अधस्तलों से उठी हुई जलराशि और मिट्टी के मेल से बने कीचड़ के लगातार ऊपर उठने के कारण उखड़े पर्वत पृथ्वीतल छोड़ते से नहीं अपितु बढ़ते से प्रतीत होते हैं। वानर दर्प से ऊँचे उठ गये से, विन्ध्य के मध्यभागीय और कम्पित हैं पुन्नाग वृक्ष जिनमें, ऐसे सह्याद्रि के तटीय शिला-खण्डों से लद से गये, अतः उन्होंने महेन्द्र से लब्ध शिलाखण्डो को आकाश में डाल दिया और मलय से प्राप्त शिलाखण्डों को पृथ्वी पर डाल दिया। वानरों ने अपने बाहुशीर्षों को पर्वत शिखरों, वक्षस्थलों को उनके मध्य भाग और शरीर के घावों को कन्दरा के समान मापा और पर्वतों को अपने समान समझ कर अपने हाथ के अग्रभागों में उठा लिया। कानों का संचलन जिनका बन्द है ऐसे इधर उधर भटकने से श्रान्त हाथी मुख को तिरछा कर खेद से अपनी सूड़ को फैलाते हुए आँख मूँदे हैं मानों अपने बिछुड़े हुए साथी और साथिनियों का ध्यान सा कर रहे हैं। तलवर्ती भूमि

---

१३. वही ; वही ; ४५–५४।

के फट जाने से टेढ़े हुए महेन्द्राचल के पेड़ तिरछे हो अपने भार से बोझिल हो गिर कर चूर चूर हो रहे हैं और अधित्यका की वनलताएँ उलट कर गिर रही है और उसके फटने के शब्द से भीत मेघ घूम रहे हैं। वानरों की बाहुओं से उखाड़े जाते हुए पर्वतों के शब्द के साथ टूटने का, उनकी मूल में अंकुश की तरह फनों को लगाये हुए सर्पों को भान न हुआ। जिसमें कुछ-कुछ पाताल दिखाई दे रहा है, ऊपर खींचने से त्रस्त होकर जिसके अधोभाग में सर्प घुस रहे हैं और थोड़ा सा पर्वत उठाया गया है जिससे, पर्वतों की अपेक्षा वानरों द्वारा ऐसा पृथ्वीतल ही उखाड़ा जाता सा प्रतीत होता है। पर्वतों के संक्षुब्ध होने पर, नेत्रों के विस्तार में जिनकी उपमा दी जाती है ऐसे भीत मत्स्य प्राणों को छोड़ रहे हैं किन्तु पर्वतीय नदी तट के विवरों को नहीं छोड़ रहे हैं। चाँद से नष्ट हुए तिमिर पटल की तरह, फिसली हुई स्फटिक मणि की शिलाओं से खदेड़े गये से मलय पर्वत के चन्दन वन में विचरण करने वाले भैसों का कहीं अवशेष भी नहीं रह गया। बीच से फटे और उनमें से उखाड़ने के लिये फिर पतित अर्ध भागों वाले पर्वत आधे आधे होकर गिर रहे हैं'।[१४]

'जिस पर्वत का शिखर गिर कर टूट जाता है या बोझिल होकर विदीर्ण हो जाता है उसको उखाड़ कर भी वानर छोड़ देते हैं। प्रा० भा०। पर्वत के उखाड़ने से कुछ क्रोधित नागराज के उठे फनों पर स्थित पृथ्वी ज्यों ज्यों आन्दोलित होती है त्यों त्यों वानरों के देह के भार को सहन करने में समर्थ होती जाती है। बाहों के धक्के से उखड़े तथा कन्धे पर लादने की सुगमता के लिये जिनकी ऊँची-नीची चट्टानें तोड़ दी गई हैं, ऐसे संचालित होते हुए भी स्थिर पर्वत अपने अनावश्यक ऊपर नीचे के भागों से रहित किये जा रहे हैं। वानरों द्वारा उखाड़े गये पर्वतों के नीचे की विवरों से ऊपर को उठा नागराज के

१४. वही ; वही ; ५५—३६।

फण-स्थित मणियों का प्रभाजाल प्रातःकालीन भास्कर के किंचित अरुणिम तथा शुभ्र प्रकाश की तरह जान पड़ रहा है। पर्वतों को उखाड़ते हुए वानरों द्वारा लगता है आकाश ऊपर उठाया गया है, दिशाओं का विस्तार सीमित किया जा रहा है, और पर्वतों के हटाने से भूमितल प्रसारित सा हो रहा है। उखाड़े पहाड़ों के नीचे स्थित विवरों के मार्ग से पैठा सूर्य का प्रकाश समूह निविड़ अन्धकार से मिल कर सघन अँधेरे पाताल को किंचित धवलित धूम की भाँति धूसर बना रहा है। केवल पर्वत के भाव से वानरों ने कैलाश को उखाड़ते हुए, स्वामी के कार्य की सिद्धि की और अपने को अयश से बचा कर यशी भी बनाया। वेगपूर्वक दौड़ने से उत्पन्न पवन से झर गये हैं निर्झर जिनके और जिनका मूल भाग वानरों के अग्रहस्तो पर ले जाया जा रहा है, ऐसे पहाड़ भारयुक्त होने पर भी हल्के हो रहे हैं। पहाड़ उखाड़ने के लिये आकाश से उतरने की अपेक्षा कहीं अधिक शीघ्रता से वानर कलकल ध्वनि के साथ सम्पूर्ण पहाड़ों को लेकर आकाश में उड़ रहे हैं। चंचल तथा उखाड़ने में अभ्यस्त वानरों के द्वारा एक बार के प्रयत्न से ही पर्वत सुदूर आकाश में पाँखों से युक्त हुए से पहुँच जाते हैं। कपिदल द्वारा पर्वतों के उखाड़े जाने से बना हुआ बृहदाकार विवर वाला भूमिभाग ऊपर जाकर ऊँचे-नीचे होते पर्वत तल से टूट कर अलग होकर गिरती और पहाड़ी झरने के पानी से गीली मिट्टी से पहले की तरह भर सा गया है। उखाड़ कर ले जाये जाने वाले पहाड़ों पर स्थित वनों की हरिणियाँ आकस्मिक उत्पात से भीत हो कुछ दूर जाकर फिर मुड़ कर ऊपर देखती हैं; उनकी इस चेष्टा से वन शोभित हो रहा है। उन्मीलित पहाड़ों की नदियाँ अपने आधार से विच्छिन्न हो पर्वतों के उठाये जाने के साथ सीधी गिरती हैं और जब वे आकाश मार्ग से ले जाये जाते हैं तब उन्हीं की तरह नदियाँ भी विस्तीर्ण सी प्रतीत होती हैं। पर्वत की श्रेणियाँ आकाश में छाई हुई हैं; उनकी घाटियों में हरिण आकस्मिक उत्पात से त्रस्त कान उठाये चकित से खड़े ऊपर की ओर देख रहे हैं; उनके शिखरों से मेघ

मुदित हो रहे हैं, भयभीत होकर पक्षी कन्दराओं में लीन हैं और शिखरों पर सूर्य्य के घोड़े दौड़ रहे हैं'।[१५]

§ ६—आगे प्रवरसेन अपनी चित्रों को उद्भासित करने की विचित्र शैली में वानरों के पर्वत लेकर लौटने का वर्णन करते हैं।—'कन्धों पर पहाड़ों को लादे हुए, दाहिने हाथ से शिखरों को थामे हुए और बाँये हाथ से उसका निचला हिस्सा पकड़े हुए कपि समूह सागर की ओर लौट रहा है। प्रस्थान के समय जिनकी भुजाओं से आकाश भर सा गया था, वही आकाश पहाड़ उठाये हुए वानरों के लिये कैसे पर्याप्त हो सकता था। वानर सेना जिन पहाड़ों को ढो रही है, उनके मूल भाग एक साथ उठाये जाने से टकरा रहे हैं और शिखरों के एक क्रम से उद्गत होने से नदियों का प्रवाह परस्पर के टकराने से नीचे नहीं गिरने पा रहे हैं। महीधरों के भार से बोझिल वानर, सागर जैसे उखाड़े पर्वतों के विकट गर्तों को आश्चर्य्य के साथ देख कर तीव्र गति होने पर भी विलम्ब से लाँघ पाते हैं। क्षण भर के लिये मेघ जिनके तट प्रतीत होते हैं, वेग से उठाये पर्वतों के द्वारा विस्तारित तथा बढ़ती हुई महानदियों की धाराएँ आकाश में प्रवाहित सी जान पड़ती हैं। कपियों द्वारा पर्वतों के कम्पित होने पर भी पहाड़ जैसे आकार वाले हाथी आकाश में लीन होते पहाड़ों में अपने विशाल दाँतों को लगाये हुए उनसे अलग नहीं होते। पर्वतों के आघात से जिनके पयोधर कम्पित हैं, और उनके अन्तराल में जिनके कृश मध्य भाग दिखायी देते हैं ऐसी दिशा नायिकाएँ कुसुमों के सुरभित परागों को सूँघ कर निमीलित नेत्रों वाली हो रही हैं। हथेली पर रखे हुए पर्वतों को वानर दूसरे हाथ से स्थिर कर रहे हैं और उन पर नखों से विदीर्ण साँप काँप रहे हैं तथा वेग के कारण उनके शिखर अलग हो रहे हैं। नभ में वेग से उड़ते वानरों द्वारा ले जाये जाते हुए पर्वत के शिखर से स्खलित महानदियों की

प्रत्यावर्तन

---

१५. वही; वही; ६७–७२, ७४–८५।

धाराएँ क्रमशः पीछे आने वाले शैल शिखरों पर प्रवाहित होती हुईं उन पर निर्झरों सी लगती हैं। पर्वतों को लेकर वानर उड़े जा रहे हैं; गति की तेज़ी से उनके वृक्ष उखड़ गये हैं, जिनसे तट-खंडों जैसे बृहत् आकार वाले मेघखण्ड गिर रहे हैं और जिनकी कन्दराओं में घाटी में रहने वाले हाथियों ने, सूर्य्य की प्रखर ताप से पीड़ित होकर आश्रय लिया है। आकाश में वेग से उड़ते वानरों से ले जाये जाते पहाड़ों से ढके होने के कारण जिसका आतप दूर हो गया है, ऐसे मलय पर्वत का ऊपरी तल पर्वतो के छाया-मार्ग के पीछे लगा शीघ्रता के साथ दौड़ता सा जान पड़ता है। वानर सेना कार्य में इस प्रकार व्यस्त है कि सुदूर आकाश से जिन पर्वतों को जिन वानरों ने देखा, वे उन्हें स्थान पर नहीं मिले, जिनको उखाड़ने का विचार किया उन्हें वे नहीं ऊखाड़ सके, और जिन्हें जिन वानरों ने उखाड़ा उन्हें वे समुद्र तट पर नहीं ले जा सके। समुद्र से लगा हुआ वानरों का गति-पथ संक्षोभ के कारण टूटे वृक्षों के खण्डों से व्याप्त और ऊबड़-खाभड़ दूसरे सेतुबन्ध के समान प्रतीत होता है। वेग के कारण तट से सागर की ओर कुछ दूर निकल कर फिर लौटे, तट-भूमि पर उतरे, पर्वत लिये हुए प्रसन्नता से विकसित नेत्रों वाले वानर राम के सामने उपस्थित हुए'।[१६]

सेतु-निर्माण का उपक्रम

§१०—अनन्तर वानर सागर में पहाड़ों को छोड़ कर सेतु-निर्माण का उपक्रम करते हैं।—'उन्होंने तट पर कुछ क्षणों के लिये रख कर'

शैलक्षेपण

फिर आदि वराह की भुजाओं द्वारा प्रलय काल में उठाये हुए पृथ्वी के टूटे खण्डों के से पहाड़ों को समुद्र में छोड़ना आरम्भ किया। दूर से स्पर्श होने के समय कम्पित, गिरने के समय क्षण मात्र के लिये विलुलित तथा डूब जाने पर तट को प्लावित करता हुआ सागर पर्वतों के पात के समय उनसे आच्छादित सा

१६. वही ; वही ; ८६–९६।

दिखाई दे रहा है। आघात से मृत होकर उत्तान पड़े हैं जलचर जिसमें और कल्लोल के अघात से जिसमें खिचे हुए वन चक्कर खा रहे हैं, ऐसा उछलता हुआ अपनी परिधि में आया सागर का जल मलिन हो गया है। पहले गिरे हुए पहाड़ों से उछाले हुए जल में अदृश्य होकर गिर रहे हैं पर्वत जिसमें, इस प्रकार का आकाश और समुद्र का अन्तराल प्रदेश, पुनः जिनके गिरने का भान नहीं होता ऐसे पर्वतों से युक्त होने के कारण पहले के पर्वत से बोझिल सा जान पड़ता है। वानरों ने पर्वतों को अजमाया और फिर उनको गिरा कर सागर को कम्पित किया, जिससे शंभु के हृदय में भय उत्पन्न हुआ। जो पर्वत सागर के बाहर पड़े हैं उनसे जान पड़ता है सेतु बन जायगा, किन्तु उसमें गिरते पहाड़ों का पता भी नहीं चलता! पृथ्वी मण्डल के समान विकट अपने सहस्रों शिखरों से सूर्य्य के रथ के मार्ग को अवरुद्ध करने वाला तुंग पर्वत भी तिमिंगिल के मुख में पड़ कर तृण की तरह खो जाता है। पर्वतों के शिखरों से विविध रत्नों सहित उच्छलित सागर का जल, पात के समय गिरते हुए नक्षत्र-मण्डल जैसा दिखाई देता है। वानरों द्वारा वेग से डाले, अपने वलित निर्झरों से घिरे पर्वत सागर में बिना गिरे ही भँवर में चक्कर खाते जान पड़ते हैं। वानरों से रिक्त शिखर वाले, क्षणमात्र के लिये योजित फिर समुद्र तल पर फेंके गये पर्वत सागर में बाद में गिरते हैं, पहले समुद्र और आकाश के अन्तराल में दूसरे वानरों द्वारा फेंके पहाड़ों से उनका मिलन होता है। पाताल तक गहरे, लम्बे और सीधे, पहाड़ों के ऊपर नीचे के भागों की विषमता से विषम और विकट, तथा वायु से भरे हुए समुद्र के नीचे पर्वतों के प्रवेश-मार्ग में भीषण शब्द हो रहा है। आकाश में निरन्तर एक पर दूसरों के गिरने के कारण टूटे, समुद्र को लक्ष्य कर वानरों द्वारा अंदाज कर फेंके गए और वज्र के भय से उद्विग्न से सहस्रों पर्वत दक्षिण समुद्र में गिर रहे हैं। जिनकी शिलाएँ टूट गई हैं और जो अपने वृक्षों से झरते फूलों के पराग से धूसरित हैं ऐसे पर्वत समुद्र में पहले गिरते हैं; वायु के

आघात से उछलती हुई उन पहाड़ों की महानदियों की धाराएँ बाद में गिरती हैं। निर्मल सलिल में जिनकी गति अलग-अलग तिरछी जान पड़ती हैं ऐसे निश्चल भाव से स्थित, वानरों से देखे जाते हुए पर्वत बहुत देर बाद जल में विलीन होते हैं। फेन रूपी फूलों के भीतर से निकले हुए केशर जैसे आकार के चंचल किरणों वाले तैरते हुए रत्न पर्वतों के आघात से समुद्र के मूल के क्षुभित होने की सूचना दे रहे हैं। सागर वेला की तरह पृथ्वी को कँपाता है, समय जान कर पर्वत समूह को चूर-चूर कर रहा है, भय की भाँति आकाश को ग्रहण कर रहा है और क्षुब्ध न होने के स्वभाव की भाँति पाताल छोड रहा है। सागर में पर्वत तिरछे होकर गिर हैं और उन पर वृक्षों की जटाएँ शाखाओं के बीच लटक रही हैं, शिखरों पर लटके मेघ उनके अवनत होने से मूल की ओर से आकाश की ओर उड़ रहे हैं तथा उनके निर्झर अधोमुख होने से आन्दोलित हो रहे हैं'।[१७]

'अव्यवस्थित रूप से गिरते हुए पर्वतों से उछले हुए जल से उत्पन्न अंधकार में तिरोहित होकर गिरते पर्वतों का पता समुद्र की भीषण प्रतिध्वनि से मिल रहा है। उछलते जल से जिनके कंधे के बाल कुछ-कुछ धुल गये हैं और जिनके मुख पर लगी हुई पर्वतीय गैरिक आदि धातु पाताल से उठी हुई उमस से निकले हुए पसीना से पंकिल हो गई है तथा जो पर्वतों के फेंकने से उच्छ्वसित हो रहे हैं ऐसे वानर पीछे हट रहे हैं। झरनों के झर जाने से हल्के हुए परन्तु वायु से कम्पित वृक्षों से बोझिल शिरोभाग वाले पर्वत उसी ओर से समुद्र में गिर रहे हैं। डूबे हुए पर्वतों के मार्ग में जलराशि के फट कर मिल जाने से फूल एकत्र हो रहे हैं, मद से सुगन्धित हाथियों द्वारा तोड़े वृक्षों के खंड तैर रहे हैं और वह हरिताल से पीला पीला हो गया है। पर्वत शिखर से अलग हुए जल में किंचित डूब कर चक्कर खाते हुए क्रोध से लाल हुई आँखों को इधर-

१७. वही, आ० ७; २–१८।

उधर फेरते हुए जंगली भैंसे डूब रहे हैं। प्र० भा०। अपनी दाढ़ों से समुद्री हाथियों के मस्तक फोड़, मुक्ता मिश्रित रक्त से मुख रूपी कन्दराओं को जिन्होंने भर लिया है ऐसे पहाड़ी सिंह उनकी सूँड़ों से दृढ़ता से खिंचते हुए विवश गरज रहे हैं। गिर रहे पहाड़ों के संभ्रम से क्रुद्ध होकर उलट दिया है जल के हाथियों को जिन्होंने ऐसे बनैले हाथी, बीच में आ गये घड़ियालों के द्वारा निर्दयता के साथ अंगों के विदीर्ण किये जाने पर गिर कर डूब रहे हैं। डूबे पर्वत की कन्दरा के मुख में घुसती हुई आवेष्टन में समर्थ लहरें, प्रवाल रूपी पल्लवों के कम्पन के साथ, वन-लताओं के समान वृक्षों पर फैल गईं। उखाड़े जाकर भूमि भाग से समुद्र के जल में गिरते हुए पर्वत व्यवधान रहित और शब्दायमान पाताल को गिरने के साथ ही उखाड़ सा देते हैं। वेग से गिरने के कारण चक्कर काटते हुए, कल-कल ध्वनि के साथ घूमती हुई निर्झरावली से आवेष्ठित, चंचल मेघों से आच्छादित और वक्र लताओं से आलिंगित पहाड़ फिर रहे हैं। अपनी भुजाओं द्वारा फेंक कर पर्वत की शिलाओं को जिन्होंने तोड़ दिया है, आकाश में उच्छलित जल से ढँके से और अपने कंधे के बालों को कँपाने वाले वानर क्रमशः आ आ कर निकल जाते हैं। बार-बार पर्वतों के आघात से उत्क्षिप्त समुद्र-जल से खाली और भरा हुआ पताल नभस्तल की तरह और नभस्तल विकट उदर वाले पाताल की तरह प्रतीत होता है। संक्षोभ से भूमि के विदीर्ण होने से जल बह जाने के कारण, जिनकी घाटियों के कमल-वन सूख रहे हैं और जिनके व्याकुल हाथियों द्वारा अवलम्बित शिखर टूट रहे हैं, ऐसे पर्वत सागर में गिर रहे हैं।'[१८]

'सागर गिरि आघात से आहत होकर भीषण ध्वनि करता है, तट को प्लावित करता है, फिर ऊँचे-नीचे भागों में गिर कर चक्कर लगाता है; इस प्रकार वह अमृत निकलने के अन्तर को छोड़ कर मंथन के समय

१८. वही; वही; १९, २५–३२।

का हो रहा है। उखाड़ कर जिसमें पर्वत गिराये गये हैं, जिसके विषय में इस प्रकार की शंका है कि बाँधा जा सकेगा या नहीं, ऐसा समुद्र गरज रहा है; जिसमें इस प्रकार का लंका जाने का उपाय भी दारुण है फिर वैसे जाने की क्या बात ? पतन के वेग से चूर हुए, आकाश में चक्कर काटते, चमचमाती सुवर्ण शिलाओं से आवेष्टित और फूलों के पराग से ढँके हुए, वानरों द्वारा उखाड़े पर्वत सागर में लीन हो रहे हैं। पवन से बढ़ा दिये गये हैं वृक्ष जिनके, कन्दराओं से उत्थित पवन के वेग से जिनके निर्झर उत्क्षिप्त हैं ऐसे पर्वत समुद्र में गिर रहे हैं और गिरने के समय करियों का कल-कल बढ़ रहा है तथा बढ़ते हुए वड़वानल से सागर भी नत-उन्नत हो रहा है। नदियों के जल में रहने वाले मत्स्य सुदूर आकाश से समुद्र में गिर कर अपरिचित जल के कारण तट की ओर लौटते हैं, वहाँ मृदित हरिचन्दन से युक्त जल पीकर प्रसन्न हो चतुर्दिक फैल जाते हैं; पर अच्छा जल न पाकर अनिच्छा से प्रस्तुत जल का पान करते हैं। पर्वत समुद्र में गिर कर नष्ट हो रहे हैं, वे सर्पों के फनों की मणियों की प्रभा से किंचित ताम्रवर्ण के हैं, संघर्ष के कारण उनके विकट अधोभाग टूट रहे हैं, वृक्ष समूह से वे हरे लगते हैं और उनकी कन्दराएँ सूर्य्य प्रकाश से रहित हैं। पर्वतों के पतन वेग से समुद्र के जल के उछलने पर हठात् खसकना आरम्भ करने वाले तथा अकस्मात् असंतुलित हुए पृथ्वीतल को, शेषनाग तिरछे होकर धारण कर रहे हैं। पर्वतों ने वज्र के भय का, वसुमती ने आदि-बराह के खुर से प्रेरित होने तथा समुद्र ने मथन की आकुलता का साथ ही साथ स्मरण और साथ ही साथ विस्मरण किया। मलय पर्वत के लता कुंजों को धारण करता हुआ, अपने मथित होने के दुःख का स्मरण करता हुआ सा सागर, जिसको रावण के अपराध के कारण आपत्ति का सामना करना पड़ा है, पर्वतों के शिखरों से आहत होकर कराह रहा है। पहाड़ों के पानी में डूबने पर, आघात से चूर प्रवालों से लाल-लाल सा हो उठा, गिर कर चूर्ण होने पर उठा हुआ धातु-रज की तरह शीकर रूपी

रज का समूह ऊपर फैल रहा है। गिरि-शिखरों से संक्षुब्ध कल्लोल युक्त तट वाला, गलित धातु से शोभित ताम्र सा कान्तिमान्, घिसे चन्दन तथा मनसिल आदि के रस से स्वाभाविक जलराशि की अपेक्षा कुछ भिन्न रंग का, पर्वतों की कन्दरा आदि गहरे स्थानों में प्रवेश करता हुआ समुद्र का जल घोष कर रहा है। गिरते पहाड़ों से खिसक कर सागर जल में गिरते, जिनकी डालों की पत्तियाँ आघात से उछाले पानी में मिली हुई हैं, ऐसे हल्के वृक्ष बिना खींचे ही तरंगों द्वारा उछाले जाकर आकाश तल में लग रहे हैं। राम के अनुराग से रावण के प्रति क्रुद्ध, जिन्होंने अपने उज्ज्वल दाँतों से अपने ओठों को काट लिया है, आकाश में अपने गमन वेग से मेघों को फैला कर जिन्होंने छिन्न-भिन्न कर दिया है, और जिनसे अप्सराएँ भयभीत हो गई हैं ऐसे पर्वतधारी कपियों से सागर का जल छिन्न किया जा रहा है। वायु से जिसकी कन्दराएँ पूरित हैं, जिसका शिला निवेश पवनसुत से आक्रान्त होकर ढीला हो गया है और जिसकी चोटियों के निर्झरों में इन्द्रचाप बन गये हैं ऐसा महेन्द्र पर्वत का खंड समुद्र में गिर रहा है।'[१९]

'गगन में शैलाघात से उछाले जल से पूरित, बादलों की गर्जन से व्याप्त, कन्दल नामक वृक्षों से युक्त, लता गृहों को धारण करता हुआ शिखर गिर कर क्या अनेक टुकड़ों में बट नहीं जाता? गिरि के आघात से जल के ऊपर आये हुए मकरों से विषम रूप से काटे गये, फेन में मिले हुए चमरी गायों की पूँछों के निचले बाल घावों से बहते रक्त के कारण विभक्त जान पड़ते हैं। सिद्ध लोग भय से संभोग-प्रक्रिया से गीले अधोभाग वाले लतागृहों को छोड़ रहे हैं, पहाड़ी नदियों का जल इधर-उधर बिखर रहा है और पहाड़ों के गिरने से समुद्र का पानी चारों ओर फैल रहा है। जिसमें यूथपति ने जल-सिंह का आक्रमण रोका है और विकल कलभ उठाये जा रहे हैं, सूँड़ों को ऊपर उठाये ऐसे हाथियों के यूथ

१९. वही ; वही ; ३३–४६।

विकट भँवर के मुँह में पड़ा चक्कर खा रहा है। सामने गिरे गिरि शिखरों के आघात से आन्दोलित, पवन द्वारा तरंगों में चंचल बनाई गई नदियों को देख कर ही, राम विरह से पीड़ित होते हैं। जिसके विद्रुम जाल कुछ झुलस गये हैं, जिसमें बाण के घात की ज्वाला से शंख काले-काले हो गये हैं और जो पाताल तल में लगे राम के बाणों की पाँखों को ऊपर ले आया है ऐसा जल-समूह सागर के तल से ऊपर उठ रहा है। जिसमें भयभीत जलचर निश्चेष्ट होकर पड़े हैं, अपने ही भार से टूटे पंखों वाले पर्वत हैं तथा क्रुद्ध होकर साँप दौड़ रहे हैं और जिसकी जलराशि पहाड़ों के आघात से फट गई है ऐसा पाताल साफ़ दिखाई दे रहा है। गिरि-पात से आन्दोलित समुद्र की ओर मुख किये हुए, फिर तिरछे पर्वत से बिछल कर फिसले हाथी जल-हस्तियों पर टूटते हुए और उनसे प्रत्याक्रान्त होते हुए जल में गिर रहे हैं। वानरों द्वारा वेग से फेंके गये विशाल पर्वत उतनी जल्दी रसातल के मूल में नहीं पहुँचते, जितनी शीघ्रता के साथ अपने गिरने से उछाले गये सुदूर आकाश में पहुँच कर नीचे गिरे जल के भार से प्रेरित होकर। पर्वत के आघात से उछल कर, जिनमें उत्तान और मूर्च्छित महामत्स्य हैं ऐसे तटवर्ती पर्वतों से प्रतिहत होकर उन्हीं के वृक्षों को उखाड़ने वाले, समुद्र के जल-कल्लोल आकाश में बड़ी दूर तक ऊपर उठते हैं। जल में आधे डूब चुके अस्थिर हाथियों के झुंड के भार से बोझिल शिखर के कारण विह्वल, पर्वत की कन्दरा से निकल कर आकाश मार्ग से ऊपर को जाते हुए सुर-मिथुन, उस डूबते पर्वत के जीव जैसे लगते हैं। वानरों की भुजाओं ने पर्वतों को, पर्वतों ने वृक्षों को और वृक्षों ने मेघों को धारण कर रखा है, यह दृश्य देख कर सन्देह होता है कि ये वानर समुद्र में सेतु बाँध रहे हैं या आकाश को माप रहे हैं'।[२०]

'वेग के साथ गिर रहा है एक-एक पर्वत जिनमें और जिनसे

---

२०. वही ; वही ; ४७–५८।

मणियों की शिलाएँ तिरछी तथा कम्पित होकर गिर रही हैं, ऐसे पर्वत समूह सागर में गिर रहे हैं। उनसे उछाले जल के तटाघात से कम्पित पृथ्वी के आघात, पृथ्वी के भार से बोझिल महासर्प के टूटे फनों की संपुट जिसमें खुल गया है ऐसे रसातल को पीड़ित कर रहे हैं। मृदित मैनसिल से युक्त तट वाले पर्वत के स्पन्दन से अरुणिम सागर का जल जो नष्ट हो रहा है, वह अभिमानी रावण द्वारा बल पूर्वक ले जायी जाती हुई जानकी के अश्रुपूर्ण नेत्रों से देखने का दारुण फल है। गिराये पर्वतों से आहत रत्नों में श्रेष्ठ मणियाँ समुद्र के अधस्तल में चूर-चूर हो रही हैं, और बादलों के घेरे से हीन आकाश तल पर्वतीय वनराजि के कांचीदाम जैसी हंस-पंक्तियों से भर रहा है। पाताल शब्दायमान हो रहा है; पर्वतों के आघात से पृथ्वी फट रही है; चोट खाकर बादल छिन्न-भिन्न हो रहे हैं; वानर दूसरे वानरों से गिराये हुए पर्वतों के ऊपर गिरने के भय से दूर हट रहे हैं; पर्वत गिराये जा रहे हैं; समुद्र गिरते पहाड़ों की चोट खाकर पीड़ा से देर तक चक्कर सा खाता है; आघात से फूटी सीपियों के मोती विद्रुम जालों में लग कर समुद्र में गिरे वृक्षों की शाखाओं में लगे पल्लव युक्त फूल जैसे जान पड़ते हैं। क्रोधित हाथियों से मर्दित, निरन्तर मधुर गन्ध रूपी यौवन जिनसे निकलता है, ऐसे अप्सराओं सहित डूबे पर्वतों के वनों की, कुसुम-पराग समूह रूपी ध्वज सूचना सी देता है। वानर लाते हैं, आकाश प्रसारण में समर्थता दिखाता है, समुद्र अपने हाथों अर्पित करता है और पृथ्वी भी देने में मुक्तहस्त है, फिर भी पाताल का विकट उदर पर्वतों से भरता नहीं। वानर सागर को क्षुब्ध कर रहे हैं, उसमें थोड़े डूबे गिरि-शिखरों की बावलियों के कीचड़ में जंगली भैंसे आनन्दित हैं, वहाँ वृक्षों से प्रवाल जाल मिल रहे हैं, स्थल जीवों से जल-जीव मिल रहे हैं और वह डरावने घड़ियालों का घर है। सागर में बनैले हाथी की गन्ध पाकर जल-सिंह क्रुद्ध होकर जँभाई लेता हुआ उठ रहा है और सामने गिरते पर्वत के भय से त्रस्त होकर हटते भुजगेन्द्र के वेग से भँवर उठ रहे हैं। सागर में

डूबते हुए वन के सूखे पीले-पीले पत्ते बिखरे पड़े हैं और भंग किये हुए मदन वृक्ष से निकले कसैले रस से मत्स्य मतवाले और व्याकुल होकर इधर-उधर उलट-पुलट रहे हैं। वानरों से क्षुब्ध सागर में पर्वतों के भार से प्रेरित, पल्लवों के दलन से अल्पकाय चपल लता-जाल है और वृक्षों के फूल विषधर रूपी नवीन आतप से मुर्झा कर काले हो रहे हैं। ऐसे सागर में भँवरों में चक्कर खाते हुए गिरि-शिखरों के निर्झरों के जल के उछलने से आकाश में अन्धकार फैल गया है और पर्वतीय वनों की औषधियों की गन्ध से पीड़ित होकर व्याकुल सर्प पाताल से उछल कर ऊपर आ रहे हैं। आवर्तों में चक्कर काटते पर्वतों के मध्य भागों की प्रभा से घूमते हुए से, किन्तु पाताल से निकले सर्पों की फणि-मणियों की प्रभा से पृथक् प्रतीत होते समुद्र को वानर क्षुब्ध कर रहे हैं। निरन्तर गिरते हुए, अन्तरहीन आयास से घटित सेतुपथ आकाश में तो निर्मित सा परन्तु सागर में पड़ कर विलीन सा हो रहा है'। [२१]

सेतु-पथ निर्माण

§ ११— आठवें आश्वास के प्रारम्भ में प्रवरसेन सागर को शांत होते चित्रित करते हैं। 'पर्वत के गिरने से छिन्न-भिन्न तथा क्षुब्ध सागर, जिसके आवर्तों में पर्वत खण्ड-खण्ड होकर घूम रहे हैं, उछले हुए जल के पुनः वापस आने से फिर लौट कर पूर्वावस्था को प्राप्त कर रहा है। प्रशान्त कल-कल वाले, गिरि-पात के शान्त हो जाने पर, छोटे पर्वतों वाले तथा क्षण मात्र के लिये भीषण आकार धारण करने वाले समुद्र के जल में स्थिर पहले जैसी स्थिरता है। इस प्रकार शांत होते जल में मुक्तास्तबकों से धवल फूल मिल रहे हैं, मरकत मणियाँ और टूटे पत्ते साथ-साथ घूम रहे हैं और आवृत्तों वाले जल में विद्रुम के साथ पल्लव और धवल शंखों जैसे कमल मिल रहे हैं। क्षोभ के समय नीचे गये किन्तु शान्त होने पर ऊपर तल पर

सागर का शांत भाव

२१. वही; वही; ५९–७०।

उतराते हुए फूलों से युक्त, डूबते सूर्य की तरह किंचित लाल समुद्र तल पर प्रसृत गैरिक पंक की आभा धीरे-धीरे विलीन होती सी दिखाई दे रही है। बनैले हाथियों की गन्ध पाकर ऊपर को उठे हुए जल हाथी, आतप से पीड़ित हो, अपने सूड़ों से उठाये जल-कणों से आर्द्र कर मुख-मंडल को शीतल कर रहे हैं। गिरि तरुओं की शाखाओं आदि से आकुल और उनके कसैले रस से अलग रंग वाले, नदियों के मुहाने ऊपर को प्लावित और पुनः समुद्र में प्रविष्ट जल-राशि से मलीन हो रहे हैं। गिरे हुए पहाड़ों से आन्दोलित सागर द्वारा इधर-उधर फेके गये मलय खंड, महेन्द्र के तटों में और हाथियों को कुचलने वाले महेन्द्र पर्वत के खंड, मलय के तटों में जा लगे हैं। विस्तृत और धवल, जिनके ऊपरी भाग शांत तथा ठहर ठहर कर तट प्रदेश की ओर से लौटती जल तरंगों से नत-उन्नत हो रहे हैं और जहाँ अविरल रूप से मोती आ लगे हैं, ऐसे समुद्र तट वासुकि नाग के केंचुल जैसे भासित हो रहे हैं। पर्वत के आघात से उछला हुआ, आश्चर्य से देखा जाता हुआ, आकाश मार्ग से नीचे गिरता हुआ जलसमूह आन्दोलित होकर शान्त हुए समुद्र को क्षुब्ध कर रहा है'।[२२]

§ १२—अनन्तर प्रवरसेन सेतु-निर्माण के समय की विचित्र परिस्थिति की उद्भावना अपनी कल्पना शक्ति के विचित्र संयोगों द्वारा करते हैं। चित्र को परिस्थिति के अनेक छायाताप में प्रस्तुत करने में प्रवरसेन की प्रतिभा अद्वितीय है। और इन स्थितियों में विचित्र सजीवता और गतिशीलता है।—'वानर सेना देख रही है कि नल द्वारा समुद्र तट पर स्थापित किये पर्वत मानों लंका के अनर्थ के लिये सेतु का मुख हो। नल द्वारा डाले हुए पहाड़ों की चोट से उछलते हुए जल वाला सागर, इस प्रकार भ्रमित हुआ कि उखाड़े पर्वतों की धूल से मलिन दिशाओं के मुख एक साथ धुल उठे। पानी से

कार्यारम्भ

२२. वही; आ० ८; ४-१२।

गीले होकर जुटते हुए और जिनके जोड़ का पता नहीं लगता, ऐसे पर्वत समुद्र की आडोलित जल-राशि से आहत होकर भी दृढ़ता से जुटे होने के कारण एक दूसरे से अलग नहीं होते। उनमें जल की धार उलट कर बह रही है और वेला तट पर पड़े पहाड़ों से अवरुद्ध नदियों के मुहाने उनके बाहर निकलने के मार्ग बन गये। वानरों द्वारा शिखरों को नीचे करके छोड़ने पर भी, मूल भाग भारी के होने कारण, पर्वत उखाड़ने की पूर्व स्थिति में होकर नल के मार्ग में गिरते हैं। मुख से पूर्ण दृढ़ता के साथ ग्रसित कुम्भ-स्थलों पर जिनके केसर बिखर रहे हैं और जिनके नखों के अग्र भाग प्रहृत कुम्भ-स्थलों में ही गड़े हैं ऐसे पहाड़ी सिंह जल के हाथियों की सूड़ों से प्रहृत होकर उनपर प्रहार कर रहे हैं।। जल-हाथियों के मद की गन्ध पाकर उनकी ओर सूँड़ फैलाते हुए बनैले हाथियों के सूड़ों को जल-हस्तिन काट लेते हैं और वे गिर पड़ते हैं, फिर भी क्रोधोन्मत्त होने के कारण उन्हें उनके कटकर गिरने का भान घावों पर समुद्र के खारी जल के पड़ने पर होता है। सेतु के कुछ बन जाने पर वानर उड़कर भागने की चेष्टा करने वाले पर्वतों को उनके पंखों को दोनों हाथों से पकड़ कर खींच रहे हैं। उस समय ऊँचे-नीचे उछलते हुए कन्धे के केसर वाले, पार्श्व भाग से कन्धे के समीप प्रसरित हाथ से वानरों द्वारा गिराये हुए पर्वतों को ले-ले कर नल शीघ्रता और तल्लीनता से सेतु को बाँध रहे हैं। गिरते हुए अनेक पहाड़ो से क्षुब्ध सागर में प्रकट हुए पृथ्वीतल के भीषण विवर को एक सम्यक् स्थिति पर्वत ही विस्तार की अधिकता से मूँद देता है। वानर जिन-जिन पर्वतों को सागर के तल में स्थापित करते है, नल उन पर चरण रख कर आगे सेतुपथ को बाँधते जाते हैं। वानरों द्वारा एक साथ अनुपयुक्त स्थानों पर गिराये हुए पहाड़ों को ले-लेकर नल उपयुक्त स्थानों पर रखते जाते हैं और जोड़ते जाते हैं। नल द्वारा जोड़े हुए पर्वतों को सागर स्थिर करता है तथा वानरों द्वारा अनुपयुक्त स्थानों पर डाले गये पर्वतों को अपनी तरंगों से उचित स्थानों में जोड़ देता है और बने हुए सेतु के आगे उछलता हुआ

बढ़ जाता है। सूर्य्य के रथ के चक्के से घिसी हुई ऊँची चोटी वाले जिन पर्वतो को हनुमान ले आते हैं, नल उन-उन पहाड़ों को बायें हाथ से ले-ले कर सेतुपथ में जोड़ते जाते हैं। समुद्र की सेवा में लगे शैवाल युक्त शिखरों वाले पाताल के पर्वत किंचित निर्मित सेतुपथ से सम्बद्ध और जिनके ऊपर के भाग विकसित कमलों वाले सरोवरों से शोभित हैं ऐसे पर्वतों को धारण कर रहे हैं। जाकर लौटी हुई जल-राशि के वेग से कम्पित, समुद्र तट की तरंगों के आने-जाने से फैलती और सिमटती शाखाओं वाली वन श्रेणी आन्दोलित हो रही है'।[२३] प्रवरसेन के के समस्त वर्णनों में सजीव चित्र उपस्थित करने की अद्भुत शक्ति है।

कवि स्थितियों की अद्भुत पर साथ ही सजीव कल्पनाएँ करता है।—'सागर के क्षोभ से उद्विग्न जंगली हाथियों की सूड़ों से उछाले गये, जल हाथियों के दाँतों में लोहे के कड़ों के समान लगे हुए विशाल-काय समुद्री सर्प गिर रहे हैं। पहाड़ों के गिरने से प्रेरित सागर का जो कल्लोल पहले लौटता है, वही दूसरी ओर के टेढ़े हुए सेतुपथ में जोड़े पर्वत को अपने आघात से सीधा कर देता है। क्षुब्ध सागर में डूबते हुए, अखंडित मद-धारा वाले, पहाड़ी जंगलों के मतवाले हाथी पैरों में उलझे समुद्री साँपों को बंधन की तरह तोड़ रहे हैं। मिले हुए रत्नों की आभा से उज्ज्वल, वृक्षों के रस से हरित और किंचित स्फुटित मरकत शिलाओं से युक्त, शंखों के चूर्ण से श्वेत हुआ फेन इधर उधर चालित हो रहा है। सेतु में जोड़े जाते पर्वतों से समुद्र जितना क्षीण होता है, नीचे से निकलती हुई जलराशि से पूर्ण होकर उतना ही उछलता है। भूकम्पों ने नदियों के मुहाने को छिन्न भिन्न कर दिया है, शिथिल हुई मूलों वाले पर्वतों के शेष भाग अपने स्थान से उनसे खिसक रहे हैं और उन्होंने दक्षिण समुद्र की भाँति अन्य समुद्रों को भी आन्दोलित कर दिया है। वानर सेना को क्षण भर के लिये सुखी करने वाला सेतुपथ एक ओर

---

२३. वही ; वही ; ३०—४५ ।

समुद्र के जल में उठा हुआ है; एक ओर पर्वत गिराये जा रहे हैं और दूसरी ओर रसातल भर रहा है। पहाड़ों के गिरने से सागर का जल दो भागों में विभक्त होता है, और उससे सेतुपथ निर्मित हुआ सा जान पड़ता है, फिर समुद्र के जल के लौट आने पर वही थोड़ा सा बना प्रतीत होता है। पाताल भर गया, किन्तु कुपित दिग्गजों के गमन में बाधा उपस्थित करने वाले तथा सागर को विश्राम देने वाले अत्यन्त गहरे महावगाह के चरणों के खुर पड़ने से बने विकराल अवकाश (गड्ढे) अब भी नहीं भर सके। गैरिक तटों के पतन से सुन्दर पल्लव जैसी लाली वाला, भँवरों में भ्रमित होकर टूटे हुए वृक्षों के खंडों से कसैला और सुगन्धित, पहाड़ों से मथा जाता सागर का जल समूह ऐसा लगता है मानों उससे मदिरा निकल रही हो। समुद्र इधर-उधर पहाड़ों को ज्यों ज्यों अपनी तरंगों से चालित करता है त्यों-त्यों शिखरों के चूर्ण से विवरों के भर जाने से सेतुपथ स्थिर होकर दृढ़ हो रहा है। वानरों की शीघ्रता तथा नल के रचना कौशल से कुछ पता नहीं चलता—सेतुपथ कहीं आकाश से बनकर तो नहीं गिर रहा है? मलय से पहले बना तो नहीं खींचा जा रहा है? समुद्र के जल पर तो उत्पन्न नहीं हो रहा है? और रसातल से बना बनाया तो नहीं निकल रहा है? आकाश में सागर का उछला हुआ पानी और रसातल के जल में नभ दिखाई दे रहा है, परन्तु आकाश, जल और रसातल में सर्वत्र पर्वत सामन रूप से दिखाई दे रहे हैं। वेला रूपी अलान से बँधा हुआ समुद्र रसातल स्थित सेतु को इस प्रकार चालित कर रहा है जिस प्रकार हाथी अपने खूँटे को हिला देता है। कपियों से दृढ़ता के साथ जैसे जैसे पर्वत प्रेरित होते हैं, वैसे वैसे क्षुब्ध जल-राशि से आर्द्र होकर विस्तारहीन हो एक एक से जुटते से जाते हैं'।[२४]

§१३—'प्लवगों के हाथों से पर्वत सागर में गिर रहे हैं, उनसे रत्न बिखर रहे हैं और किन्नरगण भय से व्याकुल हो कर खिसक रहे हैं।

---

२४. वही ; वही ; ४६–६०।

क्षुब्ध सागर नदियों को तीव्र भय से मुक्त कर दैन्य के साथ नहीं वरन् ज़ोरों से गर्ज रहा है। सागर आकाश में उछलता हुआ पर्वतीय मणि शिलाओं की आभा से भास रहा है, गिरते हुए पंकिल पहाड़ों को जैसे धो रहा है और लौट कर रुद्ध सा, वह गिराये हुए पर्वतों के अन्तर्निविष्ट हो जाने पर दलित होकर जुटता हुआ सा जान पड़ता है। सेतुपथ के समीप गिरने वाले पहाड़ों से व्याकुल, क्षुब्ध सागर के जल में निवास करने वाले जल के हाथियों तथा पर्वत पर रहने वाले मद की गंध से क्रुद्ध वन गजों के समूह एक दूसरे पर आक्रमण कर रहे हैं। टक्करों से वृक्षों को उखाड़ने वाली, देर तक सेतुपथ के पार्श्वों को परिघृष्ट करने वाली, धातुओं के सम्पर्क के रूपान्तर को प्राप्त सागर की तरंगें समुद्रतल से ऊँची उठकर (पथ के नीचे) विलीन हो जाती हैं। सेतुपथ पर गिरने के भय से कातर नेत्रों वाले हरिण, नल और सागर को एक ही भाव से देखते हैं। अभिघात से स्खलित सागर का जल पर्वतीय नदियों के प्रवाह का अतिक्रमण करता हुआ मानों वानरों की कल कल ध्वनि को पाकर उमड़ रहा है। नल रचित सेतुपथ को वानर दृढ़ कर रहे हैं। इसकी उच्चता सम्पूर्ण पृथ्वी तल से पहाड़ों को उखाड़ कर निर्मित की गई है और अपनी छाया से इसने समुद्र की उज्जवल जलराशि को श्यामल कर दिया है। इसके शिलातलों के टेढ़े होकर लगे दृढ़ आघातों से महामत्स्यों की पूँछें कट गई हैं और इसकी शिलाएँ बीच से कटे साँपों के आभोगों से ज़ोरों से कस जाने से विदीर्ण हो गई हैं। सेतुपथ में पहाड़ों के उखाड़ने के उत्पात के समय पकड़ कर छूटे हुए वनराजों के पीछे सिंह लगे हैं और यह पथ गिरि शिखर पर स्थित, ले आये हुए अन्य पर्वतों से प्रेरित शब्दायमान मेघों से घुल रहा है। यहाँ क्षोभ के कारण उलट कर गिरे बनैले हाथियों से रुद्ध निर्झर का जल दो धाराओं में होकर बह रहा है और पर्वतों के बीच में चन्दन वन के कारण मलय के शिखर खण्ड की स्थिति का अनुमान होता है। नल द्वारा

कार्य की पूर्णता

बनाये जाते सेतुपथ में सागर की तरंगों से आहत होकर काँपती हुई लताएँ वृक्षों पर लटक रहीं हैं और शिखरों के बीच में समुद्र का जल चपल हो रहा है। सेतुपथ अपने आप विस्तृत हो रहा है, पर्वतों के आघात से सागर काँप रहा है, कल-कल ध्वनि से दिशाओं को प्रतिध्वनित करते हुए वानर, सेतु-मार्ग पर सुवेल के ऊपरी भाग को देख कर हर्षातिरेक से शोर मचा रहे हैं। समुद्र की द्विधा विभाजित जल-राशि में सेतुबन्ध से आक्रान्त, घबराहट के साथ खींचने के कारण खंडित, भय से उद्विग्न हो भागने ही वाले पर्वतों के पक्ष दिखाई दे रहे हैं। महीधरों के आघात से क्षोभित जल से क्षत और विघटित मूल वाले पर्वतों के थोड़ा-थोड़ा खिसक जाने पर प्लवंग उन्हें फिर मज़बूत कर रहे हैं। उदधि को आक्रान्त कर सेतुपथ ज्यों-ज्यों दूसरे तट के समीप होता जाता है, त्यों-त्यों पानी कम होने से अधिक उछल रहा है। महीधरों के प्रहार से जो जल-समूह सेतुपथ पर गिरते हैं, वे उस पर स्थित वृक्षादि से टकरा कर टेढ़े मेढ़े हो महानदियों के प्रवाह जैसे बन जाते हैं,।[२५] कवि के ये वर्णन संश्लिष्ट प्रत्यक्ष और सजीव हैं।

सेतुपथ

§ १४—'एक ओर से दूसरी ओर दौड़ते तिमियों से पूरा हो गया है शेष भाग जिसका, ऐसा सुवेल पर्वत के तट से लगा हुआ सेतुपथ पूर्ण होने की शोभा को प्राप्त हुआ। अव्यवस्थित रूप से लगे विशाल पर्वतों को जब नल सेतुपथ में उचित रीति से न्यस्त करने के लिए आवश्यकता अनुसार इधर उधर उठाने लगे तब समुद्र समूची पृथ्वी को प्लावित करके अपने स्थान को लौटाता है। सेतु के निर्माण कार्य को समाप्तप्राय जान हर्षित वानरों द्वारा डाले गये पर्वतों के आघात से ऊँचा-नीचा होता हुआ समुद्र, सेतुपथ और सुवेल के उमड़े हुए नदी प्रवाह की तरह जान पड़ता है। वानर जिस-जिस प्रकार सेतुपथ के अग्रभाग को बनाते

---

२५. वही; वही; ६१—७५।

जा रहे हैं, वैसे समुद्र की जलराशि की भाँति रावण का हृदय फटता सा जा रहा है। पाताल में जिसका मूल स्थित है तथा अविरल रूप से पूर्ववत् जिसके निर्झर प्रवाहित हो रहे हैं ऐसा सुवेल पर्वत बिना स्थानान्तरित हुए भी सेतुपथ के मुख में पड़ गया। सेतुपथ के आरम्भ होने पर पूर्ण, किंचित निर्मित होने पर अवशिष्ट भाग भय के कारण विसदृश तथा समाप्त होने पर दो भागों में विभाजित समुद्र, कई रूपों में भासित हुआ। मलय के तट से प्रारम्भ, चलते वानरों के भार से नत, समुद्र की तरंगों से अन्दोलित विस्तृत सेतुपथ वृक्ष द्वारा धारित वृक्ष की भाँति त्रिकूट द्वारा स्थिर हो रहा है। सेतु महापथ से जिसके पूर्वी और पश्चिमी दो भाग अलग कर दिये गये हैं और जिसके दोनों पार्श्व नत हो रहे हैं, इस प्रकार बीच में उठा हुआ सा आकाश नमित सा हो रहा है। आकाश के समान विस्तृत, मलय और सुवेल के तटों से लगा हुआ समुद्र की जलराशि पर सेतुपथ उदयाचल से लेकर अस्ताचल तक विस्तृत सूर्य्य के रथ के मार्ग की भाँति लग रहा है। पवन से अन्दोलित होते हुए सागर के उदर में सम्यक् स्थित हैं महान शिखर जिसके, ऐसा सेतुपथ अपने विकट पक्षों को फैला कर उड़ने का उपक्रम करने वाले पर्वत की तरह प्रतीत होता है। अनन्तर स्थूल, तुंग, विकट तथा सागर को दो भागों में विभक्त करने वाले सेतुपथ, रावण कुल को नाश करने वाले यम के स्थूल, तुंग और विकट हाथ की भाँति भासित हुआ। कठोर पर्वतों का बना होने के कारण भारवान् और दूर स्थित भी विकराल त्रिशूल जैसे सेतुपथ ने कठोर, साहसी और गौरव प्राप्त रावण के हृदय को छेद सा दिया। सेतुपथ के अधोभाग में वृक्ष दिखाई दे रहे हैं, जिनके सागर से गीले फूलों पर भौंरे लगे हैं और भौंरों के बोझ से पल्लव झुके हुए हैं'।[२६]

जिस प्रकार प्रवरसेन घटना की योजना में अपनी विराट कल्पना के

२६. वही ; वही ; ७६–८०, ८२–८६, ८८–९०।

सहारे यथार्थ सजीवता प्रस्तुत करते हैं, उसी प्रकार वस्तुस्थिति को बड़े ही सूक्ष्म विवरणों में चित्रित करते हैं। 'कहीं शांत समुद्र की सी आभा वाले स्फटिक शिलाओं से निर्मित पर्वतों के बीच में पड़े सेतुबन्ध के भाग, बीच में कटे से जान पड़ते हैं। हिमपात से छिन्न तथा मृदित चन्दन वृक्षों से सुरभित श्रेष्ठ मलय के शिखर सेतुपथ में लगे हुए भी स्फुट रूप से पृथक प्रतीत हो रहे हैं। जाकर लौटे हुए जल-समूह से आन्दोलित, ध्वनि से गुंजित सागर के कल्लोल, तट की तरह सेतुपथ को भी प्लावित कर रहे हैं। पर्वतों के वर्षण में समुद्र में गिरे, जल से भीगे कन्धे के बालों के भार से आक्रान्त कुछ उतारते हुए वनसिंह सेतुपथ के किनारे लगे दिखाई दे रहे हैं। पूर्व और पश्चिम के समुद्र भाग में उत्पन्न जलजीव सेतुपथ द्वारा अवरुद्ध गति होकर अपने स्थानों के पुनः दर्शन से वंचित हो रहे हैं। उतग शिखरों वाले, गैरिक के कारण ताम्रवर्ण के तथा स्वच्छ वस्त्र से भासित आन्दोलित निर्झरों वाले, सेतुपथ के दोनों किनारों पर स्थिर मलय और सुवेल, मंगलध्वजों की भाँति जान पड़ते हैं'। [२७]

§ १५—अनन्तर सेतुपथ से वानर सेना चल पड़ती है। 'सेतुमार्ग से पार करते हुए वानर सागर को देख रहे हैं—दो भागों में विभाजित होने से उसका विस्तार सीमित सा हो गया है। और एक ओर बड़वामुख से जलराशि शोषित कर ली गई है।

प्रस्थान

शंख समूह से मिलित श्वेत कमल, मरकत मणियों से मिलित हरित पत्र-समूह और विद्रुम जाल से मिले हुए जिसमें किसलय हैं ऐसे समुद्र के उत्तर तट से दक्षिण तट तक नल द्वारा बाँधे हुए सेतुपथ से, वानर सेना प्रस्थान कर रही है। पाताल में जिसका मूल स्थित है ऐसे सब प्रकार से गौरव युक्त सेतुपथ को सागर धारण कर रहा है और उस पर प्रस्थान करती हुई सेना के भार से उसमें लगे पर्वत चूर्ण हो रहे हैं। खम्भे में बाँधे बनैले हाथी की तरह सेतुपथ में बँधा समुद्र उसके मध्य भाग को

---

२७. वही ; वही ; ९१–९३।

चालित करता है और तरंग रूपी सूँड़ों को उस पर डालता है। पहाड़ों को ढोने से जिनके शरीर में पसीना के बूँद झलक रहे हैं ऐसे वानर धातुओं से मलीन अपने हाथों को सेतुपथ के पार्श्ववर्ती पहाड़ों के निर्झरों में धोते हुए दक्षिणी समुद्र को पार कर रहे हैं। और फिर वे रावण द्वारा ले आये गये सुवेल पर्वत के ऊपरी भाग में पहुँचे, यह नन्दन वन के योग्य वृक्षों का वन प्रदेश है तथा यहाँ पानी के भार से मन्थर और स्थित जलधर समूह से नमित लता समूह है'।[२८]

सुवेल पर्वत

§ १६—कवि उसी कल्पना के आधार पर इस पर्वत का चित्रण भी करता है। यहाँ भी स्थितियों की वैसी ही चित्रमयता है और घटनाओं में वैसी ही सजीवता है। प्रवरसेन में सर्वत्र कल्पना के रंगों में ऐसा ही गतिशील स्पन्दन मिलता है।

रूप-दर्शन

'वानरों ने सुवेल पर्वत को सामने देखा। वह जैसे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को आक्रान्त करने के लिये अपने ऊँचे-ऊँचे शिखरों को बढ़ाये हुए है और संसार की शेष दिशाओं को व्याप्त करने के लिए दौड़ सा रहा है। वह ब्रह्माण्ड का विष्णु की भाँति, संसार के रक्षण के भार से व्यस्त विष्णु का शेष की तरह, शेष का सागर की तरह, समुद्र के विश्राम को सहने वाला है। वह पृथ्वी के धारण करने की शक्ति के साथ समुद्र को भरने के लिए प्रबल नदी प्रवाहों से युक्त, आकाश के विस्तार तथा उच्चता मापने तथा प्रलय काल के पवन के वेग को रोकने में समर्थ है। दिशाओं में दूर तक फैला हुआ, आकाश-तल को सुदूर तक ऊपर उठाये और पाताल को दूर तक झुकाए हुए सुवेल समीप में पायी जाने योग्य फूलों और वृक्षों से ढका है। पाताल तल तक जिसकी जड़ें सागर में गई हैं और जिस पर सरिताएँ प्रवाहित हो रही हैं, इस प्रकार आदि वराह के उछलने के समय ऊपर को स्थित

---

२८. वही; वही; ९८–१०३।

पृथ्वीमण्डल की तरह पर्वत को वानरों ने देखा। वह अपने अधोभाग से पाताल तल को भर रहा है, वज्र की नोक से खोद कर अटल रूप में स्थापित किया गया है और ऐरावत के कन्धों के खुजलाने से घिसे पार्श्वों वाले आलान के खम्भे के समान है। पाताल तक फैले होने पर भी उसके मूल भाग को सर्पराज ने नहीं देखा है और उसके शिखर तीनों लोकों को मापने के लिये बढ़े हुए त्रिविक्रम द्वारा भी छुआ नहीं गया है। उसके तट-प्रदेश से टकरा कर सागर का जल उछल रहा है और मध्य भाग में सर्प लिपट रहे हैं। विष्णु द्वारा आश्लिष्ट मन्दराचल की भाँति उसको सूर्य्य की किरणें स्पर्श कर रही हैं। वह शेष के सिर की मणियों से घिसे अपने मूल भागों से पाताल तल के अन्धकार को दूर करता है तथा अपने ऊँचे शिखरों में सूर्य्य के भटक जाने पर गगन में अँधेरा करता है। निकटवर्ती चन्द्र-मण्डल की रगड़ से उसकी काली-काली चट्टानों पर अमृत की रेखा बनी हुई है और वहाँ चाँदनी के जल-कणों से प्लावित होकर उठती हुई भाप से सूर्य्य के मार्ग का अनुमान लगता है। उस पर चाँदनी रातों में जब कभी विरल-जल-भार वाले मेघ शिखर से आ लगते हैं, सूँड़ से उखाड़ कर उठाये हुए कमल तथा किंचित् कीचड़ लपेटे हुए ऐरावत की भाँति चन्द्रमा शोभता है। सुवेल पर शिखरस्थ नदियों की धाराएँ हरे वनों के कारण दूर से दिखाई दे रही हैं और वहाँ पवन से छिन्न होने के कारण मुरझाये किन्तु चन्द्रमा के पृष्ठ भाग पर गिरने के कारण किसलय सफ़ेद जान पड़ते हैं। बहुत बोझिल होने के कारण उसके अधोभाग को शेषनाग बड़े प्रयत्न से उठाये हुए हैं और प्रलय काल के पवन द्वारा उखाड़ कर लाये पहाड़ उसके तट से टकरा कर चूर्ण हो गये हैं। वहाँ जल भरे मेघों से प्रेरित हो सुखी हुए बड़े-बड़े भैंसे आनन्द के साथ विश्राम कर रहे हैं और सिंहों द्वारा मारे हाथियों के रक्त से रंजित शिला-तलों पर मोती के गुच्छे सूख कर चपक गये हैं।'[२९] कवि की इन कल्पनाओं में यथार्थ

२९. वहीं ; आ० ९ ; १–१३, १४, १५ ;

चित्रमयता नहीं है, वरन् कल्पना का रंगीन सौन्दर्य्य है। वैज्ञानिक विश्लेषण के आधार पर इस काव्य का सौन्दर्य्य ग्रहण नहीं किया जा सकता है। इस सौन्दर्य्य-बोध के आधार में स्पष्ट ही भारतीय अलौकिक सौन्दर्य्यवाद है।

'इस सुवेल पर्वत पर सुन्दर पल्लवों की लाली खारी पानी की फुहारों से बदल गई है और सिंह के नाद से डर कर भागने के लिये एक पैर को आगे तथा कानों को खड़ा किये हरिण भी हैं। मध्य भाग द्वारा प्रेरित, सूर्य्य किरणों द्वारा प्रकाशित कन्दराओं से व्याप्त तथा दक्षिण दिशा में भली भाँति स्थिति, इस पर्वत में ही सभी दिशाएँ व्याप्त हैं। यह रात में सुदूर आकाश में उठे हुए शिखरों के रत्नों से जैसे बढ़ा दिया जाता है; शिखर के घास से युक्त भाग में चर कर मृग सुखपूर्वक बैठे हैं। यह पर्वत कुपित राम के दृढ़ बाण से कँप गया है और शिखरों पर लटके चन्द्रमण्डल के बहते जलप्रवाह से गीला हो गया है। यह अपनी जड़ों को फैलाये हुए है, इसके सूर्य्य के प्रस्थान मार्ग से भी उच्च शिखरों पर अन्धकार है। इसका आधा भाग धँसा सा जान पड़ता है और यह आकाश तथा सागर दोनों में समान रूप से व्याप्त हैं। झंझा से आन्दोलित चन्दनों में रगड़ से लगी आग के कारण सुगन्धित धुआँ निकल रहा है और शिखरों पर समुद्र को पान करने के लिए मेघ लटके हुए हैं। तटों से सागर का जल टकरा रहा है, ऊपर निर्झर के धारापात से सिंहों का क्रोध जाग गया है। शिरोभाग पर नक्षत्र शोभित हैं और शिखर चन्द्रमण्डलों की लम्बी माला जान पड़ते हैं। इसके शिखर चन्द्रमण्डल से ऊँचे उठ गये हैं, हवा के चलने से नदियों की जल-धारा शान्त है। इस पर्वत के मणि-मय सुन्दर पार्श्व हैं और इसकी सुवर्ण शिलाओं पर हरिण सुखी होकर सोये हैं। यहाँ जिन्होंने मस्तक फाड़ दिया है ऐसे सिंहों को दाँतों से विदीर्ण कर सूँड़ से ऊपर उठाये हाथी हैं। विवरों में बैठे हुए साँपों की मणिप्रभा जल-धारा के समान निकल रही है। ऊँचाई के कारण

चंचल समुद्र शीकर उसे छू नहीं पाते हैं। तीक्ष्ण कंटकों जैसे मणियों से तट बने हैं। यहाँ नख में जिनके मोती का गुच्छा लगा है ऐसे सिंह हाथियों के सिर पर चढ़े गरज रहे हैं। मेघों से विमर्दित होकर छोड़े गये, वर्षा के कारण कोमल, कल्पलताओं पर सूखे तथा पवन द्वारा उड़ाये वस्त्र जिन पर हैं ऐसे वन इस पर्वत पर हैं। इसके तट पर आधे उखाड़े हुए हरे-भरे टेढ़े मेढ़े वृक्ष हैं और यह समुद्र की जलराशि पर आरूढ़ सा है। इसमें कुसुमराशि से पूर्ण एवं स्फटिकमय तट वाली नदियाँ बह रही हैं। इसके शिखरों के पवन से उछाले हुए झरनों से, कुछ गीली लगामों वाले तथा लार के फेन कणों से युक्त, सूर्य के रथ के घोड़ों के मुख धुल रहे हैं। रात में प्रज्ज्वलित औषधियों की शिखाओं से आहत, मृग-चिह्न को प्रकट करता हुआ काजर पारे दिये के समान चन्द्रमा को, यह अपने गगन-गत तीन शिखरों पर धारण किये हैं। पृथ्वी को निष्कासन देने के कारण भीमाकार शून्यता से युक्त, आदि वराह के द्वारा पंकराशि के निकल जाने से अत्यन्त गहरा तथा प्रलय काल के सूर्य के ताप से शोषित समुद्र को इसकी नदियाँ भर रही हैं। इसकी कन्दराओं में सिंहों का नाद गूंज रहा है। पता नहीं चलता यह किस दिशा से आ रहा है, इससे भयभीत होकर मृग लौट पड़े हैं और जंगली हाथियों ने कान खड़े कर लिये हैं। सुवेल समुद्र-तट के पवन से उड़ाये जलकणों से गीले वनों से हरा है, वन कमलों के परिमल से कुछ कुछ लाल है, हंस सरोवरों को मधुर निनाद से गुँजार रहे हैं और सिंहनी ने मांस ग्रहण किया है। समुद्र के एक भाग को निविष्ट किये हुए, भीमाकार शून्यता से युक्त और जिनकी ऊँचाई तथा पार्श्व भाग सभी विस्तृत हैं ऐसी भुवनत्रयी जैसी कन्दराओं में सूर्य उदय भी होता और अस्त भी। पर्वत पर शिखरों से निकल कर थोड़े जल वाले और आगे बढ़ कर समुद्र के उछलते हुए जल से मिल कर बढ़े जल वाले निर्झर उद्गम प्रदेश में मधुर हैं पर आगे चल कर खारे हो गये हैं'।[३०]

'सुवेल पर्वत के सरोवरों में रत्नों की प्रभा से धोये जाते हुए, शेष के नत-उन्नत होने से कम्पित और भार से बोझिल कमल खिले हुए हैं; और मध्य प्रदेश में उगी हुई लताओं पर सूर्य्य के रथ की धूल पड़ी हुई है। आकाश की तरह नीले और पार्श्वों में जिनकी किरणें फैल रही हैं ऐसे मृग-मरीचिका से आवेष्टित सरोवरों के समान उसके मणिमय तट हैं जिनमें उमस से व्याकुल भैंसे नीचे उतरने का रास्ता ढूँढ रहे हैं। वन के जीव अनुरूप स्थानों में अपना क्रोध प्रकट कर रहे हैं—कहीं हाथी तमाल वन रौंद रहे हैं, कहीं रजत शिखर के खंडों को सिंह अपने मुख से काट रहे हैं और कहीं काली चट्टानों से जंगली भैंसे भिड़ रहे हैं। वहाँ सिंहों के थपेड़ों से घायल हाथियों के मस्तक से निकले गज-मुक्ताओं के गुच्छे बिखरे हुए हैं और वन में लगी आग से डर कर भगे हाथियों के द्वारा नदियों के पार करने से तृणराशि कुचल गई है। इसके मध्य भाग पर सूर्य्य का रथ हिलता डुलता प्रयाण करता है, ताल के वनों में मार्ग न पाकर तारे उलझ पड़ते हैं और इस प्रकार यह समीप के भुवः लोक के ऊपर स्थित है। यह पर्वत विचित्र शिखरों से युक्त है जिनके आधे भाग तक ही सूर्य्य की किरणें पहुँचती हैं, चन्द्र किरणें तो कुछ भाग तक पहुँच पाती हैं तथा ऊपरी शिखर तक न पहुँच कर लौटा हुआ गरुड़ बीच के शिखर पर विश्राम लेता है। इस पर देव सुन्दरियों के वक्षस्थल पर धारण किये जाने योग्य रत्न हैं, और उनसे दक्षिण समुद्र का रत्नों की बाजार जान पड़ता है। यहाँ कमलिनियों के दलों के सम्पर्क से सरोवरों का जल मधुर तथा श्याम है और घाटियों में बकुल वन के परिमल का गन्ध फैल रहा है। मध्याह्न के तीव्र ताप से तप्त हरिताल गन्ध से हरिण मूर्च्छित हैं और ताप से घनीभूत समुद्र के जल के लवण-रस के स्वाद के लिये यहाँ भैंसे तटीय शिलाओं को चाट रहे हैं। वह अपने ऊँचे रजत शिखरों से नक्षत्रों को छू रहा है। पड़ा हुआ मुक्तास्तवक सिंहों से मारे गये हाथियों के रुधिर से अरुणाभ हो रहा है। असीम धैर्य्य के कारण इसने कितने प्रलयों को सहा है और

इसके सागर से लगे हुए सरोवरों में शङ्ख प्रवेश कर रहे हैं। मणिमय विवरों में प्रवेश किया हुआ जल श्याम-श्याम सा जान पड़ता है। यक्षों के सुन्दर क्रीड़ागृह हैं। काम के बाणों से परिचित गन्धर्वों को निद्रा आ रही है। और यहाँ के सौरभपूर्ण सजल वनों में दावाग्नि नहीं लगती। इसकी कन्दराओं में जल त्रिफला से श्यामल है, इसका मध्य भाग स्वच्छ रजत प्रभा से भासमान् है। यहाँ विषवृक्षों की उग्र प्रभा से जीवों का नाश हो रहा है। ऐसा यह पर्वत रावण को आनन्द देने वाला है। पुरानी विषनाशक लताओं के लिपटने से चन्दन वृक्षों की शाखाओं को विषधरों ने छोड़ दिया है और दूसरी ओर जाते हुए सर्पों की मणियों की प्रभा से वृक्षों की छायाएँ उद्भासित हैं। स्फटिक मणियों से पृथ्वीतल धवलित हो गया है। सुर-सुन्दरियों का मधुर आलाप सुनाई दे रहा है। यह प्रलयकाल की उमड़ी जलराशि से भी पूर्णतया धुल नहीं पाता। इसके विवरों से चन्द्रमा की भाँति रजत की शिलाएँ निकलती हैं'।[31] प्रवरसेन का यह सारा वर्णन उनकी कल्पना के अलौकिक सौन्दर्य्य से उद्भासित है। यहाँ प्रत्येक स्थिति कल्पना के आदर्श से अपना आकार-प्रकार ही नहीं रंग-रूप भी ग्रहण करती है।

'रमणीय चन्द्र-ज्योत्स्ना इस सुवेल पर्वत का आवरण पट है। निकटवर्ती वृक्षों से कन्दराएँ रम्य हैं। श्रेष्ठ नक्षत्रों से इसके श्याम शिखर उज्ज्वल हैं। वहाँ जंगली बावलियों के कीचड़ से निकले हुए सुअर आक्रान्त होकर फिर उसी में घुस जाते हैं, इस प्रकार विफल प्रयास सिंह ताड़ित से जान पड़ते हैं। सुवर्णमय वृक्षों के गुच्छे सरोवर के जल पर गिर कर डूब रहे हैं। सजल नील मेघ जैसी लावण्यमयी, नक्षत्रों के ग्रंथन से जिसकी मेखला की रचना हुई है ऐसी नभश्री को अपने शिखर रूपी बाहुओं से ढाँकता हुआ सुवेल, पीछे आती हुई दिशा रूपी प्रतिनायिका के क्रोध को दूर करता है। यह दिशाओं को धारण

३१. वही; वही; ३४–४६।

करने वाला राक्षस रमणियों के लिये सुखद है। सूर्य्यकान्त मणि जैसा सूर्य्य को छूता हुआ सा, अन्धकार रूपी नरपति के राजभवन के समान है। बलि की पृथ्वी का हरण करते हुए विष्णु, मेघ तथा प्रलयकाल के समुद्र भी जिसे नहीं भर सके, उस भुवन को यह सुवेल अपने आकार से भर रहा है। समीपवर्ती शिखर की वनाग्नि से आक्रान्त, ज्वालमाल के भीतर से निकलती हुई किंचित लाली लिये हुए किरणों वाले, अस्त होने से सूर्य्य को यह पर्वत धारण किये हुए है। जिन्होंने अपने घर को छोड़ना स्वीकार नहीं किया है ऐसी नदी रूपी पुत्रियों के लिये, बड़वानल के सन्ताप से तटों को विदीर्ण करने वाले सागर के भारी तरंग प्रवाह को यह सहन कर रहा है। रात के समय पद्मराग मणि की शिलाओं पर पड़ती दुइज के चाँद की छाया, इस पर जान पड़ती है मानों सूर्य्य के घोड़ों की टापों से चिह्नित मार्ग है। टेढ़ी-लताओं के जाल से आच्छादित, आतप के खंड के समूह के समान ऊँची-नीची सोने की शिलाएँ पड़ी हैं। आतप के भय से अधःप्रदेश से उद्विग्न हुए साँपों ने सूर्य्य के आलोक ताप से रहित ऊपर स्थित भागों में बसेरा लिया है। सूर्य्य के नीचे स्थिर रहने से मध्य प्रदेश के वनों की छाया ऊपर को फैलती है। इसकी ऊँचाई में पर्याप्त तट प्रदेश, दाँतों के विस्तीर्ण मध्य भाग से मुख के विस्तार के सूचक, ऐरावतादि हाथियों के परिघ जैसे दाँतों से चिह्नित है। कल्पवृक्ष की डालें इकट्ठा होकर फिर बिखर जाती हैं; इसके मध्य भाग में घूमने वाले देव-हाथियों के कनपटी खुजलाने से छाल छिल जाने से ये पीली-पाली हो गई हैं और इनके पल्लवों की लाली भी उनके सूँड़ की निश्वास की उष्णता से हल्की हो गई है। उस पर स्थित चन्द्रमा का मृग रूपी कालिम चिह्न, मणिमय मध्य भाग की आभा से धवलित हो गया है और पार्श्व भाग में आने पर पिछले भाग पर गिर रहे निर्झर से उसका मण्डल उलट गया है। इस पर स्थित वनराजि समुद्र के समीप होने से श्यामल हो गई है, समुद्र के उछले हुए जल से उसके फूल धुल गये हैं और सूर्य्य से आलोकित हो गई

है'।[३२] सेतु-निर्माण के प्रसंग में चित्रों में तीव्र गति और आन्दोलन था, और इसमें स्थिति का विचित्र तथा रंगीन दृश्य है। अलौकिक योजना तो प्रवरसेन का सामान्य गुण है।

'इस पर स्थित मार्ग पर जब सुर-गज नीचे उतरते हैं तब भ्रमर साथ होते हैं और जब ऊपर चढ़ते हैं तब नहीं रहते, क्योंकि दूर समझ ऊंचे भाग से वे लौट आते हैं। ढकी हुई अग्नि के समान स्थानों में रत्न छिपे हैं, जिनके निकलते हुए थोड़े-थोड़े प्रकाश से अन्धकार किंचित दूर हो रहा है। इस पर बनैले हाथियों का युद्ध हो रहा है, जिससे मुड़ कर वृक्ष सुखा दिये गये हैं, उलझ कर लिपटने के कारण लताएँ पुंजीभूत हो गई हैं और आपस के प्रहारों से परिघ जैसे उनके दाँत टूट गये हैं। मन्द्राचल के चालन से उछलता हुआ सागर का अमृतमय जल अब भी इसके विस्तृत मणिमय विवरों में निहित है। विषम रूप से लगी पूछों वाले राम के बाण वज्र की नोकों से खंडित पंख के शेष भाग के समान समुद्र के संक्षोभ से उसके तटों में लगे हैं। वहाँ पर कुम्भों पर आक्रमण किये सिंहों के कन्धों के बाल जंगली हाथी अपनी सूँड़ों से उखाड़ रहे हैं और सहचरी की गुंजार सुन कर उधर ही को मुड़े हुए भौंरों से आश्रित लता-पुष्प चंचल हो रहे हैं। वहाँ दिवस के आगमन से अचमत्कृत सी, कुछ-कुछ सूखी हुई तथा हिम की तरह शीतल चन्द्रकान्त मणि-शिलाओं पर पवन के सम्पर्क से किंचित शैवाल काँप रहा है। जिससे अद्भुत गंध उठ रही है तथा नलिनी दलों पर ढलने वाले जलकणों जैसी कांति वाला पारद रस मरकत की शिलाओं पर लुढ़क रहा है। प्रातःकाल ऊर्ध्वगामी मण्डल के भार से आकुल से घोड़ों वाले सूर्य इस पर आरूढ़ से होते हैं और सन्ध्या समय ऊपर के समतल पर सम मण्डल से चल कर इसपर से उतरते से हैं। इस पर्वत पर, उसके मध्य भाग के विषम प्रदेशों से बचने के लिये चक्कर काटते

---

३२. वही ; वही ; ४७–६०।

हुए वनचर, सामने आकाश में चलती तारिकाओं से प्रकाश पाकर अपने रास्ते को पार करते हैं। सुवेल पर्वत के शिखर मार्ग से मिल कर चलता हुआ चन्द्र-बिम्ब पुष्पों की अंजलियों से अग्र भाग में ताड़ित होता है और प्रियतम से विरहित किरात युवतियों के उच्छ्वास से मलिन किया गया है। यह आकाश की भाँति ही ग्रह-नक्षत्रों से शोभित है और सीमा रहित है। अपने शिखरों से प्रलय पवन के वेग को रुद्ध कर व्यर्थ बनाने वाला है। अपने रत्नमय शिखरों की लाली से बादलों को लाल-लाल सा बनाने वाला है और इसकी कन्दराओं के मुख में सिंहों की भीम गर्जना फैल रही है। इसमें दिशाएँ समाप्त सी, पृथ्वी क्षीण सी, आकाश लीन सा, समुद्र अस्त सा, रसातल नष्ट सा और संसार स्थित सा है। जूये के टेढ़े होने से टेढ़े हुए कन्धों वाले, भीत अरुण से लौटाये जाने के कारण जिनके कन्धों के बाल नाक पर आ गये हैं ऐसे रवि के तुरंग इस पर वक्र होकर चलते हैं। सुवेल पर्वत पर रात में नक्षत्र लोक वन के समीप पुष्प समूह के समान जान पड़ता है, पर प्रातः-काल प्रकाश से तारों के नष्ट हो जाने से जान पड़ता है वन के पुष्प तोड़ लिये गये हैं'।[33] इन वर्णनों की सूक्ष्म और विशद योजनाओं से कवि की कल्पना के साथ ही उसकी सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति का भी पता चलता है। प्रवरसेन की कल्पना यथार्थ के सूक्ष्म और व्यक्तिगत पर्यवेक्षण पर आधारित है।

'वहाँ रात में चन्द्र के स्पर्श से प्रकट चन्द्रकान्त मणि के जल के निर्झरों में प्लावित जंगली भैंसे अपने निःश्वास से कोमल मेघों को उड़ाते हुए अपनी निद्रा को पूर्ण करते हैं। सामने के मार्ग के अवरुद्ध होने से शिला मिट्टी पर तिरछे होकर चलने वाला चंद्र-बिम्ब इस पर्वत के शिखरों पर चक्कर काटता है और उसकी किरणें कभी महासर्प की फणि-मणि की ज्योति के आघात से नष्ट सी हो जाती हैं।

३३. वही ; वही ; ६१—७५।

पाताल तल को छोड़ कर ऊपर उमड़ा हुआ, प्रलय के समान उत्पात से कम्पित और अन्दोलित दक्षिण समुद्र इसके तट को प्लावित करता है, पर आगे बढ़ कर दूसरे समुद्रों से नहीं मिल पाता। वहाँ अंकुश जैसे नखाग्रों से विद्ध कर शब्द करते हुए बादलों को खींचने वाले सिंह घूमते हैं। जिनके कन्धों के बाल मुख पर पड़े विद्युत् वलय से कुछ-कुछ जल गये हैं। निर्झर में स्नान करने से सुखी, फिर भी धूप से व्याकुल हो जंगली हाथी अपने कन्धे से रगड़े हुए हरिचन्दन के वृक्षों की छाया में खड़े हैं। यहाँ सूर्य्य के शीघ्रगामी घोड़ों का मार्ग दिखाई देता है, जिसके मध्य भाग की वनलताओं पर रोएँ गिरे हुए हैं, भ्रमर भ्रमणशील हैं, और उच्छ्वास के पवन से फूलों का पराग आर्द्र हो गया है। शोषित होकर दले हुए वृक्ष-समूह वाला, दक्षिणायन और उत्तरायण दोनों कालों में आकाश में आने जाने से घिसा सूर्य्य का मार्ग इसके एक ही शिखर पर समाप्त हो जाता है। इसने अपने पूरे विस्तार से पृथ्वी को पूर्ण कर दिया है, रसातल को आक्रान्त कर लिया है और आकाश को व्याप्त कर चारों ओर फैला हुआ है। यहाँ अपने गन्ध से भौंरों को आकृष्ट करने वाले सुन्दर सजे, परस्पर विरुद्ध भी ऋतु, एक ही विशालकाय स्तम्भ में बँधे सुरगजों की तरह निवास करते हैं। निकटवर्ती रावण के भय से उद्विग्न, शिखरों के अन्तराल में लगे तिरछे मण्डल वाले सूर्य्य छुड़ा कर भागते जान पड़ते हैं। यहाँ जुगाली को भुले हुए, किन्नरों के मन भावने गीतों से सुखी होकर खिलती सी आँखों वाले हरिणों का रोमांच बहुत देर बाद पूर्वावस्था को प्राप्त होता है'।[३४]

प्रवरसेन के इन वर्णनों में कहीं कल्पना अपनी कोमलता में सजीव हो उठती है और कहीं स्पन्दनों में गतिशील हो जाती है। जहाँ कवि को वैचित्र्य की रेखाओं और रंगों में ही प्रस्तुत करता है, वहाँ भी

३४. वही ; वही ; ७६–८१, ८२,–८८।

कलात्मक सौन्दर्य्य रक्षित है।—'यहाँ तीर पर विचरने वाले हंसों से शोभित और जिनमें क्रुद्ध वनगज लड़ाई कर रहे हैं ऐसे सरोवरों में सूर्य्य की किरणों के दर्शन होने पर भी चन्द्र-मण्डल के समीप कुमुद वनों का विकास बन्द नहीं होता है। मधुमथ के करवट बदलने के समय विपुल भार से बोझिल शेषनाग, पास के पर्वतों को अपनी मणिप्रभा से उद्भासित करनेवाले अपने विकट फण को इस पर्वत में लगाकर सहारा लेते हैं। विवर के समान मृग की छाया वाला तथा दोनों ओर किरणों को फैलाने वाला चन्द्रमा शिखर के निर्झरों को छूकर भिन्न मण्डलों वाला जान पड़ता है। जिसके मध्य में समान रूप से बिना अन्तर के मिले हुए तीनों भूमण्डल, त्रिविक्रम के स्थूल और उन्नत भुजाओं में तीन वलय जैसे जान पड़ते हैं। वहाँ सूखे हुए वृक्षों से सूर्य्य का, नवीन शीतल वनपंक्ति से चन्द्रमा का मार्ग जान पड़ता है, पर वनों के बीच में तारकों के मार्ग का पता नहीं चलता। यहाँ सूखते हुए, सुरभित तथा शिला-तल पर बिखरे और कुचले हुए तमाल के किसलयों को जिनकी गन्ध अलकों में भी लगी है पवन सुरसुन्दरियों के कानों से अलग करता है। विपरीत मार्ग से आये हुए, ऊपर मुख करके झरनों के जल को पीये हुए तथा कन्दराओं के जल को पीने के लिये तत्पर जलधर पर्वत के विकट उदरस्थ पवन से आहत होकर पुनः आकाश में जा लगते हैं।' प्रवरसेन के इन विस्तृत वर्णनों में उद्दीपन की शृंगारिक सामग्री ही आई है—'छिपे हुए जंगली हाथियों से ढहाए गये तट के आघात से मूर्च्छित सिंहों के जागने के बाद की गर्जना से व्याकुल होकर किन्नर के मिथुन आलिंगन में बँध गये। और ऊँचे तट से गिरते निर्झरों से मुखरित कृष्ण मणि-शैलों में विहार करनेवाली सुर-युवतियों का अनुराग यहाँ शिथिल नहीं होता।'[३५]

३५. वही; वही; ८८—९३।

काल-वर्णन

§ १७—दसवें आश्वास में कवि सायंकाल और रात्रि का वर्णन करता है। 'कमलिनी को खींचते हुए ऐरावत की कमल के केसरों से धूसरित सूँड़ (कर) के समान दिवस की कान्ति को खींचते हुए सूर्य्य का हरिताल का सा पीला-पीला किरण-समूह संकुचित हो रहा है। अस्पष्ट स्पर्शों वाली, क्षीण होते हुए आतप में दीर्घाकार हुई तथा खींचकर बढ़ाई हुई सी वृक्षों की छाया क्षीण सी हो रही है। हाथी के सेन्दूर लगे मस्तक की सी कान्ति वाला, समुद्र मन्थन के समय मन्दर पर्वत के गैरिक से रंग उठे नागराज वासुकि के मण्डल की तरह गोल सूर्य्य का मण्डल विद्रुम की तरह किंचित लाल सा दिखाई दे रहा। दिन की एक हल्की आभा शेष रह गई है, दिशाओं के विस्तार क्षीण से हो रहे हैं महीतल छाया से श्यामलित हो रहा है। और पर्वतों की चोटियों पर थोड़ी-थोड़ी धूप शेष रह गई है। धूलि रहित ऐरावत का रजकण से रहित दिवस अस्ताचल पर जा पहुँचा है, और वहाँ से जैसे किसी पर्वत से गैरिक शिखर गिरता हो इस प्रकार दिनकर का बिम्ब गिरता सा दिखाई पड़ता है। प्र० भा०। वानरों के पैरों से उठी धूल से समाक्रान्त अस्त होता सूर्य्य और प्रतापहीन रावण समान दिखाई पड़ते हैं। सूर्य्य का आधा मण्डल पच्छिम सागर में डूब सा रहा है, शिखा आदि उच्च स्थानों पर धूप बची है; पृथ्वीतल को छोड़ता हुआ दिवस आकाश में बहता हुआ सा क्षीण होकर पीड़ित सा हो रहा है। बनैले हाथी द्वारा उखाड़े पड़े वृक्ष की भाँति दिन से उखाड़े और औंधे पड़े सूर्य्य के किरण-समूह शिखा समूह की तरह ऊपर दिखाई पड़ता है। दिन का अवसान होने पर रुधिरमय पंक सी सन्ध्या-लाली में सूर्य्य इस तरह डूब गया जैसे अपने रुधिर के पंक में रावण का शिर-मण्डल डूब रहा हो। भ्रमरों के भार से झुके हुए तथा पके केशरों के गिरते हुए परिमल कणों से भार-युक्त से कमल, सूर्य्यास्त होने पर, एक दूसरे से मिले हुए भी

सूर्य्यास्त

दूर-दूर हैं। पश्चिम दिशा में फैला हुआ दीर्घ किरणों का प्रभा-समूह धूलि से पूर्ण काल के मुख के द्वारा दिवस के घसीटे जाने का मार्ग सा जान पड़ता है। ऊपर से जिसका मण्डल खिसक पड़ा है ऐसे सूर्य्य के पृथ्वीतल पर गिरा हुआ सा हो जाने पर उछलते हुए आतप से लाल-लाल सी सन्ध्या की लाली में छुट-पुट बादलों के टुकड़े निहित हो गये हैं। अस्ताचल के शिखर पर सन्ध्या का राग, मेरु के तट में लगे कनकमय पंक के कारण कुछ-कुछ लाल, टेढ़े होकर घूमते सूर्य्य के रथ से गिरकर फहराये हुए ध्वज की तरह जान पड़ती है। धवल और किंचित लाल, हाथी के रक्त से भीगे सिंह के कन्धों के बालों की सी कान्ति वाला सन्ध्या की अरुणिमा से रंजित कुमुद-समूह पवन के आन्दोलन से चपल हो विकसित हो रहा है'।[३६] पिछले वर्णनों में कवि का सूक्ष्म पर्यावेक्षण का उल्लेख किया गया है, परन्तु उसका उपयोग उनमें कल्पनाओं की आदर्श योजना में किया गया था। परन्तु यहाँ कवि प्रकृति के यथार्थ रंग-रूप का कलात्मक चित्र प्रस्तुत करता है। स्थितियों की योजना और रंगों के छायातप प्रस्तुत करने में प्रवरसेन के साथ केवल बाण का नाम लिया जा सकता है।

§ १८—आगे के चित्रों में रंगों के साथ यथार्थ प्रकृति कितनी सुन्दर उपस्थित हुई है। 'कहीं-कहीं जिसमें सन्ध्या राग लगा सा है, दस दिशाओं को धूसरित करनेवाली अन्धकार से मुक्त दिन डूबने के समय की छाया अस्पष्ट सी लम्बी होती जाती है। सन्ध्या समय की आतप से मुक्त, जलकर बुझे हुए अग्नि के स्थान की तरह डूबे हुए सूर्य्य वाला आकाश तल प्रलय-काल का रूप धारण कर रहा है। दिन के बचे हुए आकाश के समाप्त हो जाने पर, जिसका प्रकाश सन्ध्या राग से अब तक रुका हुआ था ऐसे दीप अन्धकार से शोभित होकर प्रकाश बिखेर रहे हैं। चकवा चकवी का जोड़ा

अन्धकार का प्रवेश

---

३६. वही ; आ० १० ; ६–१०, १२–२०।

बिछुड़ गया है, वे अपने राग रूपी बन्धन को ढूँढ से रहे हैं, उनका सुख नदी के दोनों तटों से दृष्टि मिलाना मात्र रह गया है और उनका जीवन हुंकार मात्र पर निर्भर रह गया है। तभी सन्ध्या के विपुल राग को नष्ट कर तमाल-गुल्म की भाँति काला-काला अन्धकार फैल गया, जैसे कांचन तट-खंड को गिरा का कीचड़ लपेटे ऐरावत हाथी के देह खुजलाने का स्थान हो। सर्वत्र समान रूप से फैला हुआ अन्धकार आँखों के प्रसार का अवरोध करता हुआ निकट में विरल, थोड़ी दूर में अधिक और दूर में और भी घना सा प्रतीत हो रहा है। वृक्षों की स्थिति का भान उनके फूलों की गन्ध मात्र से हो रहा है, क्योंकि उनकी विस्तृत शाखाओं में अविरल अन्धकार व्याप्त है, अंधकार से व्याप्त होकर मनोहर पल्लव मलिन हो गये हैं और फूल पल्लवों में स्थित भर हैं। सूर्यास्त के अनन्तर घोर अन्धकार फैल रहा है, उसमें दिशाओं की भिन्नता दूर हो गई है, समीप में भी आँख का प्रकाश व्यर्थ सा है, और स्मृति अथवा दीपालोक आदि के द्वारा पृथ्वीतल का अनुमान अथवा साक्षात्कार किया जा रहा है। यह अन्धकार जड़ जमाये हुए वृक्ष आदि की तरह उन्मीलित न होने योग्य जान पड़ता है, पृथ्वी आदि की भाँति खने जाने योग्य अर्थात् प्रकाश द्वारा दूर किये जाने योग्य होने पर भी ऊबड़-खाबड़ सा है और एकत्र होने पर भी चन्द्रमा द्वारा भेद्य है। पृथ्वीतल में सघन होकर व्याप्त अन्धकार-समूह वस्तु-समूह को वहन सा कर रहा है, पीछे से प्रेरित सा कर रहा है, आगे रोक सा रहा है, पार्श्व में स्थित होकर यन्त्रित सा कर रहा है और ऊपर स्थित होकर जगत् को बोझिल सा कर रहा है'[37] फैलते हुए अन्धकार का कितना यथार्थ और स्वाभाविक चित्र यहाँ उपस्थित किया गया है। आदर्श और वैचित्र्य के मूलक सौन्दर्य्य के स्रष्टा प्रवरसेन अपनी सहज तूलिका से प्रकृति को इतने कोमल रंगों में उतार सके हैं यह आश्चर्य्य की वस्तु है।

---

३७. वही ; वही ; २१–३०

§ १६—मिटते हुए अन्धकार के साथ फैलती हुई चाँदनी के वर्णन में कवि इसी प्रकार के पर्यावेक्षण का परिचय देता है—'महीतल के एक भाग में शशि किरणों से मिटते हुए अन्धकारों वाली पूर्व दिशा प्रलय काल में धूम रहित अग्नि में जलते हुए सागर की भाँति प्रत्यक्ष हो रही है। बाल चन्द्रमा के कारण परिपाण्डुर पूर्व दिशा में चन्द्र के क्षीण आलोक के पश्चात् उदयाचल पर ज्योत्स्ना बिखर रही है और अन्धकार को दूर कर स्वच्छ प्रकाश फैल रहा है। चन्द्र-बिम्ब नवीन कमल के भीतरी भाग की तरह किंचित ताम्रवर्ण और केसर की तरह सुकुमार किरणों को फैला रहा है, लेकिन वह निकटस्थ अन्धकार को विरल ही करता है नष्ट नहीं कर पाता। उदित होने के अनन्तर, पश्चिम की ओर मुख करके स्थित ऐरावत के दाँतों के खण्ड की तरह वर्तुल चन्द्रमण्डल उदयगिरि के शिखर पर स्थित हुआ अन्धकार मिटा कर धवल आभा वाला हो गया है। चन्द्र-किरणों द्वारा अन्धकार के नष्ट होकर तिरोहित हो जाने पर आकाश में तारक-समूह मलिन हो गया है। और इस प्रकार आकाश फूलों से बिछे हुए नीलमणि के शिला-तल की भाँति जान पड़ता है। प्र० भा०। निशाकर ने अपनी सबल हुई किरणों से अन्धकार को उखाड़ फेंका है और अपने उदय-कालीन मुग्ध-भाव को छोड़ कर प्रौढ़ तथा धवल हुए उसने नभ को पार करने की क्षमता प्राप्त कर ली है। शिल्पी की तरह चन्द्रमा ने, पूर्ववत् बिखरे हुए शिखर-समूह, फैले हुए दिशा-मण्डल तथा व्यक्त हुए नदी प्रवाह वाले पृथ्वीतल को मानों अन्धकार में गढ कर उत्कीर्ण सा कर दिया है। चन्द्रमा की किरणें अन्धकार समूह के प्रचुर होने पर भी अलग अलग स्थिर की हुई वृक्ष छायाओं का नाश करने में असमर्थ हैं, फिर भी उनके चारों ओर घेरा डाले पड़ी सी हैं। चन्द्र तो कुमुद में केवल छिद्र-मात्र करता है, पर खुलते हुए दलों वाले कुमुद को एक दूसरे की अपेक्षा न करने वाले कर-चरण आदि के आघात से भौंरे ही पूर्ण से विकसित करते हैं। क्या अन्धकार समूह

चन्द्रोदय

को चन्द्रमा ने पूरी तरह पोंछ डाला ? या स्थूल करों से एक साथ ही ढकेल दिया ? अथवा खण्ड-खण्ड कर डाला ? या चारों ओर बिखेर दिया ? या निर्दयता से पी डाला है ? घनीभूत कीचड़ के समान, हाथ से पकड़ने योग्य (निविड़) तथा दिशाओं को मलिन करने वाले अन्धकार को मानों चन्द्र ने उदित होकर उखाड़ कर आकाश को साफ कर दिया है। कुछ-कुछ स्पष्ट दिखाई देने वाले वनों को चाँद ने व्यक्त सा कर दिया। वृक्षों की शाखाओं के रन्ध्रों में किरणों का पात हो रहा है और इस प्रकार वन का दुर्दिन रूपी अँधेरा मिट गया है। वृक्षों के फूलों को मृदित करने वाले, दिग्गजों की मदधारा तथा कमल वनों का आस्वादन करने वाले भौंरे कुमुदों के कोषों पर टूट रहे हैं। सरोवर का पानी पाते समय दिग्गज की सूँड़ की तरह दीर्घाकार होकर लटकता सा चन्द्रमा का किरण-समूह गवाक्ष के मार्ग से नीलमार्ग के फर्श पर गिर रहा'।[३८]

'चन्द्र रूपी धवलसिंह द्वारा अन्धकार-समूह रूपी गज-समूह के भगा दिये जाने पर उनके कीचड़ से निकले पंकिल चरण चिह्नों जैसे भवनों के छाया समूह लम्बे-लम्बे दिखाई दे रहे हैं। तिरछे भाग से ऊपर की ओर बढ़ते हुए बिम्ब वाला चन्द्रमा आकाश में ऊपर चढ़ता जा रहा है। उसकी किरणें झरोखों के मार्ग से पूरी तरह घरों में प्रविष्ट होकर पुनः बाहर निकल रही हैं तथा वे गुफाओं के अन्धकार को फाड़कर छाया के प्रसार मिटा रही हैं। ऊपर के झरोखे से घर के भीतर प्रविष्ट कर ज्योत्स्ना, पुंजीकृत चूर्ण के रंग जैसे पीतांशुक के अभ्रक के समान रंग वाले दीप-प्रकाश से मिलकर क्षीण सी हो गई है। प्र० भा०। चन्द्र-किरणों से घिरे वृक्षों की चोटियों पवन से किंचित काँप रही हैं और उनकी छायाएँ डालों के ऊपर-नीचे आने से काँप रही है; ऐसे वृक्ष ज्योत्स्ना के प्रवाह में पड़कर बहते से जान पड़ते हैं। दीपों के

---

३८. वही ; वही ; ३१–४६।

प्रकाश से मिली हुई जल में घिसे चन्दन जैसी कान्तिवाली चन्द्रिका शाखादि के अन्तराल में स्थित अन्धकार को दूर करती हुई विषम सी जान पड़ती हैं। घनीभूत चन्द्रिका से अभिभूत आकाश अपनी नील आभा से रहित है, चन्द्रमा उसमें ज्योत्स्ना में प्लावित हो रहा है और तारक क्षीण से हो गये हैं। आकाश के मध्य में स्थित चन्द्रमा द्वारा स्पष्ट शिखरों और बन्धों वाले पर्वतों का छाया-मण्डल हर लिया गया है और वे धवल-धवल से जान पड़ते हैं। जिन स्थलों में वृक्षों की छाया के कारण अन्धकार फैला है वहाँ विवर जानकर कोई नहीं जाता, और ज्योत्स्ना से भरे विवरों में प्राणी विश्वस्त होकर चले जाते हैं'।[३९] चाँदनी के छाया-प्रकाश के साथ वस्तुओं की धुँधली स्थितियों का चित्रण प्रवरसेन ने जिस सफलता से किया है, अन्यत्र पाना कठिन है।

§ २० —कवि ने बारहवें आश्वास के प्रारम्भ में प्रभात का वर्णन किया है। 'गैरिक से लाल हो उठे पर्वतीय तट की भाँति रात्रि का अन्तिम भाग बीत रहा है। वह अरुण की आभा से आक्रान्त होकर किंचित ताम्र वर्ण का हो गया है और पृथ्वी पर गिरे हुए प्रथम जल की भाँति मलिन चन्द्रिका से पिछला प्रहर आहत भी है। अरुण की शिखा से पृथ्वीतल पर चन्द्रिका हटाई गई है, अतएव क्षीण हुई तथा धूसर वर्ण वाली चलती हुई वृक्षों की छाया का भान भर होता है। इस समय कुमुद वन मुँद रहा है, चन्द्रमा का मण्डल अर्धमीलित होकर प्रभाहीन हो रहा है, रात्रि की आभा नष्ट हो गई है और अब अरुण की आभा से पूर्व दिशा के तारे मन्द पड़ रहे हैं। तिमिर से मुक्त, पल्लव की भाँति किंचित ताम्र-वर्ण वाले तरुण अरुण की आभा से युक्त बाल मेघों वाली पूर्व दिशा का आकाश जान पड़ता है खण्ड-खण्ड हुए मैनसिल के चूर्ण से विचित्र लगने वाला मणि-पर्वत का अर्ध भाग है। हाथी के चरण के पड़ने से बने

प्रातः सन्ध्या

---

३९. वही ; वही ; ४७–५५ ।

हुए गड्ढे में भरे हुए वर्षा के जल के रंग वाला चन्द्रमा अरुण के द्वारा धकिया कर आगे बढ़ाया हुआ आकाश से हटता हुआ अस्ताचल शिखर पर पहुँच गया है। पवन से वन आन्दोलित हो रहा है और पक्षियों के स्फुट और मधुर स्वर से निनादित है। उसमें मधुकर गूँज रहे हैं और वृक्षों के पत्ते किरणों के स्पर्श से तुहिन कणों के सूख जाने से हल्के हो गये हैं। अरुण से आक्रान्त होकर स्थान च्युत हुआ, अपने अंक में स्थित विपुल ज्योत्स्ना से बोझिल चन्द्रमा अपनी उखाड़ी हुई किरनों का अवलम्ब ग्रहण कर अस्ताचल के तट से गिर गया। रात्रि में किसी किसी तरह प्रियतम के विरह दुःख को सहकर चक्रवाक के शब्द करने पर उसकी ओर बढ़ रही है मानों उसका स्वागत करने जा रही है। चन्द्रमा से सम्बद्ध होकर अस्ताचल का पार्श्व भाग अधिक दीप्त औषधियों की शिखाओं से दन्तुरित हो गया है और उसमें अधिकता से द्रवित होती हुई चन्द्रकान्त-मणि की धाराएँ बह रही हैं'।[४०]

'आकाश से नक्षत्र दूर हो गये हैं और ज्योत्स्ना अरुण की शिखाओं से गरदनिया कर ढकेल दी गई है। इस प्रकार आकाश चन्द्रमा के साथ अस्त होता है और उदयाचल से उठता हुआ सा जान पड़ता है। स्थान-च्युत हाथी की तरह, सन्ध्या में आतप रूपी कुछ कुछ ताम्र वर्ण के गैरिक पंक से पंकिल मुख वाला दिवस रात्रि भर घूम कर और कमल-सरोवरों का संक्षुब्ध कर लौट आया। विकसित कमल आये हुए सूर्य्य का अभिनन्दन सा कर रहे हैं और उसकी अगवानी के के लिये अरुण से जगायी दिवस-लक्ष्मी के चरण-चिह्नों की सूचना सी दे रहे हैं। प्रदोष के समय समुद्र के जल में विश्वस्त होकर एक-एक करके अलग हुए शंख शिशु प्रभात काल में कातर हुए से जल में प्रतिबिम्बित चन्द्र प्रतिभा को इस तरह घेरे हैं जैसे उनकी माँ हो। विकसित होते कमलाकरों की संचलित परिमल के कारण मीठी-मीठी

---

४०. वही आ० १२ ; २-१०।

गंध, चिरकाल तक निरोध के कारण मुख मात्र से निकलने का मार्ग पाकर फैल रही है, पर कम नहीं होती'।[४१] प्रवरसेन में यथार्थ स्वाभाविक और विचित्र आदर्श का अद्भुत संयोग हमको मिलता है।

---

४१. वही ; वही ; ११, १७–२०।

चतुर्थ प्रकरण

बाणभट्ट

§ १—प्रकृति-वर्णन के बाणभट्ट अनुपम चित्रकार हैं। चित्रों की इतनी विस्तृत और क्रमिक योजना अन्य किसी कवि ने प्रस्तुत नहीं की है। जैसा पिछले भाग में कहा गया है यह गद्य-कथा-काव्य की अपनी विशेषता है। महाकाव्य के कवियों में कालिदास और प्रवरसेन ने एक सीमा तक क्रमिक चित्र उपस्थित किया है, विशेष कर प्रवरसेन के वर्णनों में हम देख चुके हैं। परन्तु प्रकृति के विस्तृत खंड को लेकर उसका रूप पूर्णता के साथ पाठक के सामने चित्रित करने में बाण की प्रतिभा अपने आप में अकेली है। इसके साथ प्रकृति के रूपकार और रंगों की स्थितियों को प्रत्यक्ष करने में भी बाण ने चित्रकार की कुशल तूलिका का प्रयोग किया है जिसमें स्थितियों का सूक्ष्म से सूक्ष्म रूप और रंगों का हल्का-गहरा छायातप बड़ा ही कलात्मकता से उतर सका है। रंगों के संयोग में और उसके छायातपों को दिखाने में बाण की समानता संस्कृत में अन्य कोई कवि नहीं कर सकता। बाण में अलंकारप्रियता भी पाई जाती है, परन्तु वर्णन-विस्तार की सघनता में वह खो जाती है। बाण में कथानक में प्रकृति का स्था

चित्रकार

स्वाभाविक है, और कभी-कभी प्रकृति घटना-स्थली बन गई है। बाण के दोनों ग्रंथों में प्रकृति का अत्यधिक विस्तार है, इस कारण यहाँ विस्तार भय से संक्षिप्त रूप में सुन्दर वर्णन ही संकलित किये जायँगे।

ग्राम्य प्रकृति

§ २ — अन्य महाकाव्यों आदि में गाँवों के जीवन से संबन्धित प्रकृति कर रूप बहुत कम आया है। कहीं कोई उल्लेख मात्र आया है। परन्तु बाण ने अपने हर्षचरित में दो स्थलों पर विस्तार से इस प्रकार के वर्णन प्रस्तुत किये हैं। 'श्रीकण्ठ देश' में स्थल-कमलों की अधिकता के कारण खेत जोते जाने के समय हलमुखों से मृणालों के उखड़ने से मधुकर कोलाहल करते हैं, जान पड़ता है वे हल धरती के गुण गान कर रहे हैं। क्षीरसागर का पय पान कराने वाले मेघों से सींचे गये पुण्ड्र जाति के ऊखों के घेरों से वह देश भरा रहता है। प्रत्येक दिशा में एक दूसरे के खलिहानों द्वारा विभक्त वहाँ के सीमान्त अपूर्व पर्वतों के समान सस्य-पुंज से भरे रहते हैं। चारों ओर नहरों से सींचे जाते हुए जीरों के पौधों से वहाँ की भूमि उलझी रहती है। धान के उपजाऊ और उत्तम खेतों के वह देश अलंकृत है। यहाँ की ऊँची भूमि पर गेहूँ के खेत हैं, जो पकने के कारण फूटते हुए से रंग बिरंगे हो जाते हैं और फूटे हुए मूँग के छिलके जैसे भूरे हो जाते हैं। भैंस की पीठ पर बैठे हुए गोपाल गीत गाते हुए गौओं को चराते हैं। उनके पीछे कीटों के लोभी चटक जाते हैं। गले में लगे हुए शुद्ध घंटों के निनाद से वे रमणीय लगती हैं।—वहाँ के स्थान हजारों कृष्ण मृगों से चित्र-विचित्र लगते हैं, मानों विविध यज्ञों के धुएँ से अन्धे होकर इन्द्र द्वारा छोड़े गये नक्षत्र हों। वे स्थान धवल-पराग की वर्षा करने वाले केतकी के फूलों की रज से सफ़ेद हो गये हैं, मानों गणों के भस्मलेप से धूसर हुए शिवपुर के प्रवेश मार्ग हों गाँवों के निकट की धरती शाकों और केलों से श्याम है। पद-पद पर ऊँटों के झुंड हैं। वहाँ के निकलने के मार्ग दाख के मंडपों तथा अनार के उद्यानों से लुभावने लगते हैं। ये मंडप

श्रीकंठ देश

नीलू नामक वृक्ष के पत्तों से चमकते रहते हैं, करपुट से दबाये गये मातुलिंगों के पत्तों के रसों से लिपे रहते हैं, इसकी पुष्पमालायें अपने आप एकत्र कुंकुम-केसर है और वहाँ अभिनव फलों का रस पीकर पथिक सुखपुर्वक सोते हैं। ये मंडप मानों वनसाले हैं जहाँ वन-देवता अमृत-रस पीते हैं। जान पड़ता है पके हुए अनार के फलों के बीचों में जैसे शुक-चंचुओं की लाली लग गई हो और पेड़ों पर चढ़े हुए कपि-कुल के कपालों से अनार के फूलों का सन्देह होता है। उपवनों में वन-पाल नारियल का रस का मद्य पीते हैं, पथिक खजूर लुप्त करते हैं, बन्दर सुगन्धित खजूर का रस चाटते हैं और चकोर अपनी चोंच से आरुक के फलों को विदीर्ण करते हैं। वहाँ का जंगली जलाशय ऊँचे अर्जुन वृक्षों की पंक्तियों से घिरे हैं, उनके किनारे का जल गौओं के उतरने से कलुषित हो जाता है। ऐसे जलाशयों से वनों के भीतरी भाग सफल हैं। स्वच्छन्द चारिणी वात-हरिणियों की भाँति बड़वाएँ दिशा-दिशा में विचरण करतीं हैं, मानों वे रवि-रथ तुरंगों को लुभाने के लिए लोट-पोट करने से मर्दित कुंकुमों के रस लिप्त हो जाती है, नासापुटों और मुख को ऊपर उठा कर वे मानों गर्भस्थ किशोरों की उत्पत्ति के लिये पवन पाती हैं। यज्ञ के अनवरत धुआँ रूपी अन्धकार से निकले हुए सरकंडों से मानों हंसों के समूहों से पृथ्वी धवल हो जाती है'।[1]

§ ३—बाण का ग्रामीण प्रकृति और जीवन का पर्यावेक्षण बहुत पूर्ण है—'राजा ने एक गाँव देखा। वन्य भागों में जंगली धान के

विन्ध्य का मार्ग

खलियानों पर सारी के जलते हुए भूसे ढेरों से धुआँ निकल रहा था। विशाल वट-वृक्षों के चारों ओर सुरती शालाओं से गो-वोट बने हुए थे। अधिक आना-जाना न होने से भूमि पद-दलित नहीं हुई थी। खेत छोटे-छोटे और दूर-दूर पर थे, उनकी मिट्टी लोहे की तरह काली और कड़ी थी, स्थान-स्थान पर रखे गये

१. हर्ष० ; उ० ३ ; प्र० ९४, ९५।

स्थाणुओं से मोटे पल्लव निकल आये थे, श्यामक नामक घास पर चलना कठिन हो गया था। अलम्बुस बहुत थे और कोकिलाक्ष की झाड़ियाँ अब तक नहीं काटी गई थीं, अतः खेत कठिनाई से जोते जा रहे थे। प्रवेश-मार्ग पर वृक्षों के नीचे वनसाल बने हुए थे। वहाँ पथिकों के पद-क्षेप से उठी धूल से धूसर हुए पल्लव छाया में पड़े थे। हाल ही में कुएँ खोदे गये थे, जो वन-सुलभ साल के फूलों के गुच्छों से शोभित थे और जिनके समीप ही नागस्फुट के पौधे लगाये गये थे।... धूले कदम्ब के गुच्छों से, जिनका पराग झड़ गया था, पर्णकुटियाँ पुलकित थीं।...जो सूख सकते थे ऐसे नये आम के पौधों के पल्लव जल-कणों से सिक्त होकर सरस और रक्षित थे तथा उनकी डालियों में फलों के बौर लटक रहे थे।[२] इस प्रसंग में निवासियों का जीवन अधिक विस्तार से उपस्थित किया गया है।

वन-प्रदेश

§ ४—शुक-वृतान्त के प्रारम्भ में कवि ने विन्ध्याचल की अटवी का वर्णन किया है—'मध्य-देश के आभूषण तथा पृथ्वी की मेखला के समान यह वन-प्रदेश फैला हुआ है। प्र० भा०। उस वन में मद के समान सुगन्ध वाली इलायची की लताओं से अँधेरा हो रहा है, जान पड़ता है मानों उन्मत्त हाथियों के गंड-स्थल से झरते हुए मद-जल से सिंचा हुआ हो। हाथियों के कुंभ-स्थल से निकले हुए मोतियों के दाने सिंहों के नखों के अग्रभाग में लगे रहते हैं, जिनके लोभ से भील सेनापति वहाँ सिंहों का शिकार करते हैं। सदा निकट रहती हुई मृत्यु से भयंकर और महिष से युक्त वह मानों प्रेत-राज की नगरी है। युद्ध में सजी हुई सेना के समान वन में बाणासनों पर (वृक्षों) शिलीमुख गुंजित हैं और सिंहनाद होता है।... महा-प्रलय काल की सन्ध्या के समान वन पल्लवों से रक्त वर्ण का है और उसमें

विन्ध्याटवी

२. वही; उ० ७; प्र० २२५, २२८।

ोलकंठ नाचते हैं। अमृतमन्थन के समान वह (द्रुमों-लक्ष्मी, पारिजात ार मदिरा) से शोभित और वरुणी से युक्त है। वर्षाऋतु के समान ? घनश्याम है और अनेक सरोवरों से अलंकृत हैं।—राज स्थिति के मान वह चमर-मृग के लाल-व्यजन से शोभित है और मद-मत्त गज-ा उसकी रक्षा करती है। वन पार्वती के समान स्थाणु के साथ और ापति सेवित है। सीता के समान अटवी ने कुश-लव को जन्म दिया और निशाचरों से आक्रान्त है। चन्दन और कस्तूरी की गन्ध से युक्त ार अगरु-तिलक से अलंकृत अटवी सुन्दर कामिनी के समान है। विध पल्लव-पवन से शीतल तथा मदन (वृक्ष) युक्त वह काम-वश में ; स्त्री के समान है। बाघ के नख की पंक्ति तथा गंडक से शोभित वह लक की ग्रीवा जैसी है। पान-भूमि के समान वहाँ सैकड़ों मधु कोश खाई देते हैं और भाँति-भाँति के पुष्प बिछे हुए हैं। कहीं कहीं महा-ाह की दाढ़ से उखाड़ी भूमि के कारण वह प्रलय-वेला के समान खाई देती है और कहीं कूदते हुए बंदरों के झुंड से तोड़े गये शिखरों युक्त शाल (परकोटा) से व्याप्त रावण की नगरी जैसी है। वहाँ हरे ं, समिध, फूल, शमी और बताश कहीं-कहीं इस प्रकार शोभित हैं से अभी विवाह कार्य समाप्त हुआ हो। कंटकित हुई अटवी जान ़ती है मानों उन्मत्त सिंह-नाद से भीत हो। मदमत्त स्त्री की तरह ीं-कहीं वह कोकिलाकुल प्रलाप करती है। उन्मत्त स्त्री की भाँति ीं कहीं वह वायु वेग से ताल शब्द करती है। विधवा स्त्री की तरह ीं वह तरल-पत्र विहीन है। निरन्तर सैकड़ों शरों (घास) से व्याप्त ा-भूमि के समान है। इन्द्र के शरीर के समान कहीं उनके हजार ा हैं, अर्जुन की ध्वजा के समान वानराक्रान्त है। उसमें सैकड़ों वेत्र-ताओं के कारण प्रवेश दुर्लभ है, लगता है राजद्वार की ड्योढ़ी हो। उसमें कीचक नगरी की तरह सैकड़ों कीचक देख पड़ते हैं। अटवी में ीं तरल तारक (पुतली या मृगशिर) मृग के पीछे व्याध फिरता है ोर इस प्रकार आकाश की लक्ष्मी को धारण करती है। व्रत करने

वाली स्त्री के समान कहीं दर्भ, चीर, जटा और वल्कल धारण करती है। असंख्य पत्तों वाली होने पर भी वह सप्तपर्णों से शोभित है, क्रूर-सत्व होने पर भी मुनि-जन सेवित है और पुष्पवती होकर भी पवित्र मानी जाती है'।[3] इस वर्णन में कवि की अलंकारप्रियता का पता चलता है, पर वन के वातावरण निर्माण में बाधा नहीं हुई है।

जीर्ण शाल्मली

क—अटवी का वर्णन व्यापक योजना के आधार पर किया गया है, परन्तु क्रमशः घटनास्थली की ओर आते हुए बाण शाल्मली तरु का संश्लिष्ट चित्रण करते हैं—'उस पद्म-सरोवर के पश्चिमी किनारे राम बाणों से जर्जरित पुराने ताल-वृक्षों के कुंज के पास एक विशाल महाजीर्ण सेमर का वृक्ष है। उसकी जड़ के आस-पास बड़े थावले के रूप में एक बूढ़ा दिग्गज की सूँड़ जैसा—अजगर सदा लिपटा रहता है। ऊँची शाखाओं पर लटकती हुई साँप की केचुलें पवन से हिलती हुई ऐसी जान पड़ती हैं मानों वृक्ष ने दुपट्टा धारण किया है। दिशाओं के मण्डल को मापती सी शाखाएँ अन्तरिक्ष में इस प्रकार फैली हैं मानों प्रलय काल के तांडव नृत्य में फैलाये हुए भुजा वाले चन्द्रशेखर का तिरस्कार कर रही हैं और उसने प्राचीन होने के कारण गिर पड़ने के भय से मानों इस प्रकार आकाश का सहारा लिया है। उसके सारे शरीर पर दूर-दूर तक व्याप्त लताएँ, मानों जीर्णता के कारण उसकी नसें दीखती हैं। बुढ़ापे के काले दागों के समान उसका शरीर कंटकों से भरा है'। आगे कवि वैचित्र्य कल्पना से चित्र को अधिक उद्भासित करता है—'जल-भार से धीरे चलते बादल उसकी डालियों पर क्षण भर के लिए ठहर जाते हैं और पत्तों को भिगो देते हैं, पर उसकी चोटियों तक नहीं पहुँच पाते। वे मेघ जान पड़ते हैं समुद्र का पानी का आकाश से उतरे पक्षी हो। ऊँचाई के कारण जान पड़ता है वह नन्दन वन की

---

३. काद० ; पू० भा० ; प्र० ३९–४३।

शोभा देखने की कोशिश कर रहा हो। उसकी चोटियाँ रुई के गालों से सफेद हो गई हैं। उससे सन्देह होता है, मानों उसके पास ही पास ऊपर चलने वाले, आकाश में चलने से थके सूर्य के रथ के घोड़ों के ओठों के प्रान्त-भाग से निकले हुए भाग हों। बनैले हाथियों के गंडस्थल घिसने से उसकी जड़ों में मद चिपका हुआ है, जिन पर मत्त भौंरे बैठे हैं। उनसे मानों उसकी जड़ लोहे की जंजीर बाँधने से निश्चल होकर कल्प-स्थापिनी हो गई है। कोटरों में छिपे भौंरों से वह वृक्ष सजीव सा जान पड़ता है। दुर्योधन की तरह उसमें शकुनि (पक्षियों) का पक्षपात देखा जाता है और विष्णु की भाँति बनमाला से युक्त (घिरा) है। नये मेघ की तरह वह नभ में ऊँचा उठा है। सारे भुवन को देखने के लिए मानों यह वन-देवियों का महल है। दण्डकारण्य का मानों अधिपति है और सब वनस्पतियों का नायक है। मित्र के समान यह सेमर शाखा रूपी भुजाओं से विन्ध्य के वन का आलिंगन कर रहा है'।[४]

शुक-निवास

ख—इसी प्रकार आगे कवि वृक्ष पर निवास करने वाले शुकों का वर्णन करता है—'स्थान अधिक होने के कारण इस वृक्ष की डालियों के अग्रभाग पर, कोटरों के भीतर, पत्तों के बीच में देश-देश से आये हुए तोते आदि पक्षियों के झुंड बेखटके घोसले बना कर रहते थे। दिन-रात उनके वहाँ रहने से वह वृक्ष, जीर्णावस्था के कारण थोड़े पत्ते रह जाने पर भी बहुत से पत्तों से श्याम जान पड़ता था।। उसमें बनाये हुए अपने घोसलों में रात काट कर, प्रतिदिन उठ कर आहार की तलाश में गोल बाँध कर आकाश में उड़ा करते थे और ऐसे जान पड़ते थे मानों उन्मत्त बलराम के हल के अग्रभाग से ऊपर फेंकी गई यमुना आकाश में अनेक प्रवाहों में बह रही है, ऐरावत द्वारा उखाड़ी हुई मन्दाकिनी कमलिनियाँ

४. वही ; वही ; पृ० ५०—५२।

हों, सूर्य के रथ के घोड़ों की प्रभा से नभ-मण्डल लीप दिया गया हो। आकाश में उड़ते हुए वे चलती हुई मरकत मणि की भूमि का तिरस्कार करते थे, मानों आकाश रूपी सरोवर में शैवाल के पत्तों की पंक्ति को मानों फैलाते थे। केले के पत्तों के समान अपने परों को नभ में फैलाए हुए वे ऐसे लगते थे, मानों सूर्य की गरम किरणों से खिन्न हुई दिशाओं के मुख पर पंखा कर रहे हों। वे उड़ते हुए ऐसे जान पड़ते थे मानों आकाश में कोई दूब का खेत उड़ा चला जाता हो और अन्तरिक्ष में मानों इन्द्र-धनुष पड़ रहे हों। उन तोतों की चोंच मारे हुए हरिन के रुधिर से लाल सिंह-नख के अग्र भाग के समान थीं। चुगने के बाद सभी पक्षी लौट लौट कर अपने कोटरों में बैठे हुए शावकों को तरह-तरह के फलों के रस और धान की मंजरियों की किनकी बार बार खिला कर अपत्य-स्नेह से उनको पंखों के नीचे रख उसी वृक्ष में रात काटते थे।...लेकिन वैशम्पायन के पिता के दंभचीर के समान पंख बहुत थोड़े बचे थे और डैने झुक जाने के कारण शिथिल हो गये थे और उनमें उड़ने की शक्ति किंचित भी शेष नहीं थी। बहुत वृद्ध होने के कारण उड़ने में मेरे पिता का शरीर काँपने लगता था, मानों वृद्धावस्था ही काँपती हो। उनकी चोंच कोमल शेफाली (निगुंण्डी) के फूल के डंठल के समान पिंजर वर्ण थी और उसका बीच में से घिरा हुआ अग्रभाग धान की मंजरी काटने के कारण चिकना और घिसा हुआ था। वे अपनी चोंच से, दूसरे के घोसलों से गिरी हुई धान की बाली से चावल बीन कर और तोतों के कुतरे हुए वृक्ष की जड़ के आगे पड़े फल के टुकड़ों को इकट्ठा कर उसे खिलाते थे, क्योंकि उनमें आकाश में उड़ने की ताकत न थी'।[५]
इस समस्त वर्णना में रंग-योजना महत्त्वपूर्ण है। चित्र में सूक्ष्म-निरीक्षण के साथ सजीवता भी है।

५ वही; वही; पृ० ५२-५५।

§ ५—उज्जैन के मार्ग में एक शून्य पड़ता है—'इस वन में अत्यंत ऊँचे तने के वृक्ष लगे हुए थे; वृक्षों की झुरमुटों में मालती लताओं के मंडप बने थे। हाथियों के गिराये हुए वृक्षों के पड़े रहने से पगडंडी टेढ़ी हो गई थी। लोगों के द्वारा घास, पत्ते और लकड़ी के ढेर लगे थे। एक विशाल वृक्ष की जड़ में वन-दुर्गा की मूर्त्ति खुदी थी। प्यासे पथिकों द्वारा गूदा उतार कर फेंके गये आँवले पड़े थे। पुराने कुओं के तट पर खिले हुए करंज की मंजरी की रज बिखरी हुई थी।...सूखी हुई गिरि-नदियों से उस वन का मध्य भाग ऊँचा नीचा हो गया था। उनके तीर मधु की बूँदें टपकाते हुए सिंधुवार के वन की पंक्ति में से उड़ कर आई रज से धूसर हो गये थे। निकुंज नामक लता के जाल उन नदियों की रेती पर छाये थे और पथिकों ने रेती खोद कर जो छोटी-छोटी कुइयाँ खोदी थीं उनमें थोड़ा-थोड़ा मलिन जल मिल जाता था। इस शून्य वन में मुर्गों और कुत्तों के शब्द से अनुमान होता था कि पास ही झुरमुट के बीच में कोई गाँव होगा। वन के उस प्रदेश में शाखा रहित अनेक कदम्ब, शाल्मली और पलाश के वृक्ष लगे हुए थे जिनमें नई कोंपल निकल कर ऊपर चढ़ रही हैं ऐसे स्थूल तनों से वह भरा हुआ था। वहाँ हरताल के समान पीले पके बाँस के वृक्षों की बाड़ थी, हरिनों को डराने के लिए घास का आदमी खड़ा किया गया था वन-क्षेत्र पक जाने के कारण पीले दिखाई देते फल-वाले प्रयंगु वृक्षों से भरे थे'।[६]

शून्याटवी

§ ६—हर्ष-चरित में प्रकृति के वर्णन अपेक्षाकृत कम चित्रमय हैं दूसरे उच्छ्वास में चण्डिका-कानन का संक्षिप्त उल्लेख है। आठवे उच्छ्वास में विन्ध्य-वन का विस्तृत वर्णन है—'वहाँ भाँति-भाँति के तरु थे, जिनमें कुछ फलों से लदे थे।

हर्ष-चरित में विन्ध्य-वन

६. वही; वही; पृ० ४५२–४५४।

कर्णिकारों में कलियाँ आ रही थीं। चम्पक बहुत थे। नमेरा फलों के भार से झुके हुए थे। नीले पत्तों वाले नलद और नारिकेल के समूह थे। नागकेसर और सरल (देवदार) की पंक्तियाँ थीं। कुरबक कलिकाओं से रोमांचित था और अशोक के लाल पल्लवों की प्रभा से दशों दिशाएँ लिप सी गईं थीं। विकसित बकुलों की पराग-राशि से वृक्ष धूसरित होकर मनोहर लगते हैं। तिलक वृक्ष के तल अपनी रज से धूसर था, रामठ के पौधे हिल रहे हैं। पूगफलों की प्रचुरता थी। प्रियंगु के पौधे फूलों से भरे लगते थे। परागपूर्ण मंजरी पर एकत्र भौंरों का गुंजन मनोहर और आनन्ददायक था। मदजल से मलिन मुचुकुन्द के तनों से हाथियों के कपोलों के लगातार घिसे जाने की सूचना मिलती थी। हरी-भरी भूमि निर्भय होकर उछलते हुए चपल काले मृग-शावकों से सुहावनी लगती थी। अन्धकार के समान काले तमाल पादपों ने प्रकाश रोक रखा था। देवदार अपने फूलों के गुच्छे से दंतुले जान पड़ते थे। जम्बू और जम्बीर के वृक्षों पर तरल ताम्बूली लताओं के जाल बिछे हुए थे। अपने फूलों के पराग से धवल दीखने वाले धूली-कदम्ब आकाश छू रहे हैं। गिरती हुई मधु-धारा से ज़मीन सिंची हुई है। परिमल की गन्ध से घ्राण को तृप्ति होती थी। कुछ दिन की हुई कुक्कुटियों ने कुटज के कोटरों में अपने घोसले बना लिये थे। मीठी बोली बोलने वाले अपने बच्चों को चटक उड़ना सिखा रहे थे। चकोर चतुराई के साथ अपनी चोंचों से सहचरियों को खिला रहे थे। निडर होकर असंख्य भुरुण्ड पक्षी पके हुए पीलूफल खा रहे थे। निर्दय सुग्गे सदाफल और कायफल के फल काट रहे थे और कच्चे फल नीचे गिरा रहे थे। काई से कोमल शिलातलों पर खरहे बच्चे के सुख-पूर्वक सो रहे थे। शेफालिका की जड़ों के कोटरों में गोह-समूह निडर घूम रहा था। रंकुमृग बिना किसी आतंक के विचर रहे थे। नकुल शांति-पूर्वक खेल रहे थे। मधुर स्वर करने वाली कोकिल कलिकाएँ खा रही थी। आम के वन में झुंड के झुंड चमरु मृग जुगाली कर रहे थे। नीलाण्डज

मृग सुख-पूर्वक बैठे थे। भेड़िया गायों को निर्विकार भाव से देख रहे थे और उनके बच्चे पी रहे थे। पास के पहाड़ी झरनों के मधुर निनाद सुन कर हाथी सुख की नींद ले रहे थे जिससे उनके कर्ण-तालों का बजना बन्द हो गया था। रुरु मृग किन्नरियों की गीत-ध्वनि का रस पान कर रहे थे। हरी हल्दी काटने से निकले हुए रस से जंगली सुअरों के बच्चों के मुँह रंग गये थे। गुंजा के कुंजों में गाहक (मार्जार) बोल रहे थे और जातीफल वृक्षों पर शालिजातक सोये हुए थे। लाल कीड़ों द्वारा काटे जाने से क्रुद्ध होकर बन्दर के बच्चों ने उनके खोते उजाड़ डाले थे। लकुच फल के लोभी लंगूर लवली लताओं को लाँघ रहे थे। वृक्षों की जड़ों में बालू के थाले बने थे।'[७]

पर्वतीय देश

§ ७—बाण ने पर्वतों का विशेष वर्णन नहीं किया है। कथा-वस्तु का सम्बंध विन्ध्यपर्वत और हिमालय से है। परन्तु इन प्रसंगों में वन का रूप अधिक सामने आया है। जल खोजने के समय चन्द्रापीड़ कैलास की तलहटी में पहुँच जाता है, परन्तु इस स्थल पर भी कवि ने पर्वत का रूप अधिक प्रस्तुत न कर वन-विस्तार पर अधिक ध्यान दिया है। '—प्र० भा०। दिन-रात पिघलते गूगल रस से उसके पत्थर भीग गये हैं। शिखर से गिरते शिला-जीत के रस से उसकी शिला चिकनी हो गई है। टाँकी के समान कठिन घोड़ों की टापों से टूटी हुई हरताल के चूरे से वह मलीन हो गई है। चूहों के नखों से खोदे हुए बिलों के भीतर वहाँ स्वर्ण-रज बिछी हुई है। उसकी रेती में चमर और कस्तूरी मृग के पैरों के निशान बन रहे हैं। रंक और रल्लक जाति के मृगों के गिरे हुए रोमों से वह भरी हुई है। उसकी ऊँची-नीची शिलाओं पर चकोर के जोड़े बैठे हैं। गुफ़ाओं में

कैलास की वार्ता

७. हर्ष; उ० ८; पृ० २३४—२३५।

वनमानुष के जोड़े रहते हैं। गन्ध पाषाण से महक आ रही है और बेंत की बेलों के प्रतान में बाँस उगे हुए हैं। बाद में चन्द्रापीड़ को आह्लादित करने वाले पवन का वर्णन इस प्रकार है—'कैलास का पवन स्वच्छ झरने के जल की बूँदों से शीतल था, भोजपत्र के छाल को उसने जर्जरित कर दिया था, महादेव के बैल की जुगाली से पैदा हुए फेन-कणों को लाते थे। वह पवन कार्तिकेय के मोर की चोटी को चूमता था, पार्वती के कर्ण-पल्लव को कंपाता था, उत्तर कुरु की सुन्दरियों के कान में पहने हुए कमलों को हिलाता था। हर की जटा में बँधने से घबराये हुए वासुकी नाग के पीने से बचा हुआ पवन कोष-फल के वृक्ष को हिलाता था, सुरपुन्नाग के फूलों से पराग गिरता था।'[८]

क—कैलास की तलहटी में महादेव का एक सिद्ध-मन्दिर चन्द्रापीड़ देखता है और साथ ही वह प्रदेश एक सुन्दर वन से सुशोभित है—'प्र० भ०। आपस में कुपित हुए कपोतों के पंखों से उसके वृक्षों के फूल झड़ जाते थे। पुष्प-पराग की ढेर की तरह विचित्र मैना उनकी चोटियों पर बैठी थीं। सैकड़ों तोते अपनी चोंच और नाखून से उन वृक्षों के फलों के टुकड़े-टुकड़े कर डालते थे। मेघ-जल के लोभ में आए हुए—पर बाद में धोखा खाये हुए मुग्ध चातक तमाल वृक्षों की घटा में कोलाहल कर रहे थे। लवली के लता-मंडप हाथी के बच्चों द्वारा पत्ते तोड़े जाने से छिल जाते थे। नव यौवन से मत्त हुए कबूतरों के पाँव फड़फड़ा कर बैठने से उनके फूलों के गुच्छे गिर पडते थे। पवन की लहर से काँपते कोमल केले के पत्ते वहाँ पंखा का काम देते थे। नारियल के वन फूलों के भार से झुक गये थे। उनके आस-पास कोमल पत्ते वाले सुपारी के वृक्ष लगे थे। पक्षी बेरोक पिंड-खजूर को कुतर डालते थे। बीच-बीच में मन्द शब्द करती हुई मयूरी का मधुर स्वर सुनाई पड़ता था। असंख्य कलियाँ खिली हुई थीं। वहाँ

घाटी का वन

---

८. का० ; पू० भा० ; पृ० २६१, ३७१, ३७२।

रेतीली भूमि पर इधर-उधर कैलास की नदियों की तरंगों के झकोरे लगते थे। महावर से रंगी हुई वनदेवी की हथेली के समान अत्यंत सुकुमार कलियाँ वहाँ के वृक्षों में आ रही थीं। हरिनियों का झुंड गन्धिपर्ण खाकर उनके नीचे आनन्द से बैठा था। कपूर और अगरु के वृक्ष वहाँ अधिक थे'।[९]

सर-सरिता

§ ८—बाण ने अगस्त्य के आश्रम के निकटवर्ती पम्पासर का विस्तृत और चित्रमय वर्णन किया है—'समुद्र पान करने के कारण क्रुद्ध वरुण से उत्तेजित ब्रह्मा ने अगस्त्य मुनि के द्वेष के कारण उनके आश्रम की तीर ही मानो विशाल सागर उत्पन्न कर दिया है। प्र० भा०। पानी में निःशंक उतरी हुई और जल-क्रीड़ा में मग्न वन-देवियों के नहाने के समय गिरे हुए केशों के फूलों से वह सुगन्धित है। एक ओर उतरे हुए ऋषियों के कमंडल भरने से होती हुई मधुर-ध्वनि से वह मनोहर जान पड़ता है। खिले हुए कमलों के वन में विचरते और समान रंग के कारण केवल स्वर से पहिचाने जाते कल-हंस वहाँ बहुत हैं। नहाने के लिए उतरी हुई किरातों की सुन्दरियों के स्तनों के चन्दन की रज से उसकी तरंगें सफ़ेद हो गई हैं। पास ही उगे हुए वृक्षों के पत्तों में होकर आती हुई हवा के कारण उसका जल स्थिर नहीं रह पाता है। उसके तीर पर वृक्षों की कुंजें क्रम से लगी हुई हैं। उनमें तमाल की कतारों से अँधेरा छा रहा है। बालि द्वारा निर्वासित होकर घूमते हुए ऋष्यमूकवासी सुग्रीव के प्रतिदिन फल तोड़ने से डालियाँ हल्की हो गई हैं। जल में खड़े होकर तप करते हुए तपस्वी उनके फूलों को पूजा के काम में लाते हैं। प्र० भा०'।[१०]

पम्पासर

§ ९—पानी की खोज करते हुए चन्द्रापीड़ को सरोवर का पता

९. वही ; वही ; पृ० २७२, २७३।
१०. वही, वही ; पृ० ४७–५०।

चलता है—'इतने में सरोवर के जल में नहा कर थोड़े समय पहले ही गए हुए बड़े-बड़े पहाड़ी हाथियों के चरणों से चिह्नित और कीचड़ से गीला मार्ग उसे देख पड़ा। सूँड से तोड़े हुए मृणाल, मूल और नाल सहित कमलों से वह चित्रित हो रहा था। अत्यंत गीले शैवाल के किसलयों से उसका भाग श्याम हो गया था। तोड़ कर डाले हुए कमल, कुमुद, कुवलय और कह्लार के फूलों की कलियाँ बीच-बीच में बिखरी हुई थीं। तोड़ कर डाले हुए फूलों के गुच्छों सहित वन के पत्तों से आच्छादित था। वहाँ मार्ग में उखाड़ कर डाले हुए कमलगट्टा कीचड़ में सने पड़े थे। काट कर गिराई हुई वन-लताओं के फूलों पर बैठे हुए भौंरे वहाँ विलास कर रहे थे और तमाल-पल्लव के रस जैसे श्याम फूलों की गन्ध देता मद-जल वहाँ सर्वत्र बिखरा था'।[११] मार्ग का यह वर्णन अपनी चित्रमयता में भी सहज है। कुंज में प्रवेश कर चन्द्रापीड़ को उसके बीच में मनोहर अच्छोद सर दिखाई दिया—'वह त्रिभुवन लक्ष्मी के मणिदर्पण के समान, भूमि देव के स्फटिक-मय तहखाने के समान, सब सागरों के निकलने के स्थान के समान, दिशाओं के झरने के समान, नभतल के अंशावतार के समान था। उसमें मानों कैलाश समा गया हो, हिमालय विलीन हो गया हो, चन्द्रमा का प्रकाश रसातल को प्राप्त हुआ हो, पानी के रूप में वैदूर्य-मणि के समान, पिघल कर एकत्र हुए शरद् के मेघ-समूह के समान और वरुण के दर्पण के समान है। स्वच्छता में वह ऐसा लगता था मानों मुनियों के मन का, सज्जनों के सद्गुणों का, हरिणों की नेत्र-प्रभा का और मोतियों की किरणों का ही बनाया हुआ हो। पूर्ण रूप से भरे होने पर भी उसके भीतर की सब चीज़ें स्पष्ट दिखाई देती थीं, जिससे वह खाली सा जान पड़ता था। सब दिशाओं से एकत्र हुए, हवा से उछलती हुई जल-तरंगों की बूँदों उत्पन्न हुए हज़ारों इन्द्रधनुष मानों उसकी

अच्छोद सर

---

११. वही; वही; पृ० १६०।

रचा करते थे। नारायण की भाँति उसने भी खिले हुए कमल वाले उदर में प्रतिबिम्ब रूप से घुसे—वन, पर्वत नक्षत्र और ग्रहों से युक्त त्रिभुवन को धारण किया था। जल में से धुले हुए पार्वती के गालों से निकले हुए लावण्य-प्रवाह का अनुकरण करने वाला—पास ही कैलास पर से उतर कर महादेव के बार-बार यहाँ नहाने के क्षोभ से चलायमान हुए चूड़ा-मणि-रूपी चन्द्रखंड से गिरता—अमृत-रस उसके जल में मिला था। किनारे के तमाल-वन के प्रतिबिम्ब के कारण जिसका अन्तर अंधकार से व्याप्त है, ऐसे रसातल के द्वार दिखाते सलिल-प्रदेशों से वह अधिक गंभीर लगता था। उसके नील-कमल के गहन वन को, दिन में भी रात्रि की शंका चक्रवाक युगल छोड़ देते हैं। प्र० भा०। यौवन की तरह वह उत्कलिकाओं (उत्कंठा) से भरा था, प्रेम पीड़ित पुरुष की भाँति वह मृणाल के कंकन से अलंकृत था—आदि'।[१२] बाण अपने चित्र में रूप की रेखाएँ गहरी उभारते हैं, फिर रंगों का छायातप बहुत स्पष्ट तथा तीव्र डालते हैं और बाद में अनेक कल्पनाओं से वातावरण का निर्माण करते हैं।

§ १०—पर्वत के समान बाण ने सरिता का भी स्वतंत्र वर्णन नहीं किया है। हर्षचरित में सरस्वती के ब्रह्मलोक से पृथ्वी की ओर आते समय

आकाश-गंगा

दिव्य गंगा का अनुसरण करती हैं। इस प्रसंग में गंगा-प्रवाह का वह दिव्य रूप प्रस्तुत किया गया है—गंभीर गर्जना करते हुए धर्मधेनु के समान नीचे लटकते पयोधरों को धारण कर रही थी। वह शिव के मस्तक को मालती-माला सी जान पड़ती थी। उसका तट निश्चल बालखिल्य मुनियों से भरा था और वहाँ अरुन्धती वल्कल धोती थी। उसकी ऊँची उठती लहरों को पार करते हुए उजले तारे तरल हो रहे थे।...आचमन करके पवित्र हुए इन्द्र के द्वारा अर्पित पूजा के फूलों से वह चित्रित हो रही थी। वह शिवपुर से गिरी हुई

---

१२. वही; वही; पृ० २६८–२६६।

मन्दार फूलों की पूजा विशेष की माला धारण कर रही थी। वह मन्दराचल की गुहा की चट्टानों को अनादर के साथ खंड-खंड कर रही थी। अनेक देवांगनाओं के स्तन-कलशों से उसका जलमय शरीर तरंगित हो रहा था। घड़ियालों तथा शिलाओं पर गिरने से उसकी धारा मुखरित हो रही थी। सुषुम्णा नामक सूर्य्य किरण से निकले हुए चन्द्रमा के अमृतमय छींटों से उसके तीर पर मानों तारकाएँ बिछ गई थीं। बृहस्पति के यज्ञ के धुएँ वहाँ सिद्धों द्वारा बालू से बनाये गये लिंगों के लाँघने के भय से विद्याधर भाग रहे थे। आकाश गंगा आकाश-सर्प के द्वारा छोड़ी गई केंचुली सी स्वर्ग रूपी विट के ललाट के लीला अलंकार सी, पुण्य रूपी सौदा के दूकान की गली सी, नरक-नगर के द्वार को बन्द करने की अर्गला सी, सुमेरु नृप की रेशमी पगड़ी सी, कैलास के जर की पताका सी, मोक्ष-मार्ग सी, कृतयुग रूपी पहिए की नेमिसी और क्षीर सागर की पटरानी सी दिखाई पड़ रही थी'।[१३]

आश्रम-स्थिति

§ ११—कवि ने दण्डकारण्य के अन्तर्गत अगस्त्य के आश्रम का संश्लिष्ट वर्णन प्रस्तुत किया है—प्र० भा०। उस आश्रम के चारों ओर की भूमि सब दिशाओं में फैले हुए तोते के समान हरे रंग के केलों से किंचित श्याम हो गई थी।

अगस्त्य

गोदावरी उसके आस-पास इस प्रकार प्रवाहित होती थी मानों अगस्त्य के आचमन किये गये समुद्र के पीछे-पीछे बेणी बाँध कर जा रही हो।' आश्रम के वातावरण को कवि राम-वनवास की पूर्व स्मृतियों से जोड़ कर भावशील बना देता है—'राम सीता के साथ पंचवटी में लक्ष्मण द्वारा बनाई हुई कुटी में कुछ दिन रहे थे। बहुत समय से उजड़े हुए उस प्रदेश में आज भी शाखाओं में चुपचाप घुसे हुए कबूतरों की पंक्तियों से वृक्ष ऐसे दीखते हैं मानों तपस्वियों के अग्निहोत्र के धुएँ की घटा से

१३. हर्ष० ; उ० १ ; पृ० १८—१९।

आच्छादित हो। वहाँ पूजा के लिये फूल तोड़ती हुई सीता के हाथों में लगा हुआ लाल रंग मानों लता और पत्तों में चमकता है। पीकर निकाला हुआ समुद्र का ही जल मानों अगस्त्य ने अपने आश्रम के बड़े सरोवरों में बाँट दिया है। वहाँ का वन ऐसा जान पड़ता है राम के तीक्ष्ण बाणों के प्रहार से मरे हुए राक्षसों के गाढ़े रुधिर से जड़ सींची जाने उसमें अब भी किसलय के रूप में उसी रंग के पत्ते निकलते हैं। प्र० भा०। वहाँ बार-बार मृगया में जंगल के हरिणों को राम ने बिलकुल निर्मूल कर डाला था; मानों इसी से उत्तेजित होकर सोने के हरिन ने सीता को धोखा दिया और राम को दूर ले गया था। रावण के विनाश की सूचना देते हुए तथा सूर्य्य-चन्द्र की तरह कबन्ध से घिरे, सीता-वियोग में दुःखी राम-लक्ष्मण ने तीनों लोकों को भयभीत कर दिया था। राम के बाण से कट कर गिरी हुई योजन-बाहु की लम्बी भुजा को देख कर ऋषियों को ऐसी होता था, मानों अजगर-शरीर धारी नहुष अगस्त्य को प्रसन्न करने आया हो। वहाँ राम ने वियोग के समय मन बहलाने के लिये पर्णकुटी के भीतर सीता का जो चित्र खींच लिया था, उसे अब तक बनचर लोग इसी भांति देखते हैं मानों राम के निवास को देखने की उत्कंठा से सीता पृथ्वी से फिर निकल रही हैं।'[१४]

§ २—पिछले आश्रम में त्यक्त आश्रम का रूप था। जाबालि के आश्रम-वर्णन में प्रत्यक्ष प्रकृति और जीवन के सम्पर्क का चित्र है।

जाबालि

हारीत द्वारा ले जाये जाकर वैशम्पायन ने उस आश्रम को देखा—'वह मानों दूसरा ब्रह्मलोक था। प्र० भा०। सुपारी के लता रूपी हिंडोलों में वनदेवियाँ झूल रही थीं। अधर्म विनाश की सूचना देने वाले उल्कापात की तरह पवन से हिलाये हुए बहुत से सफ़ेद फूल बार-बार वृक्षों से गिरते थे। दण्डकारण्य की भूमि से आश्रम का पिछला भाग मनोहर लगता था। निर्भय होकर

१४. काद०; पू० भा० पृ० ४४–४७।

भागते हुए सैकड़ों काले हरिनों से वह भूमि विचित्र थी और खिली हुई कमलिनियों से वह भूमि लाल-लाल थी। राम-लक्ष्मण ने धनुष की नोक से वहाँ कंद उखाड़ा था, इससे भूमि-तल नीचा-ऊँचा हो गया था। कपट-मृग का रूप धर मानों मारीच ने बड़ी-बड़ी लताओं के पत्ते कुतर लिये थे। लकड़ी, कुशा और मट्टी लेकर सब दिशाओं से आते हुए शिष्यों के आगे आगे चलते हुए मुनि पास ही दिखाई देते थे। पानी के कलसे के भरने की ध्वनि को, मेघ-गर्जना समझ वहाँ के मोर गर्दन उठा कर सुनते थे।......वहाँ ऊँची चढ़ती हुई धुएँ की लेखा के बहाने मानों मार्ग में सीढ़ियों का पुल स्वर्ग जाने के लिये बँधा हो। आश्रम के पास चारों ओर बावलियाँ थीं, उनकी मलिनता मानों तपस्वियों के साथ से जाती रही थी। तरंग-माला में सूर्य्य का प्रतिबिम्ब पड़ने से ऐसा मालूम होता था मानों मुनियों के दर्शन के लिये आये सप्तऋषि उसमें स्नान करते हों। प्र० भा०। मुनियों के आंगन में सूखने के लिए श्यामाक (साँवा) बिछा हुआ था इमली, लवली, बेर, केले, लकुच, कटहल, आम और ताल के फल इकट्ठे रखे हुए थे। बार-बार सुने हुए वषट्कार शब्द का उच्चारण करते हुए तोते वाचाल थे। प्र० भा०। हवन में अधजले कुश, समिधा और फूल चिड़चिड़ाते थे। पत्थर से तोड़े गये नारियल के पानी से शिलातल गीले हो रहे थे। हाल के निचोड़े गये बल्कलों से भूतल लाल हो गया था। लाल चन्दन से चित्रित सूर्य्य-मण्डल पर कनेर के फूल चढ़े थे। हिले बन्दर बूढ़े और अन्धे तपस्वियों को हाथ पकड़ कर इधर-उधर ले जाते थे हाथियों के बच्चों से मृणाल के टुकड़े चबाये पड़े थे, वे सरस्वती की भुज-लताओं में से निकले हुए शंखों के कंकण के समान लगते थे और आश्रम उससे चित्रित था। हरिन अपने सींगों से ऋषियों के लिये कन्द-मूल खोदते थे। हाथी अपनी सूँड़ में पानी भरकर वृक्षों की क्यारियाँ सींचते थे। जंगली सुअरों के दाँतों के बीच से ऋषि-कुमार कमल-कंद खींच लेते थे और पालतू मोर अपने पंखों की हवा से

मुनियों की होमाग्नि को सुलगाते थे'।[१५]

§ १३—हर्षचरित में दिवाकरमित्र के आश्रम का वर्णन भी इसी प्रकार है—'बौद्ध धर्म के प्रभाव से वहाँ हिंसक पशुओं ने अपना स्वभाव छोड़ दिया था। उसके आसन के समीप सिंह-शावक निडर होकर बैठे हुए थे। वन के हरिण उसके पाद-पल्लवों को चाट-चाट कर मानों शम पी रहे थे। अपनी बाईं हथेली पर बैठे हुए कर्णोत्पल के सदृश कबूतर के बच्चे को नीवार खिलाते हुए वह मैत्री प्रकट कर रहा था। वह उद्ग्रीव मोर को जल-धारा से मरकत मणि से बने कमण्डलु की भाँति भर रहा था'।[१६] इस आश्रम में प्रभाव का उल्लेख ही विशेष है।

बौद्ध आश्रम

मृगया-प्रसंग

§ १४—बाण ने समस्त मृगया-प्रसंग को बहुत ही सूक्ष्म विवरण के साथ उपस्थित किया है। प्रत्येक स्थिति को उसके सूक्ष्म विवरण के साथ बाण चित्रित करते हैं और साथ ही उसमें गति और जीवन की अभिव्यक्ति कलात्मक रूप से सुन्दर है। प्रारम्भ में कवि केवल कोलाहल का वर्णन करता है—'तभी सहसा उस महावन में मृगया का कोलाहल सुनाई पड़ा। उससे सब वनचर संत्रस्त हो गये। वह घबराहट से उड़ते हुए पक्षियों के पंखों के शब्दों से फैल गया, डरे हुए हाथियों के बच्चे की चीत्कार से बढ़ गया, हिलती हुई लताओं पर व्याकुल हुए मत्त भौंरों की गुंजार से स्थूल हो गया। वह ध्वनि ऊँची नाक वाले जंगली सुअरों के स्वर से कठोर हो गई, पर्वत की गुफाओं में नींद से जगे हुए सिंहों के नाद से घनी हो गई और वृक्षों को कँपाती सी जान

शबर-मृगया
(१) कोलाहल

१५. वहीं ; वही ; पृ० ८७–८६।
१६. हर्ष० ; उ० ८ ; पृ० २७७

पड़ने लगी। वह भगीरथ द्वारा नीचे लाये गंगा-प्रवाह के कलकल के समान मालूम होती थी और वनदेवता भी उसे भयभीत होकर सुन रहे थे'।[१७]

क—आगे कवि शबरों द्वारा वन का वर्णन कराता है, जिससे मृगया के पूर्व वन की स्थिति का रूप सामने आता है। इन उल्लेखों में शबरों के आखेट का दृष्टिकोण ही प्रधान है—

वन की स्थिति

प्र० भा०। इधर हरिनों के झुंड हैं, उधर जंगली हाथियों का झुंड दिखाई देता है; उधर जंगली सुअरों का झुंड फिरता है। यहाँ से जंगली भैंसों का झुंड निकल रहा है; इस दिशा से मयूर का शब्द आता है; इस ओर चातक की मधुर कूक हो रही है; इधर कुरर पक्षियों का गान सुनाई देता है; इस तरफ सिंहों के नखों के विदीर्ण हुए कुंभ वाले हाथियों की गर्जना सुनाई देती है। यह है गीले कीचड़ से मलिन शूकरों का रास्ता; यह रहा टूटी हुई ताजी घास के रस से किंचित श्यामल हुआ हरिनों की जुगाली से गिरे हुए झागों का ढेर। यहाँ सुगंधित मद वाले उन्मत्त हाथियों के गंडस्थल घिसने से निकली हुई गंध पर लट्टू हुए वाचाल भौंरों का गुंजार सुनाई दे रहा है; देखो, यह टपकती हुई रक्त से भीगे हुए पत्तों से लाल हुआ रुरुमृग का मार्ग है। यह रहा, हाथियों के पैर के नीचे कुचले हुए पेड़ों की पत्तियों का ढेर; इस जगह गैंडों ने क्रीड़ा की है; यह रहा मृगपति का मार्ग, इसमें नखों के अग्रभाग के विकट चिह्न बन गये हैं और यह गज-मुक्ताओं के टुकड़ों से दन्तुरित तथा रुधिर से लाल है। देखो, यह हाल की ब्याई हुई हरिनी के गर्भ में से बहते हुए रुधिर से लाल भूमि। यह रही वन-भूमि की चोटी के समान लगती हुई यूथ से बिछुड़े हुए गजपति की, मद से मलीन हुई पद-पंक्ति। हरिनियों के पैरों की रेखा पर चलो, हिरनों की सूखी हुई मेंगनी की धूल वाली इस वनस्थली पर जल्दी बैठ

१७. काद० ; पू० भा० ; पृ० ५८–५९।

जाओ; वृक्षों की चोटी पर चढ़ जाओ; निगाह इस दिशा में ले जाओ; इस शब्द को सुनो, धनुष लो, सावधान होकर खड़े रहो, कुत्तों को छोड़ दो। इस प्रकार के कोलाहल से वह संक्षुब्ध हो उठा'।[१८]

आखेट का दृश्य

ख—इसके बाद बाण ने आखेट का वास्तविक दृश्य सजीव और सशक्त शैली में प्रस्तुत किया है। इस चित्र में प्रत्येक घटना प्रत्यक्ष सामने आ जाती है—'प्र० भा०। पति-विनाश के ताजे शोक से वियोगिनी हथिनियों की चिंघाड़ बढ़ गई थी; ये इधर-उधर घूमती थीं, इनके कान खड़े हो गये थे और कोलाहल करते हुए बच्चे इनके पीछे पीछे चले आते थे। गैंडों की स्त्रियाँ गद्गद् कंठ से करुणा-पूर्वक चीख मारती हुई विलाप सा कर रही थीं, और ये डर से घबराये हुए और थोड़े दिनों पहले पैदा हुए अपने बच्चों को ढूँढ़ रही थीं। वृक्षों की चोटियों से उड़कर व्याकुल फिरते पक्षियों का कोलाहल हो रहा था। पशुओं के पीछे दौड़ते हुए व्याधों के चरणों का शब्द हो रहा था, वह मानों वेग से ताड़ना की गई भूमि को मानों कँपा रहा था। कानों तक खींची हुई प्रत्यंचा वाले धनुषों का शब्द हो रहा था। धनुष बाणों की वर्षा कर रहे थे और इनका शब्द मदमत्त कुररी के कंठ-स्वर से मिलता था। पवन की ताड़ना से खड़खड़ाती धार वाली और भैंसों के कठिन कन्धों पर गिरती हुई तलवारों का रणत्कार हो रहा था। ज़ोर से भौंकते हुए कुत्तों का नाद सारे वन में व्याप्त हो रहा था और ऐसे शब्दों के कोलाहल से वन मानों थरथरा गया'।[१९]

अशुभ उत्पात

§ १५—हर्षदेव के पिता की मृत्यु के समय बाण ने प्रकृति में अशुभ का संकेत देने वाले उत्पातों का वर्णन किया है—'सम्पूर्ण कुल-

१८. वही; वही; पृ० ५९—३१।
१९. वही; वही; पृ० ६१—३२

पर्वतों सहित पृथ्वी काँप उठी, मानों पति के साथ जाने की इच्छा से चलायमान हो। परस्पर टकराती हुई तरंगों से सागर क्षुब्ध हो उठा मानों विपत्ति में धन्वन्तरि का स्मरण कर रहा हो। मोर-पुच्छों की भाँति लम्बे और कुटिल धूमकेतु ऊपर उठ आये, मानों भावी राज-विनाश से भीत दिशाओं के केश-पाश हों। धूमकेतुओं से दिशाएँ विकराल हो गई, मानों दिक्पालों द्वारा प्रारम्भ किये आयुष्काम यज्ञ का धुआँ धूमिल हो गई। तपाये हुए लोहे के घड़े के समान लाली लिये हुए भूरे सूर्य्य-मण्डल में भयंकर कबन्ध दीख पड़ा, मानों राजा की प्राण-रक्षा के किसी इच्छुक ने उसे पुरुष का उपहार दिया। परिधि के प्रज्वलित होने से चन्द्रमा चमकीला हो गया, मानों ग्रहण करने की इच्छा से जँभाई लेते हुए राहु के डर से उसने आग की दीवार खींच ली है। अनुरक्त दिशाएँ जल उठीं, मानों राजा के प्रताप से अलंकृत होकर वे पहले ही आग में प्रवेश कर चुकीं। रक्त-बिन्दुओं की झड़ी से वसुधा-वधू लाल हो गई, मानों लाल रेशमी कपड़े से ढक गई। राज-विनाश से होने वाले उद्वेग से भीत लोकपालों ने काले लोहे के किवाड़ रूपी अकाल के काले बादलों से मानों दिशाओं के द्वार बन्द कर लिये। हृदय को वेधने वाले तूफानों के घोर गर्जन बढ़ने लगे, मानों यम की यात्रा के समय गम्भीर ध्वनि वाले नगाड़े बजे। ऊँटों के बाल की तरह भूरे धूल-पटल ने आकाश को धूसर कर दिया, मानों निकट आते यम-महिषों के खुरों से उठा हो। झुंड के झुंड सियार मुँह उठा कर आकाश से गिरती उल्काओं के समान देख पड़ती अग्नि-ज्वालाएँ फेंकते कटु शब्द बोले'।[२०] इस प्रकार के लक्षण प्रकृति में घटित होना अशुभ माना जाता है और बाण ने यहाँ राजा की मृत्यु के अनुरूप वातावरण इस प्रकार प्रस्तुत किया है।

भयानक रूप

---

२०. हर्ष० ; उ० ५ ; पृ० २६२।

काल-परिवर्तन

§ १६—बाण की प्रतिभा का पूर्ण परिचय उनके काल सम्बन्धी वर्णनों से मिलता है। और सबसे अधिक विस्तार इन्हीं प्रकृति के रूपों को उन्होंने दिया भी है। काल के परिवर्तित होते रूप में रंगों का महत्त्वपूर्ण स्थान है, और उनको संयोग तथा सामंजस्य स्थापित करने में बाण अद्वितीय हैं। भारतीय भाषा और साहित्य में रंगों की विभिन्न शेडों (छायातपों) और संयोगों के लिये अधिक व्यंजक नहीं हैं। परन्तु कवियों ने उपमानों से इस कमी को पूरा करने का प्रयास किया है। बाण इसमें सबसे अधिक सफल कवि हैं। रंगों के हल्के परिवर्तन के लिये वे बहुत ही व्यंजक और प्रत्यक्ष उपमान प्रस्तुत करते हैं। अपनी प्रतिभा के कारण वे काल-वर्णन के अद्वितीय कलाकार हैं। बाण ने सन्ध्या के चित्र उपस्थित करने में अपनी समस्त कवित्व तथा कल्पना शक्ति लगा दी है। सन्ध्या में बनते-मिटते रंगों का ऐसा दृश्य रहता है जिसके विचार में बाण का मन अधिक रमा है। बाण के साथ उनके पुत्र के वर्णनशैली और प्रकृति के कारण साथ ही स्वीकार कर लिये गये हैं। कादम्बरी का उत्तर भाग बाण के पुत्र द्वारा रचित माना जाता है। मध्याह्न का वर्णन इसी के अन्तर्गत है।

काल का रूप

क—दोपहर के इस वर्णन में काव्यात्मक शक्ति और कल्पना बाण के समान ही है—'सूर्य्य आकाश के बीच में आ गया, मानो उसने विचारा है कि ऊपर रहकर आठों दिशाओं में एक साथ किरणें फैला कर बिना प्रयत्न के ही अत्यन्त कष्ट दायक संताप उत्पन्न करूँगा। किरण-जाल धूप के बहाने मानों गरम चाँदी का रस डालने लगा। धूप के कण शरीर को भेंटकर भीतर घुसने लगे। इकट्ठे हुए प्राणियों के समूह समेत वृक्षों की छायातल में प्रवेश करके सिकुड़ने लगी। बाहर देखने में दृष्टि समर्थ नहीं हुई; दिशाएँ मानों जलने लगीं। भूमितल का स्पर्श करना कठिन हो गया। रास्ते

मध्याह्न

बन्द हो गये। पथिक भी प्याऊ की सकरी कोठरी के भीतर पानी पीने के लिये एकत्र होने लगे। हाँपने से आतुर हुए पक्षी जब अपने-अपने कोटरों में घुस गये। भैंसे पोखर के जल में उतर गये। सरोवर के पंक में हाथियों के झुंड घुसने लगे, उनके स्वेच्छा से हिलाने के कारण उखाड़े हुए मृणाल-दंड के टुकड़ों से ऊँचे नीचे और कमल के पत्तों तथा किंजल्क से सरोवर चितकबरा हो रहा है'। आगे ग्रीष्म व्यतीत करने के लिए बनाई हुई एक नहर का वर्णन किया है—'वहाँ सरोवर के किनारे एक जलमंडप था (झरना)। जलधाराओं की निरन्तर होने के कारण सूर्य्य का संताप दूर हो गया था। उसके आस-पास एक ही धारा में, वर्षा के वेग से बहती नदी के समान, एक नहर थी। भीतर लटकाए हुए जल-जम्बु के कोमल पत्तों से उसमें अन्धकार हो रहा था। उसके सब खम्भों पर फूलों और पत्तों से युक्त लताएँ लिपटी हुई थीं। सरस मृणाल इधर उधर पड़े थे। समस्त भूतल पर मरकत के समान श्याम कमल के पत्ते बिछे हुए थे। सुगंधित और सरस फूले हुए कमलों के ढेर वहाँ बिखरे हुए थे। इधर-उधर पानी की बूँदे बरसाती शैवाल की प्रवाल-मंजरियों से वहाँ अकाल मेघ-समय की रचना की गई थी'।[२१] इस वर्णन में सामन्ती ऐश्वर्य का रूप मिला हुआ है।

§ १७—जाबालि के आश्रम में वैशम्पायन के पहुँचने के बाद कवि कथा-प्रारम्भ होने के पूर्व सन्ध्या का वर्णन करता है—'दिन तब तक ढल चला था। स्नान करने के बाद अर्घ्य देते समय मुनियों ने जो लाल चन्दन धरती पर डाला था, उसी का आकाश-स्थित सूर्य्य ने मानों अंग में साक्षात् लेप किया था। क्षीण ताप वाला सूर्य्य इस प्रकार दुर्बल हो गया, मानों मुँह ऊँचा करके, सूर्य्य-बिम्ब के सामने दृष्टि रख कर, ऊष्म पान करने वाले ऋषि उसका तेज पी गये हों। सप्तर्षि मंडल का स्पर्श त्याग करने की इच्छा से,

सन्ध्या : आश्रम में

२१. काद० ; उत्त० भा ; पृ० ५६४–५६५।

कबूतर के चरण के समान गुलाबी सूर्य्य मानों पाद (किरण) समेट कर आकाश में नीचे लटकने लगा। प्र० भा० ।······सूर्य्यास्त होने के बाद मुनियों को बिहार करके वापस आती, रक्त-तारक वाली तपोवन धेनु के समान कपिल सन्ध्या कहीं-कहीं दिखाई दी। थोड़ा ही बीता था कि सूर्य्य के वियोग से शोकग्रस्त कमलिनी ने व्रत करने वाली स्त्री के समान, कली रूपी कमंडल, मृणाल रूपी जनेऊ, मधुकर रूपी रुद्राक्ष तथा हंस रूपी श्वेत वस्त्र धारण किया। पश्चिम सागर के जल में सूर्य्य के गिरने के वेग से उछले हुए जल के सीकर-समूह के समान आकाश में तारे निकल आये। उस समय आकाश तारों से इस प्रकार दीखने लगा मानों सन्ध्या-पूजन करने में सिद्ध कन्यायों द्वारा फेंके गये फूलों से चित्रित हो। और फिर क्षण भर में सन्ध्या का सब रंग इस प्रकार जाता रहा मानों मुँह ऊपर करके मुनियों द्वारा प्रणाम के समय, ऊपर को फेंके अंजलि के पानी से धुल गया हो'।[२२]

क—चन्द्रापीड़ के मृगया के लिये जाने के पहले दिन बाण ने सन्ध्या का वर्णन किया किया है—'इस प्रकार दिन समाप्त हुआ।

अन्धकार प्रवेश

आकाश से उतरती हुई दिवस-श्री के पैर में से गिरते—अपनी प्रभा भरे हुए छेद वाले—पद्म-राग के नूपुर के समान रविमण्डल, किरणें फैला कर नीचे गिर गया। प्र० भा०। सूर्य्य-बिम्ब ने किरण रूपी सम्पुट से सायंकाल तक पिये हुए कमल के मधु-रस को मानों आकाश के बीच में चलने की थकावट के कारण, लाल धूप के आकार में उगल दिया। फिर क्रमशः पश्चिम दिशा का लाल कमल-कुंडल, सूर्य्य-मडल अन्य लोक में चला गया। सन्ध्या-गगन सरोवर की विकसित कमलिनी के समान दिखाई पड़ी। काले अगरू की पत्र-लता के समान तिमिर रेखाएँ दिशाओं के मुख में फेंकने लगीं। लाल कमलों के सरोवर के समान

---

२२. काद० पू० भा० ; ह० १०३-१०५।

सन्ध्या-राग को कतलयवन के समान अन्धकार दूर करने लगा। अन्धकार के पल्लवों के समान भ्रमरों के झुंड कमलिनियों के पिये हुए आतप को निकालने के लिए लाल कमलों के उदर में घुसने लगे। धीरे-धीरे निशा रूपी विलासिनी के मुख का कर्ण-पल्लव रूपी सन्ध्या-राग गिर पड़ा। मोरों के बैठने के डंडों की चोटियों पर अन्धकार व्याप्त हो जाने से मयूरों के नहीं बैठने पर भी वे उन पर बैठे से जान पड़ने लगे। प्रसाद-लक्ष्मी के कर्णोत्पल के समान कबूतर घोंसलों में चले गये'।[२३] कादम्बरी में एक-दो स्थलों पर सन्ध्या का वर्णन कथा-प्रसंग में और हुआ है जिनका अधिक अंश प्रथम भाग में ऊद्धृत किया जा चुका है।

ख—बाण ने हर्षचरित में अनेक प्रसंगों में सन्ध्या का वर्णन उपस्थित किया है; उनके चित्रमय अंशों को यहाँ संकलित किया जाता है।—'इसी बीच सूर्य मानों सरस्वती के अवतरण की बात कहने के लिये मध्यलोक पर उतरा। धीरे-धीरे दिन का अवसान होने लगा तथा कमलों के बन्द होने के कारण सरोवर दुःखी होने लगे। आसव के मद में मत्त कामिनी के कुटिल कटाक्ष से मानों गिराया जाता हुआ, तरुण वानर के मुख के समान लाल, लोकों का एक नेता भगवान सूर्य अस्ताचल के शिखर से तेजी से उतर रहे हैं।—दिन के तीसरे पहर घूमने के लिए निकला हुआ, चँवर-युक्त ऐरावत गंगा के तट को स्वच्छंदता-पूर्वक खोद रहा था तथा सोने के तट पर चोट करने से उसके दाँत बज उठते थे। विद्याधरों की विचरती हुई अनेक अभिसारिकाओं के सहस्र चरणों के महावर से मानों लिप्त हुआ आकाश लाल हो रहा था। आकाश में घूमने वाले सिद्धों के द्वारा सूर्यास्त के अर्घ्य में ढाला गया लाल चन्दन दिशाओं को लाल करता हुआ स्रवित हो रहा था, मानों पिनाकी की पूजा में

हर्षचरित व्यापार

---

२३. वही, वही; पृ० २११-२१२।

आनन्द-विभोर सन्ध्या के लाल रंग का पसीना आ रहा था।······ ब्रह्मा के वाहन धवलहंसों से गंगा की तरंगें बड़े-बड़े दाँत दिखाकर मानों हँस रही थीं। अपने ही मधु के मधुर आमोद से सुगन्धित आनन्दप्रद कुमुद समुदाय विकसित होने की अभिलाषा कर रहा था; वह देवताओं के आतपत्र और पक्षियों की कामिनियों के प्रासाद स्वरूप था। कोमल कमल-नालों से खुजलाने के लिये अपने कन्धों को झुकाये हुए और अपने हिलते पैरों से कमलों के व्यजन डुलाता सा, राजहंसों का झुंड, दिवस के अन्त में बन्द होते कमलों के मधुर मधु के सहपान से प्रसन्न सोने की इच्छा कर रहा था। निशा के निःश्वास के समान सायंकालीन मन्द समीर किनारे की लताओं के फूलों के पराग से सरिता को धूसर करते हुए बहने लगा। भौंरों का समूह ऊपर उठे ऊँचे किसरों से युक्त कमल-कोप की कोटर रूपी कुटी में आराम कर रहा था। आकाश तारों के गुच्छों से भर रहा था, मानों नृत्य में हिलती हुई शिव की जटाओं के कुटज नामक फूलों की कलियाँ हों।'[२४] 'लांगलिका के गुच्छे के सदृश ताम्र-वर्ण का, बूढ़े सारस के सिर के समान लाल आभा वाला, सविता का त्रयीमय तेजस्वरूप, कमलिनी का प्रिय सूर्य्य पच्छिम की ओर अपना मंडल फेंकता हुआ डूबने लगा।'[२५]

ख—हर्ष के पिता के मृत्यु के अवसर पर सन्ध्या भावों को प्रति-बिम्बित करती उपस्थित हुई है—'मृत्यु से अत्यंत विरक्त और शांत होकर

शोक से प्रभावित

सूर्य्य ने गिरि-गुफा में प्रवेश किया। आतप मानो लोगों के आँसुओं से शांत हो गया। संसार मानों सभी लोगों के रोने से लाल आँखों की आभा से लाल हो गया। दिवस मानों अगणित लोगों की गर्म उसाँसों से जल कर नीला हो गया कमलों को छोड़ कर मानों श्री राजा के पीछे चली। पतिवियोग से

---

२४. हर्ष ; उ० १ ; पृ० १४-१५।
२५. वही ; वही ; पृ० २८।

मानों पृथ्वी कान्ति-विहीन होकर श्याम हो गई।—दुःखी चक्रवाल जलाशय के तटों का आश्रय लेकर करुण प्रलाप करने लगे। कमलों ने अपने कोमल पत्तों के टूटने के भय से मानों कोषों को संकुचित कर लिया। दिग्वधुओं के फूटे हृदय की रुधिरधार की भाँति लाल प्रभा बह चली। जिसकी केवल लालिमा शेष है ऐसा तेज का स्वामी धीरे-धीरे दूसरे लोक चला गया। प्रेत-पता की तरह लाल सन्ध्या आई और उसकी लाली आकाश में फैल गई।' रात्रि का प्रवेश भी इसी प्रकार होता है—'किसी ने कृष्ण अगुरु की चिता के समान काली दिशाओं वाली रात बनाई। गज-दन्त के समान विमल पत्तों तथा केसरों से युक्त कुमुद खिलने लगे, मानों साथ मरने को उद्यत रानियाँ हँस रही हों, जो हाथी-दाँत के निर्मित कनफूल पहने थीं और जिनकी मुंड-मालाएँ बकुलों की बनी थीं। पेड़ों के ऊपर घोंसलों में चिपटी हुई चिड़ियों की मधुर चहक जान पड़ती थी मानों उतरते देव-विमानों की घंटियाँ हों और स्वर्ग में जाते हुए राजा की अगवानी करने के लिये आये हुए इन्द्र के आतपत्र के समान चन्द्र पूर्व दिशा में दिखाई पड़ा।'[२६] प्रकृति का इस प्रकार का प्रयोग बाण ने अनेक अन्य स्थलों पर किया है।

§ १८—जाबालि-आश्रम में, रात्रि होने के बाद चन्द्रोदय होता है, और इसी चाँदनी रात में मुनि कथा का आरम्भ करते हैं।—'प्र० भा०। चन्द्रमा के मंडल से जब उदय होने के समय की सारी ललाई जाती रही, उस समय वह ऐसा दीखने लगा जैसे आकाशगंगा में स्नान करने के बाद धुले सिंदूर वाला ऐरावत का कुंभस्थल हो। धीरे-धीरे चन्द्रमा के ऊपर चढ़ जाने से, अमृत की रज के समान चाँदनी से सारा जगत् सफ़ेद हो गया। ओस की बूँदों के कारण खिले हुए कुमुद-वन की सुगन्ध लाने वाला पवन धीरे चलने लगी और सुख से बैठे हुए जुगाली करते आश्रम के हरिन—जिनकी आँखें

रात्रि : चन्द्रोदय

---

२६. वही ; उ० ५ ; पृ० १६९-१७०।

नींद से भारी थीं और पलकें बन्द हो रही थीं—पवन का अभिनन्दन करने लगे।'[२७] इसी प्रकार कादम्बरी और चन्द्रापीड़ के प्रेम-प्रसंग में सन्ध्या-वर्णन के बाद चन्द्रोदय होता है—'प्र० भा०। कामदेव के साम्राज्य के अद्वितीय छत्र के समान, निशा के विलास के दंत-पत्र के समान, कुमुदिनी रूपिणी वधू का प्रिय चन्द्रमा उदित हुआ और उसकी चन्द्रिका के धवल जगत् हाथी-दाँतों में से एक उत्कीर्ण किया सा जान पड़ने लगा।'[२८] हर्ष-चरित में सन्ध्या के साथ चन्द्रोदय का दृश्य सामने आता है—'तरुण तिमिर-पटल को विदीर्ण करने में तीव्र दीप-समूह इस प्रकार जल रहा था, मानों यामिनी रूपी कामिनी के कर्ण-फूल रूप में चम्पक की कलियाँ खिल उठी हों। कुछ-कुछ सूखे तथा नीले जल से मुक्त यमुना-तट के बालुका तट के समान चन्द्रमा की विरल तथा सुन्दर किरणों के आलोक से धवल पूर्व दिशा अन्धकार को दूर कर रही थी। चन्द्रमा के करों से केश पकड़े जाने से दूषित हुआ अन्धकार, निशा रूपी शवरी के कुन्तल-समूह के समान, चाष पक्षी के पंख जैसा रंग वाले आकाश को छोड़ता हुआ तथा विकसित कमल-सरोवरों को अँधियारा करता हुआ मानिनी के मन की तरह विलीन हो रहा है। उदित हुआ चन्द्रमा रात्रि-रूपी वधू के उदय-राग से युक्त अधर की तरह लाल शरीर धारण कर रहा था, लगता था मानों उदयाचल की चोटी के पास की गुफा के सिंह के तेज पंजा रूपी अस्त्र से मारे अपने ही हरिण के शरीर से निकलती रुधिर-राशि से ढका हुआ था। उदयाचल से बहती हुई चन्द्रकान्त की जल-धारा से धुल कर मानों अन्धकार नष्ट हो गया। जान पड़ता है मानों गो-लोक से बहती दुग्ध-धारा से भरा हुआ मकर-मुख के समान हाथीदाँत के बने एक बड़े नल के रूप में चन्द्रमा ने समुद्र को भरना आरम्भ कर दिया है।'[२९] बाण के पात्रों

२७. काद० ; पू० भा० ; पृ० १०७-१०९।

२८. वही ; वही ; पृ० ४२२-४२३।

२९. हर्ष० ; उ० १ ; पृ० १५-१६।

में वैचित्र्य-विधान अधिक प्रधान रहता है, केवल उनकी कल्पना की प्रखरता में सौन्दर्य्य-बोध को इससे बाधा नहीं पहुँचती।

क—कुछ स्थलों पर चन्द्रोदय तथा ज्योत्स्ना का स्वतंत्र वर्णन लिया गया है। बाण ऐसे स्थलों पर प्रकृति को कथा-स्थिति से प्रभावित चित्रित करते हैं—'पीछे त्रिभुवन रूपी प्रासाद के समान, मानों सुधा रूपी धारा नीचे बहाते, चन्दन रस के झरनों को मानों झराते, श्वेत-गंगा के सहस्रों प्रवाहों का मानों उगलते, अमृत सागर के प्रवाहों का मानों वमन करते चन्द्र-मंडल थोड़ा-थोड़ा उदित हुआ और अन्तरिक्ष चाँदनी से डूब गया। महीमंडल को महावराह के दंष्ट्र-मंडल जैसा चन्द्र क्षीरसागर के उदर से निकाल रहा था।'[30] इसी प्रकार अन्यत्र भी—'उस समय पूर्व दिगन्तर चन्द्र-प्रकाश से, शशि रूपी सिंह कर रूपी नख से छेदे अंधकार रूपी गज के गडस्थल से निकले हुए मोती के चूरे से मानों श्वेत हुआ, उदयाचल की सिद्ध सुन्दरियों के स्तन पर से छूटे हुए चन्दनचूर्ण के पुंज से मानों श्वेत हुआ और चलायमान समुद्र-जल की तरंगो को कँपाती हुई पवन से उड़ाई हुई रेती के किनारे की धूल के उठने से मानों श्वेत हुआ दिखाई पड़ा। धीरे-धीरे चन्द्र-दर्शन होने से मंद मुस्काती निशा की दंत-प्रभा के समान गिरती चंद्रिका उसके मुख को शोभायमान करने लगी। उसके पीछे रसातल को फोड़ कर बाहर आये शेषनाग के फन के समान, चद्र-बिम्ब से रात्रि प्रकाशित होने लगी। अमृतमय चंद्रमा के धीरे-धीरे कुछ बाल-भाव छोड़ कर यौवन की ओर बढ़ने से रात्रि रमणीय हो गई[31]।'

स्वतंत्र

§ १६—दण्डकारण्य में मृगया कोलाहल के साथ प्रभात होता है, और बाण ने कल्पना के अनेक हल्के गहरे रंगों से इसका चित्रण किया है—'प्र० भा०। प्रातः होते समय सप्त ऋषियों के तारे उत्तर दिशा की ओर जाते हुए ऐसे जान पड़े

प्रभात

---

३०. काद ; पू० भा० ; पृ० ३४३।
३१. वही ; वही ; पृ० ३३९-३४०।

मानों सन्ध्या करने के लिये मानसरोवर के किनारे उतर रहे हों। सीपियों के चिटक कर फटने से गिरे हुए मोतियों से पच्छिमी सागर-तट सफ़ेद हो गया था, जान पड़ता था कि सूर्य्य की किरणों की प्रेरणा से तारे नीचे गिर गये हों। प्र० भा०। कमलों के जागने के समय भ्रमर गूँज कर मंगल पाठ कर रहे थे, संकुचित होते हुए कुमुद की पंखुड़ियों ने उनके पंखों को दाब लिया था और वे हाथियों के कपोलों से बाजे का काम ले रहे थे। वन के हरिनों के नेत्र प्रातःकाल की शीतल पवन से पीड़ित थे, उनकी पुतलियाँ नींद उचट जाने से कुछ टेढ़ी हो रही थीं, पलक ऐसे जान पड़ते थे मानों तपाई गई लाख से चिपकाये गये हों और उनकी छाती के बाल तृण-रहित भूमि पर सोने के कारण धूसरित हो गई थी और वे धीरे-धीरे इस प्रकार अपनी आँखें खोल रहे थे। वनचर इधर-उधर घूम रहे थे। पम्पा सरोवर में, कानों को आकर्षित करने वाला हंसों का कोलाहल बढ़ रहा था। हाथियों के कान फटफटाने से उत्पन्न हुए मनोहर ताल-शब्द को मेघ गर्जन समझ मयूर नाच रहे थे। मजीठ के समान लाल रंग की सूर्य्य-किरणें किंचित् दीखने लगी थीं, वे आकाश-मार्ग में चलते हुए हाथी के उलटे लटकते हुए चमर के समान मालूम होती थीं। सविता का धीरे-धीरे उदय हो रहा था। रवि से उत्पन्न हुआ तथा तारों का हरण करने वाला गिरि-शिखर पर बसने वाला और पम्पा सरोवर तक के वृक्षों तक की चोटियों पर पहुँचा हुआ बालातप वन में प्रवेश कर रहा था, मानों सुग्रीव ही फिर आया हो। प्रभात स्पष्ट हो चला था। थोड़ी ही देर में एक पहर दिन चढ़ जाने से सूर्य्य साफ़ दिखाई देने लगा था। तोतों के झुंड अपनी अपनी दिशाओं में उड़ गये थे। घोसलों में बेखबर सोये हुए बच्चों के होने पर भी वह वृक्ष शब्द-रहित हो शून्य सा दिखाई देता था'[३२] इस वर्णन में प्रातःकाल का सूक्ष्म पर्यवेक्षण है और क्रिया-व्यापारों की

---

३२. वही : वही ; पृ० ५६-५८।

संश्लिष्ट योजना है।

क—अन्यत्र प्रातःकाल के कुछ संक्षिप्त वर्णन हैं, जिनमें कवि ने भावशील वातावरण प्रस्तुत किया है—'थका हुआ चन्द्रमा जल-तरंगों से शीतल हुई वनराजि में विश्राम करने के लिये धीरे-धीरे उतर गया। प्र० भा०। निरन्तर बाण फेंकने से थके हुए अनंग के निश्वास सदृश विलास-युक्त प्रभात-पवन लताओं के पुष्पों की सुगन्ध के साथ चलने लगा। अरुणोदय से तेजहीन होते हुए तारे मानो डर-डर कर मंदराचल के लता-मंडपों की झाड़ी में घुसने लगे और चक्रवाक के हृदय में रहने से लगे हुए अनुराग से मानों लाल हुआ सूर्य्य-मंडल धीरे-धीरे उदय होने लगा।'[33] हर्ष-चरित में राजा की मृत्यु का शोक इस प्रातःकाल के वर्णन में प्रतिघटित है—'ताम्रचूड़ मानों शोक से मुक्तकंठ हो चिल्लाने लगे। पालतू मोरों ने क्रीड़ा-शैलों पर खड़े पेड़ों की चोटियों से अपने को गिराया। पक्षी निवास छोड़ कर वन को चले गये॥ आत्म-स्नेह मन्द हो जाने से दीप अभाव (निर्वाण) की अभिलाषा करने लगा। चमकीले और लाल वल्कल से अपने को ढक कर आकाश ने मानों संन्यास ले लिया। प्रभात समय चटक के कन्धे के समान तारे धूसर हुए एकत्र थे, मानों राजा के लिए फूल चुन रहे हैं। पर्वत की गैरिक धातुओं आदि से युक्त कपोल वाले वन के हाथी सरोवरों, सरिताओं तथा तीर्थों की ओर चले। प्रेत को अर्पित किये जाने वाले पिंड के समान चन्द्र पच्छिमी सागर के तट पर गिरने लगा, मानों राजा की जलती हुई चिता से उसका तेज धुँधला हो गया हो। उसका शरीर मानों अन्तःपुर की सभी प्रोषित रानियों के मुख-चन्द्र के उद्वेग को देख कर भाग रहा था। इस प्रकार चन्द्रमा पहले ही अस्त हुई रोहिणी की चिन्ता में मानों उदास हो धीरे-धीरे अस्त हो गया।'[34]

भावशील

---

३३. वही ; वही : पृ० ४२५-४२६।

३४. हर्ष० : उ० ५ ; पृ० १७१।

ख—कादम्बरी के उत्तर भाग में चन्द्रापीड़ के मार्ग में प्रभात का वर्णन है। बाण के पुत्र ने अपनी वर्णन-शैली ही नहीं वरन् कल्पना का स्तर भी अपने पिता के समान अपनाया है।—'उस समय चाँदनी रूपी जल में खूब स्नान करने से अत्यंत शीतल स्पर्शयुक्त ओस की बूँदों का आकर्षण करने वाली, फूलों की रज से युक्त अनेक प्रकार के वनपल्लवों से आती हुई पवन से प्रेरित, खिली हुई कुमुदिनी की रगड़ से लगी हुई परिमल को लाती, परिमल से जड़ हुई, रात के बीतने की सूचना देती हुई सुखद पवन मानों मार्ग की थकावट मिटाने के लिये चलने लगी। रात्रि के कठिन वियोग की चिन्ता से, आसन्नवर्ती सूर्योदय के दुःख से, प्रदोषसमय से लेकर कुमुद-समूहों के द्वारा ऊँचे मुख करके पिये गये अपने क्षय से और गगन-सरोवर का जल पीने आये हुए मेघों के समान घोड़ों की रज के मानों समूह से पश्चिम दिग्वधू के मुख का चुम्बन करता हुआ चद्रबिम्ब क्रमशः फीका पड़ गया और प्रभात होने लगा। चन्द्रमा से लगा हुआ आकाश लक्ष्मी के नये वियोग के संताप से उतारे हुए दुपट्टे के समान, चाँदनी का प्रकाश दूर होने लगा। चाँदनी के जल-प्रवाह के पश्चिम समुद्र में गिरने से उठे हुए झाग के बुद्बुदों की कतार के समान तारों की पंक्तियाँ एक साथ नष्ट होने लगीं। गिरते हुए ओस के जल से मानों धुल जाने के कारण दिशाएँ जब धीरे-धीरे मोतियों के चूर्ण के समान सफ़ेद चाँदनी के लेप का त्याग करने लगीं। स्वाभाविक श्यामकांति फिर दिखाई देने के कारण वृक्ष, लता और डालियाँ मानों जल से फिर बाहर निकलने लगीं। पूर्व दिशा-वधू के कान में पहने हुए बाल अशोक के पल्लव के समान, गगन सरोवर के लालकमल के समान, प्रभात-रूपी हाथी के गंडस्थल के सेंदूर-रेणु के समान तथा सूर्य्य के रथ की लाल ध्वजा के समान, प्रभात-सन्ध्या का रंग उल्लसित हो उठा। प्रातः सन्ध्या प्रकाश के चारों ओर फैलने से मानों दावानल से छाये हुए निवास-वृक्षों में पक्षियों के झुंड कल-कल करते हुए निकलने लगे। प्र० भा०। दिशाएँ आगे बढ़ती गईं;

मार्ग में प्रातःकाल

वन आगे खिसकता गया; ग्राम की सीमाएँ मानों विस्तार पाने लगीं। जलाशय विशाल होने लगे, पर्वत अलग-अलग साफ़ दिखाई देने लगे और भूमि मानों ऊँची होने लगी। कुमुदिनियाँ अदृश्य होने लगीं। सत-लोक-चक्षु भगवान् सूर्य्य, छिपाने वाले नीले बुरके के समान अंधकार-माला को करों से हटा कर विरह से पीड़ित हुई कमलिनी को मानों देखने के लिये उदय-गिरि के शिखर पर चढ़ गये। गगन-तल को प्रकाशित कर सारे जगत् में उजेला करने वाली सूर्य्य की किरणें सब दिशाओं को चमकाने लगीं और आँखों से पदार्थ साफ़ दिखाई देने लगे।'[३५] इसमें प्रातःकालीन प्रकाशित होते दृश्य-जगत् का चित्रमय वर्णन प्रस्तुत किया गया है।

ऋतु-वर्णन

§ २०—बाण द्वारा वर्णित ऋतुओं में परम्परा के अनुरूप उद्दीपन की प्रवृत्ति लक्षित होती है। परन्तु उनकी वैचित्र्य-प्रधान चित्रमय शैली और संश्लिष्ट योजना इन ऋतु-वर्णनों में भी पूर्ववत् मिलेगी। ग्रीष्म काल का वर्णन हर्षचरित में बहुत विस्तार के साथ किया गया है—'तत्काल जीते गये तथा अस्त हुए वसन्त के जल से सींचे जाने योग्य नये उद्यानों के प्रति वह ग्रीष्म-काल, मानों विजित अस्तगत सामन्त के दुधमुँहे नन्हें बच्चों के समान स्नेहशील और दयालु हुआ। नये मुदित ग्रीष्म ने पृथ्वी के सभी फूलों के बन्धन खोल दिये।······ग्रीष्म ऋतु में नदियों के समान ही चाँदनी रात भी क्षीण हो गई, अतः चक्रवाक के जोड़ों ने उनका अभिनन्दन किया।······धीरे-धीरे सूर्य्य की किरणें प्रखर होने लगीं, ऋतु का शैशव बीत चला, सर सूखने लगे, धाराएँ पतली हो गईं और झरने धीमे पड़ गये। कातर कबूतरों के लगातार कूकने से विश्व बहरा हो रहा था और दूसरे पक्षी

ग्रीष्म

३५. काद० ; उ० भा० ; पृ० ५४६-५४८।

निश्वास छोड़ रहे थे। बिनौले कंडे हवा से प्रताड़ित हो रहे थे, लताएँ तितर-बितर हो रही थीं। लोहू की इच्छा से शेरों के बच्चे घातकी नामक लता के कठोर फूलों के गुच्छे चाट रहे थे। थके हुए हाथियों की सूँड़ से निकलते पानी के कणों से बड़े-बड़े पहाड़ों के पार्श्वभाग भींग रहे थे। पीड़ित हाथियों के सूखे हुए मद-जल की कुछ काली रेखाओं में मूक भौंरे चिपटे थे। लाल होते मन्दार वृक्षों से सीमाएँ सिन्दूर से लिपी जान पड़ती थीं। जल-धारा के भ्रम से बेसुध हुए बड़े-बड़े भैंसे अपने सींगों की नोकों से चमकती स्फटिक शिलाओं पर चोट कर रहे थे। गर्मी से सूखी लताएँ मर्मर शब्द कर रही थीं। तभी धूल से भूसी की आग के समान विकर (कुक्कुटादि) पक्षी कातर हो रहे थे। हिंसक प्राणी बिलों की शरण में घुस गये थे। किनारे के अर्जुनवृक्षों पर कुरर पक्षी के कूजन से व्याकुल हो पीठ के बल छटपटाती मछलियों से पोखरों का जल गँदला हो रहा था। दावानल से मानों संसार की आरती उतारी जाती थी और रातें क्षयरोग से ग्रस्त हो गई थीं।'[३६]

क—इस प्रकार प्रौढ़ होते ग्रीष्म-काल में उन्मत्त पवन बहने लगे। पवन प्रत्येक दिशा में मानों उछल रहे थे। ऊसर स्थानों के पनसालों, बाटों और कुटिया के छप्परों को प्रकट रूप से वे लूट रहे थे। पके कपिकच्छू के गुच्छों की कतारों को फोड़ने की चपलता करने से, खुजलाहट हो जाने के कारण वे कंकरीले और पथरीले स्थानों से रगड़ रहे थे। पवन बड़े-बड़े पत्थरों को फेंक रहे थे। मुचुकुन्द की नई नालों के टुकड़े उनके दाँत थे। उड़ते तथा बोलते हुए झींगुरों के मुँह से निकले जल-कणों से सिक्त हो रहे थे। बाल सूर्य के ताप से तरल तथा तरंगित मृग-तृष्णा के भ्रमपूर्ण जल में पवन मानों तैर रहे थे। सूखे शमी के वृक्षों से मर्मर शब्द करने वाले मरुस्थल के मार्गों को वे आसानी से लाँघने में वे अति वेगवान थे। वे आरभटी

पवन प्रवेग

---

३६. हर्ष० ; उ० २ ; पृ० ४५-४६।

नट होकर, धूलि के आवर्त-समूह को पृथक करते हुए रास के रस से वेग-पूर्ण नृत्य आरम्भ कर रहे थे। जले हुए स्थलों की राख मलने से वे मलीन हो गये थे। वे जंगली मोरों के पर चुन रहे थे, मानों उन्होंने जैनसाधुओं की आदत सीख ली है। करंज वृक्षों के सूखे बीचे के ढक-ढक शब्द होने से लगता था युद्ध-यात्रा के लिये ढोलों से युक्त हैं। गर्मी से व्याकुल भैंसों नाक-रूपी निकुंजों से गहरी साँसे निकल री थीं, पवन मानों अंकुरों से युक्त हो रहे थे। उछलते हुए हरिणों के झुंड से वे सन्तान वाले हो रहे थे। खलिहान पर जलती भूसी के ढेर से उठते हुए धुएँ की टेढ़ी रेखाओं से वे मानों कुटिल भौंहों वाले हो रहे थे। सेमल के फटते फलों की रुई से मानों वे लोमश हो रहे थे। घास की पत्तियाँ बिखेरने से मानों उनकी धमनियाँ निकल आई थीं। जौ की बाली के टुकड़ों की हिलती नोकों से उन्हें मानों लम्बी दाढ़ी हो गई थी। उठे हुए साही के काँटे उनके मानों दाँत थे, अग्नि की शिखाएँ उनकी जीभ थीं, साँप की उड़ती केचुलें मानों उनकी चूड़ाएँ थीं। कमल के उष्ण मधु से समस्त जगत् के रस को सोखने के लिये वे मानों कौर लेने का अभ्यास कर रहे थे। सूखे बाँसों के फटने से उत्पन्न हुई, समस्त जल-राशि को सोखने वाली गर्मी की घोषणा करने वाले ढोलों के समान तेज़ ध्वनियों से वे (पवन) तीनों लोकों के लिये भय उत्पन्न कर रहे थे। उड़ते हुए चाप पक्षी के पंखों के गिरने से वे रास्तों को चित्रित कर रहे थे। गुंजा फलों की चिंगारियों तथा अंगारों से उनके शरीर चिह्नित थे, मानों सूर्य्य की किरण रूपी लताओं के अलावों से उनके शरीर जल कर लाल-नीले हो गये थे। वे गुफाओं में झंकार करते हुए भयानक रूप से चल रहे थे। संसार को भस्म करने के लिये उच्चाटन का हविष्य पकाने में निपुण वे पारिभद्र वृक्षों के फूलों (लाल) से, मानों लोहू की आहुतियाँ देकर दावानल को प्रसन्न कर रहे थे। तप्त बालू के कण तारे के समान उनके वेग में पड़ गये थे। तपे पर्वत से पिघलते शिलाजीत के रस से वे जैसे दिशाओं का लेप कर रहे थे। वृक्षों के कोटरों के कीड़ों से चटक पक्षी के

दावानल से पकते अंडों के टुकड़े मिलकर, मानों पुटपाक हो गया और पवन इसकी गंध से कटु थे।' इस वर्णन में अत्यंत स्वाभाविक परिस्थितियों के दृश्य उपस्थित हुए हैं। कवि की कल्पना ने इनको गति और जीवन से स्पन्दित कर दिया है। ऐसा सूक्ष्म पर्यवेक्षण अन्यत्र मिलना कठिन है।

ख—जिस संश्लेष से पवन के आतंक में ग्रीष्म प्रकृति का रूप उपस्थित किया गया है, उसी व्यापक सूक्ष्म वर्णना से दावानल के प्रकोप का सजीव दृश्य सामने आता है—दावानल दारुण होकर चारों ओर दिखाई देने लगे। वृद्ध अजगरों के कंठ-कुहरों से निकली हुई साँसों के समान वे दावानल हज़ार-हज़ार भट्ठियों के समान उद्दीप्त हो रहे थे। वे कहीं हरिनों की भाँति मुक्त होकर घास खाते थे, कहीं वृक्षों के नीचे बिलों में नकुलों की तरह लोटते थे, कहीं कपिल मुनि के शिष्यों की भाँति जटा धारण करते थे, कहीं बाजों की तरह चिड़ियों को घोंसलों से गिराते थे, कहीं पिघली लाख के रस से लाल आभा वाले वे दुर्धर्ष और कहीं महावर से लाल आभा वाले ओठों के समान हो गये थे। ज्वाला शांत होने पर कहीं पक्षियों के पंख पाकर उनका वेग अधिक हो गया था। जन्म के कारणों (तृणादि) को निःशेष जलाकर कहीं वे निर्वाणवत् हो गये थे। कहीं धुएँ से वासित आकाश से सुगन्धित हो वे लाल रंग धारण करते थे या कुसुमों से वासित वस्त्र से सुगन्धित प्रेमियों की भाँति जान पड़ते थे। कहीं धुएँ के निकलने से उनकी आभा-मलिन हो गई थी। समूचे संसार को एक ग्रास के समान निगलने से वे भस्म युक्त हो गये हो गये थे, कहीं-कहीं बाँसों की चोटियों पर धधकने से अत्यन्त बढ़ गये थे।......कहीं जलती जड़ों की आग से फूलों सहित शाखाओं तथा मदन नामक वृक्षों को जलाकर ठूठे वृक्षों पर ठहरे हुए थे, चंचल शिखाओं से नृत्य के आरम्भ में वे भारभटी नट हो गये थे। सूखे तालाबों में फैल कर, फूटते हुए

दावानल प्रकोप

---

२७. वही ; वही ; पृ० ४७-५०।

सूखे जंगली धानों के बीजों के लावे की वृष्टि करने वाली ज्वाला रूपी अंजलियों से मानों वे सूर्य्य की पूजा करते थे। बलपूर्वक हवन में डाले जाते प्रौढ़ कछुओं की चर्बी की कच्ची गन्ध के लोभी वे दावानल मानों घृणा रहित हो गये थे। अपने धुएँ को भी मेघ बनने के भय से खा जाते थे। सूखी घास पर छोटे-छोटे कीड़ों के फूटने से जान पड़ता था मानों तिलों की आहुतियाँ पड़ रही थीं। ज्वाला से छाले की भाँति घोंघों और सीपों के चिटकने से उज्ज्वल हुए सूखे पोखरों से वे कुष्ठ रोगियों की भाँति जान पड़ते थे। वन में मधुकोष से पिघलते हुए मोम के बरसने से मानों उन्हें पसीना आ रहा था। ऊसरभूमि पर शिखाओं के विरल होने से वे गंजे जान पड़ते थे। वे दावानल शिला-समूहों में सूर्य्यकान्त मणियों के दीप्त होने से मानों वे शिलाओं का कौर कर रहे थे।'[३८] दावानल की कल्पना में वैचित्र्य-प्रधान है। पर जिस सूक्ष्मता और गति से दृश्य उपस्थित किया है, इससे चित्र में सुन्दर सजीवता आ गई है।

§ २१—कादम्बरी में विस्तृत वर्णनों में केवल वर्षा-ऋतु उपस्थित की गई। उत्तर भाग में चन्द्रापीड़ के मार्ग में वर्षा-काल प्रारम्भ हो जाता है। कहा गया है कादम्बरी का यह भाग बाण के पुत्र भूषणभट्ट द्वारा रचित है।—'मेघ-काल शीघ्र जाने में बाधा के समान आ गया। काला साँप जैसे मार्ग रोक ले उसी प्रकार मेघ-काल ने उसे आगे बढ़ने से रोक दिया। यह काल अत्यधिक पंक के समान ग्रीष्म ऋतु को रोक देता है, रात्रि के आसमान के समान सूर्य्य को छिपा देता है और चन्द्र को राहु के समान ग्रस लेता है।......यह काल भ्रमर-समूह और जंगली भैंसों के समान मलिन गर्जती हुई मेघों की घटा के विस्तार से भयंकर जान पड़ता है; विषम नाद करता हुआ गड़गड़ाता है; अधिक विषम विद्युत्-गुण से खींचता है,

वर्षा

३८. वही ; वही ; पृ० ५०-५२।

विकट इन्द्र-धनुष चढ़ाता है और फिर लगातार धार रूपी बाणों की बौछार की वर्षा से प्रहार करता है। विरुद्ध आचरण वाला हो इस प्रकार मुख पर अन्धकार करके आगे से मार्ग रोक लेता है और एक लाख वज्रों के गिरने के समान देखने की शक्ति हर कर आँखों को चौंधिया देता है।' इसके बाद वर्षा के साथ चन्द्रापीड़ की मनोदशा का वर्णन शामिल किया गया है—'अचेतन करने वाले मूर्च्छा के वेग से दशों दिशाओं में अन्धकार व्याप्त हो गया, फिर हंस गये। पहले उसके परिमल युक्त निश्वास निकले, बाद में कदम्ब वायु। पहले उसके नील-कमल जैसे नेत्रों से अश्रुवर्षा हुई, बाद में मेघ समूह बरसा। उसका मन उत्कंठित हो उद्वेग से पहले भर गया, नदियों का पाट जल तरंगों से बाद में। दुस्तर नदी प्रवाहों के साथ उसकी काम-वेदना बढ़ने लगी; वर्षा जल से तितर-बितर हुए कमलाकरों के साथ ही उसकी कादम्बरी से मिलने की आशा भी टूट गई; धारा के वेग को सहन करने में अशक्त कदली के अंकुरों के साथ ही उसका हृदय फटने लगा, मेघकाल की पवन से आहत कदम्ब-कलों के साथ ही उसका शरीर कंटकित हो काँपने लगा; और निरन्तर जल गिरने से जर्जरित पत्तों वाले कल के फूलों के साथ ही उसके दोनों नेत्र लाल हो गये। तीर पर आते हुए जल-प्रवाह से कटती हुई कगारों के साथ ही उसके प्राण गिरने लगे; परिमल-मय मालती के फूलों के साथ ही उसकी उत्कंठा बढ़ी। इसी प्रकार आँधी से उसके मनोरथ भग्न हो गये; शिखा ऊँची करते शिखियों से ही उसके अंग जल गये; दिशाओं में अँधेरा करते मेघों से उसका मोहान्धकार बढ़ गया; अन्धकार का तिरस्कार करती चपला की चमक से ही संताप बढ़ गया। और जल से बोझिल हुए बार-बार लगातार गंभीर गर्जना से मेघ आकाश में पृथ्वी के पीठ-बंध को कँपाते हैं। अंतरिक्ष में मेघ की जल धारा के कारण चातक चोंच से शब्द करते हैं। पृथ्वी पर लगातार झंकार शब्द से धारा के जल को क्षीण करते हुए जलद पवनों के साथ दिशाओं में मेढ़क ऊँचे स्वर से टरटर करते हैं। वनों में मयूर मदमत्त

होकर केकर शब्द कर रहे हैं। पर्वतों में झरने के ऊँचे-नीचे शिखरों से शिलाओं पर गिरने से कल-कल शब्द कर रहे हैं। नदियों में ऊँची उछलती हुई तरंगों की टक्कर से प्रवाहों का निर्घोष बढ़ा हुआ है। धारा स्वर, स्थलों पर सर्वत्र विस्तार पा रहे हैं, गुफाओं में घने हो जाते हैं, पहाड़ों पर प्रचंड लगते हैं, जल पर आपस में मिल जाते हैं, पर्वतों के ढालों पर चतुर जान पड़ते हैं, हरी घास के मैदान पर मृदुल, पल्लवों पर चारु, वृक्षों पर गम्भीर और तृणों पर सूक्ष्म लगते हैं, ताल वन में स्पष्ट मालूम होते हैं, जल-धाराओं के गिरने के समय सुनाई देते हैं। इस प्रकार के मधुर और हृदय में गड़ने वाले धारा-स्वरों से राजपुत्र की उत्कंठा तीव्र हो गई।'[३९]

§ २२—राजा के पास से बाण जब अपने बन्धुओं को देखने के लिये लौटे उस समय शरत्काल था—'मेघ विरल हो गये, चातक आतंकित हुए, और कलहंस बोलने लगे। यह समय

शरद्

दादुरों से द्वेष करता है, मयूरों का मद चुराता है, हंस-रूपी यात्रियों का आतिथ्य सत्कार करता है। इस समय आकाश धुली तलवार की तरह निर्मल हो गया, सूर्य चमकने लगा, चाँद निर्मल हो गया, और तारे तरुण जान पड़ने लगे। इन्द्र-धनुष और विद्युत्-मालाएँ मिट गईं और विष्णु की नींद भी टूट गई। वैदूर्य मणि सा पानी बहने लगा, नीहार के समान हल्का मेघ विचरने लगा, और इन्द्र असफल हो गया। कदम्ब संकुचित हुए, कुटज कुसुमों से रहित और कन्दली मुकुलों से हीन हो गई। लाल कमल कोमल हुए, नीले कमल मधु बरसने लगे और सफेद कमल फूलने लगे। शेफालिका से रातें शीतल हुईं, यूथिकाओं का परिमल फैल गया और खिलते कुमुदों से दसों दिशाएँ श्वेत हो गईं। छितौन की धूल से समीर धूसर हो गई और सुन्दर बन्धूकों के गुच्छों से असमय ही सन्ध्या होने लगी।

---

३९. काद० ; उत्तर भा० ; पृ० ५९६-६०१।

घोड़ों का नीराजन किया जाने लगा, हाथी उच्छृंखल हुए और साँड़ दर्प मत्त हो गये। कीचड़ क्षीण हो गया। पकने के कारण नीवार कुछ-कुछ सूख गया, प्रयंगु की मंजरी में पराग आ गया, त्रिपुस का छिलका कड़ा हो गया और सरकंडा फूलों में हँसने लगा'।[४०] इसमें ऋतु के रूप को व्यापक रूप से दिखाया गया है, किसी प्रकार की दृश्य योजना नहीं हो सकी है।

§ २३—महाश्वेता अपनी माता के साथ जब सरोवर पर स्नान करने के लिये जाती है, उस समय वसंत ऋतु का प्रसार है। इस समय तक वह यौवन में प्रवेश कर चुकी है। 'पू० भा०। वसंत

वसन्त

के कारण अधिक शोभायमान फूले हुए अभिनव कमल, कुमुद, कुवलय, कल्हार से आच्छादित सरोवर (अच्छोद) में स्नान करने के लिये माता के साथ (मैं) आई। वहाँ भ्रमरों के भार से लचके हुए गर्भ-तन्तु वाले जर्जरित कुसुमों से मनोहर लता-मंडप थे, पुष्पित आम के पेड़ थे, उनकी खिलती हुई कलियों के डंडों में कोकिलों ने नखाग्र से छेद कर छिपे थे और उनमें मधुधारा निकल रही थी। शीतल चन्दन वृक्षों के कुंज मदमत्त मयूरों के कल-कल से डरे साँपों से त्याग दी गई थी। सुन्दर लताओं का वहाँ हिंडोला था, जिसके फूले हुए फूलों के गिरने से जान पड़ता था कि वनदेवियों ने वहाँ झूला झूला है'।[४१] उत्तर भाग में उद्दीपन के रूप में वसंत का वर्णन है—'कामाग्नि का मानों उद्दीपन करने के लिए सरस पल्लव-युक्त लताओं को नाचना सिखाने में चतुर क्षीण पवन बहने लगा और चैत्रमास पूरी तरह प्रारम्भ हो गया। वह चंचल लाल पल्लव वाले अशोक वृक्षों को कँपाने लगा; वांछित कर्ता तथा मंजरी के भार से छोटे-छोटे आम के वृक्षों को झुकाने लगा; कुरबकों के साथ बकुल, तिलक, चंपक और कदम्बों की कलियों से

४०. हर्ष० ; उ० ३ ; पृ० ८३-८४।

४१. काद० पू० भा० ; पृ० २९७-२९८ ;

लादने लगा, किंकिरात (कुरंटक) वृक्षों के साथ अर्जुन को भी पीला करने लगा। यह दक्षिण पवन वासन्ती लताओं का परिमल फैलाने लगा, पलाश वन को खिलाने लगा।......'वह सभी वनों और बगीचों के वृक्षों में कोंपले निकालने लगा, फूले आम के वृक्ष की गन्ध चारों ओर फैलाने लगी। वह मकरन्द के मद से मधुर हुए कोकिलों के आलापों से पथिक जनों के कानों का पीड़ित करने लगा, निरन्तर मकरन्द के कणों की वर्षा से दुर्दिन कर सब जीव लोक के हृदय को उन्मत्त करने लगा। वह दक्षिण पवन मदमत्त भ्रमण करते भौंरों के गुंजार से विरही जनों के मन को व्याकुल कर काम जगाने लगा'।[४२] इन उद्दीपन की भावना में भी बाण ने प्रकृति के रूप को गौण नहीं किया है।

४२. वही ; उत्त० भा० ; पृ० ७०१-७०२।

पंचम प्रकरण

अन्य कवि

पिछले प्रकरणों में जिन कवियों को लिया गया है, उनके काव्य में प्रकृति का विस्तार से अवसर मिला है। इन सभी कवियों में प्रकृति का चित्रण केवल प्रासंगिक नहीं कहा जा सकता। शैली में विभिन्नता हो सकती है, परन्तु बाल्मीकि हों या कालिदास प्रवरसेन हों या बाण सभी कवियों ने प्रकृति को प्रत्यक्ष देखा है और अपने काव्य में मुक्त रूप से स्थान दिया है। अन्य कवियों में प्रकृति के प्रति इस प्रकार का दृष्टिकोण नहीं रहा। इसका कारण जैसे पहले ही संकेत किया गया है, महाकाव्य शैली में प्रकृति का कलात्मक प्रयोग तथा क्रमशः प्रकृति के प्रति उद्दीपन का दृष्टिकोण होते जाना है। नाटककारों में भवभूति ने प्रकृति को अधिक सहज तथा सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण से देखा है, परन्तु नाटकों में प्रकृति का सीमित प्रयोग है और उसमें से अधिकांश का उल्लेख पिछले भाग में किया गया है। इस कारण हम उनके वर्णनों को यहाँ संकलित नहीं कर रहे हैं। अन्य कवियों के विषय में, पिछले भाग में, पर्याप्त विवेचना की गई है, यहाँ केवल उनके वर्णनों को संकलित करके प्रस्तुत किया जा रहा है।

बुद्धघोष

§ १—अश्वघोष के समान बुद्धघोष बौद्ध कवि हैं। परन्तु अश्वघोष महाकाव्य के प्रारम्भक कवि हैं, इस कारण उनकी शैली और उनके वर्णनों में कलात्मकता का पूर्ण विकास नहीं है। वे सहज अधिक हैं, उनमें प्रकृति का अत्यंत संक्षिप्त प्रयोग है। परन्तु बुद्धघोष पर कालिदास का स्पष्ट प्रभाव है। अपनी शैली में वे कालिदास की सहज कलात्मक शैली से प्रभावित हैं परन्तु विषय को उपस्थित करने की दृष्टि से उन्होंने अश्वघोष का अनुकरण किया है। जन्म के अवसर पर प्रकृति प्रभावित उपस्थित होती है—

प्रभावित प्रकृति

'सिद्धार्थ के जन्म के अवसर पर खिले हुए पाँचों वर्ण के कमलों से आच्छादित पृथ्वी, उनके लिये उपहार लिये प्रस्तुत सी जान पड़ी। प्र० भा०। आकाश में कमल खिल कर मानों शरीरधारियों को यह सूचना दे रहे थे कि यहाँ हम लोगों की उत्पत्ति के समान पृथ्वी-तल पर बुद्ध का जन्म भी असम्भव है। नरक की ज्वालाएँ शान्त हो गईं। पर्वत के गिरने जैसे भार-युक्त उस महापुरुष के चरण न्यास को सहन करने में असमर्थ होती हुई पृथ्वी शिथिल शैल बन्धनों वाली होकर काँप सी उठी। पृथ्वीतल को फोड़ कर जल-प्रवाह इस प्रकार ऊपर उछल रहे थे, मानों उस पुण्यात्मा के नमस्कार के लिये शेषनाग के वंशज सर्प पृथ्वी फोड़ कर ऊपर उठ रहे हों। इस महापुरुष के आकाश गंगा के जल जैसे धवल यश-समूह से लिप्त सी समस्त दिशाएं स्वच्छ हो उठीं।—उन्नत तरंग रूपी हाथों वाले सागर बेला का अतिक्रमण कर प्रचलित हुए। प्र० भा०। अनेक बजने वाले मृदंगों के घोष से दिगन्त में स्थित कन्दरा रूपी मुखों को मुखरित करने वाले, आनन्दातिरेक वश नृत्य के चक्कर के कारण भ्रमित पृथ्वी द्वारा पर्वतों को आन्दोलित करने वाले, परस्पर की धक्का-मुक्की से टूटे हुए हारों के मुक्ताफलों के द्वारा तारों के समान स्थिति वाले, बिखरे हुए गन्ध चूर्णों की मुष्टि से शृंगारित समस्त दिशाओं वाले, परस्पर गुँथे हुए आभूषणों वाले एवं

खिसकी हुई चूड़ामणियों वाले तीनों ही लोकों ने एक घर के रहने वाले लोगों की तरह आनन्दोन्मत्त होकर उस महापुरुष के जन्म का उत्सव मनाया'।[1]

§ २—बुद्धघोष ने कुमार के मन बहलाने के लिये उद्यान-विलास आदि का प्रसंग उपस्थित किया है।—'वह उद्यान कोकिला के पाठशाला कामदेव के दूसरे तुणीर, भ्रमर-बालाओं के मदिरालय

उपवन

तथा वसन्तश्री के क्रीड़ागृह के समान था। उस चराचर के अभिनन्दनीय अतिथि को पवन के संचलन से झुकी हुई शिखाओं वाले वृक्षों ने अपनी प्रवाल अंजलियों से प्रणाम किया। उस उपवन में पराग रूपी सिकता फैली हुई थी, चूते हुए पुष्पों के रस से वह छिड़का हुआ था तथा शाखाओं से गिरे फूलों से वलि बनाई गई थी। कुमार को लगा कि वह कामदेव की संगीत-शाला में है; वहाँ लताओं के नर्तन हो रहे थे, भ्रमर ललित गीत गा रहे थे और कोयलें मधुर तान ले रहे थे। वृक्षों के फूलों को चुनने की इच्छा करने वाली, धीरे-धीरे पैर रखती हुई विचरने वाली युवतियों को देख कर कुमार के मन में वनदेवियों को शंका हुई। हरिणाक्षियों की अलाप सुन कोयल लज्जित हो क्षण भर के लिये मौन हो गये। नूपुर ध्वनि के व्याज से, मुझे दुःख न दो, इस प्रकार प्रार्थना करते हुए कमल जैसे कोमल चरण से किसी सुन्दरी ने धीरे से अशोक वृक्ष का स्पर्श किया। प्र० भा०। कोई सुन्दरी निकलते से अंकुर रूप रोमांच वाले आम्र वृक्ष को चाँद की किरण की आभा के समान शीतल अपने कर-कमल के स्पर्श-से पुन्नाग सा बना रही थी। सहसा आम्र वृक्ष ने, पथिक की वधुओं के मर्म को पीड़ित करने वाले, मनोभव के अभिमान कारण, सुन्दर पत्र-पंख युक्त नवीन अंकुरों के बाणों को आविर्भूत किया। कह्लर और इन्दीवर से वासित मुख के मधुरस के कुल्ले से कोई सुन्दरी बकुल को अशोक बना

१. पद्य; स० ३; ११,–१७, १९, २२–२४।

रही थी। किसी सुन्दरी ने बकुल के नीचे बिखरे हुए पुष्पों से लता-तन्तुओं के द्वारा कांचीदाम की रचना की। किसी ने नवमल्लिका के सुगन्धित सुनहले फूलों को अपने केशों में गूँथ कर मानो केशपाश को कामभट की तूणीर बना डाला। प्र० भा०। प्रचण्ड धूप के कारण बढ़ती हुई मरीचिका सी बावली में विहार करने में तृप्त, उन सुन्दरियों के ताप को उग्र रूप से बढ़ाता हुआ, मध्याह्न काल का पवन चलने लगा। दूर तक चारों ओर फैली वृक्षों की छाया, प्रचंड आतप के फैलने पर सहने से असमर्थ हुई सी, धीरे-धीरे जल से सिंचने के कारण शीतल वृक्षों के मूलस्थ आल-बाल के पास आ गई'।[२]

क—वन का बहुत संक्षिप्त वर्णन तपस्या के प्रसंग के है—वह साल कानन पल्लवों की आभा रूपी बालातप से शोभित, मधुर कोकिल आलाप से मुखरित तथा हरे प्रान्तरों वाला था। मन्द पवन से किंचित कम्पित लता रूपी झूलों में भ्रमर-समूह चंचल था और बाल रसाल तरु की मंजरियों के स्वाद से कोयल आनन्दित हो रहे थे। वह वन मन्दार पुष्प की कलियों के चुए हुए पुष्पों के रस से सुगन्धित तथा मन्द मन्द चलने वाले पवन से पूर्ण सन्तुष्ट था। प्र० भा०। पक्षियों के पंखों से उड़ाये पराग पुञ्ज से धूसर और आम का मधु-राशि से पंकिल था। उसका पवन विकसित श्रेष्ठ पुष्प-लताओं से युक्त था और वसन्त सामन्त का मणिमय मंडप जैसा था। ताली, तमाल और हिन्ताल से सघन सालवन में ठहर कर सिद्धार्थ ने दोपहरी का ताप बिताया'।[३]

कानन

§३—उद्यान-विलास के बाद जल-क्रीड़ा प्रसंग में वापी का वर्णन है—'उस वापी की तरंग-मालाएँ मन्थर चलनेवाले पवन से आनन्दित थीं, और उनसे राजहंसियाँ दोलायमान जान पड़ती थीं। उसमें विकसित कह्लार के फैलते सुरभित प्रवाह

सर और सरिता

२. वही; स० ७; २–८ १०–१४, २३, २४।

३. वही स० ९; ६२–६४, ६६–६८।

में भ्रमरियाँ तैर सी रही थीं। उसमें कुमुदिनियों के कोष-पुट से चू कर मधु-धारा बह रही थी और वितान रूपी रत्न-जटित रंगस्थली मे मछलियाँ उछल रही थीं एक ओर नवीन श्वेत कमलों के विकास के कारण गंगा और दूसरी ओर रक्त कमलों के विकास से सोन नदी के समान जान पड़ती थी। पक्षियों के बिखरे हुए कमलों के पराग से वह दिशाओं को सिन्दूर भूषित सी कर रही थी और जल-सीकरों के उछले के कारण वह वर्षा ऋतु का अभिनय कर रही थी'।[४] मार्ग में अनवमा नदी का संक्षिप्त वर्णन है—'यह नदी हंसों के द्वारा आस्वादित मृणाल दलों से पूरित है, और इसके विशाल मकरों के नाद से दिशाएँ मुखरित हो रही हैं। जिस प्रकार आकाश तारागण से विषम हो जाता है, उसी प्रकार यह तरंगों के झाग से हो गयी है। कमलों की सुगन्ध से पवन गन्धमय हो गया है। इसमें जल-तरंगों से सारस पक्षी वलयित हो रहे हैं और इसकी कल्लोल मालाएँ हंसिनियों के कंठहार बन जाती हैं। मछलियों के द्वारा हिलाये गये कह्लार के केसर के गिरने से इसका जल रंजित हो गया है और इसकी तरंगों में खिले हुए कमलों का मधु बह कर मिल गया है'।[५]

§ ४—यह वर्णन सूर्यास्त से प्रारम्भ होता है—'इस बीच अत्यंत लाल सूर्य-मंडल नील आकाश-कोष से गिरे हुए मणि-दर्पण सा पच्छिम दिशा में गिर पड़ा। प्र० भा०। विदेश यात्रा के लिये उत्सुक भास्कर, पद्माकरों में प्रतिबिम्बित होने के बहाने मानों अपने प्रिय बान्धवों कमलों से बिदाई लेने के लिये उनमें प्रविष्ट हुआ है। विष्णु के मरकत मणि से श्याम-वृक्ष पर कौस्तुभ मणि के समान, धीरे-धीरे सूर्य के बिम्ब ने पश्चिमी सागर के मध्य-भाग को शोभित किया। पश्चिमी समुद्र के भँवर के चक्कर में पड़ा

काल परिवर्तन

४. वही ; स० ७ ; २८—६१।
५. वही ; स० ९ १४—१७।

हुआ सूर्य मंडल, विश्वकर्मा के द्वारा मानों काट-छाँट के लिए सान पर चढ़ाया गया है। समुद्र तरंग रूपी हाथों पर सूर्य रूपी लोहा के तप्त गोला को लिये हुए मानों शपथ सा ले रहा था कि प्रलय-काल के बिना मैंने वेला का उल्लंघन कभी नहीं किया। सन्ध्या रूपी स्वर्ण-परीक्षक ने, क्षीण-आभा हुए द्युमणि सूर्य को मानों बड़वाग्नि में दीप्त करने के लिए समुद्र के अंगार पुंज में डाल दिया। प्र० भा०। सुगन्धि के लोभ से मड़राती हुई भ्रमर-पंक्ति कमल वनों में पति-वियोग से पीड़ित नलिनी युवतियों द्वारा मरने के लिए ठीक की गई रस्सी सी जान पड़ती थी। नलिनी प्रेमिका छोड़ कर सूर्य के प्रयाण करने पर, मेरा बाल सहचर अस्त (मृत) हो गया समझ चक्रवाक चक्रवाकी को छोड़ कातर भाव से बिलख रहा था। पश्चिम दिशा रूपी काठ के अन्तराल में फैलाती हुई सन्ध्या, दिवस तथा रात्रि के एक दूसरे के घर्षण से पैदा हुई आग की ज्वाला के समान जान पड़ती थी। सूर्य को अस्त हुआ देख कर, शोकाकुल सी अम्बर श्री ने, नक्षत्रों की अक्षमाला और सन्ध्या आतप का चीवर धारण किया। भ्रमर समूह तथा कमल-समूह के साथ, प्रणयन के लिये रुद्राक्षमाला के कड़ों से उज्जवल तपस्विया के कर-पल्लव संकुचित हो गये,।[६]

क—इसके अनन्तर अन्धकार का वर्णन है—'आकाश रूपी नील-कमल की भृंगमालिका, दिशा सुन्दरी के आवरण-पट तथा विश्वम्भरा के कन्दरा-गृह के समान संसार को अंधा सा करने वाली अँधियाली फैली। स्रवित होते हुए चन्द्रकान्त

अन्धकार

मणियों के द्वारा बुझाये तपनोपल (सूर्यकान्त मणि) के पवन द्वारा आये धुएँ के समूह के समान अन्धकार समूह आकाश में फैल गया। प्रदोष कलाकार ने हिमांशु श्रेष्ठ पुरुष के तारा रूपी प्रशस्ति-वर्णों का लेखन करने के लिए आकाश फलक पर अन्धकार की स्याही फेर दी।

६. वही; स० ८; १, ४–८, ११–१५।

सन्ध्या-काल में ताण्डव नृत्य करने वाले शिव के कण्ठ के प्रभा-पटल के समान अन्धकार समूह ज्वलित औषधि वृक्षों के धुओं के पुंज के समान आकाश में फैल गया। दिशाओं में व्याप्त हुए अन्धकार-समूह वर्षा ऋतु जल-राशि को कालिन्दी के दोनों किनारों को डुबोने वाले प्रवाह के समान नभ तल को छा लिया है। घरों में निशा सुन्दरी के चम्पक के कनफूलों जैसे दीप-समूह, चतुर अन्धकार द्वारा पलायन करते हुए सूर्य के बन्दी भास के समान जान पड़ते थे। अँधेरे में जुगनू अन्धकार की गति-विधि का पर्यवेक्षण करने के लिये, सूर्य के गुप्तचरों के समान विचरण कर रहे थे। और वे सन्ध्या रूपी अग्नि के स्फुलिंगों जैसे जान पड़ते थे'।[७]

ख—आगे अंतरिक्ष और चन्द्रोदय का दृश्य सामने आता है—'रात्रि जनित अंधकार रूपी मेघ से बरसे हुए आलों जैसे सुन्दर तारागणों

चन्द्रोदय

से आकाश कुमुद से शोभित सरोवरों जैसा लगता था। अत्यधिक कान्ति वाले तारागणों से आकाश ऐसा जान पड़ता है मानो अंधकार रूपी मत्त गजों के सूड़ द्वारा सीकर समूह बिखेर दिया गया है। तगर जैसे धवल तारागणों से आकाश, मुक्ता-समूह से भरे अगस्त्य द्वारा दिये गये समुद्र की शोभा का अपहरण कर रहा था। समुद्र गर्भ में अंधकार को हरने वाले चन्द्र-पुत्र को धारण करती हुई सन्ध्या सुन्दरी ने धीरे-धीरे अपने मुख पर पीलापन धारण किया। समुद्र में लीन चन्द्र की ऊपर उठती हुई किरणें, तिमियों से (मत्स्यों) छिद्र-युक्त शिरों से पीकर फेंकी गई धवल जल राशि के समान प्रतीत हो रही थीं। तमाल पुष्प के समान नील, समुद्ररूपी विष्णु के भंवर-रूपी नाभि से किंचित लक्षित चिह्न रूपी भ्रमर से मनोहर चन्द्र-कमल ऊपर को उठा। ऊँची तरंगों वाले समुद्र के मध्य भाग से ऊँचा उठता हुआ चन्द्रमा का मंडल, मथे जाते हुए समुद्र से ऊपर को

७. वही; स० ८; १३–२२।

उठते हुए ऐरावत के कुम्भ-स्थल के समान ज्ञात होता था। ऊपर उठता हुआ चन्द्र-बिम्ब विद्रुम के समान इसलिये लाल-लाल जान पड़ता था कि बड़वाग्नि ने उसे समुद्र रूपी बर्तन में पिघलाये हुए रत्नों के द्रव से एकत्र किया था। चन्द्रमा रूपी राजसिंह के धैर्य के साथ तटों पर चरण रख कर आरूढ़ होने पर डर से अंधकार रूपी मत्त गजों ने पर्वतों की गुफाओं का आश्रय लिया। आकाश में नवीन उदय के कारण किंचित लाल चन्द्रबिम्ब, सन्ध्या-काल रूपी मुद्राधिकारी के द्वारा धातु-द्रव से डाले हुए एक चिह्न की भाँति शोभित हुआ। अपने कर-पल्लव से चन्द्रमा ने चकित कुमुदिनियों के कुमुद रूपी कंठ में भ्रमर-पंक्ति को मंगल सूत्र माला पहना दी। चन्द्रदेव ने भ्रमर समूह सुन्दरियों के कर्णामृत जैसे गान से संतुष्ट होकर मकरन्द-गर्भित कुछ खिले हुए कुमुद-समूह रूपी धन-राशि लुटा दी। प्र० मा०। आकाश श्री, सुक्ति से च्युत मुक्ताफलों से व्याप्त अथवा आकाश गंगा के जल-कणों से व्याप्त सी विशेष रूप से शोभित थी। आकाश पर्यंक पर लेटी हुई रात्रि रूपी किशोरी की तिमिर रूपी साड़ी, प्रेमी सुधाकर के आने पर खिसक गयी। शिव ने कालकूट को तथा अगस्त्य ने समुद्र को जिस प्रकार पिया था; उसी प्रकार चन्द्रदेव ने अपने कर-पल्लव में गाढ़े अंधकार को ले कर पी लिया। विरह व्यथा से पीले अंगों वाली, मडराते भौंरों के बालों वाली तथा मकरन्द-जल से पूर्ण पुष्प से व्याप्त कुमुदिनी को नायक चन्द्र ने अपने कोमल कर से आश्वासन दिया। सारे रत्नों का एकमात्र आकर समुद्र, मणि दर्पण से निर्मल वेला जल में चन्द्र की छाया से मानो वरुण राज द्वारा मुद्रा लांछित किया गया। बीच में बाल-तमाल की सी आभा वाले चन्द्रदेव, ओठों तक फैली राहु की दाढ़ से गिरे हुए विष द्रव से मुद्रित से प्रतीत होते थे। हरिण के चिह्न से लांछित चन्द्र-मण्डल गंगा और यमुना के मिलने से उत्पन्न भँवर के मण्डल जैसा जान पड़ता था। बीच में मृग-कलंक से युक्त शाश्वत देदीप्यमान द्विजराज का बिम्ब, निशा सुन्दरी के मरकत जड़े हाथीदाँत के ताटंक जैसा प्रतीत होता

था। मेघ युक्त पवन से मलिन हुए दर्पण जैसी कान्ति वाला, अन्तर्भाग में काला अमृतांशु बिम्ब कण्ठ-स्थित कालकूट की आभा से शबलित शिव के भिक्षा के कपाल-पात्र जैसा जान पड़ता था।'[८]

§ ५—विलास-प्रसंग में ऋतुओं का वर्णन है। अश्वघोष ने बुद्धचरित में वसन्त ऋतु को ऐसे ही अवसर पर प्रस्तुत किया था।

ऋतु (i) वर्षा

बुद्धघोष के वर्णन में विस्तार अधिक है। पहले वर्षा का वर्णन है—'प्र० भा०। हे सरोजाक्षि, आकाश-तल के विस्तार रूपी दर्पण में प्रविष्ट भूमण्डल के बिम्ब जैसे समुद्र के जल को चुराने वाले इन उमड़ते हुए बादल को तो देखो। नव मेघ-खण्डों से युक्त यह नभस्थली ऋतु-लक्ष्मी द्वारा विद्युन्मय दीपशिखा से झाड़े काजलों से युक्त पात्र सी जान पड़ती है। वर्षा ऋतु के आगमन से बुझती हुई महाग्नि के बढ़ते हुए धुएँ की तरंग की सी मेघ-पंक्तियाँ आकाश में व्याप्त हो रही हैं। मयूर सोने के बादल (वाद्य) की भाँति अपनी चोंचों से साँपों को पकड़े हुए, गंभीर केका ध्वनि से आकाश को मुखरित करते हुए अपनी पूँछ को गोल किये नाच रहे हैं। 'मेरा शरीर मलीन है, पर अन्तःकरण विशुद्ध है' मानों इस बात को सूचित करता हुआ बादल चमकती चपला के मिस उसे फाड़ कर दिखा रहा है। आकाश रूपी कुल पर्वतों के तटों पर विद्युत् रेखाओं से मिली हुई मेघ-पंक्तियाँ, भूमि को वहन करने वाले, भारवाही प्रलय-काल में एकत्र चारों समुद्र के मध्य में स्थित महावराह की हल जोतने की रेखाओं की भाँति जान पड़ती हैं। हे तरलाक्षि, अद्भुत श्रीवाले, दान शौर्य से त्रिभुवन को जीत कर उठे हुए मेघों में विद्युत् रेखाएँ, उसके जय ध्वज का सन्देह उत्पन्न कर रही हैं। प्र० भा०। वर्षा-काल किरात ने विद्युत् प्रत्यंचा से युक्त इन्द्र-चाप को लेकर शर-समूह से अनायास ही पृथ्वी को पुण्डरीक व्याघ्रों से हीन बना रहा है। मयूरों से उगले सर्पों के फण-

८. वही ; स० ८ ; २३—२७, २९—३६, ६८—४६

मणियों की सी आभा वाली, प्रचण्ड धारा की चोट से रत्न उत्पन्न करने वाली भूमि के विवर से उत्पन्न रत्न-खण्ड सी कान्ति वाली इन्द्र-वधूटियाँ शोभित हो रही हैं। शरत्काकालीन आकाश जैसे हरित भूभाग में ये इन्द्र गोप सन्ध्या समय के तारकों से लगते हैं। ब्रह्मा द्वारा फैलाई हुई मापक रज्जुओं जैसी मेघ की जल-धाराएँ चारों ओर फैल रही हैं कि 'नभस्तल और पृथ्वीतल में कितना अन्तर है'। हे चकोराक्षि, प्रचुर निनाद करने वाली बक-मण्डली से युक्त, शंख लिये हुए सी यह पयोद मण्डली, दिशाओं में मानों विकास के विजय प्रयाण की स्पष्ट घोषणा सी कर रही है। बक-पंक्ति रूपी शंखों को गले में धारण किये हुए, इन्द्रायुध रूपी चित्रित कम्बल ओढ़े हुए नवीन मेघ रूपी गज मानों गर्जन पूर्वक वप्रक्रीड़ा के लिये पर्वतों की ओर मुड़ रहा है। विद्युत की चम्पक माला से तथा इन्द्र-चाप के शिरोभूषण से दिशाएँ नवीन जल से भरे मेघों की पिचकारियों से मानों एक दूसरे को भिगो रही हैं। प्रवेश करने वाले चक्रवर्ती वर्षा-ऋतु के लिये आकाश के राज-प्रासाद में मेघों की तोरणमाला कैसी सम्यक शोभित हो रही है। कनपटी खुजलाने के कारण मेघ रूपी मत्त गज द्वारा दिगन्त भित्ति के कम्पित होने पर बिखरे हुए तारक-गणों से ये व्याज जैसे ओले गिर रहे हैं। ओले के टुकड़े ज़मीन पर गिरने से ऐसे लगते हैं मानों मेघों ने जल के साथ समुद्र के मोतियों को भी पी लिया हो और फिर मुख से बाहर कर दिया हो। वृष्टि के द्वारा जैसे-जैसे आकाश-मण्डल में विद्युन्मय आग प्रदीप्त हो रही है, वैसे ही वैसे पथिक जनों की युवतियों के चित्त में कामानल प्रदीप्त हो रहा है। निदाघ के ताप से तप्त वनस्थली, विकच कन्दली रूपी हाथ फैलाकर मयूर के केका स्वर से मेघ से जीवन की याचना कर रही है। खिले बनैले कदम्बों के फूलों के केसर के पराग को वहन करने वाला, मन्द चलने वाला पवन मयूरों के उद्दाम नृत्य के परिश्रम जनित स्वेद को दूर सा कर रहा है। आकाश के विस्तृत राज-मार्ग में इधर-उधर घूमने वाले बादलों के पैरों की धूल के समान जल की बूँदें चारों ओर

गिर रही हैं। तड़ित् से निनादित कर, नवीन विद्युत् की अग्नि को साक्षी बना कर मानों वर्षा ऋतु पुरोहित नदी और समुद्र के ऊर्मि रूपी पाणि-ग्रहण का उत्सव मना रहा है।'[१]

क—वर्षा के पश्चात् शरद् का वर्णन प्रारम्भ होता है—'प्रशंसा के लिए कौतुक के साथ राजपुत्र के मुखर होने पर, सारे बादल लज्जित होकर दिशाओं के अन्तराल में खो गये। दिशा सुन्दरी के वर्ण-विकास के लेप के समान, हंसों के विहार की स्वच्छंद वाथी और कमलिनी के यौवन विलास जैसा शरत्काल आविर्भूत हुआ। विलास-शालिनी तड़ित् प्रिया और ध्वनित आलिका के वियोग में, मौन-व्रत के कारण मुख झुकाये बादलों ने दुःख से पाण्डरता धारण की। अपने गुणों के प्रकाशित न करने देने वाले वर्षा-काल बीत जाने पर दिशा सुन्दरियों के प्रसन्न हास के समान कलहंस प्रकट हुए। उत्कंठित हंसों के कानों को पीड़ा पहुँचाने वाले कोलाहल को सुनकर विरहिणियों ने मानसरोवर का मार्ग बनाने वाले परशुराम की हृदय से निन्दा की। रत्नाकर के फेन जैसे, अनग के यश-समूह का भ्रम पैदा करने वाले हंसों से दिशाओं का विवर भर उठा। खिले हुए सप्तपर्ण के चारों ओर फैलने वाले परिमल ने दिशा सुन्दरियों के मुखों पर अधिवासक चूर्ण का भ्रम सा फैलाया। कलाधिनाथ ने चिर उत्कंठित कुमुदाकारों की प्रियों का मानों दृढ़ आलिंगन करने के लिये, उत्सुक होती दिशाओं में स्वच्छंदता के साथ अपने कर-समूह को फैलाया। धवल चन्द्रिकामय पाण्डर रेशमी वस्त्र से व्याप्त दिशा सुन्दरियाँ चन्द्र के दर्शन से लज्जित हुई सी घुँघट काढ़े हुई सी जान पड़ रही हैं। वर्षा के बीत जाने पर भी मत्त वन-गजों के मद-जल से महा-नदियों का जल बढ़ रहा है। शरत्काल के मेघखंडों ने सूर्य दावाग्नि से जलाये हुए तम रूपी तमाल के पवन द्वारा बिखेरे भस्म-पुंज का संदेह

शरद्

१. वही; स० ५; ५–७, ९, १६, १५–१७, १९–२३।

पैदा किया। शरत्काल के आकाश ने फैलाने वाले मेघों से व्याप्त होकर, प्रलय के कारण क्षीर सागर की तरंगों से युक्त लवण सागर की आभा का अनुकरण किया। प्रथम बादलों के जल से नहाई हुई, फिर शरत्कालीन मेघखंडों का उत्तरीय धारण कर और चन्दन रूपी चन्द्र-किरणों का आलेप कर दिशा-वधुओं ने तारे के हारों को धारण किया। मेघ जल से समस्नात रुचिर आकाश की आभा वाली दिशा युवतियों के शरीर पर लगे पानी के कण जैसे तारक अत्यन्त शोभित हुए। चन्द्र-किरणों के स्पर्श में विकसित कैरव समूह, शरत् ऋतु के कारण स्वच्छ सरोवर के जल में पड़े बिम्बों वाले तारक गणों जैसे प्रतीत हुए। कण्टक रूपी रोमावली को प्रकट करते हुए तथा पराग-कण रूपी हर्षाश्रु युक्त विकसित कमल-समूह चिर विरहित आये हुए शरत् को देखकर प्रसन्न मुख से दिखाई देने लगे। खिले हुए कमलों के चूते हुए मकरन्दों से अतीव भरे हुए सरोवर शरत्काल के कारण क्षीण होने पर भी अगाधता को प्राप्त हुए। भली भाँति पकी हुई पुण्ड्र नामक ईख की गाठों से मुक्ताफल के आकार में चुये हुए रस बिन्दुओं से भरित उदार क्षेत्रों के समीपवर्ती नहरों के तट ताम्रपर्णी नदी के तट जैसे प्रतीत होते थे। विपाकाधिक्य के कारण फटे अनार के फलों से बिखरे नये बीजों से व्याप्त वनस्थलियों शरत्काल में भी वीर बहूटियों से व्याप्त सी प्रतीत हुईं। पूर्ण पाक के कारण शोभित बालियों से झुके जड़हन के खेत उपस्थित विनाश—विकार की चिन्ता करके अधिक शोक से झुके हुए मनुष्य जैसे जान पड़े। उछाली मिट्टी से मलिन सींगों वाले, अपने अर्ध-चन्द्राकार खुरों से तट-प्रदेश को नष्ट करते हुए बार-बार हुंकारते मद-मत्त बैलों ने नदियों का तट उखाड़ डाला'।[१०]

ख—अगले सर्ग में इसी प्रसंग में वसन्त का वर्णन किया गया है— फिर भ्रमरों के गुंजन, कोकिलों के कूजन की प्रस्तावना काम के

१०. वही; स० ५; ३५–५५।

तूणीर तथा मलय पवन के निष्क्रमण के मुहूर्त का सा सुभग वसन्त काल का आगमन हुआ। यम के कुपित तथा प्रचंड महिष श्रेष्ठ से डरे हुए सूर्य्य देव ने घोड़ों को मोड़ कर उत्तर दिशा की ओर प्रस्थान किया। चन्द्रोदय रूपी उज्ज्वल मुख आकाश रूपी सूक्ष्म वस्त्र को धारण किये वनराजि, मीनकेतन की घोषणा को फैलाते हुए से वसन्त के द्वारा-पत्नी में स्वीकार किये जाने पर पुष्प रूप वती हो गई। पुष्प वृक्षों की कोमल पल्लवों की श्री कुपित युवती-जनों के प्राणों का आस्वादन करने के लिये मानों वसन्त रूपी काल की फैली हुई जिह्वा है। प्र० भा०। मन्दवाही मलय रूपी रथ पर सवार होकर दिग्विजय के लिये रवाना मदन-राज के लिये फूल बिखरे गये लावा और कोकिल का कलरव शंख-ध्वनि है। मन्द अनिल द्वारा वनराजि के मध्य से जोरों से उठी पुष्पों तथा कलियों का पराग दिग्विजय के लिये उद्यत मदन-राज की सेना की धूलि के समान फैल रहा था। पुष्पायुध राजा के युद्ध में प्रयुक्त होने वाले सुन्दर पत्रों से युक्त सहकार रूपी बाणों का मानों संग्रह करने के लिये कोकिल समूह लीला उद्यानों में घूम रहा था। चंचल भौंरों से ढंका हुआ फूलों का गुच्छा काम सुभट द्वारा बाणों से भेदित करके महा-वृक्षों की शाखाओं में बद्ध बिखरे बालों वाले शत्रुओं के सिर के समूह जैसा जान पड़ता था। भौंरों से ढँके मकरन्द प्रवाह से बोरभील पुष्प-गुच्छ मदन राजा के अभिषेकार्थ वसन्त के द्वारा उपस्थित रत्न कलसों जैसे जान पड़ते थे। मलय पवन द्वारा संचलित पूर्व वन का पुष्पपुंज काम नृपति के लिये हिलते हुए चमर के समान जान पड़ते थे। फिर खिली रसाल मंजरियों वाले वनों में कोकिलों ने, मदन नृपति के विजय श्लोकों की भाँति, पंचम स्वरालापों से युक्त विशद, मधुर, उज्ज्वल यथा कोमल तान छेड़ी। बहुत से एकत्र भौंरों के मद-जल प्रवाह से युक्त उद्धत मलय पवन रूपी मत्त गज, मनस्विनी युवतियों के मान रूपी आर्द्र-तटों स्वच्छंद वप्रक्रीड़ा सा कर रहा था।' मन्द पवन के यश प्रबन्ध के गायक, आम रूपी मदगज की डौंडी तथा उद्दाम काम विजय

वसन्त

की घोषणा करने वाले षट्पदों का गुंजन स्वर व्याप्त हो रहा था। वन-वृक्षों का ऊपर से नीचे तक विकसित पल्लव-समूह मनस्विनी युवतियों के मान रूपी अन्धकार अपहरण के लिये छायातप का स्वाँग सा कर रहा था। विकसित फूलोंवाले वन, वृक्षों के मधूलक रूपी धारा-सम्पात से बढ़ी हुई प्रवाहित नदियों के द्वारा नदीमातृक सा हो गया। प्र० भा० लता रूपी झूला पर गान करने वाली भृंगी को बैठा भृंग अपने पंखों की हवा से सानन्द झुला रहा था। प्र० भा०। लता अंगनाओं को प्राप्त कर उनके स्तवक रूपी स्तनों में भरे पुष्पासव रूपी दूध का शिशुओं ने अपनी सहज चपलता का त्याग कर पान किया। मार योद्धा ने अनेक संग्रामों में काम आने से शीर्ण हुई धनुष की प्रत्यंचा को दूर कर भ्रमरों की प्रत्यंचा बनाई। वसंत से सिखाये कोकिल शिशुओं ने वनों उपवनों के वृक्षों की शाखा शाखा पर मदन नृपति के विजय वृन्त का शनैः शनैः गान करना आरम्भ किया। शाखा भुजाओं को उठा कर आम के वृक्षों ने कान को मधुर लगने वाले कोकिल स्वरों द्वारा पथिक जनों के लिये काम नृपति के शासन की उद्घोषणा की। टेढ़ापन लिये पलास के फूल ने, विलासिनियों के मान रूपी मत्तगज विनीत बनाने की इच्छा करने वाले कामदेव के सोने के अंकुश की शोभा धारण की। मंडराते भौंरों से मिश्रित पलास वृक्षों की मंजरियों ने धुएँ से युक्त जलती आग की आभा धारण की। सारभ पर मोहित भौंरों से ढँके फूलों के गुच्छे राहु-ग्रसित पूर्ण-चन्द्र-बिम्ब सा जान पड़ता। सर्पों के सम्पर्क के कारण चन्दन वृक्षों से आया मलय पवन विरही जनों को बार-बार मूर्च्छित करता था। मधु सीकरों के वर्षण जनित दुर्दिन के अंधकार में वन-श्री रूपी प्रणय दूतिका द्वारा उपनीत भ्रमर रूपी अभिसारिका से कामोन्मत्त भ्रमर नायक ने हेला सहित रमण किया। सौभाग्यवती युवतियों के मुख मदिरा के कुल्ले का आस्वदन कर बकुल वृक्षों की वाटिका नवीन अंकुरोदय के मिस रोमांच की शोभा को प्राप्त हुई। युवतियों के मुख-कमल के मदिर के कुल्ले को आदर के साथ पीकर चूते हुए मकरन्द के मिस बकुल ने पीत

मदिरा का मानों उद्वमन किया। आम्र-वन में विचरण करती मधुलक्ष्मी के नूपुर-स्वर के समान कोकिलों का कल-प्रलय लोगों के कानों को तृप्त किया। दिशाओं के अन्तराल रूपी नदियों को प्लावित कर, पुष्प-वृक्षों के मकरन्द धाराओं में मन्द मलय पवन ने चिर काल तक विहार किया। चढ़े धनुष की डोरी की गंभीर टंकार के विष्फार से आकाश को भरता हुआ सा मनोभाव ने संपूर्ण सांसारिक जनों के विवेक को हरण करने वाले आम्र-मंजरी वाले तीखे बाणों की बरसा की'।[११]

भारवि

§ ६—भारवि ने प्रकृति का अपेक्षाकृत प्रसंगानुकूल वर्णन किया है। अर्जुन हिमालय पर तपस्या करने जाते हैं—प्र० भा०। वह पर्वत

पर्वतादि

जिसके एक ओर सूर्य का प्रज्ज्वलित मण्डल था, दूसरी ओर सतत सूर्य की अन्धकार था, पीछे हाथी का चर्म था और जिन्होंने अपनी हँसी से अन्धकार मिटा दिया था, ऐसे शंकर के समान जान पड़ता था। पृथ्वी आकाश तथा सुरलोक के निवासियों का स्थान जिसको आपस में न देख सकते थे ऐसा यह पर्वत लगता था मानों अपनी सर्वशक्तिमत्ता दिखाने के लिये बनाई शंकर की अपनी कृति है। प्र० भा०। हाथियों द्वारा तोड़े हुए तट वाली, प्रफुल्ल कमल तथा पवित्र जल वाली क्षिप्र गति से बहनेवाली नदियों से वह शोभित था। नवीन फूले हुए जवाकुसुम के समान रंगों से रंजित, कहीं कंचन की दीवारों से बनी हुई और लाल मणियों से स्थिति चोटियों से वह पर्वत शोभित था। इस पर्वत में विस्तृत कदम्ब सुन्दर राजियाँ थीं तमाल के कुंज थे, तुषार कण झरनों से झरते थे और सुन्दर सूँड़वाले हाथी थे। उसमें रत्न रहित एक भी चोटी न थी, लता-कुंज हीन कोई घाटी न थी, कमलों से रहित कोई नदी न थी और फूलों से ढके न हों

११. वही; स० ६; १–४, ६–१६, १८, २०–३३।

ऐसे वृक्ष न थे। यहाँ की पर्वतीय नदियों का पानी अमरों की स्त्रियों की जंघाओं द्वारा मथ डाले गया था। इसमें चारों ओर लताओं के फूलों के केसर के प्रेमी साँप रहते थे। अनेक रत्नों की प्रभा से दीपित सी पर्वत की चोटियाँ हैं जिन पर नीर-रहित, इन्द्र-धनुष युक्त तथा बिजली की चमक में दिखाई देनेवाले बादल छाये थे। इस पर्वत पर प्रफुल्लित कमलों और हंस-गण से युक्त पवित्र मानस झील है। और अपने सेवकों से घिरे तथा पार्वती से प्रेम कलह करते हुए शिवजी भी रहते हैं। यहाँ जड़ी बूटियों से निकली हुई आग, ग्रहों विमानों तथा आकाश को प्रकाशित करती हैं, इनसे हर रात को उमापति के सेवकों को शंकर द्वारा त्रिपुर के भस्म किये जाने की याद दिलाती है। बीच में चट्टान आ जाने से लौटता, चक्कर काटता तथा भँवरें बनाता, ऊँची चोटियों पर बहनेवाली गंगाजी का पानी इस प्रकार बहता था मानों पर्वत ने पंख धारण किया हो। अपनी चोटियों से आकाश को छू कर उसे हजारों अंगों में बाँटनेवाला वह अचलाधीपति अपनी हिम-श्वेत आकृति से ही लोगों के सहस्रों पापों को नष्ट करने योग्य है। सुन्दर पल्लव और पुष्पवाली लताओं से निर्मित मंडलवाला यह पर्वत, जिस पर मेघ छाये रहते हैं और अथाह झील हैं धैर्य्यवान मानिनी स्त्रियों को भी उत्सुक बना रहा है।—इस पर्वतपर गुणों की अधिकता से औषधियाँ अविरल रूप से प्रकाशित होती हैं, जिस प्रकार यशस्वी राजा पर स्त्री मुस्काती है। यहाँ फूलों से पेड़ झुके जा रहे हैं, कुशि-गण चिल्ला रहे हैं, कमलों से भरी, पेड़ों से आच्छादित तथा उशीर की जड़ों से भरी नदियाँ हाथियों का आनन्द देती हैं। इस पर्वत पर आम-मंजरी के समान गन्ध वाले मद-जल से युक्त तथा भ्रमर-पंक्तिवाले हाथियों के कपोलों के रगड़ने के स्थान बिना वर्षा-काल के कोकिल को मत्त बना रहे हैं। इस पर साँपों को प्यारी सुधा कहीं कहीं पाई जाती है, सुन्दर देवस्त्रियों विचारती है, सुन्दर चट्टानों पर नदियाँ मधुर शब्द कर रही हैं। पुष्पित लताओं के कुंज हैं, प्रकाशित बूटियाँ दीपक हैं और हरिचंदन के पल्लवों की सेज पर

कमल-गन्धवाली पवन रतिश्रम को दूर करती है; इस पर्वत पर देव-सुन्दरियाँ स्वर्ग भूल जाती हैं। यह पर्वत मन्दराचल के समान है, जिसमें वासुकि रहता है, जो आकाश को भेदता जान पड़ता है, जिससे देवताओं राक्षसों ने समुद्र को मथा था और जिसने जल-विभाजित करके बताया था। यहाँ पर शिवजी ने साँप के भय से सहमी आँखों वाली पार्वती के मांगलिक पदार्थों से युक्त तथा काँपते हुए साँप के बंधन से बँधे हाथ को ग्रहण किया था। सारे आकाश में फैली हुई और चारों ओर बिखरी हुई सूर्य की किरणें असंख्य मणियों की चमक से मिलकर सहस्रों की संख्या से भी अधिक जान पड़ती थीं। यहाँ त्रैलोक्य विजेता को प्रसन्न करने के लिये कुबेर ने बड़े ऊँचे गोपुरोंवाली अलका नगरी बनाई थी, ऐसे कैलाश के कारण सूर्य समय से पहले डूब जाता है। इस पर्वत के शिरों पर रत्नों की किरणों के पड़ने से जो दीवाली का भ्रम होता है, उसे निरन्तर चलने वाला पवन दूर करता है। यहाँ चरागाह अपनी नई आभा नहीं खोते, नलिनी-वन सदा श्याम ही बने रहते हैं और विचित्र फूलों वाले वृक्षों के पत्ते कभी पकते नहीं। निकट ही शुकों की भाँति हरी मणियों की किरणें जिन्हें हरिणियों हरी घास समझ कर छोड़ चुकी हैं, सूर्य्य की किरणों के साथ अत्यंत सुन्दर लगती हैं। फूली हुई स्थल-नलिनी, पवन के द्वारा चारों ओर से प्रताड़ित होकर अपने चारों ओर पराग फैला कर सोने के थाले के समान शोभित हुई। वृक्षों की शाखाओं के बीच से आती हुई सूर्य्य-किरणों का प्रकाश, चाँदी की भीति के प्रकाश से मिल कर बढ़ जाता है जो दर्पण के मण्डल के समान दिशाओं को प्रकाशित कर देता है। इस पर्वत की चोटियों पर मणियों के विभिन्न रंग जलहीन शरद के बादलों पर निकले हुए इन्द्र-धनुष सा बनाते हैं। यहाँ विविध मणि जलहीन बादल में क्षण भर के लिये उत्पन्न भिन्न इन्द्र-धनुष का आभा को उत्पन्न करते हैं। यहाँ शंकर के मस्तक पर शोभित चन्द्रमा अँधेरी रात में अपने प्रकाश से, अमृत के झरने से मानों लता-वृक्षों को नहलाता है। यहाँ पर सुनहले तटों

की सुन्दरता सूर्य्य-किरणों से दूनी हो जाती है, और जब पवन से लताएँ अलग-अलग हो जाती हैं तो वह बिजली की किरण सी जान पड़ती है। यहाँ चन्दन के वृक्ष गज-मद से चर्चित हैं इससे अनुमान होता है, यह ऐरावत का मार्ग है। यहाँ बादलों के समूह से रुकती हुई सूर्य्य की और मणियों की किरणें, जो गुफाओं को प्रकाशित नहीं कर रहीं, अन्धकार से मिलती जान पड़ती हैं'।[१२]

§ ७—हिमालय के मार्ग में वन आदि का वर्णन है, और इसमें प्रकृति मानों अर्जुन का स्वागत करती जान पड़ती है—। प्र० भा०।

वनादि — तटों के निकट हंसों तथा सारसों के स्वर से मिश्रित ध्वनि अर्जुन को वाद्य-यंत्रों जैसा आनन्द देती थी। ......हाथियों के द्वारा खोद डाले गये और जिस पर मधु के कारण मक्खियाँ भनभना रही थीं ऐसे तट को देख कर अर्जुन के मन में आकर्षण उत्पन्न हुआ। प्र० भा०। मयूर चन्द्रिकाओं जैसे पानी पर पड़े हुए मद विन्दुओं के चिह्न रूपी सहस्रा नेत्रों से सरिता ने अर्जुन से प्रीति प्रकट की। प्र० भा०। स्वच्छ जल में फेन अंशों के साथ विद्रुम-लता के पल्लव, प्रिया के मुख का स्मरण दाँतों की आभा के साथ दिलाता है। अर्जुन ने देखा कि हाथी जल के जीवों की ओर बढ़ रहे हैं, मानों लहरों पर बहते हुए मद को सूँघ कर प्रतिद्वंद्वी समझ बाहर निकल आये हों। सहसा अपने आगे शरद् के बादलों के समान साँपों की फूत्कारों से ऊपर उठे हुए जल-समूह को देख कर वह विस्मय में पड़ गया। उसने बालुका तटवाली और शफरी जैसी चंचल नेत्र वाली नदियों को पार किया जो गंगा से मिलने के लिए तीव्र वेग से बह रही थी। प्र० भा०। पर्वत की प्रत्येक चोटी पुष्पलताओं और फूलों से आच्छादित वनों से पूर्ण थी; अर्जुन की तपस्या के लिये इन्दुकलि इस प्रकार उत्साह

---

१२. किरा० ; स० ५ ; २, ३, ७–१५, १७, २४, २५–२८, ३०, ३३–३९, ४०–४८।

प्रकट करता था ।.....वहाँ मंद गति से अनुकूल तथा सुगन्धित समीर चारों ओर बहती थी; ताप के नाश हो जाने से सूर्य्य की तप्त किरणें शीतल हो गई थीं; बड़े-बड़े वृक्ष थे, फूल चुनने के समय जिनके नये पल्लव रूपी हाथ झुक जाते थे। वहाँ रात में सोने के लिये घास बिछी थी; निर्मल आकाश जल-कण गिरा कर धूल को दबा देता था'।[13] अन्यत्र मृगया प्रसंग में वन का उल्लेख है—'किरातों के मृगया भ्रमण से पक्षियों तथा मृगों के समूह डर गए, वे इधर-उधर चिल्लाते फिरते थे और उनका शब्द गुफाओं में प्रतिध्वनित होता था मानों पहाड़ डर कर चिल्ला रहे हैं। विरोधी पशु-पक्षियों ने अपना शत्रु-भाव छोड़ दिया। चमरी मृग जिनकी पूछों में सुन्दर बाल थे जिनमें बाँस के गुच्छे लगे थे अत्यन्त भयभीत होकर किसी प्रकार धैर्य्य धारण कर रहे थे'। 'किरात सेना से भरी हुई पर्वतों की घाटियाँ, ढाल आदि कुछ ऊँचे लगने लगे, पर खाली होने पर फिर वैसे ही हो गये' गणपतियों ने चारों ओर फैल कर अपनी जाँघों से चन्दन तथा साल के वृक्षों, लताओं को तहस-नहस करते हुए मानों वन को नीचा कर दिया। नदी के तट कीचड़ से अगम्य हो गये थे; उसका पानी हाथियों द्वारा तोड़े हुए नन्दन वन के पेड़ों से मलिन हो गया था, और मछलियाँ उलटी पेट के बल उतरा रही थीं। पवन भैंसों द्वारा आस-पास के तमाल और उशीर के गंध से भरा हुआ था और वह तोते के रंग के शिला कुसुमों को बिखेरता हुआ वनचारियों की थकावट को दूर कर रहा था। पशुओं द्वारा मथा गया पानी ग्रीष्म-काल की भाँति गँदला हो गया था। केले आदि टूट गये थे और कमल पीले दिखाई देते थे'।[14]

८—जल-क्रीड़ा के बाद परम्परा के अनुसार सन्ध्या का वर्णन कवि प्रस्तुत करता है—'प्र० भा०। ऐसा लगता है मानों अतीव प्यासा

१३. वही ; स० ६ ; ४,८,११, १३–१३,१८,–१५२२

१४. वही, स० १२ ; ४३–४८ ; स० १४ ; ३६, ३४ ; स० १२ ; प्र०–५२।

सूर्य अपने करों (किरणों) से जी भर कर कमलों का रस पी कर, डूबने के समय स्वयं लाल शरीर वाला हो गया है। जब सहस्रों किरणों वाला सूर्य अत्यत लोहित हो गया और देखा जाने योग्य हो गया, उस समय बहुत सा ताप पृथ्वी से निकल कर चक्रवाक के हृदय में समा गया। सूर्य-मण्डल के डूबने के बाद, सूर्य को त्याग कर, नष्ट आभा वाली, पूर्व को छोड़ पश्चिम में इकट्ठा हुई किरणों का समूह अपना सारा आकर्षण खोकर दुःख में डूबी जान पडती थीं, जिस प्रकार मालिक के मरने के बाद मग्न-मन होकर एकत्र हों। सूर्य की कुकुंभ-ताम्र किरणें चट्टानों के गवाक्षों में प्रवेश करती हुई, स्त्रियों को जान पड़ती थी कि पतियों द्वारा भेजी हुई दूतियाँ हैं और इसलिये सायंकाल के शृंगार के लिये शीघ्रता कर देती थीं। अस्ताचल के वृक्षों को अपनी लाल किरणों से पकड़ कर, सूर्य ऐसा लगता था, जाने वह वन में, पृथ्वी या समुद्र में प्रवेश करेगा। दिनान्त में घोसलों के लिये विकल शब्दायमान पक्षियों से मुखर तथा सन्ध्या प्रभा से आलोकित सायंकाल प्रातः सन्ध्या के समान जान पड़ा। गगन का पश्चिमी भाग, सन्ध्या की आभा से प्रकाशित बादलों से, विद्रुम की द्युति से प्रकाशित लहरों से सुसज्जित समुद्र के समान भासित होता था। दिन की सुन्दरता को छिपाने में चतुर अन्धकार जो अब तक प्रभात के प्रकाश के डर से छिपा था, नीचे के स्थानों से निकल कर सारे संसार में छाता हुआ शांत होता था। प्र० भा०।

सन्ध्या और चन्द्रोदय

चक्रवाक पक्षियों का जोड़ा रात भर के लिये, एक दूसरे के साथ रहने की इच्छा रखते हुए भी अलग हो गया, शास्त्र-नियोग अनुलंघनीय है। प्र० भा०। रात्रि-राग से मलिन और जिनका विकास छूट गया था ऐसे कमलों को छोड़ कर श्री आकाश में चली गई थी। आकाश में तारे धीरे-धीरे दीख रहे थे, वास्तव में सभी वस्तुएँ निरापद स्थान में जाना पसंद करती हैं। केतकी कुसुम के पराग सा पीला चन्द्रमा का निकला हुआ किरण समूह कान्तपूर्ण हो पूर्व में प्रकाश फैला रहा था, मानों

कपूर का चूरा बिखर गया हो। चन्द्रमा के आने पर दुःख की भाँति अन्धकार को हटाती हुई पूर्व दिशा रश्मि-हास से प्रसन्न-चित्त हो गई। प्र० भा०। चन्द्र किरणों से आगे ढकेला जाता हुआ काले काले बादलों जैसा अँधेरा आसमान में फैलता हुआ सुन्दर लगा, मानों शंभु अपने गज-चर्म को आगे उछाल रहे हों। चन्द्रमा से निकल कर किरण-समूह ने अपनी वक्रता छोड़ दी, और गगन-तल अन्धकार के भार से मुक्त हो उच्छ्वासित-सा चमकदार निकल आया। प्र० भा०। तब चन्द्रमा कुंकुम रंजित अरुण पयोधरों के समान, पूर्वी समुद्र से हेम-कुम्भ-सा रश्मियाँ की धाराओं से आकाश में दीप्ति छिटकाता हुआ धीरे-धीरे निकला। अंधकार से रहित और निकलते हुए चन्द्रमा से आलोकित रजनी को अतृप्त होकर लोगों को देखते हैं, जैसी ब्रीड़ा से वक्र नव-वधू की घूँघट हटा हुआ मुख। चन्द्रमा ने नभ को पूरी तरह प्रकाशित कर दिया। वह वन-पर्वतों से अन्धकार न हटा सका और न दिशाओं को ही आलोकित कर सका, फिर भी आकाश के लिये एक आम्र-वन के समान था। अश्रुमयी यामिनी नायिका की चितवनों को लेकर डरा हुआ सा चन्द्रमा धीरे-धीरे से आसमान में उठ रहा था। प्र० भा०। शशि-किरणों से रंजित पेड़ों के नीचे की छाया, घरों की फर्श सी जान पड़ती थी। अपनी वधू के साथ चक्रवाक सूरज की गर्मी में प्रसन्न था, पर अलग हुआ शीतल किरण नहीं सह पा रहा है। प्र० भा०। यामिनी वनिता ने रश्मियों के समान पानी के स्रोतों में चमकते हुए चन्द्रा को मन्मथ को आभिषिक्त करने के लिये कमल से युक्त रजत-पात्र की भाँति समझी।[१५]

§ ६—भारवि ने चतुर्थ सर्ग में शरद् ऋतु का वर्णन अधिक विस्तार से किया है, और वह मार्ग में अर्जुन को आकर्षित करते हुए

---

१५. वही : स० ९; ३–९, ११, १६, १४, १६–१८, २०, २१, २३–२६, २९, ३०, ३२।

उपस्थित होती है—। प्र० भा० । जो उसकी प्रेमिका की आँखों की चपलता छीन लाई थीं और जिनको वह झील अपने कमल रूपी कुछ मुँदे कुछ खुले हुए नेत्रों से विस्मय के साथ देखती थी, ऐसी घूमने वाली मछलियों से उसका मन आकर्षित हो गया। कमलों से युक्त पानी में कलम धान की सुन्दरता देख कर अर्जुन प्रसन्न हुआ। कमल के सौरभ तथा फेन से प्रच्छन्न सा पानी जब पाठीन मछलियों से आलोडित होता था, तो उसका यह भ्रम कि यह स्थल कमलों का प्रदेश है दूर हो जाता था। जो स्वयं शांत होती जाती है ऐसी धीमे-धीमे बहने वाली सरिता के लहरों से स्पर्श किये जाते हुए दुकूल की भाँति श्वेत, लहरों के टकराने से पड़ी हुई रेखाओं वाले, तटों को देख कर वह प्रसन्न हुआ। प्र० भा० । जिनका अनुकरण उनकी सरलता के कारण उनका झुंड करता था, और चरागाहों को जो घर की भाँति ही प्रेम करते थे ऐसे चरवाहे अपनी गायों के समीप उसको बन्धुत्व की दृष्टि से देख रहे थे।... अर्जुन ने साधुओं के ग्राम्र के कुञ्जों के समान खिले हुए पुष्पों से युक्त ग्रह-लताओं की छाया में लोगों को बैठे देखा'।

ऋतु-वर्णन

इसके बाद यक्ष शरद् ऋतु का वर्णन करता है—'हे पार्थ, यह शरद् ऋतु, फलदायक भाग्य की भाँति परिश्रम का बदला फूलों से देती है। जिसमें जल स्वच्छ होता है और बादल जलहीन होते हैं ऐसी यह ऋतु तुम्हारी सफलता की कीर्ति बढ़ावे। धान के दानों में पकने की सुन्दरता आ जाती है, नदियों की अशान्ति नष्ट हो जाती है और धरती पंकहीन हो जाती है। मैं समझता हूँ, वर्षा के प्रति परिचय के कारण जो प्रेम अधिक था, शरद् के नवीन सौन्दर्य से धुँधला पड़ गया है। इस ऋतु में श्वेत पक्षी आकाश में नहीं उड़ते, बादलों के समूह इन्द्रचाप के साथ उड़ते नहीं; और फिर आकाश की सुन्दरता चरम होती है, स्वाभाविक रूप से सुन्दर वस्तुओं को अलंकार की जरूरत नहीं होती। प्र० भा० । माधुर्य्य नष्ट हो चुका है जिसका ऐसी मोरों की कटु ध्वनि की इच्छा को छोड़ कर लोगों के कान हंसों की बोली सुनने के लिये

उत्सुक रहते हैं, क्योंकि वस्तु गुणों से प्यारी होती है न कि निकटता से। दानों के पकने से पीले लगते और बालियों के गुच्छों के कारण झुके हुए धान के पौधे, मानों जल में उगे हुए तथा सुगन्धित के कारण दूर से जाने जा सकने वाले नील कमलों को सूँघने के लिए झुक रहे हैं। प्र० भा०। अब विद्युत स्फुरण से आकाश दीपित नहीं होता, श्वेत बादलों से ताप भी शान्त हो गया है, और सरोज-वायु के द्वारा तथा पानी की फुहार से आकाश शीतल हो गया है। प्र० भा०। चरागाहों से लौटती हुई अपने झुण्ड से बिछुड़ी हुई अपने घरों के लिये आतुर गायें चूते हुए दूध वाले अपनों का, अपने बच्चों के लिये मानों उपहार लिये जा रही हैं। जगत् प्रसूतिनी, जगत् को पावन करने वाली ये गायें बच्चों सहित अपने स्थानों पर मंत्रों सहित दी हुई आहुति की भाँति बड़ी ही सुन्दर लगती थीं।'[१६] दसवें सर्ग में विलास के प्रसंग में ऋतुओं का वर्णन संक्षेप में किया गया है—'प्र० भा०। वर्षा में मालती पुष्पित हो गई, और तेज़ वर्षा की बूँदों के गिरने से पृथ्वी पर कमलों का नाश हो गया। प्र० भा०। कदम्ब की गन्ध से मस्त पवन और मयूर के केका स्वर से किस धैर्यवान का मन चंचल नहीं हो जाता। कमल नाल के कड़े, कुमुद-वन के रेशमी वस्त्र तथा नालाभिरडी के बाण-पंखों को धारण किये हुए शरद्-वधू का हाथ, वर्षा ऋतु ने निर्मल कमल रूपी करों से ग्रहण किया। मयूरों के मदमत्त कूजन के साथ हंसों का नाद और कुमुद-वनों के साथ कदम्ब की पुष्प-वर्षा से शोभा अत्याधिक बढ़ गई। प्र० भा०। जल से धोये गये घास के मैदानों की इन्द्र-वधूटियों तथा फूले हुए बन्धुजीव पुष्पों की शोभा का अतिक्रमण कर पलास ने शोभा प्राप्त की। हेमन्त काल में ओस पड़ती है, प्रयंगु अधिक फूलता है और फूले हुए कुन्द की गन्ध पवन से फैलती है। लवलीलता पुष्पित होती है और लोध्र पुष्प की गन्ध चारों ओर फैल जाती है। कहीं-कहीं आम की मंजरियों

---

१६. वही ; स० ४ ; ३–६, १६, १९, २१–२२३, ५, २६, २९, ३१, ६२।

से और कुछ-कुछ फूले सुन्दुवार पुष्पों से, शिशिर के पास कामदेव के बन्धु वसन्त के आने की सूचना मिलती है। प्र० भा०। फूले हुए कुसमों के अधर में हँसती हुई कुरबक-राजि वधू को देखते हुए, अपने बाण के साथ अशोक पल्लव पर बैठे हुए कामदेव को देवांगनाओं ने देखा। दक्षिण पवन से धीरे धीरे हिलाई जाती हुई, कमलों पर भ्रमर पंक्ति अलकावली जान पड़ी। मधु गन्ध आती है पुष्प रूपी मुख में जिसके तथा उच्छ्वास से पल्लव रूपी ओंठ हिल रहे हैं जिसके ऐसी क्रोध से काँपती शाल-लता वधू को भ्रमर द्वारा चूमी गई'।[१७] यहाँ ऋतुओं की वर्णन परम्परा की दृष्टि से हुआ है और आगे विलास-क्रीड़ा में खो गया है।

कुमारदास

§ १०—कुमारदास ने जानकी हरण में राम-वनवास प्रसंग में वन-पर्वतों का उल्लेख भर किया है, वर्णन नहीं। पहले सर्ग में दशरथ की मृगया का वर्णन विस्तार से है—'पार्वती द्वारा वात्सल्य प्राप्त, अपने विचित्र पुष्पाभरण से सुन्दर लगने वाले नवीन वृक्षों का हिमालय ने बड़े स्नेहपूर्वक बहुत दिनों से पाला है। झंझा वायु से हिम के हट जाने पर निकले धातुओं की पर्तों को देखकर भोली गन्धर्व-कन्याओं के मन में त्वचा के निकालने का भ्रम होता है। प्र० भा०। हिमालय के सघन निकुंजों का अन्धकार नागसुन्दरियों द्वारा पहने गये रत्नों के प्रकाश से दूर हो जाता है, और रात-दिन का ज्ञान सरोवरों में उगे कमलों से होता है। जिनके छाल (पक्ष) धातुओं की प्रभा से रंजित हैं, जिसका ऊपरी भाग गुफाओं से (कार्तिकेय) शोभित है ऐसा पर्वत अपनी चन्द्र-किरणों जैसे श्वेत आभा से कार्तिकेय के मयूर की शोभा को प्राप्त करता है। प्र० भा०। अपने

पर्वतीय मृगया

---

१७. वही ; स० १० ; २०, २३, २४, २७–३०, ३२–३४।

तूणीर से शीघ्रता के साथ बाण निकाल कर धनुष पर संधान करते हुए प्रसिद्ध धनुर्धर राजा ने अपने घोड़ों को दौड़ाते हुए जंगली जानवारों के मार्ग का अवरोध करना आरम्भ कर दिया। प्र० भा०। राजा द्वारा विद्ध श्रेष्ठ हरिन पूर्व गति वेग के कारण आकाश में उड़ा, मानों अपने स्वर्ग जाने वाले हृदय का अनुसरण कर रहा है। आगे जाने वाले हरिण के मुख में धस कर फिर उसी समय हरिणों की कतार के मध्य भागों में दिखाई देने वाले बाण से ऐसा जान पड़ा मानों बाण के धागे से पंक्ति वद्ध हरिण पिरो दिये गये हैं। राजा ने तेज वेग वाले बाण से भागते हुए भैंसे के ललाट के बीच का भाग बेधा, और उसके पुष्ट शरीर को छेद कर बाण ने पूँछ का रूप धारण किया। शल्य-चिकित्सक की तरह जब राजा गैंडे को फाड़ रहा था, उस समय प्रतिध्वनियों से मानों भय से पहाड़ भयानक रूप से चिल्ला रहा हो। कन्द के समान राजा ने अपने चाप-दंड को खींचकर उस जंगली सुअर का निशाना बनाया, जो लड़ने के लिये अपने झुंड से अलग हो गया था और जब तब भयानक करता था। इस प्रकार मृगया से थके राजा ने अपने घोड़ों को विश्राम के लिये छोड़ दिया और स्वयं उस नदी के तट को शोभित किया जहाँ मन्द पवन बेत को लताओं को चंचल कर रहा था। सारस के नाद को आकर्षित करने वाली, गन्धी की दुकान की सुगन्ध से सुखद पवन नील-कमला के पराग को उड़ा कर राजा के शरीर को पीला कर दिया। प्र० भा०। राजा सूर्य-मण्डल को पश्चिम दिशा में देखकर आकर्षित हुआ, मानों काली दीवाल पर स्वर्ग बना पंखा टँगा हो'।[१८] इसके बाद कवि मुनि-पुत्र के वध की घटना की ओर पाठकों को ले जाता है।

§ ११—जल-क्रीड़ा के बाद राजा दशरथ सन्ध्या का वर्णन कर रहे हैं—'प्र० भा०। सन्ध्या-वेला में विचरते हुए, मूँगा के समान लाल

१८. आ; स० १; ४७, ४८, ५०, ५१, ५३, ५६, ५८, ५९, ६१-६४, ६६।

यह स्वर्ण-बाहु संसार का सर्जन करने सूर्य-मण्डल अपने कमल-हस्त को कमलों के साथ संकुचित कर रहा है। पयोनिधि में डूब कर जिसकी चमकती अंगुलियाँ प्रत्यक्ष हैं, और सागर की लहरें जिसका वलय हैं ऐसे सागर के मस्तक पर रखे हाथ से मानो सूर्य्य जल प्रमाण नाप रहा है। सन्ध्या की अरुणिमा चारों ओर फैल गई, अन्धकार पूर्वी दिशा से अन्धकार दूर हो गया और सूर्य्य के तेज के परिताप से लाल संसार क्रम से आनन्द की ओर बढ़ रहा है। शीत-किरण चन्द्रमा कोमल प्रकाश फैला रहा है और जान पड़ता है पूर्व-दिशा के मुख पर मुस्कान है। अंजन के समान अन्धकार के दूर हो जाने से आकाश-मंडल केंचुल जैसा शोभित है'। प्रातःकाल का

काल-परिवर्तन

उल्लेख करते हुए चारण राजा को जगाते हैं—'निद्रा का त्याग कीजिये। इस समय क्षीतिज-रेखा पर सूर्योदय का समय आ गया है। अन्धकार को दूर करने वाले तुम्हारे जैसा प्रतापी सूर्य्य अपनी किरणों को फैला रहा है। हाथी जाग गये हैं, वे अपनी जँजीरे झंकार रहे हैं। और अपनी सूड़ों को दाँत से उठाते हुए कान फटकार कर भौंरों के झुंड को भगा रहे हैं। ढोल की आवाज़ सुनकर अपने वास की डालीपर एक पैर से खड़ा हुआ मयूर देर तक सोने के कारण भारीपन से अपने दूसरे पैर और पूँछ को फैला रहा है। सूर्य की उदयकालीन आभा देख कर, मयूर अपने पंखों को फुलाकर हिमकणों को झाड़ते हुए ताडंव-नृत्य की इच्छा करता हुआ अधिक प्रसन्न हुआ।[१९] आठवें सर्ग में राम जानकी से सन्ध्या का वर्णन करते हैं—'जिस प्रकार प्रलय काल में सागर के केन्द्र की ओर आती हुई पृथ्वी डूब जाती है, उसी प्रकार सागर के मध्य में स्थित सूर्य की प्रभा उसी के मण्डल विलीन हो रही है। जिसका मण्डल सागर में स्थित है ऐसा सूर्य अन्धकार रूपी गाल से घिरा है, मानों पानी में छिपे हुए नाल वाले पूर्ण विकसित कमल को भ्रमरों ने

१९. वही; स० ३०; ३५—६८, ७७, ७९, ८०।

घेर लिया है। जब पूर्ण चन्द्र का उदय हो रहा है, उदयाचल पर स्थित सूर्य-मण्डल जान पड़ता है, धातुओं के कीचड़ से मलिन आकाश-रथ का अकेला पहिया हो। अपनी किरणों को एकत्र करने से बोझिल हुआ सूर्य्य क्रमशः सागर में भारीपन के कारण मानों डूब रहा है। सागर में जिसकी श्री अन्तरित है ऐसे सूर्य्य की उलटी हुई किरणों से जान पड़ता है—मानों सागर को अभिभूत कर बड़वाग्नि की शिखा ऊपर निकलकर शोभित है। दिन बीतने के समय सन्ध्या के सामने रुद्ध अन्धकार वर्षा-कालमें नदियों के जल से भिन्न हुए सागर-जल के समान जान पड़ता है। सन्ध्या राग से लाल हुआ, कोमल पल्लवों से सघन पत्र-समूह वाला वन प्रौढ़ सौन्दर्य से शोभित है। काले साँप की भाँति मलिन अन्धकार से चारों ओर घिरती हुई दिशा रूपी परिखा संकुचित हो रही है। अन्धकार के जाल से रुद्ध अन्त मयूर के कण्ठ के समान चितकबरा आकाश जान पड़ता है मानों सूर्य्य-दीप के ताप से उत्पन्न गहरे काजल से मलिन हो गया है। देखो, यह सामने उगती हुई दीप्त आभामयी ज्योति जान पड़ती है, गहरे डूबे हुए सूर्य की किरणों से भास्वर काले साँप की भाँति सुन्दर विष्णु-पथ का एक छेद हो। रवि-रथ के लोहे के पहिये से मेरु-शिखर के टकराने से उठी हुई चिंगारियों के समान लोहित वर्ण के तारे पश्चिम में शोभित हैं। रवि के भय से छिपे हुए और किरण-समूह से आहत होने से लाल तारे, सूर्य्य किरणों के बीत जाने पर, दिशाओं को अलंकृत करने के लिये चारों ओर से खुल रहे हैं। पूर्वी सागर के तल से क्रमशः उदित होता हुआ चन्द्रमा ने अपना पूर्ण विकास प्राप्त कर लिया है, जो वह एक पक्ष में प्राप्त करता। प्र० भा०। उदय के समय क्षीण आकार वाला चन्द्र चारों ओर से अपनी किरणों से बढ़ता हुआ मानों सूर्य्य के आकाश में लगे हुए तेज में विलीन हो गया है। राग रूपी लालिमा अनुरक्त होकर प्रसन्न हुआ चन्द्रमा, इन्द्र की दिशा को छोड़कर शोक से दीन हुआ पाण्डु आभा से क्रमशः दुबला हो गया है। भ्रमर,-समूह के समान

अन्धकार, जो चन्द्रमा ने पी लिया था, उसके निर्मल शरीर में शशक के रूप में दिखाई दे रहा है। प्र० भा०। अपनी किरणों से अन्धकार को नष्ट करने वाले चन्द्र-मण्डल में शशक की आकृति के रूप में मानों वेग से उड़ी हुई धूल की समूह है। प्र० भा०। चाँदी के टुकड़ों के समान चमकीले तारे ऐसे शोभित है मानों उदयाचल से आते हुए चन्द्रमा के मार्ग में दिग्वधुओं ने लावा बिखेर दिया हो। क्रीड़ा सरोवर में हंस बहुत देर तक नाद करने के बाद चुप हो गये हैं और कमल मुँद गये हैं, मानों अपने प्रिय के वियोग में देर तक रुदन करने के बाद उसने मूर्च्छित होकर आँखें बन्द करलीं हैं। प्र०। कमलों में बन्द होकर मानों चंचल और विकसित पत्र-समूह वाली कुमुदिनियाँ को विकसित होने का स्थान दिया है। नील कमल की आभा वाला मृग-चिह्न से युक्त चाँद जान पड़ता है दर्पण है जिसमें श्यामल सुन्दरियों की कान्ति की परिछाहीं पड़ रही हैं। सघन बादलों से घिरा हुई किरणों वाला चन्द्रमा जान पड़ता है मानों यौवन की की आभा से उज्ज्वल तुम्हारे मुख से लज्जित हो छिप रहा है। शशि-चिह्न से अंकित चन्द्रमा काले बादलों के मध्य से क्रमशः निकल रहा है जैसे उसके मध्य में काले मेघ का टुकड़ा लग गया है। इस चन्द्रमा के बीच में जो कृष्ण मृग का चिह्न है, वह मानों तुम्हारे कुन्द जैसे सफेद दाँतों को बनाने के लिये ब्रह्मा द्वारा निकाल लिया गया है। यह चन्द्रकान्त मणि का तोरण, तुम्हारे मुख से जिसके मण्डल की शोभा जीत ली गई है तथा अमृत आभा वाले चन्द्रमा के कलंक को देख कर शोक के आँसू बहा रहा है'।[२०]

क—जानकीहरण में सर्ग तीन के पहले १३ श्लोकों में वसन्त का वर्णन। इसका अधिकांश प्रथम भाग में उद्धृत किया गया है—'लक्ष्मी की धरा पर अवतरित होने की इच्छा को जान कर प्राण के

---

२०. वही; स० ८; ५५, ५८–७०, ७४–७६, ७८, ८३, ८४, ८७–९२

समान उसको चाहने वाला वसन्तसुमनों की समृद्धि के साथ पृथ्वी पर पहले ही फैल गया। अब दक्षिण दिशा को अपनी किरणों से प्रकाशित करने वाले भ्रमणशील सूर्य ने निर्धन होता के समान, प्रकाश प्राप्त करने के लिये कुबेर (उत्तर) की दिशा की ओर प्रस्थान किया। प्र० भा०। कटीले नाल वाले नये कमल, जो पानी में रहने से शीत के कारण संकुचित हो गये थे वसन्त में गर्मी पाने के लिये ऊपर उठ गये हैं। प्र० भा०। रात्रि प्रिय के विरह में क्षीण हो रही है, और दिन मानों गर्मी से शिथिल हुआ धीरे-धीरे बीतता है'।[२१]

वसन्त

माघ

§ १२—माघ ने द्वारिका से प्रस्थान के समय संक्षेप में सागर का वर्णन किया है—'मुरारि कृष्ण ने बाहर निकल कर देखा, समुद्र के उस पार नीले पत्र समूह वाली वन-पंक्ति है जो सागर द्वारा प्रतिक्षण लाई जाती शिवार जान पड़ती है। प्र० भा०। प्यासे सागर के चन्द्र-किरणों से बढ़े हुए शरीर में समा न सकने से मानों उगली हुई किरणें ही मोतियों की श्रेणी के रूप में वहाँ थीं। जल वर्षा से सारी पृथ्वी को डुबोने वाले और सदा गरजते हुए मेघ सागर के एक भाग में पानी पी रहे थे। जिस प्रकार वेदों से निकली हुई स्मृतियाँ फिर उन्हीं में समा जाती हैं, उसी प्रकार सागर के जल को मेघ से ग्रहण कर नदियाँ सब सागर में गिर रही हैं।......भक्ति के कारण सागर के भीतर से निकलने की इच्छा करते हुए सर्प-गण, श्रीकृष्ण की ध्वजा के समान, अपनी निःश्वास से जल को ऊपर उछालने लगे। युगान्त के बन्धु श्रीकृष्ण मेरी गोद में आ रहे हैं, यह देख कर समुद्र, मानों अत्यन्त आनन्द से अपनी उच्च तरंगों रूपी भुजाओं को फैला कर उनकी ओर बढ़ा। जल-कणों

सागर

२१. वही ; स० ३ ; १, २, ४, १३।

से युक्त तथा इलायची की गन्ध से भरी हुई समुद्री हवा प्रतिक्षण समुद्र के किनारे जाते हुए श्रीकृष्ण का पसीना सुखा रही थी। बाद में सेना, जहाँ ऊँचे-ऊँचे ताड़ वृक्षों के वन की वायु केतकी के सिर के बालों के दो भागों को बाँट रही थी ऐसे कच्छ प्रदेश में पहुँची। सैनिकों ने लवंग मालाओं से शरीर सजाया, नारियल का पानी पिया और हरी सुपारी चबाईं, मानों इस सागर ने उनका आतिथ्य किया हो'।[२२]

§ १२—श्रीकृष्ण की सेना रैवतक पर्वत पर पहुँचती है। इस प्रकार चौथे सर्ग में इस पर्वत का वर्णन है।—'प्र० भा०। कहीं-कहीं धुले हुए उत्तरीय वस्त्र के समान जलहीन सफेद मेघों को धारण किये हुए वह पर्वत, पार्वती के सम्पर्क से जिसकी भस्म असमान हो गई है ऐसे शिव के शरीर के समान है।

रैवतक पर्वत

मस्ती से चंचल और आलसी तथा प्रियाओं के मधुर वचन सुनने के अभिलाषी पक्षी-समूह पर पर्वत पिंगल-वर्ण के पत्तों वाले कमल रूपी छत्रों से छाया कर रहा था। डालों पर नीलकण्ठ बैठे हुए थे और शरीर में साँप व्याप्त थे ऐसे ऊपरी भुज-लताओं को हिला-हिला कर नृत्य करने वाले वृक्षों को पर्वत अनेक रूपों के समान धारण किये था। प्र० भा०। पद्मसमूह पर भौंरे फिर रहे थे, वृक्षों की श्रेणी धूप के ताप दूर कर रही थी। अत्यंत ऊँचे रैवतक के उन स्थानों पर जहाँ समीप होने से सूर्य्य ताप अधिक है कमल खिल रहे थे और झुंड के झुंड भौंरे घूम-घूम कर मधुपान करते हुए मस्त होकर उनकी छाया में ताप का कष्ट नहीं पाते। सहस्राक्ष इन्द्र से शोभित ऐरावत के समान इस पर्वत की रजतमय चट्टानों वृक्षों पर में सहस्रों फूल खिल रहे थे। अरुण की आभा से लाल हुए श्याम वर्ण के सूर्य्य के घोड़ों को बाँस के अंकुरों के समान नीले रंग की चारों ओर फैली हुई नील मणियों की किरणों ने फिर श्याम वर्ण प्रदान कर दिया। छाए हुए मेघों से साँपों

---

२२. शिशु० ; स० ३ ; ७०, ७३–७५, ७७–८१।

से भरे हुए उसके वन बार-बार भीग रहे थे, जिससे साँपों के विष की अग्नि से उत्पन्न विपत्ति वनों को क्षति नहीं पहुँचाती थी। सूर्य्यकान्त मणियों पर सूर्य्य की किरणों का स्पर्श अग्नि का तेज प्रकट कर रहा था, सत्पात्र में गुण अधिक शोभा देता है। इस पर्वत को श्रीकृष्ण ने कई बार देखा था, परन्तु इस बार वह नये आश्चर्य उत्पन्न कर रहा था, क्षण-क्षण नवीनता धारण करने वाली ही रमणीयता होती है। पर्वत के ऊँचे प्रदेशों में पक्षी शब्द कर रहे थे'।[२३] इसके आगे दारुक कृष्ण से पर्वत का वर्णन करता है—'अपनी ऊँची और विशाल चोटियों से विस्तृत दिशाओं, आकाश तथा उन्नत भूतल को व्याप्त करने वाले तथा जिसके ऊपरी भाग में चन्द्र-किरणें पड़ती हैं ऐसे श्रेष्ठ पर्वत को देख कर संसार में कौन व्यक्ति चकित न होगा। उस पर रज्जु के समान पड़ी हुई, उदय होते सूर्य्य तथा अस्त होते चन्द्रमा की किरणों से जान पड़ता है मानों विशाल हाथी के गले में दो घंटे झूल रहे हों। मणि माणिक्य को नूतन किरणों से और चारों ओर दूर्वायुक्त स्वर्णमय भूमि से शोभित यह हरताल के पीले रंग के वस्त्रों से युक्त आप के समान यह शोभित है। इसकी चोटियों पर बैठ कर हरिण को गोदी में लिये हुए मृगांक का, ललनाओं के मुख से पूर्ण समता रखने वाला, निष्कलंक और घनी किरणों वाला पृष्ठ भाग है। वृद्ध वानप्रस्थ पुरुष के समान इस पर्वत के झरनों का जल ऊँचे स्थान से पत्थरों पर गिर कर बूँद-बूँद होकर आकाश की ओर उठ कर कामार्त्त अप्सराओं के शरीर को शीतल करता है। मेघा जल बरसा कर चातक पक्षियों की दुःखभरी पुकारों को शान्त करके तथा सुवर्ण समूह को बिजली के समान उज्ज्वल करके छाये हुए हैं; और कहीं पर सूर्य्य की किरणें सुवर्ण-राशि को उद्भासित कर पिंगल वर्ण प्रसारित कर रही हैं'।[२४]

---

२३. वही; स० ४; ५–७, ९, १२–१८।
२४. वही; वही; १९–२४।

'प्रगाढ़ श्वेत लेप के समान चमकती हुई सफेद रंग की सोने की रेखाओं से अंकित ऊँची-ऊँची चाँदी की दीवारें श्वेत भस्मयुक्त तथा अग्निमय नेत्र से शोभित शिव के ललाट के समान जान पड़ती हैं। रैवतक पर ऊँचे और अत्यंत कठिन स्थान हैं, विशाल मेघ झूलते हुए स्थानों को ढके रहते हैं, प्राणियों के लिये दुरगम्य हैं और दिग्गजों ने अपने तिरछे दाँत मारकर उन स्थानों को चिह्नित किया है। प्र० भा०। खिले हुए चम्पा के फूलों के समान रंगवाले गगन-स्पर्शी स्वर्णमय स्थानों से यह पर्वत सुमेरु पर्वत के नितम्ब प्रदेश के समान शोभा धारण कर रहा है। इस पर्वत पर नाना वर्णों के सुन्दर रोमों वाले 'प्रिपक' नाम के विशेष प्रकार के मृग विचरते हैं, जिससे जान पड़ता है मानों विविध रत्नों वाले रैवतक के अपने अंग इधर-उधर घूम रहे हैं। यहाँ जवान हाथियों के झुंड सरोवरों के बीच में घुस कर आनन्द पूर्वक विकसित कमलों से खेल रहे हैं। अन्धकार सूर्य्य पर आक्रमण करता है, किन्तु सूर्य्य फिर दीप्ति (पत्नी) से मिलने के लिये समय की प्रतीक्षा करता है। रात को इसी दीप्ति की औषधियाँ रक्षा करती हैं, अन्य कोई उसका पराभव नहीं कर सकता। इसमें लताएँ रमणियों के हाथों के समान अपने कोमल कसलयों को वृक्षों के तनों पर स्थापित किये हुए हैं। उन लताओं के फूलों पर भौंरे बैठे हैं जो काजल लगे हुए नेत्रों के समान जान पड़ते हैं। यह कदम्ब के फूलों की सुगन्ध से सुवासित होता रहता है, यहाँ पक्षीगण नाना शब्द करते हैं और पवन नये कदम्ब वनों को कँपाता हुआ और मेघों को घुमाता हुआ संचरण करता है। यह पर्वत समस्त निधियों का धारण किये हुए है और यहाँ किन्नर-किन्नरियाँ क्रीड़ा करती हैं। इसकी चोटी पर फैले हुए वन में ताल और तमाल के वृक्ष दूर तक फैले हुए हैं और इसमें सूर्य्य की किरणें भी तिरोहित हो गई हैं। इसमें कोई अनफूली लता नहीं है। कुंजवन से पूर्व अधित्यकाएँ सुन्दर हैं। उत्तम रत्नों की किरणों से चोटियाँ भी चित्रित हो रही हैं, निर्मल शिलाओं तथा मणियों

से मेखलाएँ परिपूर्ण हैं, इनकी चोटियाँ विस्तृत हैं और अधित्यकाओं से रमणियाँ विहार करती हैं। इस पर्वत में सफेद चाँदी की भूमि पर हीरों के टुकड़े पड़े रहते हैं, इससे यह भूमि मेघ द्वारा तत्काल बरसाये गये और बुलबुले पड़े जल के समान दिखाई पड़ती है। घने बाँस के जंगलों में आती हुई चमरी गायें पूँछ के एक बाल कट जाने पर दुःखी होकर वहीं खड़ी हो जाती हैं, किन्तु जान पड़ता है मानों वे बाँस में प्रविष्ट छिद्रों से निकलने वाले पवन के मधुर गीत सुनने को खड़ी हो गई हैं। इन्द्रनील मणियों की शिलाएँ जिनमें पड़ी हैं ऐसे सरोवरों में बादलों से मोतियों के समान श्वेत जल बरसा करता है, जो पहले दूध के समान दीखता है, किन्तु फिर छुरी के समान नीले रंग की उन इन्द्रनील मणियों की किरणें, शीघ्र ही उस जल को नील के रस के समान नीला कर डालती हैं। नाना प्रकार के रत्नों की किरणों से मिलकर चन्द्र की किरणें हजारों गुनी चमकती हैं, इस कारण रात्रि में भी कमलनियाँ उसे सूर्य समझ कर विकसित ही रहती हैं। अपने से उत्पन्न हुई अपनी पुत्री रूपी जो नदियाँ निःशंकभाव से अपनी गोदी में खेलने या लोटने की अभ्यस्त थीं; वे अब अपने पति समुद्र के साथ सम्मिलित होने के लिये सन्मुख की ओर जा रही हैं। इस कारण मानों पक्षियों के करुण शब्दों द्वारा वात्सल्य-वश उन्हें लक्ष्य करके रैवतक रो रहा है। इसमें बहुत से वृक्ष अपनी शाखाओं के भार से झुके पड़ते हैं और उनको भ्रमर रूपी लम्पटगण चूम रहे हैं। यहाँ पर असंख्य लताएँ परिपक्व होकर पीले रंग की हुई हैं और रेणुराशि गिर कर पर्वत के नितम्ब देश को भूरे रंग की कर रही है। झरनों के ऊपर से नीचे गिरती हुई जलधारा नाना प्रकार के रत्नों की किरणों से रंगीन हो रही है, लगता है कि सिन्दूर से रंगी हुई हाथी सूँड़ हो और ऊपर की दिशा विस्तृत इन्द्र-धनुष के समान मनोहर जान पड़ती है। शिखर रूपी केश-कलाप मोरों के शेखरों को धारण कर, क्षण भर के लिये लम्बे-लम्बे पिच्छों की झूलती हुई मालाएँ कल्पवृक्ष के नाना वर्णों के विकसित पुष्पों से गुँथी हुई सी शोभित

होती हैं। प्र० भा०। यहाँ पड़ती हुई नवीन मणियों से उत्पन्न हुई किरण-राशि ऊपर उठकर, परस्पर मिलकर मनोहर तथा विचित्र होकर बिना दीवार के भी आकाश में एक प्रकार का चित्र निर्माण करती है, और उसको देखकर आकाशयामी प्राणी विस्मयापन्न होते हैं। इस पर्वत में वृक्षों की शाखाओं के भीतर से सूर्य्य की किरणें पड़कर नीचे की मरकत मणि वाली भूमि की धूल रँगी जाकर चकाचौंध उत्पन्न करती करती है, और सूर्य्य की किरणों ने मोरों के गला झुकाने पर जैसी शोभा होती है वैसी शोभा धारण की।'

'इस पर्वत की चोटियाँ, रात में चन्द्र की किरणों के स्पर्श से, चन्द्रकान्त मणियों से निकले हुए जल द्वारा स्नान करती हैं और दिन में सूर्यकान्त मणियों से निकली ज्वाला से सन्तप्त रहती हैं। इस प्रकार मानों चोटियाँ तपस्या करती हों। इसमें अति काले और भ्रमणशील भौंरों की वीणा की अव्यक्त मधुर ध्वनि के समान गुंजार से आकर्षित हुई कौन रमणी मान छोड़ प्रिय के सन्मुख अवनत नहीं हो जाती। इस पर्वत के विशाल सरोवरों में अविरहितरामा लक्ष्मणा (पतियुक्त सारसी) रहती है, अधिक जल से (कपियों) से इसकी शोभा है और वायुजनित वेग से क्षोभित है (पवन-पुत्र का वर्णन), और इस प्रकार ये वाल्मीकि रचित रामायण के सदृश हैं। प्रत्येक दिशा में हाथियों के प्रसन्न बच्चे बार बार मधुर और भयंकर शब्द करते हैं, प्रत्येक वन में चमरी गायें घूमती हैं और सोने तथा रत्नों की भूमि की किरणें दीप्त हो रही हैं। पवन बाँसों के छिद्रों में भर कर उनसे निकलते हुए मधुर गीत को स्वयं सुनता है, कोमल रोएँ वाले कम्बल मृगों को छूता है, और कस्तूरी मृग के शरीर को छूकर सुगन्धित होता है। रति-क्रीड़ा श्रम को यहाँ मेघ शान्त करते हैं और सन्तोष के लिये सूर्य्य को ढक देते हैं, दिन में अन्धकार हो

---

२५. वही ; वही ; २८, २९, ३१–३६, ३९–४१, ४३, ४४, ४६–५०, ५३, ५६।

जाती है। साँप जिसमें रहता है ऐसे फूलों के भार से झुके हुए वृक्ष को मदमत्त हाथी ने तोड़ डाला है, इससे कुपित हुआ साँप तीव्र विष उगल रहा है। हिमालय में शीत के कारण शिवजी हाथी के चमड़े को ओढ़ते हैं परन्तु यहाँ अकिंचन व्यक्ति को भी शीत और गर्मी का दुःख नहीं सताता। स्फटिकमय स्थान शुभ्र वर्ण के हैं, मध्य भाग नवीन वृक्षों की श्रेणी से श्याम वर्ण है, इस प्रकार यह पर्वत शरीर में भस्म लगाये और कटि-प्रदेश में काले साँप लपेटे शंकर के समान जान पड़ता है। यहाँ बहुत सी नदियाँ प्रवाहित हैं जिनके दोनों किनारों पर जल में कमल खिले हैं। सघन अन्धकार को बेधकर सूर्य्य की किरणें, दर्पण के समान निर्मल सामने की चाँदी की दीवारों पर प्रतिफलित होकर उन स्वर्ग गुफाओं के भीतर घुस कर युवतियों को लज्जित करती हैं। इस पर्वत-शिखर की कान्ति का अनुकरण करने वाले बलराम के वस्त्रों के समान काले मेघ पवन से ऊपर उमड़ते हुए उठ रहे हैं, और जान पड़ता है पर्वत ऊँचा उठकर आपका सम्मान कर रहा है।'[२६]

§ १४—क्रीड़ा-विलास प्रसंग में ही रैवतक सन्ध्या का वर्णन भी है—'अपने तेज के ताप को अधिक सह न सकने के कारण ही मानों सूर्य्य पश्चिम समुद्र के जल में डूबने की इच्छा से अस्ताचल पर चढ़ने के लिये दौड़ा। दिन और सूर्य्य दोनों बुढ़ापे से शिथिल हो गये थे, उनकी देह की प्रभा कम हो गई, शरीर की गरमाहट कम हो गई, दिशाओं में रहने वाले निर्मल मेघ ही मानों उसके मस्तक बने हुए हैं और सूर्य्य रूपी नेत्र कमजोर हो गये हैं। प्र० भा०। सन्ध्या होने के पहले सूर्य्य की विरल रश्मियाँ पर्वत की चोटियों पर जा रहीं, विनाश के समय भी सज्जनों का स्थान ऊँचा रहता है। अन्त होते समय सूर्य्य की हजारों किरणें काम न आईं, विधाता के विपरित होने पर कोई उपाय सफल नहीं होता। प्र० भा०। अस्त

सन्ध्याकाल

२६. वही; वही; ५७–६५, ६७, ६८।

होते समय जवा कुसुम की तरह लाल रंग का सूर्य्य पश्चिम दिशा के मध्य भाग में लाल रंग के पद्मराग मणि के कंकण की भाँति शोभित हो गया। अग्नि ताप से प्रकाशमान सोने के टुकड़े की तरह शोभित, समुद्र जल में आधा डूबा हुआ सूर्य्य-मण्डल, सृष्टि के प्रारम्भ में ब्रह्मा के नख के आघात से दो भागों में विभक्त ब्रह्माण्ड के एक बड़े खण्ड के समान था। पश्चिमी दिशा रूपी वेश्या ने, अनुरक्त नेत्रों को सुख देनेवाले और शान्तचित्त निर्धनी आकाश रूपी घर से सूर्य्य नायक को निकाल दिया। प्र० भा०। आकाश में नक्षत्र और चन्द्रमण्डल दिखाई नहीं पड़ते, सूर्य्य अस्त हो गया है, ताप और अन्धकार भी नहीं था, फिर भी आकाश शोभित हो रहा था। कान्तिपुंज पति के देशान्तर चले जाने पर निर्मल प्रभावली कान्तियाँ अग्नि में प्रविष्ट हुईं, अन्यथा दूसरे जन्म में वही सूर्य्य पति कैसे मिल सकता है। सन्ध्या ने खिले हुए कुसुम्भ के फूलों के समान आभा धारण कर जन-समूह के नमस्कार स्वरूप स्वागत को अपनाया, ब्रह्मा ने अपनी मूर्ति रूपी सन्ध्या को त्याग दिया था फिर भी उसने अपने स्वाभाविक पूज्य भाव को नहीं त्यागा। सन्ध्या की घनी प्रगाढ़ लाल किरणों में रंगे हुए चकवा-चकवी ऐसे जान पड़ते हैं मानों उनका हृदय विरह से विदीर्ण हो गया है और उस खून से रंगे हुए वे अलग-अलग उड़ गये हैं। कमल में लक्ष्मी का वास है, यह प्रसिद्ध होने पर भी दिन के अवसान होने पर लक्ष्मी कमल को छोड़ गई, चंचल व्यक्ति के लिये यह उचित ही है। दिन अस्त होने पर, मैं अबला होकर इस तेजोधाम सूर्य्य के विरह से दुःखी इस संसार में क्यों रहूँ, इस प्रकार विचार कर मानों सन्ध्या ने तत्क्षण अपने को नष्ट कर दिया'।[२७]

क—आगे अँधेरे का वर्णन है—सागर के जल में अपना प्रतिबिम्ब देख, सूर्य्य रूपी सिंह मारने की इच्छा से कूद पड़ा, और तब हाथियों

---

२७. वही; स० ९; १–३, ५, ६, ८–१०, १२–१७।

के समूह के समान काले रंग का अन्धकार चारों ओर संसार में फैल गया। गाढ़े कीचड़ के समान काले रंग का अन्धकार पर्वतों की गुफाओं में अपना पूरा अधिकार जमाने की चेष्टा में मग्न हो गया। इस बात का निर्णय कोई नहीं कर सकता कि अन्धकार आकाश में नीचे की ओर आ रहा है, या भूतल से ऊपर की ओर उठ रहा है या दिशाओं से तिरछा आ रहा है। तम चारों ओर से घिरता आ रहा है। अन्धकार ने आकाश और भूतल में फैल कर लोगों की दृष्टि को अन्धी कर दिया। दिन में सूर्य्य की किरणों से हारे हुए कान्तिहीन ग्रह नहीं दिखाई पड़ते थे, पर रात्रि के अन्धकार में चमकने लगे हैं, क्षुद्र नीच के आश्रय में ही प्रकाशित होते हैं'।[२८]

अन्धकार

ख—अनन्तर चन्द्रोदय का दृश्य सामने आता है—'शेषनाग के फणों पर स्थित हजारों मणियों की कान्ति समूह की भाँति, पूर्व दिशा के भीतर से निकली चन्द्रमा की किरणराशि प्रकाशित हुई। प्र० भा०। चन्द्रमा की कला देखकर लोग क्षण भर के लिये आकाश को, चन्द्र किरणों से स्वल्प और अन्धकार रूपी जटाओं से शोभित शिव की मूर्ति समझ बैठे। अन्धकार रूपी केशपाशों में नई चाँदनी रूपी फूलों से शोभित, चाँद जिसका ललाट देश है, ऐसा पूर्व दिशा मुख सफेद चन्दन लेप किये हुए के समान जान पड़ता था। चन्द्रमा एक कला में उदित हुआ, आधा प्रकाशित हुआ, और सम्पूर्ण उदित हुआ और अन्त में बड़े आकार में फैल गया। तेजस्वी पुरुष क्रमशः वृद्धि लाभ करते हैं। प्र० भा०। अत्यन्त मुग्धकर आकाश रूपी दूकान में उपस्थित हुए चन्द्र रूपी धनिक से, समुद्र बनिये की तरह कला रूपी मूल धन से अपनी वृद्धि के लिये स्वागत-सत्कार कर रहा है। रात्रि को पाकर चाँद शोभित हुआ और उसने रात्रि का सौन्दर्य्य बढ़ा दिया। दिन में सूर्य्य-किरण के कणों से

चन्द्रोदय

---

२८. वही; वही; १८—२१, २३।

प्रताड़ित, भ्रमरों की गुंजार के रूप में रुदन करती कुमुदिनी नायिका को चाँद शीतल किरणों से छूकर संतुष्ट करने लगा। चन्द्र रूपी वैद्य ने अमृतमय किरण-कर से कमल-नयनी स्त्रियों के शरीर को अमृत रस से सिंचित कर व्यापक और सन्ताप-जनक मान-रूपी विष को उनके शरीर से निकाल दिया। सम्पूर्ण दिशाओं में विशेष रूप से फैली हुई चन्द्रमा की किरणें युवतियों के उज्ज्वल निर्मल कपोलों पर प्रतिबिम्बित होकर अधिक परिमाण में विस्तृत हो रही थीं। तरंग रूपी हाथों से तीर को आलिंगन करने वाले समुद्र को चन्द्रमा ने शोभित कर दिया, फिर यदि विलासी यादवों को उत्तेजित किया तो इसमें आश्चर्य्य क्या! असमर्थ हुआ घर के भीतर अलस भाव से सोया हुआ कामदेव अब झरोखों से आती हुई स्फटिक दण्ड के समान चन्द्र-किरणों को पाकर चैतन्य हो गया। अन्धकार के कारण लक्ष्यहीन हुए कामदेव ने, चन्द्रोदय से दिशाओं के प्रकाशित हो जाने पर, अपना धनुष खींचा। चन्द्रोदय के साथ ही कुमुद खिल गये, इससे कामदेव को पुष्पमय धनुष में बाण चढ़ाने का मौका और भ्रमरों को कुमुद में रहने का स्थान मिल गया, साथ ही कामिनियों के हृदय में उत्कण्ठा जाग गई। सहसा दिशाओं को प्रकाशित कर तथा रति के लिये उत्कण्ठा पैदा कर, अत्रि के नेत्रों से उत्पन्न हुई अग्नि के समान चन्द्रमा ने कामदेव को उत्तेजित किया'।[२९] इसके बाद सारे सर्ग में क्रीड़ा-विलास का वर्णन है।

§ १५—ग्यारहवें सर्ग में रैवतक पर्वत के क्रीड़ा-विलास के वातावरण में ही प्रातःकाल भी होता है।—'बालकृष्ण के छोटे पाद-पद्म के आघात से शकटासुर का विशाल शरीर फैल कर गिर गया था, उसी की तरह यह सप्तर्षि मण्डल फैले हुए क्षीण ध्रुव नक्षत्र के ऊपरी भाग में स्पष्ट शोभा पा रहे हैं।...पके हुए कमल की जड़ के टुकड़ों के समान शुभ्र

प्रभातकाल

२९. वही; वही; २५, २७–२९, ३२–३४, ३६–४२।

वर्ण, अस्तकाल की लाली से रंजित हो केसर मिले हुए चन्दन की धूल के समान किरणों द्वारा चन्द्रमा अलंकृत कर शोभा पा रहा था। बन्द होते कुमुदों से क्षीयमाण शोभा को धारण करते कुमुद-समूह और खिलने वाले कमलों से बढ़ती हुई कान्ति को पाकर भँवरों के गुंजार से भूषित पद्म-समूह प्रातःकाल में समान अवस्था को धारण कर रहे हैं। प्र० भा०। प्रभातकालीन वायु ने मालती के फूलों के पराग को फैला कर अलसित अंगों वाली युवतियों की कामाग्नि भड़का दी। सूर्योदय के कारण मन्द प्रकाश की ज्योति अब निद्रातुर हो, घर के नयन की तरह घूम रही है। प्रभात वायु प्रस्फुटित पद्मों की गन्ध से भौंरों को मोहित करता हुआ धीरे-धीरे बहने लगा। अन्तिम प्रहर में चन्द्र रूपी पति के साथ अभिसार कर, इस समय मनोहर सौरभ युक्त निश्वास से वासित किरण रूपी अंगराज से व्याप्त वस्त्र को सँभालती हुई रात्रि मानों शीघ्र ही चली जा रही है। नवीन कुमुद-वन की शोभा की हास्य-केलि से आसक्त हुआ रातभर का जागा कान्तिसम्पन्न चन्द्रमा, इस समय मानों शयन की इच्छा कर अलसित करों से पश्चिम दिशा की गोद में अपने पीले तथा थके शरीर को सुलाना चाहता है। प्र० भा०। जब तक सूर्य्य दृष्टिगत हो अरुण ने सारा अन्धकार दूर कर दिया। प्र० भा०। इस काल पवन प्रत्येक वन में कमलों को हिलाती हुई लता समूहों को झुलाती हुई और सब वृक्षों को कँपाती हुई, कहीं भी न रुक घर के भीतर आकर स्थिर हो गई क्योंकि घर के भीतर से रमणियाँ और फूलों की गन्ध बाहर निकल रही थीं। पूर्व दिशा में नवीन स्वर्ण के समान पिंगल वर्ण सूर्य्य की किरणें प्रकाशित हैं, इससे जान पड़ता है मानों वड़वानल की शिखा समुद्र के ऊपर जल रही है। समस्त दिशाएँ एकत्र हो, पक्षियों के कलरव में कोलाहल करती हुई मानों किरणों की विस्तृत रस्सी से सूर्य्य के भारी कलश को समुद्र के भीतर से ऊपर उठा रही थीं। निश्चय ही सागर के जल में डूब कर वडवानल से दग्ध होते रहने के कारण सूर्य्य उदय होने के समय जलते हुए खैर के अंगारों

के समान लाल उज्ज्वल आभा वाला है। प्र० भा०। उदयाचल की शिखर के आँगन में घूमता हुआ पद्मिनियों के हास्य के साथ देखा जाता बाल सूर्य्य आकाश के पक्षियों द्वारा बुलाया जाता है। वह कोमल किरणों के अगले भाग को विस्तृत कर खेलता हुआ आकाश की गोद में गिर पड़ा। पर्वत शिखर पर कुछ काल बैठ सूर्य ने भूतल पर चरण रखे और सबको नमस्कार कर सन्तुष्ट होते देख सारे संसार को भली भाँति देखता हुआ सिंहासन तुल्य पर्वत के ऊपर के भाग से ऊपर उठा। नदी का दोनों किनारों से रुका हुआ जल सूर्य्य की नव-रश्मियों से रंजित हो पक्के मद्य की भाँति लाल रंग का हो गया, जिससे प्रतीत होता था कि सूर्य्य-किरण रूपी बाणों द्वारा सभी दिशाओं में अन्धकार रूपी हाथियों के ताड़न से रक्त को बहाती हुई नदियाँ शोभा पा रही हैं। झरोखों के भीतर से घर के भीतर पड़ने वाली किरणें कामदेव से फेंके हुए जलते बाणों की शोभा (रमणियों के लिये) धारण कर रही थीं।···अन्धकार दूर करने के लिये उदित हो सूर्य्य ने नक्षत्रों को भी बलपूर्वक नष्ट किया। पर्वतों के बाहर का अन्धकार दूर कर सूर्य्य ने अपनी प्रतिबिम्बित किरणों से गुफाओं के भीतर का अँधेरा भी दूर कर दिया। उसने घर के बाहर-भीतर का अन्धकार दूर कर दिया। उदय होने वाले कमल पुष्पों को विकसित करता हुआ सूर्य्य, चपलता के कारण बंधन में बँधे हुए भौंरों के इस व्यापार को छुड़ा कर भंडा-फोड़ कर रहा है। कौतुक वश अपनी सहस्र-किरणों द्वारा सहस्र कमल-दलों को खिला कर सूर्य्य मानों भ्रमरों के गान से सन्तुष्ट हुई कमलों में रहने वाली श्री को आदर से देख रहा है। किरणों के अगले भाग से चन्द्रमा का निर्दयता से निष्पीड़न कर, प्रभात के समय उदय राग से रंजित हुआ सूर्य्य, उसी समय निकले हुए मेघ के नवीन जल के समान शुभ्र वर्ण वाले चन्द्र की कान्तिसार के मानों सफेद कमलों के भीतर फैला रहा है। सारे जगत् को प्रकाशित कर द्वितीय नयन के समान सूर्य्य एक दिशा में अधिक काल के लिये

प्रकाशित होता है, और प्रभाहीन चाँद द्वारा यह आकाश मानों काने के समान दीख पड़ता है। कैसा आश्चर्य्य है—एक ओर कुमुद-वन शोभाहीन हो गया है, दूसरी ओर कमल-वन शोभाशाली हो गया है; उल्लू आनन्द रहित हो गया है और चकवा आनन्दित है; चन्द्र अस्त हो रहा है और सूर्य्य उदय हो रहा है। दिशा बहुओं का पति सूर्य्य कुछ काल के लिये विदेश जा कर फिर पूर्व दिशा में उपस्थित हो गया है, इसलिये गलित-किरण वाला यह चाँद उपपति के समान झुका पश्चिम प्रान्त से शीघ्रतापूर्वक चला गया। कल्पान्त में समस्त जगत् का संहार कर, अनुरक्ता लक्ष्मी के साथ जिस प्रकार विष्णु अकेले ही सागर में निवास का सोते हैं, इसी प्रकार अत्यन्त शोभाशाली सूर्य्य शीघ्र ही समस्त नक्षत्र-लोक को नष्ट कर, उदय-काल की रक्त वर्ण शोभा को नष्ट कर रात के अन्त में आकाश में एकाकी शोभा पा रहा है। सारे लोक को चैतन्य करता हुआ, समस्त अन्धकार का नाश करता हुआ, बहुत से गुणों से युक्त, कुमुद तथा नक्षत्रों की शोभा नाश करने का तथा कामियों के विच्छेद का किंचित दोष रखने वाला कृती दिन का स्वामी सूर्य्य, हे कामद कृष्ण, आपके लिये सुप्रभात करे'।[३०]

ऋतु-वर्णन

§ १६—रैवतक पर्वत पर श्रीकृष्ण के विहार के अवसर पर सभी ऋतुओं का वर्णन प्रस्तुत किया गया है—'उन्होंने वसन्त ऋतु के दर्शन किये, पलाश वन में नये-नये पत्ते निकल आये थे, पराग से भरे हुए कमल खिल गये थे, धूप के ताप से लताओं के कोमल पत्ते कुछ मुरझा गये थे और अनेक प्रकार के फूलों से सुगन्ध फैल रही थी। रमणियों के बिखरे हुए केश-कलाप हिलाता हुआ, उनके मस्तक के स्वेद-कणों को सुखाता हुआ, सरोवरों में छोटी लहरियों को उठा हुआ और कमलों को विकसित कर समीर

---

३०. वही ; स० ११ ; ३, १४, १५, १७—१९, २१, २२, २५, २८, ४३-४५, ४७-५०, ५७-६७।

चलने लगा। सफेद कुरबक के फूलों के गुच्छों पर बैठे हुए भौरों का श्वेत रंग से उत्कर्ष को प्राप्त हुआ नीला रंग श्रीकृष्ण की स्त्रियों के नेत्रों की पुतलियों के समान था। स्वर्ण जैसी आभा वाले चम्पा के फूलों के मध्य में खिला हुआ शोभायमान अशोक का फूल ऐसा जान पड़ता है मानों विरह की ज्वाला से विरहियों का हृदय विदीर्ण हो गया है और मांस पीला पड़ गया है। प्र० भा०। मौलश्री के फूलों की रस मदिरा को पी कर भौरों का कण्ठ सुमधुर हो गया था मानों कामदेव के आकाश से वे प्रियतमों के प्रति कुपित कामिनियों को मनाने के लिये निकल पड़े। प्र० भा०। पलाश के पुष्प समूह ऊँचाई पर स्थित सारे पर्वत और सारे वन को ही लाल करके और बार बार पथिकों को संतप्त करते दावानल की शोभा धारण कर रहे थे।[31] इसके बाद ग्रीष्म का उल्लेख है—'जिस ऋतु में शिरीष के फूलों के पराग की कान्ति सूर्य्य के घोड़ों के सदृश होती है ऐसी ग्रीष्म ऋतु नवमल्लिका की सुगन्ध को चिरस्थायी करती हुई उपस्थित हुई। पाटल के फूलों की कोमल कलियों को खिलाता हुआ, उन्मत्त भौरों को भ्रमाता हुआ, विलासियों की रमणियों की निश्वास के समान ग्रीष्मानल विलासी लोगों के काम की चंचलता बढ़ाने लगा'।[32] अनन्तर वर्षा ऋतु का वर्णन है—'मण्डलाकार इन्द्रधनुष को धारण करने वाली विचित्र मेघमाला, नाना प्रकार के मणियों से खचित कर्ण-कुण्डलों की किरणों से शोभित कृष्ण के शरीर के समान, जान पड़ती थी कि बलि के मानमर्दन के समय नारायण के शरीर की विचित्र शोभा का अनुकरण कर रही थी। प्र० भा०। फूले हुए कदली के फूलों को कँपाता हुआ सौरभमय वर्षा का पवन मानस्विनी मानिनी रमणियों का मान भंग करता हुआ और प्रवासी लोगों को उद्विग्न करता हुआ वनों को

---

३१. वही ; स० ६ ; २—५, ७, २१।

३२. वही ; वही ; २२, २३।

झुकाने लगा। अपने गर्जन से मसाला लगे हुए नगाड़ों के शब्द को अपमानित कर मेघ समूह मधुर शब्द करने वाले मत्त भौंरों को नचाने लगा। प्र० भा०। मेघों की थोड़ी-थोड़ी पहली वृष्टि ने, ग्रीष्म के ताप को दूर कर दिया, भूतल की धूल दूर कर दी और रैवतक के तट को सुगन्धित करके रमणियों के सुख-संचारक के योग्य कर दिया। प्र० भा०। घिसे हुए मोतियों के चूर्ण के समान, सफेद झरनों के उज्ज्वल झाग के समान, कुंजों के फूलों का पराग साफ दही के समान जान पड़ता था। प्र० भा०। वर्षा काल ने सूर्य्य को तिरोहित कर लिया, पक्षियों को अपने घोंसलों में छिपा दिया था तथा दिशाओं के ठीक-ठीक ज्ञान में बाधा डाल दी थी'।[33]

फिर शरद् ऋतु का विकास होता है—'श्रीकृष्ण ने देखा कमल नेत्रों वाली स्खलित हुए वस्त्रों जिसके मेघ हैं ऐसी शरद् रमणी मानों राजा का गोद में बैठी हो। सूर्य्य अपनी किरणों से संसार के रात्रि के अन्धकार, आकाश के मेघ-समूह के अन्धकार और कमलों के निद्रा-जन्य अन्धकार को दूर करने लगा। समय प्राणियों को निर्बल और बलवान बना देता है, मानो ऐसा कहते हुए हंसों का स्वर मधुर और मोरों का स्वर कठोर हो गया। हंसों ने अपने स्वर से मोरों के नाद का हरा दिया, इसी से उनके पंख झरने लगे, शत्रु द्वारा किया हुआ तिरस्कार असह्य होता है। प्र० भा०। सोने के खंड समान पीले दल वाले, जो पराग भोर अरुण केशर से जो अधिक मनोहर लग रहे थे और जो पति से अपमानित हुई भामिनी रमणियों के मान को नाश करने वाले ऐसे असन (बन्धूक) के फूल अपने नाम को सार्थक कर रहे थे। चकोर-नयना सुन्दरियों के मद से लाल मुख-कमलों की शोभा का अनुसरण करने वाले बालातप से रंगे हुए जल-कमलों ने किसे उत्कंठित नहीं किया। सप्तपर्ण के फूलों के गुच्छों की गन्ध से

---

३३. वही ; वही ; २७, ३०, ३१, ३३, ३५, ४१।

सुगन्धित और भ्रमरों के गाने से प्रशंसा प्राप्त पवन, मदस्रावी और तीनों लोकों को आकुल करने वाले कार्त्तिक मास रूपी हाथी के आने की सूचना देते हुए बहने लगा। प्र० भा०। आकाश में उड़ती हुई, ताम्र वर्ण के मुँह वाले तोतों की पंक्ति, देवताओं द्वारा बनाई हुई हरे पत्तों की माला, जिसमें कोमल पल्लव भी बीच में पिरो दिये गये हों, के समान दिखाई देती हुई कृष्णजी को आनन्दित कर रही थी'।[३४] इसके बाद है—'हेमन्त काल का पवन हाथियों को डूबो देने वाली गहरी नदियों को शीतल करके, पथिकों की स्त्रियों के नेत्रों में से अत्यन्त संताप के आँसू बहाने लगा'।[३५] परन्तु इस ऋतु में केवल संयोग का वर्णन है। अनन्तर वन में प्रियंगु लताओं पर फूल खिलने वाला और भँवरियों के मद विकसित रव हुंकार से युक्त शिशिर ऋतु का पवन, मानिनी स्त्रियों की मानों भर्त्सना करने लगा। माघ मास का सूर्य प्रबल शीत को दूर नहीं कर पाता, कालक्रम से सशक्त हुए शत्रु की हानि बलवान व्यक्ति नहीं कर पाते। सेना द्वारा उड़ाई धूल के समान सफेद लोध्र के फूलों का पराग सभी दिशाओं में फैल गया, मानों कामदेव की, सेना लेकर त्रिभुवन पर आक्रमण करने की इच्छा को प्रख्यात कर रहा है। प्र० भा०। अत्यधिक फूलों की वृद्धि से कल्पवृक्ष झुक गया और वसन्त के आगमन की घोषणा करने वाली दुन्दुभी स्वरूप तरुण कोयल प्रेमी लोगों को अनुराग वृद्धि के लिये कूकने लगी'।[३६] इस प्रकार उस वर्णन में ऋतुओं का एक बार पुनः उल्लेख हो जाता है। वास्तव में शिशुपाल-वध में प्रकृति का सारा विस्तार क्रीड़ा-विलास के साथ हुआ है।

---

३४ वही ; वही ; ४२–४५, ४७, ४८, ५०, ५३।

३५. वही ; वही ; ५५।

३६. वही ; वही ; ६२–६४, ६७।

श्रीहर्ष

§ १७—दमयन्ती के स्वयंवर प्रसंग में सरस्वती अनेक राजाओं के साथ उनके देश का परिचय भी देती है—'पुष्कर द्वीप में—हिमालय के समान शीतल वट-वृक्षों के मंडप के तले ब्रह्मा स्वयं रहता है। वह अपने पके लाल फलों और नीले पत्तों की कान्ति से द्वीप के मोर-पंखों के छत्र के समान है और आकाश के आतप को वह रोके हैं (न्यग्रोध) और शाखाओं से उत्पन्न जड़ों से अपने भार को स्वयं धारण करता है। शाकद्वीप में—तोते के पंख जैसी कान्ति वाले पत्तों की माला धारण करता शाक नामक वृक्ष है, इसके पत्तों से दिशाएँ हरी हैं। इसके पत्तों से उत्पन्न पवन स्पर्श से अपूर्व हर्ष देने वाली है। वहाँ क्षीर समुद्र की बेला-भूमि में वन-पंक्ति के प्रतिबिम्ब से विचित्र हुई तरंगें सुन्दर हैं। सागर की तरंगों से चलायमान होने से निकट आये, जीवन के औषध-भूत बहुत से दुग्ध-रस से परिपुष्ट तथा सर्वदा अपनी मूर्ति कुण्डलाकार रखने वाले शेषनाग के ऊपर विष्णु निवास करते हैं। वहाँ उदयाचल की शिलाएँ बाल सूर्य की किरणों से गैरिकता का अनुभव करती हैं। क्रौंच देश—चारों ओर सफेद दधिमण्डल नाम के समुद्र के गोल प्रवाह से घिरा है। यहाँ क्रौंच पर्वत कार्तिकेय के बाण से बनाये मार्ग से आये हंसों से निनादित है। कुश देश में—घनी छाया वाले वृक्ष समुद्र का तट है। वहाँ वायु चलने से चंचल पत्र रूपी खंगों से भिन्न हुए, आकाश तक पहुँच गई शिखा वाले मेघ मंडल से भरे हुए पानी से कुशा की क्यारियों की सिंचाई होती है। मन्दर की कन्दराएँ वहाँ समुद्र-मंथन के समय निकली हुई लक्ष्मी के चरण-कमलों से पवित्र शिला-तल वाली हो गई हैं। वासुकि सौ बार लपेटने से घिसकर बनी हुई लकीरें कानों मन्दाचल पर चढ़ने के लिये सीढ़ियाँ बन गई हैं। उन लकीरों में सफेद पानी की धाराएँ से वह मन्दर अपने भार से आक्रान्त

देशों का उल्लेख

मस्तक वाले शेषनाग के बचे हुए अंग से लपटा हुआ जान पड़ता है। शाल्मल द्वीप—सुता के अक्षय समुद्र से यह घिरा हुआ है। वशीकरण औषधों से दीप्त द्रोण पर्वत उस द्वीप के दीप के समान है और मेघों से आच्छादित शिखर काजल जैसा सुन्दर है। इसमें शाल्मली वृक्ष का भुआ मार्ग को कोमल कर देता है। प्लक्ष द्वीप—पाकड़-वृक्ष का देश है। पाकड़ की विशाल शाखाओं पर झूले पड़े रहते हैं। इसमें विपाट नामक नदी वर्षाकाल में भी तटों के बाहर नहीं बहती। और उसमे कमल फूलते हैं। जम्बू द्वीप—सब ओर अन्तरिपों से घिरा यह सबका राजा जान पड़ता है। मेरू इसकी सुवर्ण दंड का बड़ा छत्र है तथा कैलास से निकला किरण-समूह इसके चामर-चक्र का चिह्न है। इस पर जम्बू वृक्ष विशेष हैं। इसकी सीमा पर जम्बू नदी बहती है जो जामुनों के रस से उत्पन्न है और उसका जल अमृत जैसा है। उस नदी की समस्त मिट्टी सुवर्ण नाम से प्रसिद्ध है। अवन्ती—यहाँ शिप्रानदी बहती है, तरंगें चंचल हैं और उसका कमल समान मुख निरंतर हास्य से रमणीय है। मध्यदेश में पृथ्वी रोमाली के समान यमुना प्रवाहित है, मालूम होता है मथुरा की स्त्रियों के कपड़ों से धुली हुई कस्तूरी से श्याम हो गई है और सर्पराज कालिय का महाह्रद मानों उसकी नाभि है। वृन्दावन सुगन्धित फूलों से व्याप्त है, गोवर्धन पर्वत पर रहनेवाले मयूरों के संचार के कारण साँप स्थान छोड़ गये हैं,।[३७] इसी प्रकार राजा के साथ उसके देश का संकेतात्मक वर्णन श्रीहर्ष ने कालिदास के अनुकरण पर प्रस्तुत किया है। परन्तु कालिदास का स्वाभाविक सौन्दर्य इसमें नहीं है।

§ १८—प्रथम सर्ग में नल उद्यान में पहुँचता है—'निकलते हुए पत्तों की कतार पर बैठे हुए भ्रमरों के बहाने दिशाओं में फलते, शिव

---

३७. नैष० ; स० ११ ; २९, ३०, ३८-४१, ४३, ४९, ५०, ५८—६२, ६९—७०, ७४, ७७, ८४-८६, ८९, १०६, १०७।

द्वारा वर्जन किये जाने से मिले अपयश को धारण करते हुए केतकी के फूल को नल ने देखा। काँटों से क्रूर, काम के नुकीले बाण की तरह वियोगियों के हृदय को बेधने वाले केतकी की

उद्यान

उसने महादेव के समान निन्दा की। पुष्पमय धनुष से चूते हुए रस से गीले हाथ वाला कामदेव केतकी की धूल से हाथ मल कर, दमयन्ती पर अनुरक्त (नल) मुझ पर बाण चलाता है। फूले हुए अनार तथा उस पर बैठे हुए पक्षियों को देख कर उसका वियोग तीव्र हुआ। कामदेव के अर्ध चन्द्राकार बाण के समान तथा विरहियों का हृदय विदीर्ण करने वाले पलाश में नाल ऐसा जान पड़ता है मनों जिगर चिपटा हो। प्र० भा०। चम्पे की कलियाँ थीं कि कामदेव को बलि देने को मानों दीपकाएँ हो। दीपिक पतंगों को मारने के कारण काजल के बहाने पाप उपार्जन करता हैं, और चम्पे की कलियाँ पार्थ कों मारने के कारण भ्रमर रूपी पाप उपार्जन कर रही थीं। पूर्व काल में शिव पर चलाये गये काम के पुष्प बाण में लगी भस्म के समान फूलों का पराग वियोगियों को अन्धा कर देने वाला था। प्र० भा०। काम के बाणों पर धार रखने से जिससे चिंगारी निकल रही हो ऐसे सान के पत्थर के समान नागकेसर के फूल से पराग उड़ रहा था और घूमती हुई भ्रमरों की पंक्ति उस पर बैठी थी। हवा से हिलाये गये पत्तों की नोक से क्षत किया गया, चन्दन के समान सुन्दर गन्ध फैलाता हुआ पका हुआ विल्व फल था। पाटल के फूलों का गुच्छा काम के तूणीर के समान था। वन में फूले हुए काले रंग के अगस्त्य वृक्ष, राहु के समान निगले हुए चन्द्रमा के कला-कलाप को मानों उगल रहा हो। पुष्पों से क्रीड़ा करते हुए पवन ने पहले हठ-पूर्वक तुषार से सफेद हुए पत्तों को चंचल किया और फिर लता-मंडपों में खूब भ्रमण किया। अभिवृद्ध करती है, इस कारण पृथ्वी वृक्षों की धात्री है; वे वृक्ष फलों की समृद्धि से नीचे झुक कर मानों उसका अभिनन्दन करते हैं। अशोक पल्लवों रूप में काम का अस्त्र-जाल ग्रहण कर पथिकों को मारने वाला के

हुआ। बावली के तट पर तरंगों ने, कोयल के गान ने, मयूरों के नृत्य चातुर्य्य ने वन में नल की आराधना की। तोते और सारिकाएँ भी उसका गान कर रही थीं'।

§ १६—उद्यान में घूमने के बाद नल सरोवर को देखता है—'वह ऐसा जान पड़ता मानों बहुत समय से पुराने रत्नों की सम्पत्ति को मन्थन के भय से लेकर समुद्र उस वन में छिप कर रहता है। जल से आधे ढके तथा तट के पास की जगह तोड़ कर निकले मृणाल-जाल के बहाने जल में डूबे ऐरावतों के झुंड के दाँतों को, शेषनाग की पूँछ के समान सरोवर धारण करता था। तट पर ठहरे हुए नल के घोड़ों के समूह के प्रतिबिम्ब से ऐसा जान पड़ता था मानों लहरों की चाबुक से ताड़ना होने पर हजारों चंचल उच्चैःस्रवाओं को उसने आश्रय दिया हो। प्र० भा०। सरोवर में कमलों के समूह के रूप में मानों विष्णु शयन कर रहे हों, क्योंकि उसमें चक्र के समान चक्रवाक, लक्ष्मी के रूप में कमल भ्रमर के समान भँवर हैं और मृणाल रूपी शेषनाग से कमल का समूह उत्पन्न हुआ है। प्र० भा०। श्वेत तथा नीले कमलों के बहाने मानों सरोवर में चन्द्रमा तथा विष की दीप्ति फैल रही थी। तरंग के विलास से चलायमान हुए शैवाल लताओं के समूह ऐसे मालूम होते थे मानों वड़वानल से निकला हुआ धुँआ इकट्ठा हो गया हो। सूर्य्य के संसर्ग से रोमांचित हो गई और बहुत सुगन्ध प्रकट करती हुई कमलिनी अपने विकसित शरीर से अप्सरा के समान मालूम हुई। प्रवाह में प्रतिबिम्बित तट का वृक्ष ऐसा जान पड़ा मानों हवा से चलायमान की गई लहरों से चंचल तथा पंखों को कँपाता मैनाक पर्वत भीतर घुस गया हो'।[३९]

सरोवर

---

३८. वही ; स० १ ; ७८, ७९, ८१–८४, ८६, ८७, ९२–९७, १०१–१०३।
३९. वही ; वही ; १०७–१०९, १११, ११३–११६।

§ २०—नल और दमयन्ती के विवाह के बाद कवि ने अनेक क्रीड़ा-विलासों के वर्णन के साथ प्रातः और सायं सन्ध्याओं का वर्णन भी किया है। कालिदास के अनुकरण पर प्रभात का वर्णन वैतालिकों द्वारा कराया गया है—'इन्द्र की महिषी (पूर्व दिशा) दिन का आरम्भ होते ही अपने मुख के नैर्मल्य के बहाने परिहास समेत प्रकट करती है, मानों वह वरुण की भार्या (पश्चिम दिशा) को, किरणों के वस्त्र के एक एक के क्रम से हट जाने के कारण दिगम्बर हुए जाते हुए चन्द्रमा दिखाती है। प्र० भा०। महावर की शोभा का तिरस्कार करने वाली सूर्य्य किरणों के संसर्ग से अन्धकार का समूह उस पंक-समूह के समान जान पड़ता है जिसपर कमल की नाल खोदने के लिये बहुत से हंस अपनी चंचल चोंचें मार रहे हों। काली भ्रमरी भी सूर्य्य किरणों के संसर्ग में धुएँ के रंग की जान पड़ती है। प्र० भा०। रवि की प्रातःकालीन किरण रूपी ऋचाओं के ओंकारों पर स्पष्ट और निर्मल अनुस्वार लगाने के लिये कोई आकाश में तारों को चुनता जा रहा है और उन्हीं ऋचाओं के ऊपर उदात्त चिह्न की रेखाएँ बनाने के लिए चन्द्रमण्डल से किरणें चुन ली गई हैं। अन्धकार रूपी बालों को पकड़ कर सूर्य्य रात्रि का शीघ्र नाश करता है, यह देखकर कुमुद संकोच को प्राप्त होता है, आप के नयन खुलते हैं और चन्द्रमा निष्तेज होता जाता है; जैसे राम की मायामयी भार्या को मेघनाद ने बाल पकड़ कर मारा, तब कुमुद वानर मोहित हो गया, नल ने आँखें बन्द कर लीं और सुग्रीव बलहीन हो गया। देव-मिथुन के क्रीड़ा-मंच रूपी आकाश में तारों का समूह गिरे हुए हारों के बिखरे हुए पुष्पों की अत्यन्त शोभा धारण करता है तथा पूर्ण चन्द्रमा अत्यन्त मृदु किरण रूपी रुई के गालों से भरे तकियों के समान है। चारों वेदों की हजार शाखाओं की मूर्तियों के रूप में सूर्य्य की किरणें अब हमारे पास के देश को भूषित करती हैं, इस कारण वेदपाठियों के वदन-कन्दराओं से सूर्य्य की किरणों का ही वेद-पद-रूप प्रतिशब्द

प्रातःकाल

आकाश में ऊपर जाता है। कमलों के अकारण बन्धु सूर्य्य ने इन्द्र के महल के बुर्ज को अपना पायादान बनाया है, और जाते हुए शत्रु अन्धकार को पश्चिम गगन तल में लीन करके स्वर्णाचल के चारों ओर घूमने का उसका विलास सफल हो गया है। प्र० भा०। सुख-क्रीड़ा में टूटे हुए हारों के मोती के समान फैले हुए, देवताओं के आँगन आकाश में तारों को प्रातःकाल बहुकर ने साफ कर दिया और अब आकाश स्वाभाविक शोभा से युक्त दिखाई देता है। प्र० भा०। सूर्य्य के विहार-स्थल उदयाचल शिखर पर, अधिकार जमाने के लिये दिन और रात्रि के युद्ध के समय, पिघले हुए शिलाजीत का प्रवाह सा बह रहा है। अरुण और प्रणाम करने आये हुए रक्त-वर्ण गरुड़ के संसर्ग से इस शिखर पर पकी हुई नई ईंटों का प्राकार मानों बन गया है'। नैषधीय में कारण सम्बन्धी विचित्र कल्पनाएँ अधिक हैं जिनसे चित्र का रूप सामने नहीं आता—'सन्ध्या सूर्य्य की किरण रूपी अग्नि में नक्षत्र रूपी लाजों का होम करती है और उसी के साथ सूर्य्य का विवाह होता है; उसके सामने सूर्य्य भी अग्नि की प्रदक्षिणा करेगा'।[४०]

'किंचित निकली हुई सूर्य्य किरणों से आकाश अनुलेपन कर रहा है। संकुचित होते कुमुदों को छोड़ कर विकसित होते कमलों में हर्ष से जाने वाली लक्ष्मी समुद्र से निकले हुए सूर्य्य रूपी सुनहरे कुम्भ को देखने की इच्छा करती है। पुरुष शक्ति वाले भ्रमरों ने कमलों में प्रवेश कर मधु लाकर अपनी स्त्रियों को नया भोजन कराया। खिली हुई पंखुड़ियाँ के साथ कमिलिनी जान पड़ती है, सूर्य्य किरणों का भोग लगाने के लिये आपोशान मन्त्र से दिये गये जल को ग्रहण करने के लिये चुल्लू खाली कर रही है। तट के वृक्षों में वर्तमान पक्षियों के कलरव से मानों सरोवर में कमलिनी ने संकुचित फूलों को खिला कर नींद त्याग दी, और

४०. वही; स० १९; ३, ५, ७–११, १३, १६, २०।

भ्रमर उनके मधु को, बीच-बीच में भ्रमरी के मुख से अधर सुधा लेकर, स्वाद से पीता है। गत दिन के नाश होने पर दया का मानों आविर्भाव होने से शोक से संकुचित हुए कमलों की कलियों के बीच के कोटर में रात बिता कर, उपवास करने वाले भ्रमर इस समय विकसित कमलों के निकट घूम रहे हैं और सहचरी के साथ मकरन्द से पारण करते हैं। अन्धकार के विरह के कारण, जिनमें कहीं कहीं तारे दीखते हैं ऐसी दिशाएँ श्वेत हो गई हैं। कौन सा सरोवर कमलों के विकास से श्वेत नहीं दीखता! केवल आकाश का मध्य भाग, शरण आये अन्धकार का विनाश करने वाली सूर्य्य-प्रभा का आदर करने के कारण अपनी अकीर्ति के भार से काला जान पड़ता है। मित्र सूर्य्य के उदय होने पर क्या कमल वन हँसेंगे नहीं? मित्र चन्द्रमा की लक्ष्मा चले जाने पर क्या कुमुद तन्द्रिल न होंगे? अथवा कमलों ने निद्रा के बदले में कुमुदों से यह स्मित ले लिया है जिसकी शोभा हिमगिरि की शिला जैसी है। नवागत भ्रमर कमल का मधु पिये या न पियें, क्योंकि उन्होंने रात में कुमुदों का छक कर मकरन्द पान किया है; परन्तु पूरी रात प्यासे रहे चक्रवाक अपनी वधू के कमल-मुख का अधर-रस पान करते हैं। प्रातःकाल क्रीड़ा-सरोवर पर चक्रवाक वियोग के कारण तरल हुई जिह्वा से अत्यन्त विह्वल सहचरी को नाम लेकर बार-बार पुकारता है। उनका ताप हृदय छोड़कर सूर्य्यकान्त में जाना चाहता है और युवती का वियोग रात छोड़ने वाले चाँद में प्रवेश कर गया है। कली रूपी आँखों से अन्धत्व स्वीकार करने वाली कुमुदिनी सूर्य्य को नहीं देखती, तो लोग उसे दुष्ट क्यों बताते हैं, राजाओं की स्त्रियाँ भी तो काव्य में असूर्य्यपश्या कही गई हैं। आकाश में उड़ते हुए भ्रमर, चुल्लू में लेकर अन्धकार-समुद्र पीने वाले सूर्य्य की अंजली से गिरे हुए पानी की मानों बूँदें हों। फूलों से रिसती हुई कमल-मधु की धाराओं के दोनों ओर चिपटे हुए भौंरे जान पड़ते हैं अन्धकार समुद्र को चुल्लू से पी जाने के बाद तलछट रह गई है। कुंकुम के फूलों की शोभा को अपमानित करने

वाली तथा सरोवरों के तटों पर संचरणशील बाल सूर्य्य की किरणों ने कमल-परिमल के आनन्द से उड़ती हुई भौंरों की पंक्ति के मिश्रण से मानों आधी लाल और आधी काली गुंजा की शोभा धारण करने की इच्छा की है। निश्चय ही सरोवर अनेक रंगों का हो गया है, सूर्य्य की बाल किरणों से वह रक्त वर्ण का है, कमल-मकरन्द के स्वाद के लिये गिरती हुई भ्रमर पंक्ति उसे नीला कर रही है और खिलती हुई कलियाँ से उसका मध्य भाग सफेद है'।[४१]

'पति सूर्य्य के अस्त होने पर जो पिछले दिन अग्नि में प्रविष्ट हो गई थी, वही अनुरक्त दीप्ति पाताल से हठ-पूर्वक सूर्य्य का उद्धार कर सतीव्रत की मूर्ति के समान शोभित है। शुभ्र-वर्ण सूर्य्य की अन्धकार पीने वाली देह से यम, यमुना और शनि पैदा हुए, विद्वानों का कथन ठीक है कि बच्चों का रंग पिता के आहार के अनुसार होता है। सभी दिशाओं के प्रान्त देश में वर्तमान अन्धकार परम्परा को क्षण भर में विनाश करने वाली सूर्य्य की किरणें वृक्षों के नीचे छाया रूप अन्धकार का नाश करने में असमर्थ हैं। सूर्य्य अश्विनीकुमारों के पिता हैं, इस कारण जगत् के अन्धकार का नाशक है और कमल की मूर्च्छा को दूर करता है। सायंकाल में उदित होकर चन्द्रमा ने अस्त हुए सूर्य्य से छोड़ी गई उसकी भार्या पद्मिनी को पीड़ा दी, तब कुमुदिनी हँसने लगी थी, अतः अब कर्कन्धू फल के समान लाल सूर्य्य के उदय होने पर भय से चाँद और कुमुदिनी दोनों प्रभाहीन हो गये। हर रात सहस्र फन वाला शेषनाग, पाताल मार्ग से रात्रि को परिभ्रमण करने वाले तथा वेदमय शरीर वाले सूर्य्य की किरणों की हज़ारों शाखाओं में एक-एक फन के दोनों नेत्र लगा कर—एक से सुनता और दूसरे से देखता है कि वे स्वरों के साथ वर्तमान और देदीप्यमान हैं। कमलों के मित्र सूर्य्य की मूँगे जैसी किरणों के नख जैसे अगले भाग से जान पड़ता है कि

---

४१. वही ; वही ; २५, २७–३३, ३५–४०।

खिड़कियों से निकली हुई अँगुलियों की शोभा धारण कर रहा है। कमल के नाल के समान सुन्दर सूर्य्य के करों की अँगुलियाँ खिड़की से प्रवेश कर रही हैं। खिड़की में प्रविष्ट हुई किरणों के बीच में घूमता हुआ धूल-कणों का समूह, स्वर्ग के बढ़ाई के द्वार सान पर धरे जाने से उड़ती हुई धूल सा क्या नहीं जान पड़ता ? नाई की तरह दिन ने सूर्य्य-किरण के पैने उस्तरों से अन्धकार की वेणी काट कर रात्रि को बाहर निकाल दिया, और उसीके बालों के गुच्छों से पृथ्वी, वृक्ष आदि की छाया के बहाने, काली हो गई है'। श्रीहर्ष को वैचित्र्य प्रधान कल्पना की ऊहात्मकता में कभी कभी सौन्दर्य सर्जन होता है, और कभी उनकी पर्यवेक्षण शक्ति का पता भी चलता है। कमलों का विकास करने वाला सूर्य्य से पीड़ित चन्द्रमा शंख काटने वाली आरी के समान है जो शंख के चूर्ण के लेप से सफेद है। कुमुद ने अपनी पंखुड़ी रूपी आँखों को खोलकर कमलिनी पर सारी रात पहरा दिया, अब वह दिन होने पर आनन्द से गहरी नींद ले रहा है तथा अपने भीतर भ्रमण करते भ्रमरों से निनादित है। इन्द्र के महल का सुनहला कुंभ सूर्य्य, कुंकुम से रक्त आभा वाली ध्वजा की एकत्र हुई नई किरणों से चित्त को प्रसन्न करता है। अन्धकार के तमाल-वन को जलाने वाली दो-तीन किरणों ने ही कमल की सभा को दिन का महोत्सव दिया; इस कारण पृथ्वी तल पर अटके हुए तथा आकाश में व्याप्त अन्धकार को नाश करने वाली किरणों का जाल फैलाने को सूर्य्य व्यर्थ जल्दी करता है। तिमिर समुद्र का सूर्य्य वड़वानल है, खिन्न कमल-वन को विकसित करने वाला है। यह दूर तक आकाश मार्ग में चढ़कर भी अपने सहज भास्वर रूप को क्यों नहीं धारण करता और इसकी किरणें क्यों आकाश को लाल करती हैं'।[४२]

§ २१—अन्तिम सर्ग में नल दमयन्ती से सन्ध्या का वर्णन करते

---

४२. वही ; वही ; ४४, ४५, ४९–५५. ५७, ५९, ६२-६४।

है—'यह पश्चिम दिशा महावर के रस से धुली हुई और कुंकुम के रंग से पूर्ण हुई सी जान पड़ती है। प्र० भा०। अस्ताचल के शिखर पर बने हुए घरों के पालतू प्रहरान्त में शब्द करने के लिये उल्लसित हुए मुरगों की शिखाओं से क्या पश्चिम दिशा अकस्मात् लाल हो गई है? शीघ्र अस्त होते हुए सूर्य्य से बाहर निकलती हुई किरणावली रूप सिंगरफ से लाल हुआ बेंत जिसके पास है ऐसी नायिका रात्रि का द्वारपाल सायंकाल अपने अधिकार से दिन को अन्दर घुसने नहीं देता। मैनसिल के समान चमकने वाली सन्ध्या देवी का ध्यान करके शिव अस्त होते सूर्य्य की रोशनी में नाचते हैं और उनका अंग रूप आकाश तारों के हार से विभूषित हो गया है। प्र० भा०। काल शबर ने विकसित कमलों वाले दिन रूपी हाथी को मार डाला, उसके अधर की धारा सन्ध्या है और कुम्भस्थल से निकले हुए मोती तारे हैं। सन्ध्या से पश्चिम दिशा ऐसी लाल है कि विवाह के अवसर पर महादेव ने उसे पुष्प-सिन्दूरिका के उत्सव मे धारण किया था। प्र० भा०। सूर्य्य सोने के टुकड़े को बेंचकर आकाश ने बदले में तारा की कौड़ियाँ ली हैं, अस्ताचल की कसौटी पर सन्ध्या की चमक उसका निशान है। अनार खाने वाले काल ने अपने आप सूर्य्य-मण्डल का अनार फल आकाश-वृक्ष से तोड़कर उसका सन्ध्या रूपी छिलका फेंक दिया है और तारा-समूह के रूप में बीजों को थूँक दिया है। सन्ध्या-वन्दन के बाद तांडव नृत्य के लिये उठे हुए महादेव के चरणों के दृढ़ आघात से गिरे हुए कैलाश पर्वत स्फटिक टुकड़ों से आकाश शोभित है। इस प्रकार स्तुति से उत्पन्न हुई लज्जा से मानों सन्ध्या का प्रस्थान हुआ और आकाश में अन्धकार और तारे फैल गये। राम बाण से से सागर ऊपर चला गया था, उसी में जल-जन्तुओं के समूह से मिश्रित मछलियाँ और शंख दिखाई पड़ रहे हैं (चन्द्र और तारे)। रात्रि में विरह से व्याकुल, मन्दाकिनी के कूल पर रहने वाली—चक्रवाकियों के नेत्रों से उत्पन्न हुए अश्रु-जल के बूँद ही तारे हैं और उनके मण्डल

सायंकाल

उनके आँसुओं की धाराएँ हैं। नक्षत्र मन्दाकिनी के जल-जन्तु हैं, जो जल-क्रीड़ा करते हुए देवताओं के डर से तल में रहते हैं और यहाँ से साफ़ दिखाई देते हैं'। आगे श्रीहर्ष ने अपने नक्षत्र-ज्ञान के आधार पर विचित्र कल्पनाएँ प्रस्तुत की हैं।—'अन्धकार दिन की मर्यादा के नाश से स्वतंत्र होकर ऐरावत के मद-जल के काले प्रवाह के समान पूर्व दिशा में सब ओर फैलता है। राम के सेतु की रोमावली वाला यम का वाहन भैंसा अन्धकार के समान घूमता है, और उसे देख डरते हुए अपने घोड़ों को लेकर सूर्य्य भाग गया जान पड़ता है। पश्चिम दिशा में वर्तमान अस्ताचल के शिखर पर सूर्य्य-बिम्ब इन्द्रायन फल जैसा था, और उसी के शिला पर गिरने पर यह काले बीजो जैसा अन्धकार बिखर गया है। कुबेर-वन के समान पत्र-वल्लरियों से युक्त उत्तर दिशा का कस्तूरी जैसा अन्धकार हिमालय का अपरा है, क्योंकि सूर्य्य ने सुमेरु की परिक्रमा करके उसकी अवज्ञा की है। सहस्र-रश्मि की किरणों जिस आकाश को ऊँचाई पर धारण किया था, वही सूर्य्य की अनुपस्थिति में सन्ध्या के बहुत पास आ गया है। प्र० भा०। रात्रि के इस चन्द्रहीन समय, अन्धकार का काला वस्त्र पहने और कामदेव के तारे रूपी पुष्प बाणों से घिरी अभिसारिकाओं के समान लज्जापूर्ण दिशाएँ मेरी (नल) ओर आ रही हैं। विष्णु के सूर्य्य-नेत्र के बन्द कर पलकों को चपका लेने पर उनकी बरौनी हा अन्धकार के रूप में श्याम रंग से चन्द्रमा के कलंक को भी जीत लेती है। जान पड़ता है अपनी किरणों के रूप में सूर्य्य लोगों के नेत्र ले गया है, जिससे अन्धता अन्धकार के रूप में फैल गई है'।[४३]

क—उल्लुओं ने ग्रहों के राजा सूर्य्य की प्रभा से ढक गये तारों की

---

४३. वही: स० २२ ; ३, ५-७, ९, १०, १३–१७, १९, २०, २६–३१, ३३, ३४।

शोभा वाले दिन को अन्धकार माना, क्योंकि जिसमें रूप दीखता है ऐसा आलोक उन्होंने देखा ही नहीं था। दिन शत्रु में वस्तुओं के आचरण को जानने के लिये, उनके साथ दूत रूप में लगी छायाओं को अन्धकार ने अब रहस्य पूछने के लिये बुला लिया है'। इसके बाद नल ने अन्धकार शत्रु के वर्णन से दुःखी जपाकुसुम के समान उदय हुए चन्द्रमा का मानो प्रसन्न करने के लिये उसका वर्णन किया'। 'उदयाचल की उच्च शिखर के पर्दे से कुछ काल तक ढका हुआ भी चन्द्रमा चाँदनी से चकोरों की चोंच रूपी चुल्लू भर कर अब अमृत की वर्षा करता है। पहले अन्धकार में अभिसारिकाओं के रूप में संकेत-स्थल पर आई हुई वृक्ष के पास की भूमियाँ चन्द्रोदय होने पर वृक्षों की छाया के बहाने पहले नीला वस्त्र त्याग कर चाँदनी के अनुकूल दुकूल पहन कर अपने घर चली गईं। निश्चय ही, जिस पर्वत ने समुद्र का पहले मंथन किया था समुद्र के गर्भ में रहने वाला चन्द्रमा उससे उत्पन्न हुआ, क्योंकि अब भी यह पर्वत से उदय होता जान पड़ता, यद्यपि अस्त सागर में होता है। जब चन्द्रमा पूर्व दिशा में अतिथि होकर आया, तब क्या दिशा-पति इन्द्र के वाहन तथा उसके छोटे भाई ऐरावत ने अपने सिन्दूर से रंजित सिर पर लिया था, जिससे वह लाल रंग का निकलता है। इन्द्र की नायिकाओं के चुम्बन के कारण अधर के रंग से चाँद बिम्बाफल की भाँति लाल उदित होता है। क्या विधाता चन्द्र के सुनहरे साँचे से सुन्दर स्त्रियों का ढालता है? चन्द्रमा के नेत्र आदि अवयव कठिनता से दीखते हैं क्योंकि वे विलोम रूप से बने हैं! कुछ समय पहले पूर्व दिशा का आकाश रात से पीला था, पर अब चन्द्रमा की किरणों की पुताई से लाल हो गया है'। नैषधीय में कुरुचिपूर्ण कल्पनाएँ भी हैं—'सहस्रबाहु का सिर काट कर परशुराम ने जो दुर्गन्ध-युक्त रुधिर पितरों को दिया था, उसी ने पिता लोक में जाकर चन्द्रमा को रंग दिया है। कान-नाक हीन कलंक से युक्त लाल किरणों वाला चन्द्रमा सूर्पनखा के मुख के समान है।

चन्द्रोदय

सायंकाल धूर्त ने आकाश को लाल चाँद के बहाने नकली सोने का सिक्का सूर्य्य मणि लेकर दे दिया, अब वह झूठा सिक्का क्षण मात्र में सफेद चाँदी का हो गया। सायंकाल बालक चन्द्र बिम्ब का सुन्दर लट्टू नचाता है, और क्रम से आकाश में नाचता हुआ वह लाल सूत की लत्ती से अलग हो जाता है। रात्रि ने काले आकाश में तारे की खड़िया के अक्षरों से अन्धकार की प्रशंसा लिखी थी, उसे पोंछने से चाँद की लाल किरणें सफेद हो गई हैं। दिशा सुन्दरियों ने सन्ध्या के शुरू होने के समय उत्पन्न लाल किरण रूप कुंकुम का लेप किया, सन्ध्या के बाद अन्धकार कस्तूरी लगाई और इसके बाद चन्द्र-किरणों के चन्दन का लेप किया। विधाता शिशिर ऋतु के दिनों को काट-काट कर उनके टुकड़ों से चाँदनी रात बनाता है नहीं ये रातें शिशिर के दिनों के बराबर क्यों है और शिशिर के दिन छोटे क्यों होते हैं'। नल के आग्रह से दमयन्ती चन्द्रमा का वर्णन करती है—(समुद्र में ज्वार लाने के लिये यह चन्द्रमा कितना जल चन्द्रकान्त मणि से और कितना जल चक्रवाक के वियोग से खिन्न हुई चकवी के नेत्रों से लेता है ? रात्रि के यमुना प्रवाह का अनुकरण करने वाले अन्धकार के विलुप्त होने पर निर्मल चन्द्र दीपक की दीप्ति से युक्त ज्योत्स्ना रूप बालुकामय द्वीप गोचर होता है। और कुमुदों के विकास की दीप्ति से संसार दूध के समान धवल हो गया है, क्योंकि दिन में सब कुमुद संकुचित हो जाते हैं तब चन्द्र के होने पर भी सब संसार वैसा नहीं पड़ता। मृत्युंजय की जटा में रहने वाला चन्द्रमा क्षीण नहीं होता, क्योंकि शंका से मृत्यु भागती है, लेकिन वह अपनी सुधा से जीवित किये कंकाल-माला के मुण्ड रूपी राहुओं के भय से बढ़ता भी नहीं है। चन्द्रमा चकोरों को अपनी किरणें, देवताओं को अमृत तथा शिव को अपनी कला देता है, फिर भी कल्पद्रुम का भाई होने से उसका यह उपकार कम है। विधाता ने चन्द्रमा को कामदेव की आधी जली हुई अस्थियों से बनाया है, इसी से उसकी कान्ति सफेद और काली है। मृग के लोभ से

राहु चन्द्र को ग्रसता है, लेकिन चाँद अपनी गोद के हरिन को हिलने नहीं देता, इस प्रकार राहु उसे प्रसन्नता से त्याग देता है। ठीक ही है कृष्ण पक्ष में देवता चन्द्रमा को पी कर अमावस्या के दिन खाली कर देते हैं। पुराने समय में इसके पिता समुद्र को भी अगस्य ने पी लिया था। मन्दाकिनी के समान चारों दिशाओं को पूर्ण करती चाँदनी ही, क्षीर सागर के प्रवाह में निवास करने के चन्द्रमा के दुःख का नाश करती है। चाँद की पुत्री चाँदनी समुद्र को नृत्य की शिक्षा देती है, चकोर की भोजन को वस्तु है और लोक के नेत्र को सुख देती है, तब भी उसके कौमुदी नाम से कुमुदों से उसका अनिर्वचनीय सम्बंध प्रकट है। चाँदनी के जल से धवलित भूतल के पदार्थों की छाया के बहाने छिद्र धारण करने वाली, चन्द्र के धवल भाग की किरणें भूमि में कलंक की नीली कान्ति से मिश्रित प्रभा से शोभायमान होती हैं। चन्द्रमा ने अन्धकार दूर कर आकाश के हिस्से को विशद कर दिया है, पर किरणों से बढ़ाये गये लवण सागर के जल से वह काला भी हो गया है। प्रवह वायु के रथ से छुटा हुआ प्यासा मृग जल-शून्य आकाश में चन्द्रमा के अमृत बिन्दुओं पीता हुआ बार-बार मुख से उनका स्वाद लिया चाहता है। बालक चन्द्र के पास हरिन न था; तरुण होने पर उसकी प्रिया औषधियों ने जो हरिन उसे उपहार में भेजा, उसे उसने सन्देश मान कर वक्षःस्थल में धारण किया। और यह मृग चन्द्र की सेवा के लिये आई हुई औषधियों के पल्लव का स्वाद लेता है, उसकी सुधा धाराओं को पी कर सुख से रहता है। चन्द्र के शश के पीछे के रोमों की लाली वर्तमान है, तब भी हमको नहीं दीखती, क्यों कि दूर की लाल और नीली वस्तु का केवल नीलापन दिखाई देता है। ज्योतिष के अनुसार चन्द्रमा गोल था, परन्तु राहु की दोनों दाढ़ों के यंत्र से दब कर अमृत निकल जाने से वह चपटा हो गया है। प्राचीन काल में चन्द्रमा विष्णु का कमल-नेत्र बना था, तब उसका कलंक ही आँखों की पुतली और भ्रमर की शोभा धारण

करता था'।[४४]

'पद्मिनी के दाह के विकार से हिम में आग की कल्पना होती है चन्द्रमा का कलंक उससे उठे हुए धुओं का समूह है। पसीने के रूप में बहती नदियों से घिरी पृथ्वी जब संसार के भार से थक जाती है, तब छाया के बहाने अमृत के सागर चन्द्रमा में डूब कर अपनी थकावट दूर करती है। सुनहरा सुमेरु पर्वत, पुराना होने के कारण, नीला काई से नीला हो गया है; नहीं तो पृथ्वी का चन्द्रमा पर पीला प्रतिबिम्ब पड़ता। वर्षा और धूप में पड़े हुए दिशा रूपी काष्ठ पर पैदा हुआ चन्द्रमा छत्राक के समान है। दिवस के अवसान के समय सूर्य्य के नीचे लटक जाने पर संसार के नेत्र रात्रि में चन्द्रमा की सहायता से विपत्ति नदी के समान अन्धकार के देश में घूमते हैं।.. ...शब्द पथिक दिन के आतप से संतप्त होकर उतना शीघ्र नहीं चल पाता जितना रात में चन्द्रमा की अमृत-किरणों को पी कर या अन्धकार के वन में विश्राम पाकर। रात्रि रूपी धोबिन दुग्ध धारा के समान किरणों से आकाश-स्थित अन्धकार मय नीली रात्रि को क्षण भर में धो डालती है। शरद् ऋतु ने मेघों की कालिमा दूर कर दी, चाँद के कलंक की किंचित कालिमा दूर न कर सकी।......क्रीड़ा सरोवर में पड़ते हुए चन्द्र-बिम्ब का स्नान करती हुई राजहंसी हंस समझ कर चुम्बन करती है। देवताओं ने अमृत पी कर खाली कर दिया है, इस कारण चन्द्रमा प्रतिबिम्ब के बहाने क्रीड़ा-नदी में मग्न होकर फिर अमृत से भर गया। कुमोदिनी के पुष्प रूप हाथ से चन्द्र-किरणों के मिलने से मानों मधु के बहाने मानों कन्यादान के जल का अभिषेक हो रहा है। इस केलि नदी में खिले हुए पुष्प रूपी नेत्र वाली कुमुदिनी वन में रहने वाली हरिणी है, और वह अपने प्रिय हरिन को तुम्हारे (दयमन्ती के) मुख-

---

४४. वही ; वही ; ३७–४१, ४३–५२, ५४, ५५, ५९–६३, ६५–७१, ७५–७५, ७७, ८५, ८८।

चन्द्र में धोखे से देख रही है। जलमें तप करते कुमुदों को ध्यान भंग करने वाली अप्सरा चन्द्रमुखी रात्रि ही है; अमृत उसका अधर है और किरणों में वह हँसती है'।[४५] श्रीहर्ष के वर्णनों चित्रमयता का सर्वत्र अभाव है, पर कल्पना वैचित्र्य में उनकी प्रतिभा का परिचय मिलता है।

---

४५. वही ; वही ; ९०–९२, ९६, ९७, १०८, १११, ११२, १२०–१२४ ।

अनुक्रमणिका

शुद्धि-पत्र

प्रेस और प्रूफ़ की भूलों से पुस्तक में अनेक अशुद्धियाँ रह गई हैं। उनमें से केवल उद्धरणों का शुद्ध-पाठ यहाँ दिया जा रहा है।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४२	२६	भूथ	भूत
४८	२७	गतः	गताः
५३	२३	सार	सुधाकर
५५	४	वापुविन	वापुर्विन
५५	१०	र्वत	वर्त
६८	१५	तीर्ण	त्तीर्ण
६६	२	कुकुभ	ककुभ
७२	१४	स्पर्शैः	स्पर्शैः
७३	४	विमिक्त	विमुक्त
७६	२	सारसम	सारसम्
७६	५	दुदिम	दुर्दिन
८०	२	प्योद	पयोद
८१	११	चम्का	चम्पका
८१	१२	सहास्र	सहस्र
८४	२	नैर्द्रु	नैर्द्धि
८५	६	द्रत	द्रुत
८७	५	दगड	दगडं
६१	१	दुर	दूर
६२	१४	अवरि	अविर
६३	२	व्रिल	विल

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६४	२२	द्वभाव	द्व्भाव
६४	२३	ब्रुहु	बहु
६७	५	मद्भत	द्भुत
१०६	४	रुग्गि	रूग्गि
११६	१६	किसल	किशल
११६	१८	गति	गमि
१२५	३	कथया	कशाया
१२६	२	३	३"
१२८	६	खण्ड	सण्ड
१४१	२	निविड	निबिड
१४९	५	नीलौ	नीलै
१५१	९	जन्य	जन्म
१५६	६	स्थरा	स्परा
१५६	२०	पये	पपे
१५९	१८	जान	जान्
१६३	२	घष	घर्षं
१७०	८	सम्वेद्	संवेद्
१७२	२०	भित्वा	भित्त्वा
१७८	१४	विहारा	बिहरा
१८२	२३	युपुषि	युषि
१८५	१७	द्रमाः	द्रुमाः
१९०	१३	रन्ध्रे	रन्ध्रे
१९४	१८	विष्व	विश्क
१९४	१९	रात्रिः	रात्रेः
१९५	४	भिवा	मिवा
२०३	७	रूप्य	रुप्य

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२०५	१	नन्त	अनन्त
२०५	१०	वद्धि	वार्द्धि
२०६	६	मन्तः	मन्तं
२०८	७	ग्गोञ्भि	ग्गोञ्भि
२१२	१५	पन्त्रा	पन्त्रा
२१३	८	निह्नत	निह्नुत
२३८	२	पथ	प्रथ
२५१	२४	कूजत	कूजत्
२६४	३	वार्य्यं	वार्य्यें
२६५	१६	डच्चै	उच्चै
२६६	१३	कुर्व्वं	कुर्व्व
२७०	२०	पाणा	पाणां
२७३	२१	ण्यः	ण्याः
२८४	१४	मद	मर्द
२८८	२२	प्रग	प्रक
२८८	२३	वन्धुः	बन्धुः
२९२	१२	यास्त्रं	यास्त्रं
२९४	१४	दैनि	दैर्नि
२९४	१५	र्य्या	र्य्या
३०५	२३	त्रक	त्रकं
३०५	२३	निर्भु	निर्मु
३०६	११	पाणडु	पाण्ड
३११	२७	बुद्ध०	पद्य०
३१४	९	ऊद्भ्र	उद्भ्र
३१४	१४	स्तरशि	स्तशि
३१७	१५	शिला	शिली

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३१८	२२	व्यंव	व्यत्र
३२१	१६	तर्जनी	तर्जना
३२३	२१	विद्रते	विद्रुते
३२५	२१	हवा	इवा
३२५	२२	तस	तंम